सुत्तपिटके

संयुत्तनिकायपालि

[हिन्दी-अनुवादसहिता]



सम्पादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारतीग्रन्थमाला-४२

Bauddha Bharati Series-42

सुत्तपिटके

संयुत्तनिकायपालि

[हिन्दी अनुवादसहिता]

(४. सळायतनवग्गो)

3

प्रधानसम्पादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

Bauddha Bharati Series-42

The

SAṀYUTTANIKĀYAPĀLI

(4. Saḷāyatana Vagga)

with

HINDI TRANSLATION

Vol. - 3

Edited & Translated By

Swāmī Dwārikādās Śāstrī

Varanasi

B. 2543] 2000 [V. 2056

बौद्धभारतीग्रन्थमाला-४२

सुत्तपिटके

संयुत्तनिकायपालि

[हिन्दी अनुवादसहिता]

(४. सळायतनवग्गो)

तृतीय भाग

सम्पादक एवं अनुवादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारती

वाराणसी

बु० २५४३] सन् २००० ई० [वि० २०५६

प्रकाशक :
बौद्धभारती
पञ्चशील, एस १०/६ ए-२ए,
मकबूल आलम रोड,
(जिला जेल के सामने) वाराणसी-२२१ ००२
फोन : ०५४२-३२९८०४४
मो० : ०९३३६९१२५४७
* * * * * * * * * * * *
पोस्ट बाक्स नं. : १०४९,
वाराणसी-२२१ ००१. (भारत)

Publisher :
Bauddha Bhāratī
S 10/6 A-2A, 'Panchasila'
Maqbool Alam Road,
Opp. Distt. Jail, Varanasi-221 002
Ph. 0542-3298044
Mo. 09336912547
* * * * * * * * * * * *
Post Box No. : 1049,
Varanasi-221 001 (India)

e-mail : bauddhabhrti@satyam.net.in

सहसम्पादक :
धर्मकीर्तिशास्त्री
चन्द्रकीर्तिशास्त्री

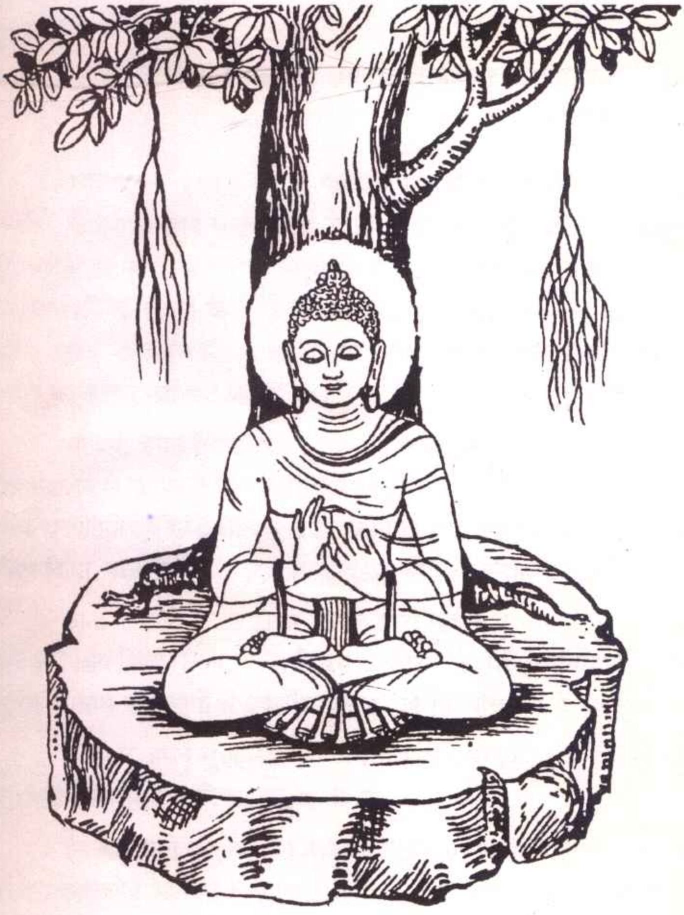
प्रथम संस्करण : २००० ई.

First Edition : 2000 E.

Price Rs. 2250/- (In 4 Vol's set)

मुद्रक :
साधना प्रेस
वाराणसी-२२१ ००२

Printed By :
Sadhana Press
Varanasi- 221 002



"एसोहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि, धम्मं च, भिक्खुसङ्घं च।
उपासकं मं, भन्ते, भगवा धारेतु, अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणङ्गतं" ति॥

प्रकाशकीय वक्तव्य

''अनुजानामि, भिक्खवे, सकाय निरुत्तिया परियापुणितुं'' ति

—विनयपिटके, भगवा बुद्धो।

सन् १९५८-१९६१ ई० में पालित्रिपिटकप्रकाशनसमिति, नालन्दा द्वारा सम्पूर्ण त्रिपिटक प्रकाशन में कार्य करते समय से ही हमारा यह सङ्कल्प था कि समस्त त्रिपिटक (बुद्धवचन) का हिन्दी-रूपान्तर (अनुवाद) के साथ भी प्रकाशन होना चाहिये, जिससे वह अन्य भाषाओं के विद्वानों के लिये भी उपयोगी हो सके। परन्तु यह कार्य स्वयं में इतना विशाल, गुरुतर एवं बहुजनसाध्य था कि हमारे जैसा अल्पसाधन वाला एकाकी पुरुष इसके प्रकाशन का साहस नहीं कर पा रहा था।

एतदर्थ, हमने विगत पन्द्रह वर्षों में अत्यधिक प्रयास किया; भारत के केन्द्रीय शिक्षामन्त्रालय से, उ०प्र० शासन के शिक्षाविभाग से, भारत के अनेक साधनसम्पन्न प्रकाशकों से तथा धनपतियों एवं बुद्धिजीवियों से इस कार्य के लिये आर्थिक साधन संगृहीत कराने हेतु निवेदन किया; परन्तु किसी ने भी, इस कार्यहेतु, हमारा उत्साहवर्धन नहीं किया।

अन्त में, हमने विवश होकर, अपने अल्प साधनों के बल पर ही इस कार्य को आगे बढ़ाने का निश्चय किया। तदनुसार, सर्वप्रथम सुत्तपिटक का **मज्झिमनिकाय** (सम्पूर्ण) हिन्दी अनुवाद के साथ पाँच भागों में प्रकाशित किया, जो कि पाँच वर्ष में पूर्ण हुआ।

तदनन्तर, हमने सुत्तपिटक का **दीघनिकाय** (सम्पूर्ण) (हिन्दी अनुवाद के साथ) तीन भागों में प्रकाशित करने का सङ्कल्प किया।

इस बार हमने पुन: केन्द्रीय शिक्षामन्त्रालय, नई दिल्ली से (सन् १९९६ ई० में) इस ग्रन्थ के प्रकाशनहेतु आर्थिक अनुदान के लिये आवेदन किया। सौभाग्य से, इस बार हमारा यह आवेदन स्वीकृत हो गया और मुद्रण पर होने वाले समग्र व्यय में से ८० प्रतिशत अंश राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली से प्राप्त होने की स्वीकृति मिली। एतदर्थ हम उक्त मन्त्रालय के आभारी हैं।

इसी क्रम में हमने समस्त **संयुत्तनिकायपालि** का हिन्दी अनुवाद के साथ चार भागों में प्रकाशन करने का सङ्कल्प किया। दो वर्ष के कठिन परिश्रम एवं प्रयास के बाद, यह ग्रन्थ (चार भागों में सम्पूर्ण) आप के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है। यह ग्रन्थ २२५० पृष्ठों में पूर्ण हो पाया, अत: ग्रन्थ का कलेवर कुछ विशाल हो गया है। परन्तु हमें इस बात की प्रसन्नता है कि यह ग्रन्थ पालि एवं हिन्दी-दोनों भाषाओं में एक साथ सुलभ हो रहा है। इस

तरह, इस ग्रन्थमाला में त्रिपिटक के **सुत्तनिकाय** का बहुत अंश प्रकाशित हो चुका है। अब **अङ्गुत्तरनिकाय** का अनुवाद कार्य हो रहा है। उसे भी यथासम्भव शीघ्र ही मुद्रित-प्रकाशित कराने का हमारा प्रयास है। अस्तु।

यह इस ग्रन्थ का **४. षडायतनवग्ग** नामक तृतीय भाग है। इसमें ४४वें **अव्याकृतसंयुक्त** तक १० संयुक्त संगृहीत हैं। 'मज्झिमनिकाय' एवं 'दीघनिकाय' की तरह इसमें भी हमने पालि-पाठ के लिये बर्मा में हुए छट्ठ सङ्गायन पर आधृत, और श्रीलंका, स्याम (थाईलैण्ड) तथा पालिटैक्स्ट सोसाइटी लन्दन के संस्करणों का सहयोग लेकर १९५९ में 'पालि त्रिपिटक प्रकाशन बोर्ड' नालन्दा से प्रकाशित एवं आदरणीय भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी-संस्करण को आदर्श रूप में रखा है। इसमें हमने बहुत कम परिवर्तन किया है। कहीं कहीं मुद्रणाशुद्धियों के संशोधन के अतिरिक्त अधिक कुछ नहीं किया है।

साथ ही हमने उक्त सभी बर्मा, नालन्दा एवं रोमन संस्करणों की पृष्ठ-संख्या भी रोमन अक्षरों में क्रमशः यथास्थान दे दी है। अनुसन्धाता इससे भी लाभान्वित होंगे।

इसमें हमने आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथा को प्रमाण मान कर अपना स्वतन्त्र **हिन्दी अनुवाद** सम्पन्न करते हुए, उसे पालि-पाठ के साथ नीचे दिया है। इससे पाठकों को पालि एवं उसकी हिन्दी—दोनों ही भाषाएँ अत्यन्त सरलता से हृदयङ्गम हो सकेंगी—ऐसा हमारा विश्वास है।

यहाँ हमें एक निवेदन अवश्य करना है कि विषय-वैशद्य (बात को समझाने) के लिये त्रिपिटक में विषय का अनुकूल-प्रतिकूल, या आरोह-अवरोह दोनों क्रमों से विस्तृत (अक्षरशः) वर्णन किया जाता है। इस शैली में भाषाच्छटा तो अवश्य आ जाती है, परन्तु इस शब्द-समूह में फँस कर पाठक से मूल विषय दूर दूर सा होने लगता है। इसके लिये पालि-संग्रहकारों ने ऐसे विशेष स्थानों (जहाँ पाठ पुनः पुनः आवृत्त हो) के लिये '...पे०...' की परम्परा रखी है। इस परम्परा का इससे पहले के संस्करणों में निर्भयता से उपयोग हुआ है। इसे हमने भी अपने हिन्दी-अनुवाद में स्वीकार किया है। परन्तु '...पे०...' का अनुवाद हमने '...पूर्ववत्...' करके दिया है, या प्रायः '...' इस चिह्न का प्रयोग किया है, ताकि पाठक प्रसङ्ग के प्रधान विषय से दूर न हो जाय।

यों हमने एक अभिनव पद्धति में बुद्ध-वचन (त्रिपिटक) का प्रकाशन प्रारम्भ किया है। यदि विद्वानों को यह पद्धति रुचिकर व अनुकूल प्रतीत हुई तो हम आगामी काल में त्रिपिटक के समग्र ग्रन्थों का प्रकाशन इसी पद्धति से करेंगे।

एक कार्य हमने इस प्रसङ्ग में और किया है। ग्रन्थ में वर्णित सूत्रों का संक्षेप हिन्दी, अंग्रेजी दोनों भाषाओं में ग्रन्थ के प्रारम्भ में दे दिया है, जिससे पाठकों को सूत्रों का वर्ण्य विषय एक ही दृष्टि में हृदयङ्गम हो जाय।

इस तरह, हम इस ग्रन्थमाला को पालि-हिन्दी-इंग्लिश तीनों ही भाषाओं के विद्वानों के लिये उपयोगी बना पाये हैं—ऐसा हमारा विश्वास है।

अन्ते च, इस पवित्र ग्रन्थ का यह अनुवाद हमने स्वकीय ज्ञानवृद्धिहेतु लिखा था, लिखने के बाद यह ध्यान में आया कि यह हमारे समानधर्मा अन्य जिज्ञासुओं का भी अर्थसाधक हो सकता है। इसी उद्देश्य से यह प्रकाशित किया जा रहा है।

इतने विस्तृत अनुवाद में, हो सकता है कहीं परम्परा का निर्वाह न हो पाया हो, एतदर्थ हमारा विज्ञ जनों से विनम्र निवेदन है कि हमारे प्रमाद को क्षमा करते हुए हमें सूचित करने का कष्ट करें; जिससे आगामी संस्करण में उस का परिहार किया जा सके।

वसन्तपञ्चमी, २०५६ वि.
वाराणसी

विद्वद्वशंवद
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

संयुक्तनिकायपालि के

षडायतनवर्ग का संक्षिप्त विवरण

इस **संयुक्तनिकायपालि** का चतुर्थ वर्ग **षडायतनवर्ग** कहलाता है। यह १० संयुक्तों में विभक्त है। इन (संयुक्तों) के नाम इस प्रकार हैं—३५. षडायतनसंयुक्त, ३६. वेदनासंयुक्त, ३७. मातृग्रामसंयुक्त, ३८. जम्बुखादकसंयुक्त, ३९. सामण्डकसंयुक्त, ४०. मोग्गल्लानसंयुक्त, ४१. चित्तसंयुक्त, ४२. ग्रामणिसंयुक्त, ४३. असंस्कृतसंयुक्त एवं ४४. अव्याकृतसंयुक्त। अब इन सभी संयुक्तों का विवरण क्रमशः दिया जा रहा है।

३५. षडायतनसंयुक्त : इस संयुक्त में छह आयतनों का, अध्यात्म एवं बाह्य भेद से विविध विभाजन कर विशद वर्णन किया गया है।

अध्यात्म आयतन के छह प्रकार ये हैं—१. चक्षु, २. श्रोत्र, ३. घ्राण, ४. जिह्वा, ५. काय एवं ६. मन।

बाह्य आयतन भी छह प्रकार के हैं—१. रूप, २. शब्द, ३. गन्ध, ४. रस, ५. स्प्रष्टव्य एवं ६. मनोधर्म।

इन्हीं आयतनों को अतीत, अनागत एवं वर्तमान तथा दुःख, अनित्य, अनात्म भेदों से भी विभक्त किया गया है।

इस संयुक्त में इन बारह आयतनों का वर्गपद्धति से भी विश्लेषण किया गया है— १. अनित्यवर्ग, २. यमकवर्ग, ३. सर्ववर्ग, ४. जातिधर्मवर्ग एवं ५. सर्वअनित्यवर्ग।

इस षडायतनवर्ग के सूत्रों को संग्रहकारों ने, सङ्ख्या में अधिक होने के कारण, पचास पचास के समूह में विभक्त कर विश्लेषण में सरलता ला दी है। इस तरह प्रथम पञ्चाशत्क में ५२ सूत्र व्याख्यात हुए हैं।

द्वितीय पञ्चाशत्क में १. अविद्यावर्ग, २. मृगजालवर्ग, ३. ग्लानवर्ग, ४. छन्नवर्ग, ५. षड्वर्ग है। इन से द्वितीय पञ्चाशत्क एवं प्रथम शतक पूर्ण होता है। इस शतक में १०३ सूत्र हैं।

तृतीय पञ्चाशत्क तथा द्वितीय शतक में १. योगक्षेमिवर्ग, २. लोककामगुणवर्ग, ३. गृहपतिवर्ग, ४. देवदहवर्ग, ५. नवपुराणवर्ग—ये पाँच वर्ग व्याख्यात हैं।

चतुर्थ पञ्चाशत्क में १. नन्दिक्षयवर्ग, २. षष्टिपेय्याल, ३. समुद्रवर्ग, ४. आशीविषवर्ग—ये चार वर्ग है। इस तरह चतुर्थ पञ्चाशत्क एवं द्वितीय शतक पूर्ण होता है। इस षडायतनसंयुक्त में आगत समस्त सूत्रों की सङ्ख्या २४८ है॥

३६. वेदनासंयुक्त : इस संयुक्त में त्रिविध वेदनाओं का वर्णन है। तीन वेदनाएँ क्रमश: ये हैं—१. सुखा वेदना, २. दु:खा वेदना एवं ३. अदु:खाअसुखा वेदना।

इन वेदनाओं का भी वर्गपद्धति से ही विशद विवेचन किया गया है; जैसे—१. सगाथवर्ग प्रथम, २. रहोगतवर्ग द्वितीय, ३. अष्टशतपर्यायवर्ग तृतीय। इन तीन वर्गों के माध्यम से यह विवेचन हुआ है। इस संयुक्त में आगत सूत्रों की सङ्ख्या ३१ है॥

३७. मातृग्रामसंयुक्त : यह संयुक्त नारियों को लक्ष्य कर संगृहीत किया गया है। इस में सुशील एवं दु:शील नारियों के लक्षण बताते हुए उनका कर्मफल भी बताया गया है। प्रसङ्गवश उन दु:खों का भी वर्णन किया गया है जो नारियों को स्वयं ही सहन करने पड़ते हैं, उस क्रिया में दूसरा कोई किसी प्रकार का सहयोग नहीं कर सकता। यहाँ नारी के वे दुर्गुण भी गिनाये गये हैं जिनके कारण नारी का, देहपात के बाद, अवश्य ही नरकपात होता है। इसमें धर्म के प्रति अश्रद्धालु, निर्लज्ज, पापाचार में भय न मानने वाली एवं मूर्ख नारियों की निन्दा की गयी है। प्रसङ्गवश यहाँ स्त्रियों की सुगति एवं दुर्गति का भी वर्णन है। पञ्चशील का आचरण न करने वाली नारी की निन्दा की गयी है। यह भी बताया गया है कि कोई भी नारी किन पाँच गुणों के होने से समाज में बलवती होती है, तथा किन गुणों के न होने से वह दुर्बल कहलाती है। साथ ही यह भी अभिलक्षित किया गया है किन गुणों से वह परिवार में प्रतिष्ठा पाती है तथा किन दुर्गुणों के कारण परिवार से अपमानित कर निकाल दी जाती है। अन्त में वैसी आठ बाते बतायी गयी हैं जो किसी कृतपुण्य नारी को ही सुलभ होती है, अकृतपुण्य को नहीं। पञ्चशील धारण करने वाली नारी की सर्वथा प्रशंसा की गयी है। यह संयुक्त ३४ सूत्रों में वर्णित हुआ है॥

३८. जम्बुखादकसंयुक्त : इस संयुक्त में १६ सूत्रों के माध्यम से आयुष्मान् सारिपुत्र के साथ जम्बुखादक परिव्राजक के साथ आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विषयों पर संवाद वर्णित है। इस संवाद में—निर्वाण, अर्हत्त्व, धर्मवाचन, धर्मसाधना का उद्देश्य, धर्मसाधना से क्या सान्त्वना मिलती है, चित्तविकारों की परिहाणि का उपाय, अविद्या का नाश, तृष्णाक्षय, भवसागर से पारगमन, अपरिग्रह, संसार का यथार्थ ज्ञान, दु:खप्रहाण का उपाय, सत्कायदृष्टि का परित्याग एवं धर्माराधन की दुष्करता आदि विषय गम्भीरता से वर्णित हैं। इस संयुक्त में १६ सूत्र व्याख्यात हैं॥

३९. सामण्डकसंयुक्त : इस संयुक्त में भी पूर्ववर्णित जम्बुखादकसंयुक्त के समान ही, आयुष्मान् सारिपुत्र का उक्कचेला ग्राम में सामण्डक नामक परिव्राजक के साथ निर्वाण आदि गम्भीर दार्शनिक विषयों पर संवाद वर्णित है। इस संयुक्त में भी १६ सूत्र व्याख्यात हैं॥

४०. मोग्गल्लानसंयुक्त : इस संयुक्त में ध्यान एवं समाधिभावना तथा रत्नत्रय में श्रद्धा आदि गम्भीर आध्यात्मिक विषयों पर आयुष्मान् महामोग्गल्लान द्वारा भिक्षुओं के साथ, तथा देवराज शक्र एवं त्रायस्त्रिंशवासी अन्य प्रमुख देवताओं के साथ हुई धार्मिक

चर्चा वर्णित है। आयुष्मान् महामोग्गल्लान ने बताया है कि बुद्ध धर्म एवं सङ्घ में दृढ़ श्रद्धालु देवताओं में अन्य साधारण देवताओं से क्या १० विशेष गुण होते हैं। इस संयुक्त में ११ सूत्रों का व्याख्यान है॥

४१. चित्तसंयुक्त : इस संयुक्त में बौद्ध धर्म में अत्यधिक श्रद्धालु, मृगपथक ग्रामवासी चित्त नामक गृहपति का भिक्षुओं से बुद्धसम्मत दार्शनिक विषयों पर हुआ संवाद वर्णित है। जैसे—संयोजन, ६२ (बासठ) दृष्टियाँ, विशेषत: सत्कायदृष्टि, प्रमुख ऋद्धियाँ, भगवद्वचन की शास्त्रसङ्गत व्याख्या, आनापान, वितर्कविचार, संज्ञा वेदना, ध्यानभावना, चेतोविमुक्ति, ज्ञान एवं श्रद्धा—दोनों में किसका श्रेष्ठत्व, अचेल काश्यप की प्रव्रज्या आदि। इस संयुक्त में १० सूत्रों का व्याख्यान है॥

४२. ग्रामणिसंयुक्त : इस संयुक्त में भगवान् के साथ चण्ड ग्रामणी का, किसी योद्धा का, किसी हस्त्यारोह का, किसी अश्वारोह का, किसी खड्गधारी का, असिबन्धकपुत्र ग्रामणी का, मणिचूडक ग्रामणी का, भद्रक ग्रामणी का, राशिय ग्रामणी का, पाटलिय ग्रामणि का संवाद वर्णित है। इन सभी संवादों में भगवान् ने उन सभी श्रोताओं को सामयिक विषयों पर अपना स्पष्ट मत अभिनिर्दिष्ट किया है। ये सभी विषय यथास्थान इस ग्रन्थ में देखे जा सकते हैं। इस संयुक्त में १३ (तेरह) सूत्रों का व्याख्यान हुआ है॥

४३. असंस्कृतसंयुक्त : यह संयुक्त वर्गपद्धति से व्याख्यात हुआ है। इस में दो वर्ग हैं। प्रथम वर्ग में—निर्वाणगामी मार्ग, शमथ, विपश्यना, समाधि, स्मृत्युपप्रस्थान, सम्यक्प्रहाण, ऋद्धिपाद, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच बल, सात बोध्यङ्ग एवं असंस्कृतगामी मार्ग का वर्णन है। द्वितीय वर्ग में—असंस्कृत रागादि का क्षय, असंस्कृतगामी मार्ग, अमृत (निर्वाण), अनाश्रव एवं अनाश्रवगामी मार्ग, पारायण (रागादिक्षय) का वर्णन है। यह संयुक्त ३३ सूत्रों से व्याख्यात है॥

४४. अव्याकृतसंयुक्त : इस संयुक्त में—भगवान् द्वारा राजा प्रसेनजित् कौशल के अव्याकृतविषयक प्रश्न का समुचित उत्तर, आयुष्मान् अनुरोध के अव्याकृतविषयक सन्देह का निवारण, आयुष्मान् सारिपुत्र एवं आयुष्मान् कौष्ठिक का संवाद, वत्सगोत्र परिव्राजक का आयुष्मान् महामोग्गल्लान का संवाद, वत्सगोत्र का भगवान् से अव्याकृतविषयक प्रश्न, कुतूहलशाला में एकत्र हुए गणाचार्यों के मत से भगवान् के मत की विशेषता का वर्णन, एवं वत्सगोत्र परिव्राजक का भगवान् से अस्तिता, नास्तिता के विषय में प्रश्न का उत्तर वर्णित है। इस संयुक्त में दश (१०) सूत्र वर्णित हैं॥

इस समस्त षडायतनवर्ग में १० संयुक्त एवं ४३८ सूत्र वर्णित हैं।

षळायतनवर्ग-संक्षेप सम्पन्न॥

The Saṁyutta Nikāya Pāli

There are altogether 2945 Suttas in the Saṁyutta Nikāya, classed in fifty-six divisions (called *Saṁyuttas*), grouped in five parts (called *Vaggas*), as under :—

(I) Sagātha Vagga

1. Devatā Saṁyutta
2. Devaputta Saṁyutta
3. Kosala Saṁyutta
4. Māra Saṁyutta
5. Bhikkhuni Saṁyutta
6. Brahma Saṁyutta
7. Brāhmaṇa Saṁyutta
8. Vaṅgisa Saṁyutta
9. Vana Saṁyutta
10. Yakkha Saṁyutta
11. Sakka Saṁyutta

(II) Nidāna Vagga

12. Nidāna Saṁyutta
13. Abhisamaya Saṁyutta
14. Dhātu Saṁyutta
15. Anamatagga Saṁyutta
16. Kassapa Saṁyutta
17. Lābhasakkāra Saṁyutta
18. Rāhula Saṁyutta
19. Lakkhaṇa Saṁyutta
20. Opamma Saṁyutta
21. Bhikkhu Saṁyutta

(III) Khandha Vagga

22. Khandha Saṁyutta
23. Rādha Saṁyutta
24. Diṭṭhi Saṁyutta
25. Okkanta Saṁyutta
26. Uppāda Saṁyutta
27. Kilesa Saṁyutta
28. Sāriputta Saṁyutta
29. Nāga Saṁyutta
30. Supaṇṇa Saṁyutta
31. Gandhabbakāya Saṁyutta
32. Valāhaka Saṁyutta
33. Vacchagotta Saṁyutta
34. Jhāna Saṁyutta

(IV) Saḷāyatana Vagga

35. Saḷāyatana Saṁyutta
36. Vedanā Saṁyutta
37. Mātugāma Saṁyutta
38. Jambukhādaka Saṁyutta
39. Sāmaṇḍaka Saṁyutta
40. Moggallāna Saṁyutta
41. Citta Saṁyutta
42. Gāmaṇi Saṁyutta
43. Asaṅkhata Saṁyutta
44. Abyākata Saṁyutta

(V) Mahā Vagga

45. Magga Saṁyutta
46. Bojjhaṅga Saṁyutta
47. Satipaṭṭhāna Saṁyutta
48. Indriya Saṁyutta
49. Sammappadhāna Saṁyutta
50. Bala Saṁyutta
51. Iddhipāda Saṁyutta
52. Anuruddha Saṁyutta
53. Jhāna Saṁyutta
54. Ānāpāna Saṁyutta
55. Sotāpatti Saṁyutta &
56. Sacca Saṁyutta.

The Present Volume

4. SAḶĀYATANAVAGGA

The subject matter, the principles, and the style of the Vagga are very much similar to those of the previous one. Here, one Rupa-khandha has been split up into eleven Āyatanas—Cakkhāyatana, Rupāyatana, Sotāyatana, Saddāyatana, Ghānāyatana, Gandhāyatana, Jivhāyatana, Rasāyatana, Kāyāyatana, Phoṭṭhabbāyatana, Manāyatana and Dhammāyatana.

Viññāṇakkhandha has been represented as Manāyatana. And, the remaining three Khandhas have been contained in the Dhammāyatana.

In the present Vagga, it is not the philosophical principle underlying the analysis that has been stressed upon, but it aims at only teaching that these are transitory and void, and one must not seek consolation in them.

The Suttas that deserve attention are the following :—

Gilāna Sutta—A certain Bhikkhu was ill. The Buddha himself went to his bed and preached the Dhamma to him. (35.74.75 & 35.75.76).

Palokadhamma Sutta—The things of the world have been compared to the weeds floating on the surface of the river. As the weeds cannot save a man from being carried away with the stream, so the things of the world are no consolation for a man. (35.84.85).

Channa Sutta—Bhikkhu Channa had committed suicide. The Buddha and Sāriputta examined over the desirability of it. (35.87.88).

Rāhulovāda Sutta—The Buddha took Rāhula with him; entered the forest called the Andhavana, and preached on the void nature of the six bases. Rāhula dispelled his ignorance and attained Arahatahood. (35.121.123).

Bhāradvāja Sutta—The Sutta teaches how one can overcome the difficulties that one is expected to face in leading the holy life as a Bhikkhu. (35.127.130).

Lohicca Sutta—Some Brāhmana boys were behaving roudily in the face of the Venerable Mahākātyāyana. He preached to them what are the characteristics of a true Brāhmana. They reported it to their teacher Lohicca, who also came to the Buddha, listened to his sermon and took refuge in the Triple Gem. (35.132.135).

Udāyi Sutta—The Sutta expounds that both body and mind are *anatta*; in as much as there is no unchanging permanent factor in them. (35.234.239)

Kummopama Sutta—As the tortoise collects all its limbs within the shell and is fearless, so the Yogi collects all his senses within himself and is free from evils. (35.240.245).

Yavakalāpi Sutta—The Sutta refers to the quarrel between the gods and the demons. The gods were victorious over the demons. Vepacitti, the king of the demons, was arrested and brought before Sakka, the king of the gods. (35.248.254).

Mātugāma Sutta—Woman is not dear to a man for the following five reasons—if she is not beautiful, if she is not rich, if she has a bad conduct, if she is idle, and if she is barren. (37.1.1).

Visārada Sutta—These are the five points of strength of a woman—beauty, riches, relatives, son and goodness. (37.25.25)

Mahakapāṭihāriya Sutta—The Sutta refers to the yogic miracles of Bhikkhu Mahaka. It was sultry. The Elders were going on the way with difficulty. At that time, a miracle was performed by the Bhikkhu Mahaka, the youngest of all. The sky got covered with cloud; it began to drizle, and there blew a breeze, cool and refreshing.

Another story of his Yogic powers is narrated. An Upāsaka was asked to spread a piece of cloth in the yard and collect some dry grass on it. Bhikkhu Mahaka, from within the closed room, issued forth a jet of fire through the key-hole, which burned the grass to every blade of it, but left the cloth quite safe. (41.4.4).

Pātaliya Sutta—The Sutta provides a statement and critical analysis of the different contemporary views existing in the religious and philosophical life of the country. (42.13.13).

संयुत्तनिकायपालि

संयुत्त-वग्ग-सुत्तक्कमो

४. सळायतनवग्गो चतुत्थो

सुत्तपिटके

संयुत्तनिकायपालि

[हिन्दी अनुवादसहिता]

(४. सळायतनवग्गो)

* नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स *

संयुत्तनिकायपालि

४.सळायतनवग्गो

३५. सळायतनसंयुत्तं

मूलपण्णासकं—

१. अनिच्चवग्गो पठमो

१. अज्झत्तानिच्चसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं [N. III, 1, B.236, R. vol. IV, 1] विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा, भिक्खू आमन्तेसि— ''भिक्खवो'' ति। ''भदन्ते'' ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

''चक्खुं, भिक्खवे, अनिच्चं। यदनिच्चं तं दुक्खं; यं दुक्खं तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। सोतं अनिच्चं। यदनिच्चं...पे०...। घानं अनिच्चं। यदनिच्चं...पे०...। जिव्हा अनिच्चा।

---

* उन भगवान् ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम *

संयुक्तनिकायपालि

षडायतनवर्ग

प्रथम पञ्चाशत्क

१. अनित्यवर्ग प्रथम

१. अध्यात्म अनित्यसूत्र : : अध्यात्म आयतन अनित्य हैं

१. ऐसा मैने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती में अनाथपिण्डिकश्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनविहार में साधनाहेतु विराजमान थे। उसी समय कभी भगवान् ने भिक्षुओं को देशनाहेतु आमन्त्रित किया। भिक्षु आदेशानुसार उपस्थित हुए। तब भगवान् ने उन को यों उपदेश किया—

''भिक्षुओ! चक्षु अनित्य है। जो अनित्य होता है वह दुःखप्रद होता है। जो दुःखमय होता है वह अनात्म तो होगा ही। उस अनात्मा के विषय में तुम्हें—'यह मेरा नहीं है, न यह मैं हूँ, न यह मेरी आत्मा है'—ऐसा यथार्थ प्रज्ञा से चिन्तन मनन करना

यदनिच्चं तं दुक्खं; यं दुक्खं तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। कायो अनिच्चो। यदनिच्चं...पे०...। मनो अनिच्चो। यदनिच्चं तं दुक्खं; यं दुक्खं तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा [R.2] अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति, सोतस्मिं पि निब्बिन्दति, घानस्मिं पि [B.237] निब्बिन्दति, जिव्हाय पि निब्बिन्दति, कायस्मिं पि निब्बिन्दति, मनस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति॥ •

२. अज्झत्तदुक्खसुत्तं

२. ''चक्खुं, भिक्खवे, दुक्खं। यं दुक्खं तदनत्ता; यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। सोतं [N.4] दुक्खं...पे०...घानं दुक्खं...जिव्हा दुक्खा...कायो दुक्खो...मनो दुक्खो। यं दुक्खं तदनत्ता; यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥ •

चाहिये। श्रोत्र अनित्य है, जो अनित्य...पूर्ववत्...घ्राण अनित्य है...जिह्वा अनित्य है...काय अनित्य है...मन अनित्य है, जो अनित्य है वह दुःखमय एवं अनात्म होता है। इस अनात्म के विषय में तुम्हें...पूर्ववत्...प्रज्ञा से चिन्तन मनन करना चाहिये। भिक्षुओ! यों चिन्तन मनन करने से श्रुतवान् (विद्वान्) आर्यश्रावक को चक्षु में, श्रोत्र में, घ्राण में, जिह्वा में, काय में...मन में ग्लानि (अरुचि) होने लगती है। इस अरुचि से उस की वैराग्य भावना बढती है। इस वैराग्य भावना से वह चित्तविकारों से विमुक्त हो जाता है। इस विमुक्ति से 'मैं विमुक्त हो गया हूँ'—ऐसा उस को ज्ञान हो जाता है। तब वह समझ लेता है—''मेरी जन्मपरम्परा अब क्षीण हो चुकी है, मेरी धर्मसाधना सफल हो गयी है, मेरा कर्तव्य समाप्त हो चुका है, अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया है।' ऐसा वह जान लेता है॥'' •

२. अध्यात्म दुःखसूत्र : : अध्यात्म आयतन दुःख है

२. ...' भिक्षुओ! चक्षु दुःख है। जो दुःख होता है वह अनात्म ही होता है। उस अनात्मा के विषय में तुम्हें—'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरी आत्मा नहीं है'—ऐसा यथार्थ बुद्धिपूर्वक चिन्तन मनन करना चाहिये। श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...काय...मन—ये सब दुःख हैं, दुख अनात्म होता है। इस अनात्म पदार्थ के विषय में...पूर्ववत्...अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है—ऐसा जान लेता है''॥ •

३. अज्झत्तानत्तसुत्तं

३. "चक्खुं, भिक्खवे, अनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। सोतं अनत्ता...पे०...घानं अनत्ता...जिव्हा अनत्ता...कायो अनत्ता...मनो अनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥●

४. बाहिरानिच्चसुत्तं

४. "रूपा, भिक्खवे, अनिच्चा। यदनिच्चं तं दुक्खं; यं दुक्खं तदनत्ता। [R.3] यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। सद्दा...गन्धा...रसा...फोट्ठब्बा...धम्मा अनिच्चा। यदनिच्चं तं दुक्खं; यं दुक्खं तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको रूपेसु पि निब्बिन्दति, सद्देसु पि निब्बिन्दति, गन्धेसु पि निब्बिन्दति, रसेसु पि निब्बिन्दति, फोट्ठब्बेसु पि निब्बिन्दति, धम्मेसु पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति॥ ●

---

३. अध्यात्म अनात्मसूत्र : : अध्यात्म आयतन अनात्म होता है

३. ..."भिक्षुओ! चक्षु अनात्म होता है, श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...काय...मन अनात्म होता है। जो अनात्म है उसके विषय में तुम्हें—'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरी आत्मा नहीं है'—ऐसा यथार्थ बुद्धिपूर्वक चिन्तन मनन करना चाहिये। ...पूर्ववत्...ऐसा जान लेता है॥ ●

४. बाह्य अनात्मसूत्र : : बाह्य आयतन अनात्म होता है

४. ..."भिक्षुओ! रूप अनित्य होते हैं, जो अनित्य हैं वे दुःख...पूर्ववत्...ऐसा यथार्थ बुद्धिपूर्वक सोचना विचारना चाहिये। शब्द...गन्ध...रस...स्प्रष्टव्य...धर्म अनित्य हैं। जो अनित्य है वह दुःख है वह अनात्मा भी है ही। उस अनात्म पदार्थ के विषय में—'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरी आत्मा नहीं है'—ऐसा बुद्धिपूर्वक यथार्थ चिन्तन मनन करना चाहिये। ऐसा चिन्तन करते करते बुद्धिमान् आर्यश्रावक को रूपों में, शब्दों में, गन्धों में, स्प्रष्टव्यों में अरुचि होने लगती है, अरुचि से वैराग्य की उत्पत्ति निश्चित है तथा इस वैराग्य से उस को यह ज्ञान उत्पन्न हो जाता है—'मेरी जन्मपरम्परा क्षीण...पूर्ववत्...अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं'। तब वह ऐसा वह जान जाता है॥"●

५. बाहिरदुक्खसुत्तं

[B.238] ५. ''रूपा, भिक्खवे, दुक्खा। यं दुक्खं तदनत्ता; यदनत्ता तं 'नेतं मम. नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। सद्दा...गन्धा... [N.5] रसा...फोट्ठब्बा...धम्मा दुक्खा। यं दुक्खं तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥ ●

६. बाहिरानत्तसुत्तं

६. ''रूपा, भिक्खवे, अनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं...पे०...सद्दा...गन्धा...रसा...फोट्ठब्बा...धम्मा अनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥ ●

७. अज्झत्तानिच्चातीतानागतसुत्तं

[R.4] ७. ''चक्खुं, भिक्खवे, अनिच्चं अतीतानागतं; को पन वादो पच्चुप्पन्नस्स! एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको अतीतस्मिं चक्खुस्मिं अनपेक्खो होति; अनागतं चक्खुं नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नस्स चक्खुस्स निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो

---

५. बाह्य दुःखसूत्र : : बाह्य आयतन दुःख है

५. ...''भिक्षुओ! रूप अनित्य हैं, अनित्य ही 'दुःख' हैं, जो दुःख हैं वे अनात्म तो हैं ही। इस अनात्म के विषय में...पूर्ववत्...ऐसा मनन करना चाहिये। शब्द, गन्ध, रस, स्प्रष्टव्य एवं मनोधर्म भी अनित्य हैं...इन अनात्म पदार्थों के विषय में...ऐसा मनन...। विद्वान् आर्यश्रावक को इन के विषय में अरुचि होने लगती है, अरुचि के कारण उसे इन से वैराग्य हो जाता है, तथा ज्ञान हो जाता है कि मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो गयी...पूर्ववत्... ॥''

६. बाह्यअनात्मसूत्र : : बाह्य आयतन अनात्म हैं

६. ...''भिक्षुओ! रूप अनात्म हैं। जो अनात्म है उस के विषय में—'यह मेरा नहीं है... ऐसा बुद्धिपूर्वक मनन करना चाहिये। शब्द...गन्ध...रस...स्प्रष्टव्य...धर्म अनात्म हैं। जो अनात्म है उस के विषय में...पूर्ववत्...आगे मेरा कोई कर्तव्य नहीं है'—ऐसा जान लेता है ॥'' ●

७. अध्यात्म अनित्यअतीतानागतसूत्र : : अध्यात्म आयतन अनित्य हैं

७. ...''भिक्षुओ! 'अतीत अनागत चक्षु ही अनित्य है, तब प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) चक्षु की तो बात ही क्या है!'—इस तरह जानता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक अतीत चक्षु में निरपेक्ष होता है, अनागत चक्षु का अभिनन्दन नहीं करता, तथा प्रत्युत्पन्न चक्षु में अरुचि,

होति। सोतं अनिच्चं...घानं अनिच्चं...जिव्हा अनिच्चा अतीतानागता; को पन वादो पच्चुप्पन्नाय! एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको अतीताय जिव्हाय अनपेक्खो होति; अनागतं जिव्हं नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नाय जिव्हाय निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति। कायो अनिच्चो...पे०...मनो अनिच्चो अतीतानागतो; को पन वादो पच्चुप्पन्नस्स! एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको अतीतस्मिं मनस्मिं अनपेक्खो होति; अनागतं मनं नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नस्स मनस्स निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होती'' ति॥ ●

८. अज्झत्तदुक्खातीतानागतसुत्तं

८. ''चक्खुं, भिक्खवे, दुक्खं अतीतानागतं; को पन वादो पच्चुप्पन्नस्स! [B.239] एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको अतीतस्मिं चक्खुस्मिं अनपेक्खो होति; अनागतं चक्खुं नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नस्स चक्खुस्स निब्बिदाय विरागाय [N.6] निरोधाय पटिपन्नो होति। सोतं दुक्खं...पे०...घानं दुक्खं...पे०...जिव्हा दुक्खा अतीतानागता; को पन वादो पच्चुप्पन्नाय! एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको अतीताय जिव्हाय अनपेक्खो होति; अनागतं जिव्हं नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नाय जिव्हाय निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति। कायो दुक्खो...पे०...मनो दुक्खो अतीतानागतो; को पन वादो पच्चुप्पन्नस्स! एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको अतीतस्मिं मनस्मिं अनपेक्खो होति; अनागतं मनं नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नस्स मनस्स निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होती'' ति॥ ●

वैराग्य एवं निरोध से युक्त हो जाता हैं। अतीत, अनागत श्रोत्र अनित्य है, घ्राण अनित्य हैं, जिह्वा अनित्य है, काय अनित्य है, मन अनित्य है...। ऐसा मानता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक, भिक्षुओ! अतीत मन के प्रति निरपेक्ष हो जाता है, अनागत मन का अभिनन्दन नहीं करता, तथा प्रत्युत्पन्न मन के प्रति अरुचि, वैराग्य एवं निरोध से युक्त हो जाता है॥'' ●

८. अध्यात्मदुःखअतीतानागतसूत्र : : अध्यात्म आयतन दुःख हैं

८. ...''भिक्षुओ! 'अतीत अनागत चक्षु भी दुःख है, तब फिर प्रत्युत्पन्न चक्षु की तो बात ही क्या है!'—ऐसा मानता हुआ कोई विद्वान् आर्यश्रावक अतीत चक्षु में निरपेक्ष (बेपरवाह) होता है, अनागत चक्षु का अभिनन्दन नहीं करता। तथा प्रत्युत्पन्न चक्षु के प्रति अरुचि, वैराग्य एवं निरोध से युक्त हो जाता है। श्रोत्र दुःख है, घ्राण दुःख है, जिह्वा दुःख है, काय दुःख है, मन दुःख है—ऐसा मानता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक अतीत मन के प्रति निरपेक्ष हो जाता है, अनागत मन का अभिनन्दन नहीं करता, तथा प्रत्युत्पन्न मन के प्रति अरुचि, वैराग्य एंवं निरोध से युक्त हो जाता है॥'' ●

९. अज्झत्तानत्तातीतानागतसुत्तं

९. "चक्खुं, भिक्खवे, अनत्ता अतीतानागतं; को पन वादो पच्चुप्पन्नस्स! एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको अतीतस्मिं चक्खुस्मिं अनपेक्खो होति; अनागतं [R.5] चक्खुं नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नस्स चक्खुस्स निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति। सोतं अनत्ता...पे०...घानं अनत्ता...पे०...जिव्हा अनत्ता अतीतानागता; को पन वादो पच्चुप्पन्नाय! एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको अतीताय जिव्हाय अनपेक्खो होति; अनागतं जिव्हं नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नाय जिव्हाय निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति। कायो अनत्ता...पे०...मनो अनत्ता अतीतानागतो; को पन वादो पच्चुप्पन्नस्स! एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको अतीतस्मिं मनस्मिं अनपेक्खो होति; अनागतं मनं नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नस्स मनस्स निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होती" ति॥ ●

१०. बाहिरानिच्चातीतानागतसुत्तं

१०. "रूपा, भिक्खवे, अनिच्चा अतीतानागता; को पन वादो पच्चुप्पन्नानं! एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको अतीतेसु रूपेसु अनपेक्खो होति; अनागते रूपे [B.240] नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नानं रूपानं निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति। सद्दा...गन्धा...रसा...फोट्ठब्बा...धम्मा अनिच्चा अतीतानागता; को पन वादो पच्चुप्पन्नानं! एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको अतीतेसु धम्मेसु अनपेक्खो [N.7] होति; अनागते धम्मे नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नानं धम्मानं निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होती" ति॥ ●

---

९. अध्यात्मअनात्मअतीतानागतसूत्र : : अध्यात्म आयतन अनात्म हैं

९. ..."भिक्षुओ! 'अतीत अनागत चक्षु अनात्म हैं, तव फिर प्रत्युत्पन्न चक्षु की तो बात ही क्या है!'—ऐसा मानता हुआ, भिक्षुओ! कोई विद्वान् आर्यश्रावक अतीत चक्षु के प्रति निरपेक्ष होता है, अनागत चक्षु का अभिनन्दन नहीं करता, तथा प्रत्युत्पन्न चक्षु के प्रति अरुचि रखता हुआ उस के प्रति वैराग्य से युक्त हो जाता है। अतीत अनागत श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन अनात्म है'—ऐसा मानता हुआ...पूर्ववत्...निरोधयुक्त हो जाता है॥" ●

१०. बाह्य अनित्यअतीतानागतसूत्र : : बाह्य आयतन अनित्य हैं

१०. ..."भिक्षुओ! 'अतीत अनागत रूप भी अनित्य हैं, फिर वर्तमान रूप की तो बात ही क्या!'—यों समझता हुआ कोई विद्वान् आर्यश्रावक अतीत रूपों के विषय में निरपेक्ष हो जाता है, अनागत रूपों का अभिनन्दन नहीं करता, तथा वर्तमान रूपों के प्रति

११. बाहिरदुक्खातीतानागतसुत्तं

११. रूपा, भिक्खवे, दुक्खा अतीतानागता; को पन वादो पच्चुप्पन्नानं! एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको अतीतेसु रूपेसु अनपेक्खो होति; अनागते रूपे [R.6] नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नानं रूपानं निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति...पे०... ॥●

१२. बाहिरानत्तातीतानागतसुत्तं

१२. "रूपा, भिक्खवे, अनत्ता अतीतानागता; को पन वादो पच्चुप्पन्नानं! एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको अतीतेसु रूपेसु अनपेक्खो होति; अनागते रूपे नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नानं रूपानं निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति। सद्दा...गन्धा...रसा...फोट्ठब्बा...धम्मा अनत्ता अतीतानागता; को पन वादो पच्चुप्पन्नानं! एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको अतीतेसु धम्मेसु अनपेक्खो होति; अनागते धम्मे नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नानं धम्मानं निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होती" ति॥

●

अनिच्चवग्गो पठमो॥

अरुचि, वैराग्य एवं निरोध युक्त हो जाता है। अतीत अनागत शब्द...गन्ध...रस...स्प्रष्टव्य...धर्म अनित्य हैं...पूर्ववत्...। ऐसा समझता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक अतीत धर्मों के प्रति...निरोधयुक्त हो जाता है॥"

●

११. बाह्य दुःखअतीतानागतसूत्र : : बाह्य आयतन दुःख हैं

११. ..."भिक्षुओ! 'अतीत अनागत रूप ही जब दुःख हैं तो वर्तमान रूपों की बात ही क्या!'—यों सोच विचार करता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक अतीत रूपों के विषय में, शब्दों के, गन्धों के, रसों के, स्प्रष्टव्यों के, धर्मों के विषय में निरपेक्ष हो जाता है, अनागत रूपों का अभिनन्दन नहीं करता तथा वर्तमान धर्मों के प्रति अरुचि, वैराग्य एवं निरोधयुक्त हो जाता है... ॥"

●

१२. बाह्य अनात्मअतीतानागतसूत्र : : बाह्य आयतन अनात्म हैं

१२. ..."भिक्षुओ! 'अतीत अनागत रूप ही जब अनात्म हैं तो वर्तमान रूपों के विषय में तो कहना ही क्या!'—यों समझता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक अतीत रूपों के विषय में...शब्दों के...गन्धों के...रसों के...स्प्रष्टव्यों के...धर्मों के विषय में निरपेक्ष हो जाता है, अनागत धर्मों का अभिनन्दन नहीं करता, तथा वर्तमान धर्मों के विषय में वह अरुचि, वैराग्य एवं निरोधयुक्त हो जाता है॥"

●

अनित्यवर्ग प्रथम सम्पन्न॥

तस्सुद्दानं

अनिच्चं दुक्खं अनत्ता च, तयो अज्झत्तबाहिरा।
यदनिच्चेन तयो वुत्ता, ते ते अज्झत्तबाहिरा ति॥

इस अनित्यवर्ग में ये १२ सूत्र व्याख्यात हैं—१. अध्यात्म अनित्यसूत्र, २. अध्यात्म दुःखसूत्र, ३. अध्यात्म अनात्मसूत्र; ४. बाह्य अनित्यसूत्र, ५. बाह्य दुःखसूत्र, ६. बाह्य अनात्मसूत्र; ७. अध्यात्मअतीत अनागतसूत्र, ८. अध्यात्म दुःख अतीतअनागतसूत्र, ९. अध्यात्म अनात्मअतीतअनागतसूत्र; १०. बाह्य अनित्य अतीत अनागतसूत्र, ११. बाह्य दुःख अतीत अनागतसूत्र एवं १२. बाह्य अनात्म अतीत अनागतसूत्र॥

२. यमकवग्गो दुतियो

१३. पठमपुब्बेसम्बोधसुत्तं

१३. सावत्थिनिदानं। "पुब्बेव मे, भिक्खवे, सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स [B.241] बोधिसत्तस्सेव सतो एतदहोसि—'को नु खो चक्खुस्स अस्सादो, को आदीनवो, [R.7] किं निस्सरणं? को सोतस्स...पे०...को घानस्स...को जिव्हाय...को कायस्स...को मनस्स अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं ति? तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—'यं खो चक्खुं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, अयं चक्खुस्स अस्सादो। यं [N.8] चक्खुं अनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अयं चक्खुस्स आदीनवो। यो चक्खुस्मि छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं, इदं चक्खुस्स निस्सरणं। यं सोतं...पे०...यं घानं ...पे०...यं जिव्हं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, अयं जिव्हाय अस्सादो। यं जिव्हा अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा, अयं जिव्हाय आदीनवो। यो जिव्हाय छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं, इदं जिव्हाय निस्सरणं। यं कायं...पे०...यं मनं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, अयं मनस्स अस्सादो। यं मनो अनिच्चो दुक्खो विपरिणामधम्मो, अयं मनस्स आदीनवो। यो मनस्मि छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं, इदं मनस्स निस्सरणं' ति।

"यावकीवञ्चाहं, भिक्खवे, इमेसं छन्नं अज्झत्तिकानं आयतनानं एवं अस्सादं च

---

२. यमकवर्ग द्वितीय

१३. प्रथम पूर्वसम्बोधसूत्र : : यथार्थ ज्ञानानन्तर ही बुद्धत्वप्राप्ति-घोषणा

१३. **श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! जब तक मैने सम्बोधि प्राप्त नहीं की थी, जब कि मैं बोधिसत्त्व ही था, उस से पूर्व ही मेरे ध्यान में यह जिज्ञासा उद्भूत हो गयी—'चक्षु का आस्वाद (रस), आदीनव (दोष) एवं निःसरण (त्याग) क्या है? श्रोत्र का...घ्राण का...जिह्वा का...काय का...मन का आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण क्या है?' इस पर विचार करते करते अन्त में मुझे समझ में आ गया—'चक्षु की अपेक्षा कर जो सुख सौमनस्य उत्पन्न होता है—यह चक्षु का आस्वाद है; यह चक्षु अनित्य है, दुःखमय है, विनाशी है—यह चक्षु का आदीनव है; चक्षु में छन्दराग का कम होना, उस का प्रहाण—यह चक्षु का निःसरण है। जो श्रोत्र की...जो घ्राण की...जो रसना (जिह्वा) की...जो काय की...मन की अपेक्षा से सुख सौमनस्य की उत्पत्ति है वही मन का आस्वाद है। ...पूर्ववत्...छन्दराग का वह प्रहाण ही मन का निःसरण है।

"भिक्षुओ! जब तक मैने इन छहों आध्यात्मिक आयतनों के आस्वाद को आस्वाद

अस्सादतो, आदीनवं च आदीनवतो, निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं नाब्भञ्ञासिं, नेव तावाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय 'अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो' ति पच्चञ्ञासिं। यतो च ख्वाहं, भिक्खवे, इमेसं छन्नं अज्झत्तिकानं आयतनानं एवं अस्सादं च अस्सादतो, आदीनवं च आदीनवतो, निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, अथाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय 'अनुत्तरं सम्मा-
[R.8] सम्बोधिं अभिसम्बुद्धो' ति पच्चञ्ञासिं। ञाणं च पन मे दस्सनं उदपादि—'अकुप्पा मे विमुत्ति, अयमन्तिमा जाति, नत्थि दानि पुनब्भवो''' ति॥ ●

१४. दुतियपुब्बेसम्बोधसुत्तं

[B.242] १४. ''पुब्बेव मे, भिक्खवे, सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो एतदहोसि—'को नु खो रूपानं अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं? को सद्दानं...पे०...को गन्धानं...को रसानं...को फोट्ठब्बानं...को धम्मानं अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं ति? तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—'यं खो रूपे पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, अयं रूपानं अस्सादो। यं रूपा अनिच्चा दुक्खा विपरिणाम-
[N.9] धम्मा, अयं रूपानं आदीनवो। यो रूपेसु छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं, इदं रूपानं निस्सरणं। यं सद्दे...गन्धे...रसे...फोट्ठब्बे...यं धम्मे पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, अयं धम्मानं अस्सादो। यं धम्मा अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा, अयं धम्मानं आदीनवो। यो धम्मेसु छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं, इदं धम्मानं निस्सरणं' ति।

''यावकीवञ्चाहं, भिक्खवे, इमेसं छन्नं बाहिरानं आयतनानं एवं अस्सादं च

के रूप में, आदीनव को आदीनव के रूप में तथा निःसरण को निःसरण के रूप में यथार्थतः नहीं जान लिया, तब तक मैंने देवलोकसहित इस सम्पूर्ण देवमनुष्य प्रजा के सम्मुख अपने विषय में यह घोषित नहीं किया कि मैंने सम्बोधि प्राप्त कर ली है। हाँ, जब मैंने इन छहों आयतनों के विषय में...यथार्थतः जान लिया तब मैंने...सम्मुख अपनी सम्बोधिप्राप्ति निःसङ्कोच घोषित कर दी। तब मुझे यह ज्ञान-दर्शन हो चुका था—'मेरे चित्त की (दोषों से) विमुक्ति हो गयी, यह मेरा अन्तिम जन्म है, अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा॥'' ●

१४. द्वितीय पूर्वसम्बोधसूत्र : : यथार्थ ज्ञानानन्तर बुद्धत्व की घोषणा

१४. ...''भिक्षुओ! जब तक मैंने सम्बोधि प्राप्त नहीं की थी.. पूर्ववत्...अब मेरा

अस्सादतो, आदीनवं च आदीनवतो, निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं नाब्भञ्ञासिं, नेव तावाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय 'अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो' ति पच्चञ्ञासिं। यतो च ख्वाहं, भिक्खवे, इमेसं छन्नं बाहिरानं आयतनानं एवं अस्सादं च अस्सादतो, आदीनवं च आदीनवतो, निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, अथाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय 'अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो' ति पच्चञ्ञासिं। ञाणं च पन मे दस्सनं उदपादि—'अकुप्पा मे विमुत्ति, अयमन्तिमा जाति, नत्थि दानि पुनब्भवो''' ति॥

१५. पठमअस्सादपरियेसनसुत्तं

१५. ''चक्खुस्साहं, भिक्खवे, अस्सादपरियेसनं अचरिं। यो चक्खुस्स अस्सादो तदज्झगमं। यावता चक्खुस्स अस्सादो पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। चक्खुस्साहं, भिक्खवे, आदीनवपरियेसनं अचरिं। यो चक्खुस्स आदीनवो तदज्झगमं। यावता चक्खुस्स [R.9] आदीनवो पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। चक्खुस्साहं, भिक्खवे, निस्सरणपरियेसनं अचरिं। यं चक्खुस्स निस्सरणं तदज्झगमं। यावता चक्खुस्स निस्सरणं पञ्ञाय मे तं सुदिट्ठं।

सोतस्साहं, भिक्खवे...घानस्साहं, भिक्खवे...जिव्हायाहं भिक्खवे, [B.243] अस्सादपरियेसनं अचरिं। यो जिव्हाय अस्सादो तदज्झगमं। यावता जिव्हाय अस्सादो पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। जिव्हायाहं, भिक्खवे, आदीनवपरियेसनं अचरिं। यो जिव्हाय आदीनवो तदज्झगमं। यावता जिव्हाय आदीनवो पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। जिव्हायाहं,

---

पुनर्जन्म नहीं होगा॥'' *(ऊपर के सूत्र में चक्षु आदि इन्द्रियों के स्थान पर उनके रूप आदि विषयों को क्रमश: रख कर इस सूत्र का विस्तार कर लें।)*

१५. प्रथम आस्वादपर्येषणसूत्र : : आस्वाद की खोज

१५. ...''भिक्षुओ! मैंने चक्षु के आस्वाद को जानने का प्रयास किया। प्रयास कर मैंने उस को जान लिया। जो कुछ भी इस चक्षु के आस्वाद के विषय में ज्ञातव्य था, वह सब मैंने प्रज्ञापूर्वक देख लिया, समझ लिया। इसी तरह, भिक्षुओ! मैंने चक्षु का आदीनव खोजने का प्रयास किया। इस चक्षु के आदीनव के विषय में जो कुछ भी ज्ञातव्य था, मैंने प्रज्ञापूर्वक देख, समझ लिया। तथा इस चक्षु के नि:सरण के विषय में जो कुछ भी ज्ञातव्य (जानने योग्य) था, उसे खोजने का प्रयास किया, उसे प्रज्ञापूर्वक देख लिया, समझ लिया।

इसी तरह, भिक्षुओ! मैंने श्रोत्र के...घ्राण के...जिह्वा के...काय के...मन के आस्वाद...

भिक्खवे, निस्सरणपरियेसनं अचरिं। यं जिव्हाय निस्सरणं तदज्झगमं। यावता जिव्हाय निस्सरणं, पञ्ञाय मे तं सुदिट्ठं...पे०...मनस्साहं, भिक्खवे, अस्सादपरियेसनं अचरिं। [N.10] यो मनस्स अस्सादो तदज्झगमं। यावता मनस्स अस्सादो पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। मनस्साहं, भिक्खवे, आदीनवपरियेसनं अचरिं। यो मनस्स आदीनवो तदज्झगमं। यावता मनस्स आदीनवो पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। मनस्साहं, भिक्खवे, निस्सरण-परियेसनं अचरिं। यं मनस्स निस्सरणं तदज्झगमं। यावता मनस्स निस्सरणं, पञ्ञाय मे तं सुदिट्ठं।

''यावकीवञ्चाहं, भिक्खवे, इमेसं छन्नं अज्झत्तिकानं आयतनानं अस्सादं च अस्सादतो, आदीनवं च आदीनवतो, निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं नाब्भञ्ञासिं ...पे०...पच्चञ्ञासिं। ञाणं च पन मे दस्सनं उदपादि—'अकुप्पा मे विमुत्ति, अयमन्तिमा जाति, नत्थि दानि पुनब्भवो''' ति॥ ●

१६. दुतियअस्सादपरियेसनसुत्तं

१६. ''रूपानाहं, भिक्खवे, अस्सादपरियेसनं अचरिं। यो रूपानं अस्सादो तदज्झगमं। यावता रूपानं अस्सादो पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। रूपानाहं, भिक्खवे, [R.10] आदीनवपरियेसनं अचरिं। यो रूपानं आदीनवो तदज्झगमं। यावता रूपानं आदीनवो पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। रूपानाहं, भिक्खवे, निस्सरणपरियेसनं अचरिं। यं रूपानं निस्सरणं तदज्झगमं। यावता रूपानं निस्सरणं पञ्ञाय मे तं सुदिट्ठं। सद्दानाहं, भिक्खवे...गन्धानाहं, भिक्खवे...रसानाहं, भिक्खवे...फोट्ठब्बानाहं, भिक्खवे...धम्मा-नाहं, भिक्खवे, अस्सादपरियेसनं अचरिं। यो धम्मानं अस्सादो तदज्झगमं। यावता धम्मानं अस्सादो पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। धम्मानाहं, भिक्खवे, आदीनवपरियेसनं

आदीनव...नि:सरण के विषय में खोज की। जितना भी उस के विषय में ज्ञातव्य था, वह सब प्रज्ञापूर्वक जान लिया, देख लिया।

''परन्तु, भिक्षुओ! जब तक इन छह आध्यात्मिक आयतनों का...प्रज्ञापूर्वक यथार्थत: ज्ञान प्राप्त नहीं कर लिया...पूर्वसूत्रवत्...मैने अपनी बुद्धत्वप्राप्ति के विषय में कोई घोषणा नहीं की। तथा जब...तब घोषणा कर दी; क्यों कि तब मैं यह भी जान चुका था—'यह मेरा अन्तिम जन्म है, अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा॥ ●

१६. द्वितीय आस्वादपर्येषणसूत्र : : आस्वाद की खोज

१६. ...''भिक्षुओ! इसी तरह मैने रूपों के आस्वाद के विषय में खोज की। रूपों के आस्वाद की...आदीनव की...नि:सरण की खोज की। जितना भी उस के विषय में

अचरिं। यो धम्मानं आदीनवो तदज्झगमं। यावता धम्मानं आदीनवो पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। धम्मानाहं, भिक्खवे, निस्सरणपरियेसनं अचरिं। यं धम्मानं निस्सरणं तदज्झगमं। यावता धम्मानं निस्सरणं, पञ्ञाय मे तं सुदिट्ठं। [B.244]

''यावकीवञ्चाहं, भिक्खवे, इमेसं छन्नं बाहिरानं आयतनानं अस्सादं च अस्सादतो, आदीनवं च आदीनवतो, निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं नाब्भञ्ञासिं ...पे०...पच्चञ्ञासिं। ञाणं च पन मे दस्सनं उदपादि—'अकुप्पा मे विमुत्ति, [N.11] अयमन्तिमा जाति, नत्थि दानि पुनब्भवो''' ति॥ ●

१७. पठमनोचेअस्सादसुत्तं

१७. ''नो चेदं, भिक्खवे, चक्खुस्स अस्सादो अभविस्स, न यिदं सत्ता चक्खुस्मिं सारज्जेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि चक्खुस्स अस्सादो तस्मा सत्ता चक्खुस्मिं सारज्जन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, चक्खुस्स आदीनवो अभविस्स, न यिदं सत्ता चक्खुस्मिं निब्बिन्देय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि चक्खुस्स आदीनवो तस्मा सत्ता चक्खुस्मिं निब्बिन्दन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, चक्खुस्स निस्सरणं अभविस्स, न यिदं सत्ता चक्खुस्मा निस्सरेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि चक्खुस्स निस्सरणं तस्मा सत्ता चक्खुस्मा निस्सरन्ति।

नो चेदं, भिक्खवे, सोतस्स अस्सादो अभविस्स...नो चेदं, भिक्खवे, घानस्स

ज्ञातव्य था, उस सब को जाना, समझा। शब्दों के, गन्धों के, रसों के, स्प्रष्टव्यों के, धर्मों के विषय में खोज की...पूर्ववत्...। उस के विषय में प्रज्ञा से यथार्थ जान लिया।

''परन्तु, भिक्षुओ! जब तक इन छह बाह्य आयतनों का...प्रज्ञापूर्वक यथार्थतः ज्ञान प्राप्त नहीं कर लिया...पूर्वसूत्रवत्...मैने अपनी बुद्धत्वप्राप्ति की घोषणा नहीं की। तथा जब...तब मैने घोषणा की; क्यों कि तब मैं यह भी जान चुका था—'यह मेरा अन्तिम जन्म है, अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा॥'' ●

१७. प्रथम न चेदास्वादसूत्र : : आस्वाद के ही कारण आसक्ति

१७. ...''भिक्षुओ! यदि किसी का चक्षु के प्रति यह आस्वाद न होता तो उस की इस चक्षु में आसक्ति न होती। क्यों कि, भिक्षुओ! चक्षु के प्रति उन का आस्वाद होता है अतः वे प्राणी चक्षु के प्रति आसक्त होते रहते हैं। उधर यह बात भी यथार्थ है कि यदि चक्षु में आदीनव न होता तो किसी की भी इस के प्रति अरुचि न होती। इसी तरह चक्षु में यदि निःसरण न होता तो कोई भी इस चक्षु का त्याग न करता। क्यों कि, भिक्षुओ! चक्षु के त्याग का उपाय है, अतः प्राणी चक्षु से त्याग कर देते हैं।

''भिक्षुओ! यदि श्रोत्र का आस्वाद...घ्राण का आस्वाद...जिह्वा का आस्वाद...काय

[R.11] अस्सादो अभविस्स...नो चेदं, भिक्खवे, जिव्हाय अस्सादो अभविस्स, न यिदं सत्ता जिव्हाय सारज्जेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि जिव्हाय अस्सादो तस्मा सत्ता जिव्हाय सारज्जन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, जिव्हाय आदीनवो अभविस्स, न यिदं सत्ता जिव्हाय निब्बिन्देय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि जिव्हाय आदीनवो तस्मा सत्ता जिव्हाय निब्बिन्दन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, जिव्हाय निस्सरणं अभविस्स, न यिदं सत्ता जिव्हाय निस्सरेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि जिव्हाय निस्सरणं तस्मा सत्ता जिव्हाय निस्सरन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, कायस्स अस्सादो अभविस्स...नो चेदं, भिक्खवे, मनस्स अस्सादो अभविस्स, न यिदं सत्ता मनस्मि सारज्जेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि मनस्स अस्सादो तस्मा सत्ता मनस्मि सारज्जन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, मनस्स आदीनवो अभविस्स, न यिदं सत्ता मनस्मि निब्बिन्देय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि मनस्स आदीनवो तस्मा सत्ता मनस्मि निब्बिन्दन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, मनस्स निस्सरणं अभविस्स, न यिदं सत्ता मनस्मा निस्सरेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि मनस्स निस्सरणं तस्मा सत्ता मनस्मा निस्सरन्ति।

[B.245] ''यावकीवञ्च, भिक्खवे, सत्ता इमेसं छन्नं अज्झत्तिकानं आयतनानं अस्सादं च अस्सादतो, आदीनवं च आदीनवतो, निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं नाब्भञ्ञंसु, नेव [N.12] ताव, भिक्खवे, सत्ता सदेवका लोका समारका सब्रह्मका सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय निस्सटा विसञ्ञुत्ता विप्पमुत्ता विमरियादीकतेन चेतसा विहरिंसु। यतो च खो, भिक्खवे, सत्ता इमेसं छन्नं अज्झत्तिकानं आयतनानं अस्सादं च अस्सादतो, आदीनवं च आदीनवतो, निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं अब्भञ्ञंसु, अथ, भिक्खवे, सत्ता [R.12] सदेवका लोका समारका सब्रह्मका सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय निस्सटा विसञ्ञुत्ता विप्पमुत्ता विमरियादीकतेन चेतसा विहरन्ती'' ति॥ ●

का आस्वाद...मन का आस्वाद न होता...पूर्ववत्। क्यों कि, भिक्षुओ! मन से मोक्ष का उपाय है, अत: प्राणी मन का त्याग कर देते हैं।

''भिक्षुओ! जब तक प्राणियों ने इन छह आयतनों के आस्वाद को आस्वाद से नहीं जान लिया, तब तक देवमनुष्यों सहित सकल लोकधातुओं की श्रमणब्राह्मणों सहित प्रजाओं ने इन में आसक्त हो कर खुले हृदय से इन के आस्वाद में मन लगाया। तब जब उस...श्रमणब्राह्मणों ने इन छह आयतनों के आस्वाद को आस्वाद से जान लिया तब उन्होंने इन आयतनों का त्याग करने में अपना मन लगाया॥'' ●

१८. दुतियनोचेअस्सादसुत्तं

१८. ''नो चेदं, भिक्खवे, रूपानं अस्सादो अभविस्स, न यिदं सत्ता रूपेसु सारज्जेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि रूपानं अस्सादो तस्मा सत्ता रूपेसु सारज्जन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, रूपानं आदीनवो अभविस्स, न यिदं सत्ता रूपेसु निब्बिन्देय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि रूपानं आदीनवो तस्मा सत्ता रूपेसु निब्बिन्दन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, रूपानं निस्सरणं अभविस्स, न यिदं सत्ता रूपेहि निस्सरेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि रूपानं निस्सरणं तस्मा सत्ता रूपेहि निस्सरन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, सद्दानं...गन्धानं...रसानं...फोट्ठब्बानं...धम्मानं अस्सादो अभविस्स, न यिदं सत्ता धम्मेसु सारज्जेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि धम्मानं अस्सादो तस्मा सत्ता धम्मेसु सारज्जन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, धम्मानं आदीनवो अभविस्स, न यिदं सत्ता धम्मेसु निब्बिन्देय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि धम्मानं आदीनवो तस्मा सत्ता धम्मेसु निब्बिन्दन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, धम्मानं निस्सरणं अभविस्स, न यिदं सत्ता धम्मेहि निस्सरेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि धम्मानं निस्सरणं तस्मा सत्ता धम्मेहि निस्सरन्ति।

''यावकीवञ्च, भिक्खवे, सत्ता इमेसं छन्नं बाहिरानं आयतनानं अस्सादं च अस्सादतो, आदीनवं च आदीनवतो, निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं नाब्भञ्ञंसु, नेव ताव, भिक्खवे, सत्ता सदेवका लोका समारका सब्रह्मका सस्समणब्राह्मणिया [R.13] पजाय सदेवमनुस्साय निस्सटा विसञ्ञुत्ता विप्पमुत्ता विमरियादीकतेन चेतसा [B.246] विहरिंसु। यतो च खो, भिक्खवे, सत्ता इमेसं छन्नं बाहिरानं आयतनानं अस्सादं च[N.13] अस्सादतो, आदीनवं च आदीनवतो, निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं अब्भञ्ञंसु, अथ, भिक्खवे, सत्ता सदेवका लोका समारका सब्रह्मका सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय निस्सटा विसञ्ञुत्ता विप्पमुत्ता विमरियादीकतेन चेतसा विहरन्ती'' ति॥

१९. पठमाभिनन्दसुत्तं

१९. यो, भिक्खवे, चक्खुं अभिनन्दति, दुक्खं सो अभिनन्दति। यो दुक्खं

---

१८. द्वितीय नचेदास्वादसूत्र : : आयतनों के आस्वाद के ही कारण आसक्ति

१८. ''यदि, भिक्षुओ! रूपों में आस्वाद न होता तो प्राणी इन रूपों में आसक्त न होते ...पूर्वसूत्रवत्...इन आयतनों का त्याग करने में अपना मन लगाया।'' *(पूर्वसूत्र में पठित इन्द्रियों के स्थान पर उन के रूप आदि विषय रख कर इस सूत्र का विस्तार कर लें।)*●

अभिनन्दति, अपरिमुत्तो सो दुक्खस्मा ति वदामि। यो सोतं...पे०...यो घानं...पे०...यो जिव्हं अभिनन्दति, दुक्खं सो अभिनन्दति। यो दुक्खं अभिनन्दति, अपरिमुत्तो सो दुक्खस्मा ति वदामि। यो कायं...पे०...यो मनं अभिनन्दति, दुक्खं सो अभिनन्दति। यो दुक्खं अभिनन्दति, अपरिमुत्तो सो दुक्खस्मा ति वदामि।

''यो च खो, भिक्खवे, चक्खुं नाभिनन्दति, दुक्खं सो नाभिनन्दति। यो दुक्खं नाभिनन्दति, परिमुत्तो सो दुक्खस्मा ति वदामि। यो सोतं...पे०...यो घानं...पे०...यो जिव्हं नाभिनन्दति, दुक्खं सो नाभिनन्दति। यो दुक्खं नाभिनन्दति, परिमुत्तो सो दुक्खस्मा ति वदामि। यो कायं...पे०...यो मनं नाभिनन्दति, दुक्खं सो नाभिनन्दति। यो दुक्खं नाभिनन्दति, परिमुत्तो सो दुक्खस्मा ति वदामि''॥ •

२०. दुतियाभिनन्दसुत्तं

२०. ''यो, भिक्खवे, रूपे अभिनन्दति, दुक्खं सो अभिनन्दति। यो दुक्खं अभिनन्दति, अपरिमुत्तो सो दुक्खस्मा ति वदामि। यो सद्दे...पे०...गन्धे...रसे... फोट्ठब्बे...धम्मे अभिनन्दति, दुक्खं सो अभिनन्दति। यो दुक्खं अभिनन्दति, अपरिमुत्तो सो दुक्खस्मा ति वदामि।

[R.14] ''यो च खो, भिक्खवे, रूपे नाभिनन्दति, दुक्खं सो नाभिनन्दति। यो दुक्खं

---

१९. प्रथम अभिनन्दनसूत्र : : आयतनों के अभिनन्दी की दुःख से मुक्ति नहीं

१९. ...''भिक्षुओ! जो चक्षु का अभिनन्दन करता है वह वस्तुतः दुःख का ही अभिनन्दन करता है। तथा जो इस दुःख का अभिनन्दन करता है वह इस दुःख से कभी मुक्ति नहीं पा सकता—ऐसा मेरा मानना है। जो श्रोत्र का...घ्राण का...जिह्वा का...काय का...मन का अभिनन्दन करता है वह वस्तुतः दुःख का ही अभिनन्दन करता है। 'इस दुःख का अभिनन्दन करनेवाले की कभी मुक्ति नहीं हो सकती'—ऐसा मेरा मानना है। परन्तु जो चक्षु का...श्रोत्र का...घ्राण का...जिह्वा का...काय का...मन का अभिनन्दन नहीं करता, वह मानो दुःख का अभिनन्दन नहीं करता। ऐसे दुःख के अनभिनन्दी प्राणी की इस दुःख से अवश्य मुक्ति हो जाती है—ऐसा मेरा मानना है॥'' •

२०. द्वितीय अभिनन्दनसूत्र : : आयतनों के अभिनन्दी की दुःख से मुक्ति नहीं

२०. ...''भिक्षुओ! जो रूप में अभिनन्दन (राग) करता है...गन्ध में...रस में...स्प्रष्टव्य में...धर्मों में अभिनन्दन (राग) करता है, उस का दुःख से मुक्त होना असम्भव है—ऐसी मेरी मान्यता है।

नाभिनन्दति, परिमुत्तो सो दुक्खस्मा ति वदामि। यो सद्दे...पे०...गन्धे...रसे...फोट्ठब्बे... धम्मे नाभिनन्दति, दुक्खं सो नाभिनन्दति। यो दुक्खं नाभिनन्दति, परिमुत्तो सो दुक्खस्मा ति वदामि।''॥ •

२१. पठमदुक्खुप्पादसुत्तं

२१. ''यो, भिक्खवे, चक्खुस्स उप्पादो ठिति अभिनिब्बत्ति [N.14, B.247] पातुभावो, दुक्खस्सेसो उप्पादो, रोगानं ठिति, जरामरणस्स पातुभावो। यो सोतस्स ...पे०...यो घानस्स...यो जिव्हाय...यो कायस्स...यो मनस्स उप्पादो ठिति अभिनिब्बत्ति पातुभावो, दुक्खस्सेसो उप्पादो, रोगानं ठिति, जरामरणस्स पातुभावो।

''यो च खो भिक्खवे, चक्खुस्स निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो, रोगानं वूपसमो, जरामरणस्स अत्थङ्गमो। यो सोतस्स...यो घानस्स...यो जिव्हाय...यो कायस्स...यो मनस्स निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो, रोगानं वूपसमो, जरामरणस्स अत्थङ्गमो'' ति॥ •

२२. दुतियदुक्खुप्पादसुत्तं

२२. ''यो, भिक्खवे, रूपानं उप्पादो ठिति अभिनिब्बत्ति पातुभावो, दुक्खस्सेसो उप्पादो, रोगानं ठिति, जरामरणस्स पातुभावो। यो सद्दानं...पे०...यो गन्धानं...यो रसानं...यो फोट्ठब्बानं...यो धम्मानं उप्पादो ठिति अभिनिब्बत्ति पातुभावो, दुक्खस्सेसो उप्पादो, रोगानं ठिति, जरामरणस्स पातुभावो।

''परन्तु, भिक्षुओ! जो रूप में अभिनन्दन नहीं करता...गन्ध में...रस में...स्प्रष्टव्य में...धर्मों में अभिनन्दन नहीं करता वह निश्चय ही एक दिन दुःख से छुटकारा पा जाता है—ऐसा मेरा मानना है॥'' •

२१. प्रथम दुःखोत्पादसूत्र : : यह उत्पाद ही दुःख है

२१. ...''भिक्षुओ! जो यह चक्षु का उत्पाद है, स्थिति है, अभिनिर्वृति (उद्भव) है, प्रादुर्भाव है यही (वस्तुतः) दुःख का उत्पाद है, रोगों की स्थिति (ठहराव) है तथा जरा एवं मरण का प्रादुर्भाव है। जो यह श्रोत्र का...घ्राण का...जिह्वा का...काय का...मन का उत्पाद है...पूर्ववत्...मरण का प्रादुर्भाव है।

''परन्तु, भिक्षुओ! चक्षु का जो निरोध है, व्युपशम (शमन) है, अस्त गमन (नाश) है वही वस्तुतः इस दुःख का निरोध है, रोगों का उपशमन है, तथा जरामरण का नाश है। जो श्रोत्र का...पूर्ववत्...मन का निरोध है...वह दुःख का ही निरोध है, रोगों का शमन तथा जरामरण का नाश है॥'' •

"यो च खो भिक्खवे, रूपानं निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो, [R.15] रोगानं वूपसमो, जरामरणस्स अत्थङ्गमो। यो सद्दानं...पे०...यो गन्धानं...यो रसानं...यो फोट्ठब्बानं...यो धम्मानं निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो, रोगानं वूपसमो, जरामरणस्स अत्थङ्गमो" ति॥ ●

यमकवग्गो दुतियो॥

तस्सुद्दानं

सम्बोधेन दुवे वुत्ता, अस्सादेन अपरे दुवे।
नो चेतेन दुवे वुत्ता, अभिनन्देन अपरे दुवे।
उप्पादेन दुवे वुत्ता, वग्गो तेन पवुच्चती ति॥ ●

---

२२. द्वितीय दुःखोत्पादसूत्र : : यह उत्पाद ही दुःख है

२२. ..."भिक्षुओ! रूपों का उत्पाद स्थिति, उद्भव एवं प्रादुर्भाव ही दुःख का उत्पाद, रोगों की स्थिति एवं जरामरण का प्रादुर्भाव है। शब्द...गन्ध...रस...स्प्रष्टव्य...धर्मों का निरोध ही दुःख का उत्पाद एवं प्रादुर्भाव है।

"तथा भिक्षुओ! रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्प्रष्टव्य एवं धर्मों का निरोध ही दुःख का निरोध है, रोगों का शमन है, तथा जरामरण का अस्तगमन है"॥ ●

यमकवर्ग द्वितीय सम्पन्न॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची— १. प्रथम पूर्वसम्बोध, २. द्वितीय पूर्वसम्बोध, ३. प्रथम आस्वादपर्येषण, ४. द्वितीय आस्वादपर्येषणसूत्र, ५. प्रथम नचेदास्वादसूत्र, ६. द्वितीय नचेदास्वादसूत्र, ७. प्रथम अभिनन्दनसूत्र, ८. द्वितीय अभिनन्दनसूत्र, ९. प्रथम दुःखोत्पादसूत्र, एवं १०. द्वितीय दुःखोत्पादसूत्र॥ ●

२३. सब्बसुत्तं

२३. सावत्थिनिदानं। "सब्बं वो, भिक्खवे, देसेस्सामि। तं [N.15, B.248] सुणाथ। किञ्च, भिक्खवे, सब्बं? चक्खुं चेव रूपा च, सोतं च सद्दा च, घानं च गन्धा च, जिव्हा च रसा च, कायो च फोट्ठब्बा च, मनो च धम्मा च—इदं वुच्चति, भिक्खवे, सब्बं। यो, भिक्खवे, एवं वदेय्य—'अहमेतं सब्बं पच्चक्खाय अञ्ञं सब्बं पञ्ञापेस्सामी' ति, तस्स वाचावत्थुकमेवस्स; पुट्ठो च न सम्पायेय्य, उत्तरिं च विघातं आपज्जेय्य। तं किस्स हेतु? यथा तं, भिक्खवे, अविसयस्मिं" ति॥ ●

२४. पहानसुत्तं

२४. "सब्बप्पहानाय वो, भिक्खवे, धम्मं देसेस्सामि। तं सुणाथ। कतमो च, भिक्खवे, सब्बप्पहानाय धम्मो? चक्खुं, भिक्खवे, पहातब्बं, रूपा पहातब्बा, चक्खुविञ्ञाणं पहातब्बं, चक्खुसम्फस्सो पहातब्बो, यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि पहातब्बं...पे०...जिव्हा [R.16] पहातब्बा, रसा पहातब्बा, जिव्हाविञ्ञाणं पहातब्बं, जिव्हासम्फस्सो पहातब्बो, यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि पहातब्बं। कायो पहातब्बो...मनो पहातब्बो, धम्मा पहातब्बा, मनोविञ्ञाणं पहातब्बं,

---

३. तृतीय सर्ववर्गसूत्र

२३. सर्वसूत्र : : 'सर्व' किसे कहते हैं?

२३. **श्रावस्ती में** ही। "भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें 'सर्व' का उपदेश करूँगा, उसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो। भिक्षुओ! यह 'सर्व' क्या है? चक्षु और (उस का विषय) रूप, श्रोत्र और शब्द, घ्राण एवं गन्ध, जिह्वा एवं रस, काय एवं स्प्रष्टव्य तथा मन एवं (उस के विषय) धर्म—भिक्षुओ! यह कहलाता है 'सर्व'।

"जो, भिक्षुओ! ऐसा कहे—'मैं इस सर्व का प्रत्याख्यान कर अन्य किसी सर्व का प्रज्ञापन करूँगा', वह उस का वाग्विलास मात्र (वाचावत्थुक=वाग्वस्तु=कथनमात्र) है। पूछने पर वह इस विषय में कुछ बता न सकेगा। तथा आगे चल कर (संवाद में) वह स्वयं अपने वाग्जाल में फँस जायगा। वह क्यों? क्यों कि, भिक्षुओ! यह बात अनहोनी (अविषय) है॥" ●

२४. प्रहाणसूत्र : : सर्व त्याग के योग्य

२४. ..."भिक्षुओ! मैं तुम्हें इस सर्वप्रहाण के लिये धर्मोपाय बताऊँगा। उसे तुम लोग ध्यानपूर्वक सुनो। भिक्षुओ! इस सर्वप्रहाण के लिये कौन धर्म है? भिक्षुओ! चक्षु का, रूप का, चक्षुर्विज्ञान का, चक्षु:संस्पर्श का, यहाँ तक कि इस चक्षु:संस्पर्श से उत्पन्न

मनोसम्फस्सो पहातब्बो, यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि पहातब्बं। अयं खो, भिक्खवे, सब्बप्पहानाय धम्मो'' ति॥●

२५. अभिञ्ञापरिञ्ञापहानसुत्तं

२५. ''सब्बं अभिञ्ञा परिञ्ञा पहानाय वो, भिक्खवे, धम्मं देसेस्सामि। तं सुणाथ। कतमो च, भिक्खवे, सब्बं अभिञ्ञा परिञ्ञा पहानाय धम्मो? चक्खुं, भिक्खवे, अभिञ्ञा परिञ्ञा पहातब्बं, रूपा अभिञ्ञा परिञ्ञा पहातब्बा, चक्खु-[B.249] विञ्ञाणं अभिञ्ञा परिञ्ञा पहातब्बं, चक्खुसम्फस्सो अभिञ्ञा परिञ्ञा पहातब्बो, यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा [N.16] अदुक्खमसुखं वा, तं पि अभिञ्ञा परिञ्ञा पहातब्बं...पे०...जिव्हा अभिञ्ञा परिञ्ञा पहातब्बा, रसा अभिञ्ञा परिञ्ञा पहातब्बा, जिव्हाविञ्ञाणं अभिञ्ञा परिञ्ञा पहातब्बं, जिव्हासम्फस्सो अभिञ्ञा परिञ्ञा पहातब्बो, यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अभिञ्ञा परिञ्ञा पहातब्बं। कायो अभिञ्ञा परिञ्ञा पहातब्बो...मनो अभिञ्ञा परिञ्ञा पहातब्बो, धम्मा अभिञ्ञा परिञ्ञा पहातब्बा, मनोविञ्ञाणं अभिञ्ञा परिञ्ञा पहातब्बं, मनोसम्फस्सो [R.17] अभिञ्ञा परिञ्ञा पहातब्बो। यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अभिञ्ञा परिञ्ञा पहातब्बं। अयं खो, भिक्खवे, सब्बं अभिञ्ञा परिञ्ञा पहानाय धम्मो'' ति॥ ●

होने वाला जो भी अनुभूत सुख दु:ख या अदु:ख असुख है—इन सब का प्रहाण करना चाहिये। श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...काय...मन, मनोविज्ञान, मन:संस्पर्श तथा इस मन:संस्पर्श से उद्भूत होने वाला सुख दु:ख या अदु:ख असुख—इन सब का प्रहाण करना चाहिये। भिक्षुओ! यही सर्वप्रहाण के लिये धर्मोपाय है॥'' ●

२५. अभिज्ञापरिज्ञाप्रहाणसूत्र : : जान बूझ कर सर्व त्यागयोग्य

२५. ...''भिक्षुओ! मैं तुम्हें सभी प्रकार के विशिष्ट ज्ञान (अभिज्ञा) एवं स्थिर ज्ञान (परिज्ञा) के प्रहाणहेतु धर्मोपाय की देशना करूँगा। उसे सुनो। भिक्षुओ! यह सब अभिज्ञा एवं परिज्ञा धर्म क्या होते हैं? भिक्षुओ! यह चक्षु, यह रूप, यह चक्षुर्विज्ञान, यह चक्षु:संस्पर्श तथा चक्षु:संस्पर्श के कारण उत्पन्न अनुभूत सुख दु:ख या अदु:ख असुख—सभी कुछ अभिज्ञा-परिज्ञा धर्म हैं, इन का प्रहाण (त्याग) करो।...पूर्ववत्...जिह्वा...काय... मन, मनोविज्ञान, मन:संस्पर्श तथा इस मन:संस्पर्श से उत्पन्न अनुभूत सुख दु:ख या अदु:ख असुख—ये सब अभिज्ञा-परिज्ञा धर्म हैं, इन सब का प्रहाण करो। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—सर्व अभिज्ञापरिज्ञा धर्म, जिन का प्रहाण आवश्यक है॥'' ●

२६. पठमअपरिजाननसुत्तं

२६. "सब्बं, भिक्खवे, अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय। किञ्च, भिक्खवे, अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय? चक्खुं, भिक्खवे, अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय। रूपे अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय। चक्खुविञ्ञाणं अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय। चक्खुसम्फस्सं अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय। यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय...पे०...जिव्हं अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय। रसे...पे०...जिव्हाविञ्ञाणं...पे०...जिव्हासम्फस्सं...पे०...यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय। कायं...पे०...मनं अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय। धम्मे...[N.17] पे०...मनोविञ्ञाणं...पे०...मनोसम्फस्सं...पे०...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनभिजानं अपरिजानं [B.250] अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय। इदं खो, भिक्खवे, सब्बं अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय।

"सब्बं च खो, भिक्खवे, अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो

---

२६. प्रथम अपरिजाननसूत्र : : जाने समझे विना दुःखक्षय असम्भव

२६. ..."भिक्षुओ! सभी धर्मों को जाने विना, उन से परिचित हुए विना, उन में अनासक्त हुए विना उन का त्याग किये विना कोई भी प्राणी अपने दुःखों का क्षय करने में समर्थ नहीं हो सकता। भिक्षुओ! किन धर्मों को जाने विना...पूर्ववत्...प्राणी स्वदुःखक्षय में समर्थ नहीं हो सकता? भिक्षुओ! चक्षु को, रूप को, चक्षुर्विज्ञान को, चक्षुःसंस्पर्श को, या उस संस्पर्श से उत्पन्न अनुभूत सुख दुःख या अदुःख असुख को...जिह्वा को...रसों को ...पूर्ववत्...काय को...मन को, मनोधर्मों को, मनोविज्ञान को, मनःसंस्पर्श तथा तज्जन्य सुख दुःख या अदुःख असुख को जाने विना, उन से परिचित हुए विना, उन में अनासक्त हुए विना, उन का त्याग किये विना, कोई भी प्राणी अपने दुःखों का क्षय करने में समर्थ नहीं हो सकता।

[R.18] दुक्खक्खयाय। किञ्च, भिक्खवे, सब्बं अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाय? चक्खुं, भिक्खवे, अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाय। रूपे अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाय। चक्खु-विञ्ञाणं अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाय। चक्खुसम्फस्सं अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाय। यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाय...पे०...जिव्हं अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाय। रसे...पे०...जिव्हाविञ्ञाणं...पे०...जिव्हासम्फस्सं...पे०... यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाय। कायं...पे०...मनं अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाय। धम्मे...पे०...मनोविञ्ञाणं...पे०... मनोसम्फस्सं...पे०...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाय। इदं खो, भिक्खवे, सब्बं अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाया'' ति॥ ●

२७. दुतियअपरिजाननसुत्तं

२७. ''सब्बं, भिक्खवे, अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय। किञ्च, भिक्खवे, सब्बं अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय? यं च, भिक्खवे, चक्खु, ये च रूपा, यं च चक्खुविञ्ञाणं, ये

''भिक्षुओ! कोई प्राणी, इस के विपरीत, इन सभी धर्मों को जान कर, इन से परिचित हो कर, इन में अनासक्त होता हुआ, उन का त्याग कर, स्वदु:खक्षय में समर्थ हो सकता है। भिक्षुओ! यह सभी धर्मों को जानना...पूर्ववत्...क्या है? भिक्षुओ! चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षु:संस्पर्श..., जिव्हा, रस, जिह्वाविज्ञान, जिह्वासंस्पर्श..., काय...मन, मनोधर्म, मनोविज्ञान, मन:संस्पर्श, तथा उस संस्पर्श के कारण उत्पन्न हुए अनुभूयमान सुख, दु:ख एवं अदु:ख असुख को जान कर, उन से परिचित हो कर अनासक्त रहता हुआ पुरुष अपने समस्त दु:खों का क्षय करने में समर्थ होता है॥'' ●

२७. द्वितीय अपरिजाननसूत्र : : जाने समझे विना दु:खक्षय असम्भव

२७. ...''भिक्षुओ! सभी धर्मों को जाने समझे विना, उन में अनासक्त रहते हुए, उन के त्याग के विना समस्त दु:खक्षय असम्भव है। भिक्षुओ! यह सभी धर्मों को जानना समझना...क्या है? भिक्षुओ! चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान...पूर्ववत्...मनोविज्ञान से ज्ञातव्य

च चक्खुविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा...पे०...या च जिव्हा, ये च रसा, यं [N.18, R.19] च जिव्हाविञ्ञाणं, ये च जिव्हाविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा; यो च कायो, ये च फोट्ठब्बा, यं च कायविञ्ञाणं, ये च कायविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा; यो च मनो, ये च धम्मा, यं च मनोविञ्ञाणं, ये च मनोविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा—इदं खो, भिक्खवे, सब्बं अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय।

"सब्बं, भिक्खवे, अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो [B.251] दुक्खक्खयाय। किञ्च, भिक्खवे, सब्बं अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाय? यं च, भिक्खवे, चक्खु, ये च रूपा, यं च चक्खुविञ्ञाणं, ये च चक्खुविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा...पे०...या च जिव्हा, ये च रसा, यं च जिव्हाविञ्ञाणं, ये च जिव्हाविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा; यो च कायो, ये च फोट्ठब्बा, यं च कायविञ्ञाणं, ये च कायविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा; यो च मनो, ये च धम्मा, यं च मनोविञ्ञाणं, ये च मनोविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा—इदं खो, भिक्खवे, सब्बं अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाया" ति॥

२८. आदित्तसुत्तं[1]

२८. एकं समयं भगवा गयायं विहरति गयासीसे सद्धिं भिक्खुसहस्सेन। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"सब्बं, भिक्खवे, आदित्तं। किञ्च, भिक्खवे, सब्बं

धर्मों को न जानना, पहचानना ही 'सभी धर्मों को जाने समझे विना, उन में अनासक्त हुए विना, उन के त्याग के विना सर्वदुःखक्षय असम्भव है'—कहलाता है।

"भिक्षुओ! सभी धर्मों को जान कर, उन से परिचित हो कर, उन में अनासक्त हो कर उन का त्याग कर के ही प्राणी का सर्वदुःखक्षय सम्भव है। भिक्षुओ! यह सभी धर्मों को जानना, उन से परिचित होना क्या है? भिक्षुओ! चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुर्विज्ञान से ज्ञातव्य धर्म; जिव्हा, रस, जिह्वाविज्ञान, जिह्वाविज्ञान से ज्ञातव्य धर्म...पूर्ववत्...मनोविज्ञान से ज्ञातव्य धर्मों से परिचित होना ही 'सभी धर्मों को जान कर, समझ कर...पूर्ववत्... सर्वदुःखक्षय सम्भव है॥"

२८. आदीप्तसूत्र[1] : : सब कुछ जल रहा है

२८. एक समय भगवान् (बुद्ध) गया नगरी स्थित गयाशीर्ष (ब्रह्मयोनि) पर्वत पर एक हजार पुराणजटिलों के भिक्षुसङ्घ के साथ साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय

---

१. यह सूत्र **विनयपिटक** के **महावग्ग**ग्रन्थ (पृ० ५३) में भी 'आदित्तपरियाय' नाम से अविकल उद्धृत है। वहाँ भी इसे देख लें। (बौ० भा० सं०) —सं०।

आदित्तं? चक्खु, भिक्खवे, आदित्तं, रूपा आदित्ता, चक्खुविञ्ञाणं आदित्तं, चक्खुसम्फस्सो आदित्तो, यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि आदित्तं। केन आदित्तं? 'रागग्गिना दोसग्गिना मोहग्गिना आदित्तं, जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि आदित्तं' ति वदामि...पे०...जिव्हा आदित्ता, रसा आदित्ता, जिव्हाविञ्ञाणं [R.20] आदित्तं, जिव्हासम्फस्सो आदित्तो, यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि आदित्तं। केन आदित्तं? 'रागग्गिना दोसग्गिना मोहग्गिना आदित्तं, जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि आदित्तं' ति वदामि...पे०...मनो आदित्तो, धम्मा आदित्ता, [N.19] मनोविञ्ञाणं आदित्तं, मनोसम्फस्सो आदित्तो, यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि आदित्तं। केन आदित्तं? 'रागग्गिना दोसग्गिना मोहग्गिना आदित्तं, जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि आदित्तं' ति वदामि।

''एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति, रूपेसु पि निब्बिन्दति, चक्खुविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, चक्खुसम्फस्से पि निब्बिन्दति, यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिं पि [B.252] निब्बिन्दति...पे०...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा

भगवान् ने सम्मुख उपस्थित भिक्षुओं को यह देशना की—''भिक्षुओ! (संसार में) सब कुछ प्रदीप्त हो (जल) रहा है। (नष्ट हो रहा है)। भिक्षुओ! क्या सब कुछ जल रहा है? चक्षु जल रहा है, रूप (चक्षुर्विषय) जल रहा है, चक्षुर्विज्ञान जल रहा है, चक्षुःसंस्पर्श जल रहा है, तथा चक्षुःसंस्पर्श से प्रत्यय के कारण जो सुख, दुःख या अदुःख असुख वेदनाएँ होती हैं, वे भी जल रही हैं। किस से जल रही हैं? रागाग्नि से, द्वेषाग्नि से, मोहाग्नि से जल रही हैं, जन्म जरामरण से, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य या पश्चात्ताप की अग्नि से जल रही हैं। श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...काय...मन, मनोधर्म, मनोविज्ञान...पश्चात्ताप-अग्नि से जल रहा है—ऐसा मैं मानता हूँ, ऐसा मैं कहता हूँ।

''भिक्षुओ! ऐसा देखते हुए, ऐसा समझते हुए विद्वान् आर्यश्रावक चक्षु में भी अनासक्त हो जाता है, रूप में भी, चक्षुर्विज्ञान में भी, चक्षुःसंस्पर्श में भी, चक्षुःसंस्पर्श-प्रत्ययोत्पन्न वेदनाओं (सुख दुःखादि) में भी अनासक्त हो जाता है। श्रोत्र में भी, शब्दों में भी..., घ्राण में भी, गन्ध में भी...जिह्वा में भी, रस में भी...पूर्ववत्...मनःसंस्पर्शप्रत्ययोत्पन्न

विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति।

२९. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं। इमस्मिं च पन वेय्याकरणस्मिं भञ्ञमाने तस्स भिक्खुसहस्सस्स अनुपादाय आसवेहि चित्तानि विमुच्चिंसू ति॥ •

२९. अद्धभूतसुत्तं

३०. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''सब्बं, भिक्खवे, अद्धभूतं। किञ्च, भिक्खवे, सब्बं अद्धभूतं? चक्खु, भिक्खवे, अद्धभूतं, रूपा अद्धभूता, चक्खुविञ्ञाणं अद्धभूतं, [R.21] चक्खुसम्फस्सो अद्धभूतो, यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अद्धभूतं। केन अद्धभूतं? 'जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि अद्धभूतं' ति वदामि।...पे०...जिव्हा

वेदनाओं में भी अनासक्त हो जाता है। इस अनासक्ति के कारण उसे वैराग्य उद्भूत हो जाता है, वैराग्य होने से वह सुख दुःख से विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने पर उसे 'मैं विमुक्त हूँ'—यह ज्ञान हो जाता है। तथा वह यह भी समझ जाता है कि मेरा संसार में आना जाना समाप्त हो चुका है, मेरी धर्मसाधना पूर्ण (सफल) हो चुकी है, मैं कृतकार्य हो चुका हूँ। अब मेरा यहाँ कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं रह गया है।''

२९. भगवान् ने यों उपदेश किया। इस उपदेश के प्रभाव से वे प्रसन्नमन भिक्षु भगवान् के भाषण का अभिनन्दन करने लगे। इस देशना के प्रभाव से उन एक हजार भिक्षुओं को संसार में अनासक्ति एवं विरक्ति के कारण, समस्त आश्रवों (चित्तविकारों) से मुक्ति मिल गयी॥ •

२९. अध्वभूतसूत्र : : संसार में सब कुछ आने जाने वाला (विनाशी) है

३०. ऐसा मैने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह के** कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को धर्मोपदेशहेतु अपने सम्मुख आमन्त्रित किया तथा यों उपदेश किया—''भिक्षुओ! (संसार में) सब कुछ विसरणशील (यहाँ से वहाँ आने जाने वाला=अनित्य, विनाशी) है। भिक्षुओ! सब कुछ विसरणशील क्या है? भिक्षुओ! चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुःसंस्पर्श एवं चक्षुःसंस्पर्शजन्य सभी सुखदुःखादि वेदनाएँ विसरणशील है। ये सब किस कारण विसरणशील हैं? ये सब जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं पश्चात्ताप के कारण विसरणशील हैं। मैं

अद्धभूता, रसा अद्धभूता, जिव्हाविञ्ञाणं अद्धभूतं, जिव्हासम्फस्सो अद्धभूतो, यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अद्धभूतं। केन अद्धभूतं? 'जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि [N.20] दोमनस्सेहि उपायासेहि अद्धभूतं' ति वदामि। कायो अद्धभूतो...पे०...मनो अद्धभूतो, धम्मा अद्धभूता, मनोविञ्ञाणं अद्धभूतं, मनोसम्फस्सो अद्धभूतो, यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अद्धभूतं। केन अद्धभूतं? 'जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि अद्धभूतं' ति वदामि।

"एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति, रूपेसु पि निब्बिन्दति, चक्खुविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, चक्खुसम्फस्से पि निब्बिन्दति...पे०... यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा [B.253] तस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति॥ •

३०. समुग्घातसारुप्पसुत्तं

[R.22] ३१. "सब्बमञ्ञितसमुग्घातसारुप्पं वो, भिक्खवे, पटिपदं देसेस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी ति।

"कतमा च सा, भिक्खवे, सब्बमञ्ञितसमुग्घातसारुप्पा पटिपदा? इध,

ऐसा मानता हूँ। भिक्षुओ! जिह्वा, रस, जिह्वाविज्ञान, जिह्वासंस्पर्श, जिह्वासंस्पर्शज सुखदुःखादि वेदनाएँ...काय, स्प्रष्टव्य, ...मन, मनोधर्म, मनोविज्ञान, मन:संस्पर्श, मन:संस्पर्शज वेदनाएँ—ये सब विसरणशील हैं। किस कारण से विसरणशील है? क्यों कि इन में जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं पश्चात्ताप सम्पृक्त है। ऐसा मैं मानता हूँ।

ऐसा जानते समझते किसी विद्वान् आर्यश्रावक की चक्षु, रूप...मनसंस्पर्शज सुख दुःखादि वेदनाओं में अरुचि उत्पन्न हो जाती है। इस अरुचि के कारण उसे वैराग्य तथा यह ज्ञान कि मैं विमुक्त हो गया हूँ—उत्पन्न हो जाता है। तब वह समझ लेता है कि मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो चुकी है, मेरी धर्मसाधना सफल हो चुकी है, मेरे सभी कर्तव्य पूर्ण हो चुके हैं, अब मेरा कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं है॥ •

३०. समुद्धातसारूप्यसूत्र : : सभी धारणाओं के पूर्णतः नाश का मार्ग

३१. ..."भिक्षुओ! मैं तुम्हें अब सभी मान्यताओं के पूर्णतः विनाश का उचित मार्ग बताऊँगा। उसे सुनो तथा भली भाँति मन में बैठा लो।

भिक्खवे, भिक्खु चक्खुं न मञ्ञति, चक्खुस्मिं न मञ्ञति, चक्खुतो न मञ्ञति, चक्खुं मे ति न मञ्ञति। रूपे न मञ्ञति, रूपेसु न मञ्ञति, रूपतो न मञ्ञति, रूपा मे ति न मञ्ञति। चक्खुविञ्ञाणं न मञ्ञति, चक्खुविञ्ञाणस्मिं न मञ्ञति, चक्खुविञ्ञाणतो न मञ्ञति, चक्खुविञ्ञाणं मे ति न मञ्ञति। चक्खुसम्फस्सं न मञ्ञति, चक्खुसम्फस्सस्मिं न मञ्ञति, चक्खुसम्फस्सतो न मञ्ञति, चक्खुसम्फस्सो मे ति न मञ्ञति। यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि न मञ्ञति, तस्मिं पि न मञ्ञति, ततो पि न मञ्ञति, तं मे ति न मञ्ञति...पे०...जिव्हं न मञ्ञति, जिव्हाय न मञ्ञति, जिव्हातो न मञ्ञति, जिव्हा मे ति न मञ्ञति। रसे न मञ्ञति, रसेसु न मञ्ञति, रसतो न मञ्ञति, रसा मे ति न मञ्ञति। जिव्हाविञ्ञाणं न मञ्ञति, जिव्हाविञ्ञाणस्मिं न मञ्ञति, जिव्हाविञ्ञाणतो न मञ्ञति, जिव्हाविञ्ञाणं मे ति न मञ्ञति। जिव्हासम्फस्सं न मञ्ञति, [N.21] जिव्हासम्फस्सस्मिं न मञ्ञति, जिव्हासम्फस्सतो न मञ्ञति, जिव्हासम्फस्सो मे ति न मञ्ञति। यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि न मञ्ञति, तस्मिं पि न मञ्ञति, ततो पि न मञ्ञति, तं मे ति न मञ्ञति...पे०...मनं न मञ्ञति, मनस्मिं न मञ्ञति, मनतो न मञ्ञति, मनो मे ति न मञ्ञति। धम्मे न मञ्ञति, धम्मेसु न मञ्ञति, धम्मतो न मञ्ञति, धम्मा मे ति न मञ्ञति। मनोविञ्ञाणं न मञ्ञति, मनोविञ्ञाणस्मिं न मञ्ञति, मनोविञ्ञाणतो न मञ्ञति, मनोविञ्ञाणं मे ति न मञ्ञति। मनोसम्फस्सं न मञ्ञति, मनोसम्फस्सस्मिं न मञ्ञति, मनोसम्फस्सतो न मञ्ञति, मनोसम्फस्सो मे ति न मञ्ञति। यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं [R.23]

"भिक्षुओ! इन सभी मान्यताओं के पूर्णत: विनाश का उचित मार्ग (उपाय) क्या है? भिक्षुओ! भिक्षु चक्षु को, चक्षु में, चक्षु से या 'चक्षु मेरा है'—ऐसा नहीं मानता। रूपों को, रूपों में, रूप से या 'ये रूप मेरे हैं'—ऐसा नहीं मानता। चक्षुर्विज्ञान...चक्षु:संस्पर्श... चक्षु:संस्पर्श से जन्य सुख दु:खादि वेदनाओं को...या 'वे मेरी हैं'—ऐसा नहीं मानता। जिह्वा...रस...जिह्वाविज्ञान...जिह्वासंस्पर्श...जिह्वासंस्पर्शजन्य वेदनाओं को...या 'ये वेदनाएँ मेरी हैं'—ऐसा नहीं मानता। ...पूर्ववत्...मन को, मन में, मन से या 'यह मन मेरा है'—ऐसा नहीं मानता। मनोधर्मों को...मन:संस्पर्शजन्य सुख दु:खादि वेदनाओं को अपना नहीं मानता। सब को, सब में, सब से या 'यह सब मेरा है'—ऐसा नहीं मानता। वह ऐसा न मानता हुआ लोक में किसी का उपादान (ग्रहण) नहीं करता, न मिले हुए में किसी प्रकार की चिन्ता या उद्वेग (परितर्षणा) ही करता है। इस तरह निश्चिन्त एवं अनुद्विग्न रहते हुए

पि न मञ्ञति, तस्मिं पि न मञ्ञति, ततो पि न मञ्ञति, तं मे ति न मञ्ञति। सब्बं न मञ्ञति, सब्बस्मिं न मञ्ञति, सब्बतो न मञ्ञति, सब्बं मे ति न मञ्ञति। सो एवं अमञ्ञमानो न च किञ्चि लोके उपादियति, अनुपादियं न परितस्सति, अपरितस्सं [B.254] पच्चत्तञ्ञेव परिनिब्बायति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। अयं खो सा, भिक्खवे, सब्बमञ्ञितसमुग्घातसारुप्पा पटिपदा'' ति॥ •

३१. पठमसमुग्घातसप्पायसुत्तं

३२. ''सब्बमञ्ञितसमुग्घातसप्पायं वो, भिक्खवे, पटिपदं देसेस्सामि। तं सुणाथ। कतमा च सा, भिक्खवे, सब्बमञ्ञितसमुग्घातसप्पाया पटिपदा? इध, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुं न मञ्ञति, चक्खुस्मिं न मञ्ञति, चक्खुतो न मञ्ञति, चक्खुं मे ति न मञ्ञति। रूपे न मञ्ञति...पे०...चक्खुविञ्ञाणं न मञ्ञति, चक्खुसम्फस्सं न मञ्ञति, यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि न मञ्ञति, तस्मिं पि न मञ्ञति, ततो पि न मञ्ञति, तं मे ति न मञ्ञति। यं हि, भिक्खवे, मञ्ञति, यस्मिं मञ्ञति, यतो मञ्ञति, यं मे ति मञ्ञति, ततो तं होति अञ्ञथा। अञ्ञथाभावी भवसत्तो लोको भवमेवाभिनन्दति...पे०...जिव्हं [N.22] न मञ्ञति, जिव्हाय न मञ्ञति, जिव्हातो न मञ्ञति, जिव्हा मे ति न मञ्ञति। रसे न मञ्ञति...पे०...जिव्हाविञ्ञाणं न मञ्ञति, जिव्हासम्फस्सं न मञ्ञति, यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा

उस का परिनिर्वाण होता है। तथा उस को यह समझ में आ जाता है—'मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो गयी...पूर्ववत्...मेरा अब कोई कर्तव्य शेष नहीं है॥'' •

३१. प्रथम समुद्घातसत्प्रायसूत्र : : सभी मान्यताओं के नाश का अनुकूल मार्ग

३२. ...''भिक्षुओ! मैं तुम्हें सभी मान्यताओं के पूर्णतः विनाश का अनुकूल मार्ग बताऊँगा। उसे तुम सुनो। भिक्षुओ! यह सभी मान्यताओं के पूर्णतः विनाश का अनुकूल मार्ग कौन सा है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई साधक चक्षु को, चक्षु में, चक्षु से...या चक्षु के विषय में 'यह मेरा है'—ऐसा नहीं मानता। रूपों को...चक्षुर्विज्ञान को, चक्षुःसंस्पर्श को एवं चक्षुःसंस्पर्शज प्रत्ययों से उत्पन्न सुख दुःखादि वेदनाओं तथा उस को भी नहीं मानता, उस में भी नहीं मानता, उस से भी नहीं मानता, उस को 'मेरा है'—ऐसा नहीं मानता। भिक्षुओ! साधक भिक्षु जिस को मानता है, जिस में मानता है, जिस से मानता है, जिस को 'मेरा है'—यह मानता है, उस से उस को अन्यथा हो (बदल) जाता है। ऐसा साधक

तं पि न मञ्ञति, तस्मिं पि न मञ्ञति, ततो पि न मञ्ञति, तं मे ति न मञ्ञति। [R.24] यं हि, भिक्खवे, मञ्ञति, यस्मिं मञ्ञति, यतो मञ्ञति, यं मे ति मञ्ञति, ततो तं होति अञ्ञथा। अञ्ञथाभावी भवसत्तो लोको भवमेवाभिनन्दति...पे०...मनं न मञ्ञति, मनस्मिं न मञ्ञति, मनतो न मञ्ञति, मनो मे ति न मञ्ञति। धम्मे न मञ्ञति ...पे०...मनोविञ्ञाणं न मञ्ञति, मनोसम्फस्सं न मञ्ञति, यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि न मञ्ञति, तस्मिं पि न मञ्ञति, ततो पि न मञ्ञति, तं मे ति न मञ्ञति। यं हि, भिक्खवे, मञ्ञति, यस्मिं मञ्ञति, यतो मञ्ञति, यं मे ति मञ्ञति, ततो तं होति अञ्ञथा। अञ्ञथाभावी भवसत्तो लोको भवमेवाभिनन्दति।

यावता, भिक्खवे, खन्धधातुआयतनं तं पि न मञ्ञति, तस्मिं पि न मञ्ञति, ततो पि न मञ्ञति, तं मे ति न मञ्ञति। सो एवं अमञ्ञमानो न च किञ्चि लोके उपादियति। अनुपादियं न परितस्सति। अपरितस्सं पच्चत्तञ्ञेव परिनिब्बायति। 'खीणा [B.255] जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। अयं खो सा, भिक्खवे, सब्बमञ्ञितसमुग्घातसप्पाया पटिपदा'' ति॥ •

३२. दुतियसमुग्घातसप्पायसुत्तं

३३. ''सब्बमञ्ञितसमुग्घातसप्पायं वो, भिक्खवे, पटिपदं देसेस्सामि। तं सुणाथ। कतमा च सा, भिक्खवे, सब्बमञ्ञितसमुग्घातसप्पाया पटिपदा? तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, चक्खुं निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति?

अन्यथा हो जाने वाले संसार के बीच संसार का ही अभिनन्दन करते हैं। ...पूर्ववत्... श्रोत्र...मन, धर्म, मनोविज्ञान...पूर्ववत्...।

''भिक्षुओ! जो स्कन्ध, धातु, आयतनों को भी नहीं मानता, उस में भी नहीं मानता, उस से भी नहीं मानता, 'वह मेरा है'—यह भी नहीं मानता। इस प्रकार न मानते हुए, संसार में वह कहीं उपादान नहीं करता। उपादान न करने से वह कहीं कोई त्रास (भय) भी अनुभव नहीं करता। ऐसा परित्रास अनुभव न करने से वह अध्यात्म में ही निर्वाण प्राप्त कर लेता है। तथा अन्त में, यह जान लेता है—'मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो गयी...मेरा अब कोई कर्तव्य शेष नहीं रहा'। भिक्षुओ! यह कहलाता है—सभी मान्यताओं के नाश का उचित (अनुकूल) मार्ग॥'' •

३२. द्वितीय समुद्घातसत्प्रायसूत्र : : सभी मान्यताओं के नाश का उपाय

३३. ...''भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें सभी मान्यताओं के सरलतम नाश का उपाय

"अनिच्चं, भन्ते"।

[R.25] "यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

[N.23] "यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"रूपा...पे०...चक्खुविञ्ञाणं...चक्खुसम्फस्सो निच्चो वा अनिच्चो वा" ति? "अनिच्चो, भन्ते"...पे०...यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"...पे०...।

जिव्हा निच्चा वा अनिच्चा वा ति?

दूसरी विधि से बताऊँगा। उसे तुम ध्यान से सुनो। भिक्षुओ! वह सभी मान्यताओं के सरलतम नाश का उपाय मार्ग क्या है?

"तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!"

"फिर जो अनित्य है उसे तुम दुःख मानते हो या सुख?"

"दुःख, भन्ते!"

"फिर, जो अनित्य, दुःख एवं विनशनशील है उस को क्या ऐसा मानना उचित है—'यह मेरा है', या 'यह मैं हूँ' या 'यह मेरी आत्मा है'?"

"नहीं, भन्ते!"

"रूप...चक्षुर्विज्ञान...चक्षुःसंस्पर्श नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!"

...पूर्ववत्...यह चक्षुःसंस्पर्शजन्य सुख दुःखादि वेदनाएँ नित्य हैं या अनित्य?"

"अनित्य हैं, भन्ते!"

"जो अनित्य है वह दुःख है या सुख?"

"अनिच्चा, भन्ते"...पे०...रसा...जिव्हाविञ्ञाणं...जिव्हासम्फस्सो...पे०... यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...धम्मा...मनोविञ्ञाणं...मनोसम्फस्सो निच्चो वा अनिच्चो वा ति?

"अनिच्चो, भन्ते"।

"यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति, [R.26] रूपेसु पि निब्बिन्दति, चक्खुविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, चक्खुसम्फस्से पि निब्बिन्दति, यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिं पि निब्बिन्दति...पे०...जिव्हाय पि निब्बिन्दति, रसेसु पि...पे०...यम्पिदं [N.24] जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिं पि निब्बिन्दति। मनस्मिं पि निब्बिन्दति, धम्मेसु पि निब्बिन्दति, मनोविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, मनोसम्फस्से पि निब्बिन्दति, यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति;

"दु:ख है, भन्ते!"

"फिर जो अनित्य, दु:ख एवं विनाशी है...पूर्ववत्...।"

"नहीं, भन्ते!"

'श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...काय...मन...मनोधर्म...मनोविज्ञान...मन:संस्पर्श...मन:-संस्पर्शजन्य वेदनाएँ नित्य हैं या अनित्य? ...पूर्ववत्...।

"ऐसा जानता हुआ वह श्रुतवान् आर्यश्रावक चक्षु...पूर्ववत्...मन:संस्पर्शजन्य सुख दु:खादि वेदनाओं में अरुचि, अरुचि से वैराग्य तथा वैराग्य से विमुक्त हो कर ज्ञान

विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, [B.256] कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। अयं खो सा, भिक्खवे, सब्ब-मञ्ञितसमुग्घातसप्पाया पटिपदा'' ति॥

सब्बवग्गो ततियो॥

तस्सुद्दानं

सब्बं च द्वे पि पहाना, परिजानापरे दुवे।
आदित्तं अद्धभूतं च, सारुप्पा द्वे च सप्पाया।
वग्गो तेन पवुच्चती ति॥

की ओर बढ़ जाता है। तथा उस के यह समझ में आ जाता है कि उस की जन्मपरम्परा क्षीण हो गयी...कर्तव्य शेष नहीं रह गया॥''

सर्ववर्ग तृतीय सम्पन्न॥

इस सर्ववर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. सर्वसूत्र, २. प्रहाणसूत्र, ३. अभिज्ञा-परिज्ञाप्रहाणसूत्र, ४. प्रथम अपरिजाननसूत्र, ५. द्वितीय अपरिजाननसूत्र, ६. आदीप्तसूत्र, ७. अध्वभूतसूत्र, ८. समुद्घातसारूप्यसूत्र, ९. प्रथम समुद्घातसत्प्रायसूत्र, एवं १०. द्वितीय समुद्घातसत्प्रायसूत्र॥

४. जातिधम्मवग्गो चतुत्थो

३३-४२. जातिधम्मादिसुत्तदसकं

३४. सावत्थिनिदानं। तत्र खो...पे०...''सब्बं, भिक्खवे, जातिधम्मं। किञ्च, भिक्खवे, सब्बं जातिधम्मं? चक्खु, भिक्खवे, जातिधम्मं। रूपा...चक्खुविञ्ञाणं ...चक्खुसम्फस्सो जातिधम्मो। यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं [R.27] सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि जातिधम्मं...पे०...जिव्हा...रसा... जिव्हाविञ्ञाणं...जिव्हासम्फस्सो जातिधम्मो, यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि जातिधम्मं। कायो...पे०...मनो जातिधम्मो, धम्मा जातिधम्मा, मनोविञ्ञाणं जातिधम्मं, मनोसम्फस्सो जातिधम्मो, यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि जातिधम्मं।

एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति, रूपेसु पि...चक्खुविञ्ञाणे पि...चक्खुसम्फस्से पि...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥ ●

३५. सब्बं, भिक्खवे, जराधम्मं...पे०...। [N.25]

३६. सब्बं, भिक्खवे, ब्याधिधम्मं...पे०...।

---

४. जातिधर्मवर्ग चतुर्थ

३३-४२. जातिधर्मादिसूत्र (दशक) : : सभी जन्म स्वभाव वाले हैं

३४. **श्रावस्ती में** ही...। वहाँ...पूर्ववत्...''भिक्षुओ! यह समस्त संसार जातिधर्म वाला (उत्पन्न होने के स्वभाव वाला) है। भिक्षुओ! यह जातिधर्म क्या है?

''भिक्षुओ! चक्षु जातिधर्मा है, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुःसंस्पर्श एवं चक्षुःसंस्पर्शजन्य सुख दुःखादि वेदनाएँ जातिधर्मा हैं।

''श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...काय...मन, मनोधर्म, मनोविज्ञान, मनःसंस्पर्श, एवं मनःसंस्पर्शजन्य सुख दुःखादि वेदनाएँ जातिधर्मा हैं।

''भिक्षुओ! यों जानते हुए विद्वान् आर्यश्रावक की चक्षु में भी अरुचि हो जाती है, रूप में भी, चक्षुर्विज्ञान में भी, चक्षुःसंस्पर्श में भी एवं चक्षुःसंस्पर्शजन्य सुख दुःखादि वेदनाओं में भी ...पूर्ववत्...आगे मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है॥'' ●

३५. भिक्षुओ! यह समस्त संसार **जरा** (बुढापा) के स्वभाव वाला है...पूर्ववत्॥

३६. भिक्षुओ! यह समस्त संसार **व्याधि** स्वभाव वाला है...पूर्ववत्॥ ●

३७. सब्बं, भिक्खवे, मरणधम्मं...पे०...।

३८. सब्बं, भिक्खवे, सोकधम्मं...पे०...।

३९. सब्बं, भिक्खवे, सङ्किलेसिकधम्मं...पे०...।

[B.257, R.28] ४०. सब्बं, भिक्खवे, खयधम्मं...पे०...।

४१. सब्बं, भिक्खवे, वयधम्मं...पे०...।

४२. सब्बं, भिक्खवे, समुदयधम्मं...पे०...।

४३. सब्बं, भिक्खवे, निरोधधम्मं...पे०...। •

जातिधम्मवग्गो चतुत्थो॥

तस्सुद्दानं

जातिजराब्याधिमरणं, सोको च सङ्किलेसिकं।
खयवयसमुदयं, निरोधधम्मेन ते दसा ति॥ •

---

३७. भिक्षुओ! यह समस्त संसार **मरण** स्वभाव वाला है...पूर्ववत्॥ •

३८. भिक्षुओ! यह समस्त संसार **शोक** स्वभाव वाला है...पूर्ववत्॥ •

३९. भिक्षुओ! यह समस्त संसार **सांक्लेशिक** (दु:खद) स्वभाव वाला है...पूर्ववत्॥

४०. भिक्षुओ! यह समस्त संसार **क्षय** (शनै: शनै: नाश) स्वभाव वाला है...पूर्ववत्॥

४१. भिक्षुओ! यह समस्त संसार **व्यय** (तत्काल नाश) स्वभाव वाला है...पूर्ववत्॥

४२. भिक्षुओ! यह समस्त संसार **समुदय** (उत्पाद) स्वभाव वाला है...पूर्ववत्॥ •

४३. भिक्षुओ! यह समस्त संसार **निरोध** (पुनर्जन्म का रुकना) स्वभाव वाला है...॥ •

जातिधर्मवर्ग चतुर्थ सम्पन्न॥

इस जातिधर्मवर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. जाति, २. जरा, ३. व्याधि, ४. मरण, ५. शोक, ६. सांक्लेशिक, ७. क्षय, ८. व्यय, ९. समुदय एवं १०. निरोधसूत्र॥•

५. सब्बअनिच्चवग्गो पञ्चमो

४३-५१. अनिच्चादिसुत्तनवकं

४४. सावत्थिनिदानं। तत्र खो...पे०...''सब्बं, भिक्खवे, अनिच्चं। किञ्च, भिक्खवे, सब्बं अनिच्चं? चक्खु, भिक्खवे, अनिच्चं, रूपा अनिच्चा, चक्खुविञ्ञाणं अनिच्चं, चक्खुसम्फस्सो अनिच्चो, यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं...पे०...जिव्हा अनिच्चा, रसा अनिच्चा, जिव्हाविञ्ञाणं अनिच्चं, जिव्हासम्फस्सो अनिच्चो, यम्पिदं जिव्हासम्फस्स-पच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं। कायो अनिच्चो...पे०...मनो अनिच्चो, धम्मा अनिच्चा, मनोविञ्ञाणं अनिच्चं, मनोसम्फस्सो अनिच्चो, यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं।

एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति, रूपेसु पि निब्बिन्दति, चक्खुविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, चक्खुसम्फस्से पि निब्बिन्दति, यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा [N.26] तस्मिं पि निब्बिन्दति...पे०...मनस्मिं पि निब्बिन्दति, धम्मेसु पि निब्बिन्दति, मनोविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, मनोसम्फस्से पि निब्बिन्दति, यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिं पि निब्बिन्दति। [B.258] निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति॥ •

४५. सब्बं, भिक्खवे, दुक्खं...पे०...।

---

५. सर्वअनित्यवर्ग

४३-५१. अनित्यादिसूत्र (नवक) : : सब कुछ अनित्य है

४४. ...**श्रावस्ती में** ही...। वहाँ...पूर्ववत्...''भिक्षुओ! सब कुछ अनित्य है। क्या, भिक्षुओ! सब कुछ अनित्य है? भिक्षुओ! चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुःसंस्पर्श, चक्षुःसंस्पर्शज वेदनाएँ—सब कुछ अनित्य हैं...। जिह्वा...काय...मन, मनोधर्म, मनोविज्ञान, मनःसंस्पर्श, मनःसंस्पर्शज वेदनाएँ—ये सभी कुछ अनित्य हैं।

''ऐसा समझते हुए विद्वान् आर्यश्रावक की चक्षु में भी...अरुचि हो जाती है...मन में भी अरुचि हो जाती है...। अरुचि के कारण उसको उसमें वैराग्य हो जाता है ...पूर्ववत्...जान जाता है॥ •

४६. सब्बं, भिक्खवे, अनत्ता...पे०...।

[R.29] ४७. सब्बं, भिक्खवे, अभिञ्ञेय्यं...पे०...।

४८. सब्बं, भिक्खवे, परिञ्ञेय्यं...पे०...।

४९. सब्बं, भिक्खवे, पहातब्बं...पे०...।

५०. सब्बं, भिक्खवे, सच्छिकातब्बं...पे०...।

५१. सब्बं, भिक्खवे, अभिञ्ञापरिञ्ञेय्यं...पे०...।

५२. सब्बं, भिक्खवे, उपद्दुतं...पे०...।

५२. उपस्सट्ठसुत्तं

५३. ''सब्बं, भिक्खवे, उपस्सट्ठं। किञ्च, भिक्खवे, सब्बं उपस्सट्ठं? चक्खु, भिक्खवे, उपस्सट्ठं, रूपा उपस्सट्ठा, चक्खुविञ्ञाणं उपस्सट्ठं, चक्खुसम्फस्सो उपस्सट्ठो, यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि उपस्सट्ठं...पे०...जिव्हा उपस्सट्ठा, रसा उपस्सट्ठा, जिव्हाविञ्ञाणं उपस्सट्ठं, जिव्हा-सम्फस्सो उपस्सट्ठो, यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि उपस्सट्ठं। कायो उपस्सट्ठो, मनो उपस्सट्ठो, धम्मा उपस्सट्ठा, मनोविञ्ञाणं उपस्सट्ठं, मनोसम्फस्सो उपस्सट्ठो, यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति
[R.30] वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि उपस्सट्ठं।

एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति, रूपेसु पि

---

४५. ''सब कुछ दुःख है...पूर्ववत्...॥

४६. ''सब कुछ अनात्म है...पूर्ववत्...॥

४७. ''सब कुछ अभिज्ञेय है...पूर्ववत्...॥

४८. ''सब कुछ परिज्ञेय है...पूर्ववत्...॥

४९. ''सब कुछ प्रहातव्य है...पूर्ववत्...॥

५०. ''सब कुछ साक्षात्कर्तव्य है...पूर्ववत्...॥

५१. ''सब कुछ अभिज्ञापरिज्ञेय है...पूर्ववत्...॥

५२. ''सब कुछ उपद्रुत (कष्ट का भागी) है...पूर्ववत्...॥

५२. उपसृष्टसूत्र — सब कुछ दमित है

५३. ...''भिक्षुओ! यहाँ सब कुछ उपसृष्ट (दमित=दबा हुआ) है। भिक्षुओ! क्या सब कुछ उपसृष्ट है? चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुःसंस्पर्श, चक्षुःसंस्पर्शज वेदना...जिह्वा, रस, जिह्वाविज्ञान, जिह्वासंस्पर्श, जिह्वासंस्पर्शज वेदना...काय...मन, मनोधर्म, मनोविज्ञान, मनःसंस्पर्श एवं मनःसंस्पर्शज वेदना सभी कुछ उपसृष्ट है।

निब्बिन्दति, चक्खुविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, चक्खुसम्फस्से पि निब्बिन्दति, यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिं पि निब्बिन्दति...पे०...मनस्मिं पि निब्बिन्दति, धम्मेसु पि निब्बिन्दति, मनोविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, मनोसम्फस्से पि निब्बिन्दति, यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं [N.27] विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, [B.259] वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति॥ •

सब्बअनिच्चवग्गो पञ्चमो॥

तस्सुद्दानं

अनिच्चं दुक्खं अनत्ता, अभिञ्ञेय्यं परिञ्ञेय्यं।
पहातब्बं सच्छिकातब्बं, अभिञ्ञेय्यपरिञ्ञेय्यं।
उपद्दुतं उपस्सट्ठं, वग्गो तेन पवुच्चती ति॥

सळायतनवग्गे पठमपण्णासको समत्तो॥

तस्स वग्गुद्दानं

अनिच्चवग्गं यमकं, सब्बं वग्गं जातिधम्मं।
अनिच्चवग्गेन पञ्ञासं, पञ्चमो तेन पवुच्चती ति॥ •

ऐसा जानते समझते हुए आर्यश्रावक की चक्षु...मनःसंस्पर्शज वेदनाओं में अरुचि होने लगती है...पूर्ववत्...जान जाता है॥ •

सर्व अनित्यवर्ग पञ्चम सम्पन्न॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. अनित्य, २. दुःख, ३. अनात्म, ४. अभिज्ञेय, ५. परिज्ञेय, ६. प्रहातव्य, ७. साक्षात्कर्तव्य, ८. अभिज्ञापरिज्ञेय, ९. उपद्रुत एवं १०. उपसृष्टसूत्र॥ •

दुतियपण्णासकं—

१. अविज्जावग्गो पठमो

५३. अविज्जापहानसुत्तं

५४. सावत्थिनिदानं। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"कथं नु खो, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो अविज्जा [R.31] पहीयति, विज्जा उप्पज्जती" ति?

"चक्खुं खो, भिक्खु, अनिच्चतो जानतो पस्सतो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जति। रूपे अनिच्चतो जानतो पस्सतो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जति। चक्खुविञ्ञाणं...चक्खुसम्फस्सं...यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चतो जानतो पस्सतो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जति। सोतं...घानं...जिव्हं...कायं...मनं अनिच्चतो जानतो पस्सतो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जति। धम्मे...मनोविञ्ञाणं...मनोसम्फस्सं...यम्पिदं मनो- [B.260] सम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि [N.28] अनिच्चतो जानतो पस्सतो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जति।

एवं खो, भिक्खु, जानतो एवं पस्सतो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जती" ति॥

द्वितीय पञ्चाशत्क—

१. प्रथम अविद्यावर्ग

५३. अविद्याप्रहाणसूत्र : : किस के ज्ञान से अविद्या का प्रहाण होता है?

५४. **श्रावस्ती में** ही...। तब कोई भिक्षु जहाँ, भगवान् थे वहाँ पहुँचा। ...यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! क्या जान और समझ लेने से अविद्या प्रहीण होती है? तथा विद्या उत्पन्न होती है?"

"भिक्षु! चक्षु को अनित्य जान लेने से अविद्या प्रहीण होती है तथा विद्या उत्पन्न होती है। रूप को, चक्षुर्विज्ञान को, चक्षुःसंस्पर्श को, चक्षुःसंस्पर्शज वेदनाओं को अनित्य जान लेने से अविद्या प्रहीण होती है तथा विद्या उत्पन्न होती हैं। ...पूर्ववत्...।

"ऐसा जानते हुए समझते हुए विद्वान् आर्यश्रावक की अविद्या प्रहीण होती है, तथा विद्या उत्पन्न होती हैं॥ •

५४. संयोजनपहानसुत्तं

५५. ''कथं नु खो, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो संयोजना पहीयन्ती'' ति?

''चक्खुं खो, भिक्खु, अनिच्चतो जानतो पस्सतो संयोजना पहीयन्ति। रूपे...चक्खुविञ्ञाणं...चक्खुसम्फस्सं...यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चतो जानतो पस्सतो संयोजना पहीयन्ति। सोतं...घानं...जिव्हं...कायं...मनं...धम्मे...मनोविञ्ञाणं...मनोसम्फस्सं... यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चतो जानतो पस्सतो संयोजना पहीयन्ति। एवं खो, भिक्खु, जानतो एवं पस्सतो संयोजना पहीयन्ती'' ति॥ •

५५. संयोजनसमुग्घातसुत्तं

५६. ''कथं नु खो, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो संयोजना समुग्घातं गच्छन्ती'' ति?

''चक्खुं खो, भिक्खु, अनत्ततो जानतो पस्सतो संयोजना समुग्घातं [R.32] गच्छन्ति। रूपे अनत्ततो...चक्खुविञ्ञाणं...चक्खुसम्फस्सं...यम्पिदं चक्खुसम्फस्स-पच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनत्ततो जानतो पस्सतो संयोजना समुग्घातं गच्छन्ति। सोतं...घानं...जिव्हं...कायं...मनं...धम्मे...मनो-

---

५४. संयोजनप्रहाणसूत्र : :किस के ज्ञान से संयोजनों का प्रहाण ?

५५. ...''भन्ते! कैसा जानते हुए कैसा देखते हुए साधक के संयोजन (भवबन्धन) प्रहीण होते हैं?''

''चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षु:संस्पर्श एवं चक्षु:संस्पर्शज वेदनाओं को अनित्य जानने समझने से साधक के संयोजन क्षीण हो जाते हैं...पूर्ववत्...। ऐसा जानते समझते हुए साधक के सभी भवसंयोजन क्षीण हो जाते हैं॥ •

५५. संयोजनसमुद्घातसूत्र : : संयोजनों का नाश

५६. ...''भन्ते! कैसा जानते हुए कैसा समझते हुए साधक के संयोजनों का नाश हो जाता है?''

''भिक्षु! चक्षु को अनात्मरूप से जान लेने पर, समझ लेने पर साधक के सभी संयोजन नष्ट हो जाते हैं। इसी तरह, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षु:संस्पर्श, चक्षु:संस्पर्शज वेदनाओं का अनात्मत्व जान लेने पर...। श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...काय...मन...मनोधर्म...मनोविज्ञान ...मन:संस्पर्श...मन:संस्पर्शज वेदनाओं का अनात्मत्व जान लेने पर साधक के संयोजन क्षीण हो जाते हैं॥ •

विञ्ञाणं... मनोसम्फस्सं... यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनत्ततो जानतो पस्सतो संयोजना समुग्घातं गच्छन्ति। एवं खो, भिक्खु, जानतो एवं पस्सतो संयोजना समुग्घातं गच्छन्ती'' ति॥ •

५६. आसवपहानसुत्तं

[N.29] ५७. ''कथं नु खो, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो आसवा पहीयन्ती'' ति...पे०... ॥

५७. आसवसमुग्घातसुत्तं

[B.261] ५८. ''कथं नु खो, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो आसवा समुग्घातं गच्छन्ती'' ति...पे०... ॥ •

५८. अनुसयपहानसुत्तं

५९. ''कथं नु खो...पे०...अनुसया पहीयन्ती'' ति...पे०... ॥'' •

५९. अनुसयसमुग्घातसुत्तं

६०. ''कथं नु खो...पे०...अनुसया समुग्घातं गच्छन्ती'' ति ?

''चक्खुं खो, भिक्खु, अनत्ततो जानतो पस्सतो अनुसया समुग्घातं गच्छन्ति ...पे०...सोतं...घानं...जिव्हं...कायं...मनं...धम्मे...मनोविञ्ञाणं...मनोसम्फस्सं...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि

---

५६. आश्रवप्रहाणसूत्र : : आश्रवों का प्रहाण

५७. ...''भन्ते! कैसे जानते हुए, कैसे देखते हुए साधक के आश्रव क्षीण होते हैं ?''

...पूर्वसूत्रवत्... ॥ •

५७. आश्रवसमुद्घातसूत्र : : आश्रवों का नाश

५८. ...''भन्ते! कैसे जान लेने पर कैसे देख लेने पर साधक के आश्रव नष्ट होते हैं ?''

...पूर्वसूत्रवत्... ॥ •

५८. अनुशयप्रहाणसूत्र : : अनुशय (चित्तप्रवृत्तियों) का प्रहाण

५९. ...''भन्ते! कैसे जान लेने से कैसे समझ लेने से साधक की चित्तप्रवृत्तियाँ (अनुशय) क्षीण होती हैं ?'' ...पूर्वसूत्रवत्... ॥ •

५९. अनुशयसमुद्घातसूत्र : : अनुशयों का पूर्णतः नाश

६०. ...''भन्ते! कैसे...अनुशयों का समुद्घात (पूर्णतः नाश) होता है ?'' ''भिक्षुओ! चक्षु को अनात्मरूप से जान लेने पर...। श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...काय...मन, मनोधर्म,

अनत्ततो जानतो पस्सतो अनुसया समुग्घातं गच्छन्ति। एवं खो, भिक्खु, जानतो एवं पस्सतो अनुसया समुग्घातं गच्छन्ती'' ति॥ •

६०. सब्बुपादानपरिञ्ञासुत्तं

६१. ''सब्बुपादानपरिञ्ञाय वो, भिक्खवे, धम्मं देसेस्सामि। तं सुणाथ। कतमो च, भिक्खवे, सब्बुपादानपरिञ्ञाय धम्मो? ''चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना। एवं पस्सं, [R.33] भिक्खवे, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति, रूपेसु पि निब्बिन्दति, चक्खुविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, चक्खुसम्फस्से पि निब्बिन्दति, वेदनाय पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमोक्खा 'परिञ्ञातं मे उपादानं' ति पजानाति। सोतं च पटिच्च सद्दे च उप्पज्जति...घानं च पटिच्च गन्धे च...जिव्हं च पटिच्च रसे च...कायं च पटिच्च फोट्ठब्बे च...मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनो-[N.30] विञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना।

एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको मनस्मिं पि निब्बिन्दति, धम्मेसु पि निब्बिन्दति, मनोविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, मनोसम्फस्से पि निब्बिन्दति, वेदनाय पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमोक्खा 'परिञ्ञातं मे उपादानं' ति पजानाति। अयं खो, भिक्खवे, सब्बुपादानपरिञ्ञाय धम्मो'' ति॥ [B.262] •

मनोविज्ञान, मन:संस्पर्श तथा मन:संस्पर्शज सुखदु:खादि वेदनाओं को अनात्मरूप से जान लेने पर साधक के अनुशय पूर्णत: नष्ट हो जाते हैं॥'' •

६०. सर्वोपादानपरिज्ञासूत्र : : उपादानपरिज्ञा

६१. ...''भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें सभी उपादानों के परिज्ञाधर्म का उपदेश करूँगा। उसे सुनो। भिक्षुओ! यह सर्वोपादानपरिज्ञा धर्म कौन सा है?'' चक्षु की अपेक्षा (प्रत्यय) कर रूपों में चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है। इन तीनों की सङ्गति (मिलना) ही 'स्पर्श' कहलाता है। इस स्पर्श की अपेक्षा से सुखदु:खादि की वेदना होती है। भिक्षुओ! ऐसा जानता हुआ कोई विद्वान् आर्यश्रावक चक्षु में भी, रूपों में भी तथा चक्षुर्विज्ञान में भी अपनी अरुचि पैदा कर लेता है, इस अरुचि के कारण उस को उन के प्रति वैराग्य होने लगता है। इस वैराग्य के कारण वह उपादानों से विमुक्त हो जाता है। तथा विमुक्त हो जाने के कारण वह 'मैने उपादानों को जान लिया'—ऐसा समझ लेता है। श्रोत्र की अपेक्षा से...घ्राण...जिह्वा...काय...। मन...मनोधर्म एवं मनोविज्ञान—इन तीनों की सङ्गति 'स्पर्श' कहलाती है। इस स्पर्श की अपेक्षा से सुखदु:खादि वेदनाएँ अनुभूत होती हैं।

''ऐसा जानता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! यह कहलाता है—सर्वोपादानपरिज्ञा धर्म॥'' •

६१. पठमसब्बुपादानपरियादानसुत्तं

६२. "सब्बुपादानपरियादानाय वो, भिक्खवे, धम्मं देसेस्सामि। तं सुणाथ। कतमो च, भिक्खवे, सब्बुपादानपरियादानाय धम्मो? चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना।

"एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति, रूपेसु पि निब्बिन्दति, चक्खुविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, चक्खुसम्फस्से पि निब्बिन्दति, वेदनाय पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमोक्खा 'परियादिन्नं मे उपादानं' ति पजानाति...पे०...जिव्हं च पटिच्च रसे च उप्पज्जति जिव्हाविञ्ञाणं...पे०...मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना।

"एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको मनस्मिं पि निब्बिन्दति, धम्मेसु पि निब्बिन्दति, मनोविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, मनोसम्फस्से पि निब्बिन्दति, वेदनाय पि [R.34] निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमोक्खा 'परियादिन्नं मे उपादानं' ति पजानाति। अयं खो, भिक्खवे, सब्बुपादानपरियादानाय धम्मो" ति॥ •

६२. दुतियसब्बुपादानपरियादानसुत्तं

६३. "सब्बुपादानपरियादानाय वो, भिक्खवे, धम्मं देसेस्सामि। तं सुणाथ। कतमो च, भिक्खवे, सब्बुपादानपरियादानाय धम्मो? तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, चक्खु निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

---

६१. प्रथम सर्वोपादानपर्यादानसूत्र : : सभी उपादानों का पर्यादान (रेचन)

६२. ..."भिक्षुओ! मैं तुम्हें सभी उपादानों से रिक्त करने वाले धर्म की देशना करूँगा। उसे सुनो। भिक्षुओ! यह सभी उपादानों से रिक्त (खाली) करनेवाला धर्म कौन सा है? चक्षु एवं रूपों की अपेक्षा से चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है। तीनों की यह सङ्गति 'स्पर्श' कहलाती है। इस स्पर्श के प्रत्यय (अपेक्षा) से चक्षुःसंस्पर्शज सुखदुःखादि वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं। यों जानता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक...पूर्ववत्। जिह्वा...काय...मन...।

यों, जानता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक...'मेरा चित्त सभी उपादानों से रिक्त हो गया है'—ऐसा जान जाता है। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—सभी उपादानों से रिक्त करनेवाला धर्म॥" •

६२. द्वितीय सर्वोपादानपर्यादानसूत्र : : सभी उपादानों का पर्यादान

६३. ..."भिक्षुओ! मैं अब तुम्हें (दूसरी विधि से) सभी उपादानों से रिक्त करने वाले धर्म का उपदेश करूँगा। उसे सुनो। भिक्षुओ! यह धर्म कौन सा है? तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! यह चक्षु नित्य है या अनित्य?"

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"। [N.31]

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"रूपा...पे०...चक्खुविञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"चक्खुसम्फस्सो निच्चो वा अनिच्चो वा" ति?

"अनिच्चो, भन्ते"...पे०...यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"सोतं...घानं...जिव्हा...कायो...मनो...धम्मा...मनोविञ्ञाणं...मनोसम्फस्सो...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति? [B.263]

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति, [R.35] रूपेसु पि निब्बिन्दति, चक्खुविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, चक्खुसम्फस्से पि निब्बिन्दति,

---

"अनित्य है, भन्ते!"

"जो अनित्य है वह दुःख होता है या सुख?"

"दुःख, भन्ते!"

"जो अनित्य, दुःख एवं विनाशी है, उस के विषय में क्या यह मानना उचित होगा—'यह मेरा है', 'यह मैं हूँ' या 'यह मेरी आत्मा है'? रूप, चक्षुःसंस्पर्श...पूर्ववत्...। श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा... काय...मन...'यह मेरी आत्मा है''? "नहीं, भन्ते!"

यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिं पि निब्बिन्दति...पे०...जिव्हाय पि निब्बिन्दति, रसेसु पि निब्बिन्दति, जिव्हाविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, जिव्हासम्फस्से पि निब्बिन्दति, यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति...पे०...मनस्मिं पि निब्बिन्दति, धम्मेसु पि निब्बिन्दति, मनोविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, मनोसम्फस्से पि निब्बिन्दति, यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति [N.32] वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। अयं खो, भिक्खवे, सब्बुपादानपरियादानाय धम्मो'' ति॥ •

अविज्जावग्गो पठमो॥

तस्सुद्दानं

अविज्जा संयोजना द्वे, आसवेन द्वे वुत्ता।
अनुसया अपरे द्वे, परिञ्ञा द्वे परियादिन्नं।
वग्गो तेन पवुच्चती ति॥ •

ऐसा जानता समझता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक...पूर्ववत्...। 'मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो चुकी है! ...मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया'—ऐसा जान जाता है॥'' •

अविद्यावर्ग प्रथम सम्पन्न॥

इस अविद्यावर्ग में १० सूत्र व्याख्यात हैं—१. अविद्याप्रहाणसूत्र, २. संयोजनप्रहाणसूत्र, ३. संयोजनसमुद्घातसूत्र, ४. आश्रवप्रहाणसूत्र, ५. आश्रवसमुद्घातसूत्र, ६. अनुशयप्रहाणसूत्र, ७. अनुशयसमुद्घातसूत्र, ८. सर्वोपादानपरिज्ञासूत्र, ९. प्रथम सर्वोपादानपर्यादानसूत्र एवं १०. द्वितीय सर्वोपादानपर्यादानसूत्र॥ •

२. मिगजालवग्गो दुतियो

६३. पठममिगजालसुत्तं

६४. सावत्थिनिदानं। अथ खो आयस्मा मिगजालो येन भगवा...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा मिगजालो भगवन्तं एतदवोच—"'एकविहारी, [R.36] एकविहारी' ति, भन्ते, वुच्चति; कित्तावता नु खो, भन्ते, एकविहारी होति, कित्तावता च पन सदुतियविहारी होती" ति?

"सन्ति खो, मिगजाल, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय [B.264] तिट्ठति, तस्स तं अभिनन्दतो अभिवदतो अज्झोसाय तिट्ठतो उप्पज्जति नन्दी। नन्दिया सति सारागो होति; सारागे सति संयोगो होति। नन्दिसंयोजनसंयुत्तो खो, मिगजाल, भिक्खु सदुतियविहारी ति वुच्चति...पे०...सन्ति खो, मिगजाल, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अभिनन्दतो अभिवदतो अज्झोसाय तिट्ठतो उप्पज्जति नन्दी। नन्दिया सति सारागो होति; सारागे सति संयोगो होति। नन्दिसंयोजनसंयुत्तो खो, मिगजाल, भिक्खु सदुतियविहारी ति वुच्चति। एवंविहारी च मिगजाल, भिक्खु किञ्चा पि अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवति अप्पसद्दानि अप्पनिग्घोसानि विजनवातानि मनुस्सराहस्सेय्यकानि पटिसल्लानसारुप्पानि; अथ खो सदुतियविहारी ति

---

२. मृगजालवर्ग

१. मृगजालसूत्र : : एकाकी विचरण करनेवाला साधक

६४. **श्रावस्ती में**...। ...तब आयुष्मान् मृगजाल भगवान् के सम्मुख गया। ...यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! अनेक विचारक 'एकविहारी', 'एकविहारी' ऐसा कहते रहते हैं। भन्ते! कोई साधक कैसे 'एकविहारी' (एकाकी विचरण करनेवाला) कहलाता है? तथा कोई क्यों 'सद्वितीयविहारी' (दूसरे के साथ विचरण करनेवाला) कहलाता है?"

"मृगजाल! ऐसे भी चक्षुर्विज्ञेय रूप हैं जो मनुष्य के लिये अभीष्ट, सुन्दर, मनोमोहक, प्रिय, स्पृहा तथा आसक्ति पैदा करने वाले होते हैं। उन रूपों का वह साधक अभिनन्दन कर उन को महत्त्व दे, उन में आसक्त हो कर रहे। इस तरह उस को उन में तृष्णा उत्पन्न होती है। तृष्णा होने से उन में राग उत्पन्न होता है। राग होने से उन से संयोग होता है। इस अभिनन्दन एवं संयोजन से युक्त साधक ही 'सद्वितीयविहारी' कहलाता है। ...पूर्ववत्...।

वुच्चति। तं किस्स हेतु? तण्हा हिस्स दुतिया, सास्स अप्पहीना। तस्मा सदुतियविहारी ति वुच्चति।

"सन्ति च खो, मिगजाल, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा [N.33] कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अनभिनन्दतो अनभिवदतो अनज्झोसाय तिट्ठतो नन्दी निरुज्झति। नन्दिया असति सारागो न होति; सारागे असति संयोगो न होति। नन्दिसंयोजनविसंयुत्तो खो, [R.37] मिगजाल, भिक्खु एकविहारी ति वुच्चति...पे०...सन्ति च खो, मिगजाल, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा...पे०...सन्ति च खो, मिगजाल, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अनभिनन्दतो अनभिवदतो अनज्झोसाय तिट्ठतो नन्दी निरुज्झति। नन्दिया असति सारागो न होति; सारागे असति संयोगो न होति। नन्दिसंयोजनविप्पयुत्तो खो, मिगजाल, भिक्खु एकविहारी ति वुच्चति। एवंविहारी च, मिगजाल, भिक्खु किञ्चा पि गामन्ते विहरति आकिण्णो भिक्खूहि भिक्खुनीहि उपासकेहि उपासिकाहि राजूहि राजमहामत्तेहि तित्थियेहि तित्थियसावकेहि, अथ खो एकविहारी ति वुच्चति। तं किस्स हेतु? तण्हा हिस्स दुतिया, सास्स पहीना। तस्मा 'एकविहारी' ति वुच्चती" ति॥ •

...श्रोत्रविज्ञेय शब्द... घ्राणविज्ञेय गन्ध...जिह्वाविज्ञेय रस...कायविज्ञेय स्प्रष्टव्य...मनोविज्ञेय धर्म इष्ट, कान्त, मनोमोहक ...पूर्ववत्...से 'सद्वितीयविहारी' कहलाता है।

"मृगजाल! इस तरह विहरण करने वाला साधक भले ही ग्राम या नगर से दूर एकान्त में ध्यानाभ्यासयोग्य अरण्य आदि स्थानों में रहे, परन्तु वह 'सद्वितीयविहारी' ही कहलायगा। (क)

"मृगजाल! इस के विपरीत—ऐसे भी कुछ चक्षुर्विज्ञेय रूप है जो इष्ट, कान्त मनोमोहक, प्रिय...होते हैं; परन्तु विवेकी साधक उन का न अभिनन्दन करता है न उनको महत्त्व देता है। ऐसा न करने से उस को न उन में आसक्ति होती है, न उन के साथ कोई संयोग ही। श्रोत्रविज्ञेय शब्द...घ्राणविज्ञेय गन्ध...जिह्वाविज्ञेय रस...कायविज्ञेय...मनोविज्ञेय धर्म...संयोग नहीं होता। इस तरह, मृगजाल! वह साधक तृष्णा एवं संयोजन (संयोग) से मुक्त होकर 'एकविहारी' के रूप में विहरण करता है।

"मृगजाल! इस प्रकार साधना (विहरण) करने वाला साधक भिक्षु भले ही फिर वह ग्राम या नगर में भिक्षुओं से, भिक्षुणियों से, उपासकों से, उपासिकाओं से, राजाओं से, उनके महामात्यों से, अन्य सम्प्रदायों के तीर्थिकों से या उन के शिष्यों से ही क्यों न

६४. दुतियमिगजालसुत्तं

६५. अथ खो आयस्मा मिगजालो येन भगवा तेनुपसङ्कमि...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा मिगजालो भगवन्तं एतदवोच—"साधु मे, भन्ते, भगवा [B.265] सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु, यमहं भगवतो धम्मं सुत्वा एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरेय्यं" ति।

"सन्ति खो, मिगजाल, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अभिनन्दतो अभिवदतो अज्झोसाय तिट्ठतो उप्पज्जति नन्दी। नन्दिसमुदया दुक्ख-समुदयो, मिगजाला, ति वदामि...पे०...सन्ति च खो, मिगजाल, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा...पे०...सन्ति च खो, मिगजाल, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति, [N.34] तस्स तं अभिनन्दतो अभिवदतो अज्झोसाय तिट्ठतो उप्पज्जति नन्दी। नन्दिसमुदया दुक्खसमुदयो, मिगजाला, ति वदामि। [R.38]

"सन्ति च खो, मिगजाल, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अनभिनन्दतो अनभिवदतो अनज्झोसाय तिट्ठतो नन्दी निरुज्झति। नन्दिनिरोधा दुक्खनिरोधो, मिगजाला, ति वदामि...पे०...सन्ति च खो, मिगजाल, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा इट्ठा कन्ता...पे०...सन्ति च खो, मिगजाल, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अनभिनन्दतो अनभिवदतो अनज्झोसाय तिट्ठतो नन्दी निरुज्झति। नन्दिनिरोधा दुक्खसमुदयो, मिगजाला, ति वदामि" ति॥

घिरा रहे; वह 'एकान्तविहारी' ही कहलाता है। वह किस लिये ? क्यों कि अब तक उस के साथ 'तृष्णा' ही 'द्वितीय' के रूप में थी जो अब प्रहीण हो चुकी है, अत: वह 'एकविहारी' कहलाता है॥ (ख) •

६४. द्वितीय मृगजालसूत्र : : तृष्णानिरोध से दु:ख का अन्त

६५. ...तब आयुष्मान् मृगजाल भगवान् के सम्मुख पहुँचे। ...पूर्ववत्...यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! अच्छा होता कि आप मुझे संक्षेप में किसी ऐसे धर्म का उपदेश करते, जिस के आधार पर मैं एकान्त में सावधानी के साथ संयमशील रहते हुए उत्साहपूर्वक साधना कर सकूँ।"

अथ खो आयस्मा मिगजालो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो आयस्मा मिगजालो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरतो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय [B.266] कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरिय-परियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। ''खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया'' ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा मिगजालो अरहतं अहोसी ति॥ •

६५. पठमसमिद्धिमारपञ्हासुत्तं

६६. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो आयस्मा समिद्धि येन भगवा...पे०...भगवन्तं एतदवोच—'''मारो, मारो' ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, मारो वा अस्स मारपञ्ञत्ति वा'' ति?

[R.39] ''यत्थ खो, समिद्धि, अत्थि चक्खु, अत्थि रूपा, अत्थि चक्खुविञ्ञाणं, अत्थि चक्खुविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा, अत्थि तत्थ मारो वा मारपञ्ञत्ति वा। अत्थि सोतं,

---

''मृगजाल! ऐसे भी चक्षुर्विज्ञेय रूप हैं, जो इष्ट...पूर्वसूत्रवत्...। अभिनन्दन आदि के निरोध से, मृगजाल, दु:खनिरोध हो जाता है—ऐसा मेरा मानना है।''

तब आयुष्मान् मृगजाल भगवान् के भाषण का अभिनन्दन अनुमोदन कर, आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर (साधनाहेतु) चल दिये। तब वे आयुष्मान् मृगजाल एकान्त में, एकाकी (किसी को साथ लिये विना) सावधानीपूर्वक संयमशील रहते हुए उत्साहपूर्वक साधना करने लगे। कुछ समय बाद वे शीघ्र ही उस उत्तम धर्मसाधना की सिद्धि को देखते ही देखते जान और समझ कर प्राप्त कर चुके, जिस के लिये श्रेष्ठ कुलपुत्र घर से भली भाँति बेघर हो प्रव्रजित हुआ करते हैं। अन्त में उन्हें यह भी समझ में आ गया—'मेरी भवपरम्परा क्षीण हो चुकी, मेरी धर्मसाधना सफल हो गयी, मैं कृतकृत्य हो चुका, अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है।' यों उस आयुष्मान् मृगजाल की पहुँचे हुए अर्हतों (ज्ञानियों) में गणना होने लगी॥ •

६५. प्रथम समृद्धिमारप्रश्नसूत्र : : मार कैसा होता है?

६६. एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह के** वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप महाविहार में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् समृद्धि ने भगवान्...यों, जिज्ञासा प्रकट की—''भन्ते! लोग 'मार', 'मार'—ऐसा बहुत बोलते रहते हैं, भन्ते! यह 'मार' कैसा होता है? या यह मार कैसे जाना जाता है?''

''समृद्धि! जहाँ चक्षु है, रूप है, चक्षुर्विज्ञान है, चक्षुर्विज्ञानविज्ञेय धर्म हैं वहीं यह

अत्थि सद्दा, अत्थि सोतविञ्ञाणं, अत्थि सोतविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा, अत्थि [N.35] तत्थ मारो वा मारपञ्ञत्ति वा। अत्थि घानं, अत्थि गन्धा, अत्थि घानविञ्ञाणं, अत्थि घानविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा, अत्थि तत्थ मारो वा मारपञ्ञत्ति वा। अत्थि जिव्हा, अत्थि रसा, अत्थि जिव्हाविञ्ञाणं, अत्थि जिव्हाविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा, अत्थि तत्थ मारो वा मारपञ्ञत्ति वा। अत्थि कायो, अत्थि फोट्ठब्बा, अत्थि कायविञ्ञाणं, अत्थि कायविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा, अत्थि तत्थ मारो वा मारपञ्ञत्ति वा। अत्थि मनो, अत्थि धम्मा, अत्थि मनोविञ्ञाणं, अत्थि मनोविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा, अत्थि तत्थ मारो वा मारपञ्ञत्ति वा।

''यत्थ च खो, समिद्धि, नत्थि चक्खु, नत्थि रूपा, नत्थि चक्खुविञ्ञाणं, नत्थि चक्खुविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा, नत्थि तत्थ मारो वा मारपञ्ञत्ति वा। नत्थि सोतं...पे०...नत्थि घानं...पे०...नत्थि जिव्हा, नत्थि रसा, नत्थि जिव्हाविञ्ञाणं, नत्थि जिव्हाविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा, नत्थि तत्थ मारो वा मारपञ्ञत्ति वा। नत्थि कायो ...पे०...नत्थि मनो, नत्थि धम्मा, नत्थि मनोविञ्ञाणं, नत्थि मनोविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा, नत्थि तत्थ मारो वा मारपञ्ञत्ति वा'' ति॥ •

६६. समिद्धिसत्तपञ्हासुत्तं

६७. '''सत्तो, सत्तो' ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, सत्तो वा अस्स सत्तपञ्ञत्ति वा'' ति...पे०...। •

६७. समिद्धिदुक्खपञ्हासुत्तं

६८. '''दुक्खं, दुक्खं' ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, दुक्खं वा अस्स दुक्खपञ्ञत्ति वा'' ति...पे०...। [B.267] •

'मार' रहता है, तथा उसे ही लोग 'मार' ऐसा कहते हैं। समृद्धि! जहाँ श्रोत्र, शब्द, श्रोत्रविज्ञान...घ्राण...जिह्वा...काय...मन, मनोधर्म एवं मनोविज्ञानविज्ञेय धर्म हैं वहीं मार रहता है तथा उस को ही लोग 'मार' कहते हैं।

''परन्तु जहाँ, समृद्धि! न चक्षु है, न रूप है, न चक्षुर्विज्ञान; न श्रोत्र है, न शब्द है, न शब्दविज्ञान; न घ्राण है, न गन्ध है, न घ्राणविज्ञान; न जिह्वा है, न रस है, न जिह्वाविज्ञान; न काय है, न स्प्रष्टव्यधर्म हैं, न कायविज्ञान; न मन है, न मनोधर्म है, न मनोविज्ञान हैं, वहाँ न मार की सत्ता होती है, न कोई 'मार' का नाम लेने वाला ही॥'' •

६६. समृद्धिसत्त्वप्रश्नसूत्र : : 'सत्त्व' कैसा होता है?

६७. ...''भन्ते! लोग 'सत्त्व', 'सत्त्व'—ऐसा कहते हैं? *(पूर्वसूत्रवत् विस्तार कर लें)*॥ •

६८. समिद्धिलोकपञ्हासुत्तं

६९. "'लोको, लोको' ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, लोको वा अस्स लोकपञ्ञत्ति वा" ति?

"यत्थ खो, समिद्धि, अत्थि चक्खु, अत्थि रूपा, अत्थि चक्खुविञ्ञाणं, अत्थि चक्खुविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा, अत्थि तत्थ लोको वा लोकपञ्ञत्ति वा ति ...पे०...अत्थि जिव्हा...पे०...अत्थि मनो, अत्थि धम्मा, अत्थि मनोविञ्ञाणं, अत्थि [N.36, R.40] मनोविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा, अत्थि तत्थ लोको वा लोकपञ्ञत्ति वा।

"यत्थ च खो, समिद्धि, नत्थि चक्खु, नत्थि रूपा, नत्थि चक्खुविञ्ञाणं, नत्थि चक्खुविञ्ञाणविञ्ञातब्बा धम्मा, नत्थि तत्थ लोको वा लोकपञ्ञत्ति वा...पे०...नत्थि जिव्हा...पे०...नत्थि मनो, नत्थि धम्मा, नत्थि मनोविञ्ञाणं, नत्थि मनोविञ्ञाण-विञ्ञातब्बा धम्मा, नत्थि तत्थ लोको वा लोकपञ्ञत्ति वा" ति॥ •

६९. उपसेनआसीविससुत्तं

७०. एकं समयं आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च उपसेनो राजगहे विहरन्ति सीतवने सप्पसोण्डिकपब्भारे। तेन खो पन समयेन आयस्मतो उपसेनस्स काये आसीविसो पतितो होति। अथ खो आयस्मा उपसेनो भिक्खु आमन्तेसि—"एथ मे,

---

६७. समृद्धिदुःखप्रश्नसूत्र : : 'दुःख' कैसा होता है?

६८. ..."भन्ते! लोग 'दुःख', 'दुःख'—ऐसा कहते हैं? *(पूर्वसूत्रवत् विस्तार कर लें)*॥ •

६८. समृद्धिलोकप्रश्नसूत्र : : 'लोक' कैसा होता है?

६९. ..."भन्ते! लोग 'लोक', 'लोक'—ऐसा कहते हैं, भन्ते! यह 'लोक' कैसा होता है? या यह 'लोक' कैसे जाना जाता है?"

"समृद्धि! जहाँ चक्षु है, रूप हैं, चक्षुर्विज्ञान है तथा चक्षुर्विज्ञानविज्ञेय धर्म हैं...श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...काय...मन, मनोधर्म, मनोविज्ञान एवं मनोविज्ञानविज्ञेय धर्म रहते हैं वही लोगों द्वारा 'लोक' कहा जाता है।

"समृद्धि! जहाँ न चक्षु है, न रूप, न चक्षुर्विज्ञान, न चक्षुर्विज्ञानविज्ञेय धर्म वहाँ 'लोक'—ऐसा व्यवहार नहीं हो पाता। न श्रोत्र...न घ्राण...न जिह्वा...न मन...वहाँ 'लोक' ऐसा व्यवहार नहीं हो पाता॥" •

६९. उपसेनआशीविषसूत्र : : आयुष्मान् उपसेन को सर्पदंश

७०. एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र एवं आयुष्मान् उपसेन **राजगृह के** सर्पशौण्डिक प्राग्भार के शीतवन में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उस समय आयुष्मान् उपसेन के शरीर के

आवुसो, इमं कायं मञ्चकं आरोपेत्वा बहिद्धा नीहरथ; पुरायं कायो इधेव विकिरति, सेय्यथापि भुसमुट्ठी'' ति।

एवं वुत्ते, आयस्मा सारिपुत्तो आयस्मन्तं उपसेनं एतदवोच—''न खो पन मयं पस्साम आयस्मतो उपसेनस्स कायस्स वा अञ्ञथत्तं इन्द्रियानं वा विपरिणामं। अथ च पनायस्मा उपसेनो एवमाह—'एथ मे, आवुसो, इमं कायं मञ्चकं आरोपेत्वा बहिद्धा नीहरथ। पुरायं कायो इधेव विकिरति; सेय्यथापि भुसमुट्ठी''' ति।

''यस्स नून, आवुसो सारिपुत्त, एवमस्स—'अहं चक्खू ति वा मम चक्खू ति वा...पे०...अहं जिव्हा ति वा मम जिव्हा ति वा...अहं मनो ति वा मम मनो ति वा'। तस्स, आवुसो सारिपुत्त, सिया कायस्स वा अञ्ञथत्तं इन्द्रियानं वा विपरिणामो। [B.268] मय्हं च खो, आवुसो सारिपुत्त, न एवं होति—'अहं चक्खू ति वा मम चक्खू ति वा...पे०...अहं जिव्हा ति वा मम जिव्हा ति वा अहं मनो ति वा मम मनो ति [R.41] वा'। तस्स मय्हं च खो, आवुसो सारिपुत्त, किं कायस्स वा अञ्ञथत्तं भविस्सति इन्द्रियानं वा विपरिणामो'' ति!

''तथा हि पनायस्मतो उपसेनस्स दीघरत्तं अहङ्कारममङ्कारमानानुसयो सुसमूहतो। तस्मा आयस्मतो उपसेनस्स न एवं होति—'अहं चक्खू ति वा मम चक्खू ति वा...पे०...अहं जिव्हा ति वा मम जिव्हा ति वा अहं मनो ति वा मम मनो ति [N.37] वा''' ति।

किसी अङ्ग को किसी सर्प ने डँस लिया था। तब आयुष्मान् उपसेन ने भिक्षुओं को बुला कर कहा—''आयुष्मानो! आप लोग मेरे इस शरीर को खाट पर डाल कर बाहर ले चलें; इस से पहले कि कहीं यह शरीर भूसे की राशि की तरह यहीं न विखर जाय।''

आयुष्मान् उपसेन द्वारा ऐसा कहे जाने पर उस से आयुष्मान् सारिपुत्र ने पूछा—''हम लोग आयुष्मान् उपसेन के शरीर की किसी भी इन्द्रिय में किसी प्रकार का विकार नहीं देख रहे हैं (तब कैसे मान लें कि आप का शरीर भूसे की तरह विखर जायगा?'')

परन्तु आयुष्मान् उपसेन ने भिक्षुओं से अपना पूर्व कथन ही पुन: कहा, तथा आयुष्मान् सारिपुत्र को यों उत्तर दिया—''आयुष्मन् सारिपुत्र! जिस को अपनी इन्द्रियों के विषय में यह ध्यान (ममत्व) हो—'मैं चक्षु हूँ', या 'मेरा चक्षु है'...'मैं जिह्वा हूँ'...'मैं मन हूँ' या 'मेरा मन है', आयुष्मन् सारिपुत्र! उसी की इन्द्रियों में यह बाह्य भौतिक विकार आता है; परन्तु आयुष्मन् सारिपुत्र! मुझे अपनी इन्द्रियों के विषय में ऐसा कोई ममत्व नहीं है अत: मेरे शरीर में या इन्द्रियों में कोई विकार कैसे आयगा!''

क्यों कि आयुष्मान् उपसेन के चित्त में बहुत समय पूर्व ही अपने शरीर तथा

अथ खो ते भिक्खू आयस्मतो उपसेनस्स कायं मञ्चकं आरोपेत्वा बहिद्धा नीहरिंसु। अथ खो आयस्मतो उपसेनस्स कायो तत्थेव विकिरि; सेय्यथापि भुसमुट्ठी ति॥ ●

७०. उपवाणसन्दिट्ठिकसुत्तं

७१. अथ खो आयस्मा उपवाणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा उपवाणो भगवन्तं एतदवोच—"'सन्दिट्ठिको धम्मो, सन्दिट्ठिको धम्मो' ति, भन्ते, वुच्चति; कित्तावता नु खो, भन्ते, सन्दिट्ठिको धम्मो होति अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही" ति?

"इध पन, उपवाण, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा रूपप्पटिसंवेदी च होति रूपरागप्पटिसंवेदी च। सन्तं च अज्झत्तं रूपेसु रागं 'अत्थि मे अज्झत्तं रूपेसु रागो' ति पजानाति। यं तं, उपवाण, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा रूपप्पटिसंवेदी च होति रूपरागप्पटिसंवेदी च। सन्तं च अज्झत्तं रूपेसु रागं 'अत्थि मे अज्झत्तं रूपेसु रागो' ति पजानाति। एवं पि खो, उपवाण, सन्दिट्ठिको धम्मो होति अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूहि...पे०...।

[R.42] "पुन च परं, उपवाण, भिक्खु जिव्हाय रसं सायित्वा रसप्पटिसंवेदी च होति

इन्द्रियों में अहन्त्व या ममत्व, एवं मान तथा अनुशय पूर्णतः विनष्ट हो चुके थे, अतः आयुष्मान् को ऐसा नहीं होता था कि यह मेरी चक्षु है...यह मेरी जिह्वा है...आदि।

तदनन्तर, वे भिक्षु आयुष्मान् उपसेन के शरीर को खाट पर रख कर प्रकोष्ठ से बाहर ले गये। वहाँ आयुष्मान् का वह शरीर कुछ ही क्षणों भूसे की तरह विखर गया॥ ●

७०. उपवाणसान्दृष्टिकसूत्र : : सान्दृष्टिक धर्म

७१. ...तब आयुष्मान् उपवाण भगवान् के सम्मुख पहुँचे। ...एक ओर बैठे आयुष्मान् उपवाण ने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! उपदेशक जन 'सान्दृष्टिक धर्म', 'सान्दृष्टिक धर्म'—ऐसा कहते रहते हैं, भन्ते! यह सान्दृष्टिक धर्म क्या है? तथा यह कैसे **अकालिक** (विलम्ब के विना, तत्काल प्राप्त होने वाला), **एहिपस्सिक** (जो लोगों का आह्वान कर दिखाने योग्य है कि आओ, इसे देखो), **औपनयिक** (निर्वाण की ओर ले जाने वाला) तथा विज्ञों, विवेकियों द्वारा अध्यात्म रूप से अनुमित किया जा सकने वाला है?"

"उपवाण! चक्षु से रूप को देखकर, भिक्षु को उस रूप तथा उस के राग का अनुभव होता है। यदि उसे अध्यात्म रूपों में राग है तो वह जानता है कि उसे अध्यात्म रूपों में राग है। अतः उपवाण! यह धर्म सान्दृष्टिक एहिपश्यिक...कहलाता है। ...पूर्ववत्...।

रसरागप्पटिसंवेदी च। सन्तं च अज्झत्तं रसेसु रागं 'अत्थि मे अज्झत्तं रसेसु रागो' ति पजानाति। यं तं, उपवाण, भिक्खु जिव्हाय रसं सायित्वा रसप्पटिसंवेदी च होति रसरागप्पटिसंवेदी च। सन्तं च अज्झत्तं रसेसु रागं 'अत्थि मे अज्झत्तं रसेसु [B.269] रागो' ति पजानाति। एवं पि खो, उपवाण, सन्दिट्ठिको धम्मो होति अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूहि...पे०...।

"पुन च परं, उपवाण, भिक्खु मनसा धम्मं विञ्ञाय धम्मप्पटिसंवेदी च होति धम्मरागप्पटिसंवेदी च। सन्तं च अज्झत्तं धम्मेसु रागं 'अत्थि मे अज्झत्तं धम्मेसु [N.38] रागो' ति पजानाति। यं तं, उपवाण, भिक्खु मनसा धम्मं विञ्ञाय धम्मप्पटिसंवेदी च होति धम्मरागप्पटिसंवेदी च। सन्तं च अज्झत्तं धम्मेसु रागं 'अत्थि मे अज्झत्तं धम्मेसु रागो' ति पजानाति। एवं पि खो, उपवाण, सन्दिट्ठिको धम्मो होति...पे०...पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूहि...पे०...।

"इध पन, उपवाण, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा रूपप्पटिसंवेदी च होति नो च रूपरागप्पटिसंवेदी। असन्तं च अज्झत्तं रूपेसु रागं 'नत्थि मे अज्झत्तं रूपेसु रागो' ति पजानाति। यं तं, उपवाण, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा रूपप्पटिसंवेदी हि खो होति नो च रूपरागप्पटिसंवेदी। असन्तं च अज्झत्तं रूपेसु रागं 'नत्थि मे अज्झत्तं रूपेसु रागो' ति पजानाति। एवं पि खो, उपवाण, सन्दिट्ठिको धम्मो होति अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूहि...पे०...।

"पुन च परं, उपवाण, जिव्हाय रसं सायित्वा रसप्पटिसंवेदी हि खो होति नो च रसरागप्पटिसंवेदी। असन्तं च अज्झत्तं रसेसु रागं 'नत्थि मे अज्झत्तं रसेसु रागो' ति पजानाति...पे०...।

"पुन च परं, उपवाण, भिक्खु मनसा धम्मं विञ्ञाय धम्मप्पटिसंवेदी हि [R.43] खो होति नो च धम्मरागप्पटिसंवेदी। असन्तं च अज्झत्तं धम्मेसु रागं 'नत्थि मे अज्झत्तं

"फिर, उपवाण! भिक्षु जिह्वा से रस को चख कर उस के रस का...पूर्ववत्...। मन से धर्मों को जान कर उन के प्रति...। अतः, उपवाण! यह धर्म सान्दृष्टिक...। ...पूर्ववत्...।

(इसके विपरीत) "उपवाण! यहाँ कोई भिक्षु चक्षु से रूप को देख कर रूप का संवेदन तो करता है, किन्तु रूपराग का अनुभव नहीं करता। तथा जब उस को उन रूपों में राग नहीं है तो वह यह भी जानता है कि उसे इन रूपों में राग नहीं है। ऐसा ज्ञान होने के कारण भी इस धर्म को सान्दृष्टिक, एहिपश्यिक...कहते हैं। ...

"इसी तरह, जिह्वा...काय...मन से धर्म को जान कर...। यदि उसे अपने अध्यात्म धर्मों के प्रति राग नहीं है तो वह जानता है कि उसे आन्तरिक धर्मों के प्रति राग नहीं है।

धम्मेसु रागो' ति पजानाति। यं तं, उपवाण, भिक्खु मनसा धम्मं विञ्ञाय धम्मप्पटिसंवेदी हि खो होति नो च धम्मरागप्पटिसंवेदी। असन्तं च अज्झत्तं धम्मेसु रागं 'नत्थि मे अज्झत्तं धम्मेसु रागो' ति पजानाति। एवं पि खो, उपवाण, सन्दिट्ठिको धम्मो होति अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही'' ति॥ ●

७१. पठमछफस्सायतनसुत्तं

७२. ''यो हि कोचि, भिक्खवे, भिक्खु छन्नं फस्सायतनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। अवुसितं तेन ब्रह्मचरियं, [B.270] आरका सो इमस्मा धम्मविनया'' ति।

एवं वुत्ते, अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''एत्थाहं, भन्ते, अनस्ससं। [N.39] अहं हि, भन्ते, छन्नं फस्सायतनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानामी'' ति।

''तं किं मञ्ञसि, भिक्खु, चक्खुं 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्ससी'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''साधु, भिक्खु, एत्थ च ते, भिक्खु, चक्खुं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो

ऐसा ज्ञान होने के कारण भी इस धर्म को अकालिक, एहिपश्यिक, औपनयिक तथा विज्ञ विवेकियों द्वारा अध्यात्म रूप से अनुमित किया जाने योग्य कहते हैं॥'' ●

७१. प्रथम षट्स्पर्शायतनसूत्र : : उस की धर्मसाधना निष्फल है

७२. ...''भिक्षुओ! जो भिक्षु साधक छह स्पर्शायतनों के उत्पाद, नाश, आस्वाद, दोष, नि:सरण को यथार्थत: नहीं जानता, उस की समस्त धर्मसाधना निष्फल है। उस के विषय में यह समझना चाहिये कि वह वास्तविक धर्मसाधना से बहुत दूर है।''

भगवान् द्वारा ऐसी देशना किये जाने पर, एक भिक्षु ने भगवान् से यों निवेदन किया—''भन्ते! मैं आप के उपदेश का मर्म नहीं समझ पाया; क्यों कि मैं इन छह स्पर्शायतनों के उत्पाद, नाश, आस्वाद, आदीनव एवं निस्सरण के विषय में यथार्थत: नहीं जानता?''

''तो, भिक्षु! तुम इस चक्षु के विषय में क्या यह मानते हो—'यह मेरा है', 'यह मैं हूँ' या 'यह मेरी आत्मा है'?''

''नहीं, भन्ते!''

''ठीक है, भिक्षु! यहाँ तुम्हारा, चक्षु के विषय में यही जानना सुदृष्ट (सम्यग्दर्शन)

अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं भविस्सति। एसेवन्तो दुक्खस्स ...पे०...।

जिव्हं 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्ससी'' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

''साधु, भिक्खु, एत्थ च ते, भिक्खु, जिव्हा 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं भविस्सति। एसेवन्तो दुक्खस्स ...पे०...मनं 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्ससी'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''साधु, भिक्खु, एत्थ च ते, भिक्खु, मनो 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं भविस्सति। एसेवन्तो दुक्खस्सा'' ति॥

७२. दुतियछफस्सायतनसुत्तं

७३. ''यो हि कोचि, भिक्खवे, भिक्खु छन्नं फस्सायतनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। अवुसितं तेन [R.44] ब्रह्मचरियं, आरका सो इमस्मा धम्मविनया'' ति।

एवं वुत्ते, अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''एत्थाहं, भन्ते, अनस्ससं पनस्ससं। अहं हि, भन्ते, छन्नं फस्सायतनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानामी'' ति।

होगा कि यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, या यह मेरी आत्मा नही है। यही यथार्थ ज्ञान दु:ख का अन्त है। ...।

''जिह्वा के विषय में...काय के विषय में...मन के विषय में...पूर्ववत्...।

''ठीक है, भिक्षु! यहाँ तुम्हारा, मन के विषय में, यही जानना सुदृष्ट है कि 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ या यह मेरी आत्मा नहीं है।' यह यथार्थ ज्ञान ही दु:ख का अन्त है॥''

७२. द्वितीय षट्स्पर्शायतनसूत्र : : उस की धर्मसाधना निष्फल है

७३. ...''भिक्षुओ! जो कोई साधक भिक्षु इन छह स्पर्शायतनों के उत्पाद, विनाश, आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण को यथार्थत: नहीं जानता; उस की धर्मसाधना व्यर्थ ही समझनी चाहिये। या यों कहिये कि वह वास्तविक धर्मसाधना से बहुत दूर है।''

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, किसी भिक्षु ने यह जिज्ञासा प्रकट की—''भन्ते! आप के इस उपदेश से मुझे सन्तोष नहीं मिला; क्यों कि मैं इन छह स्पर्शायतनों उत्पाद...के विषय में यथार्थ ज्ञान नहीं रखता।''

"तं किं मञ्ञसि, भिक्खु, चक्खुं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति [N.40] समनुपस्ससी" ति?

"एवं, भन्ते"।

"साधु, भिक्खु, एत्थ च ते, भिक्खु, चक्खुं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं भविस्सति। एवं ते एतं पठमं [B.271] फस्सायतनं पहीनं भविस्सति आयतिं अपुनब्भवाय...पे०...।

जिव्हं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्ससी" ति?

"एवं, भन्ते"।

"साधु, भिक्खु, एत्थ च ते, भिक्खु, जिव्हा 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं भविस्सति। एवं ते एतं चतुत्थं फस्सायतनं पहीनं भविस्सति आयतिं अपुनब्भवाय...पे०...मनं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्ससी" ति?

"एवं, भन्ते"।

"साधु, भिक्खु, एत्थ च ते, भिक्खु, मनो 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं भविस्सति। एवं ते एतं छट्ठं फस्सायतनं पहीनं भविस्सति आयतिं अपुनब्भवाया" ति॥ •

७३. ततियछफस्सायतनसुत्तं

[R.45] ७४. "यो हि कोचि, भिक्खवे, भिक्खु छन्नं फस्सायतनानं समुदयं च अत्थङ्गमं

"तो, भिक्षु! क्या चक्षु के विषय में तुम ऐसा मानते हो कि 'यह मेरा नहीं है', 'यह मैं नहीं हूँ, या 'यह मेरी आत्मा नहीं है'?"

"हाँ, भन्ते!"

"भिक्षु ठीक है। ...इस तरह के ज्ञान से तुम्हारे प्रथम स्पर्शायतन का प्रहाण हो जायगा। तथा वह पुनः अनुत्पाद की स्थिति में आ जायगा।...पूर्ववत्...।

"जिह्वा के विषय में...काय के विषय में...मन के विषय में...'यह मेरा नहीं है', 'यह मैं नहीं हूँ', या 'यह मेरी आत्मा नहीं है'?"

"हाँ, भन्ते!"

"भिक्षु! ठीक है! ...इस तरह के ज्ञान से तुम्हारे षष्ठ स्पर्शायतन का प्रहाण हो जायगा, तथा वह पुनः अनुत्पाद की स्थिति में आ जायगा॥" •

७३. तृतीय षट्स्पर्शायतनसूत्र : : उस की धर्मसाधना निष्फल है

७४. ..."भिक्षुओ! जो कोई भिक्षु इन छह स्पर्शायतनों के उत्पाद, विनाश, आस्वाद,

च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। अवुसितं तेन ब्रह्मचरियं, आरका सो इमस्मा धम्मविनया'' ति।

एवं वुत्ते, अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''एत्थाहं, भन्ते, अनस्ससं पनस्ससं। अहं हि, भन्ते, छन्नं फस्सायतनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं न पजानामी'' ति।

''तं किं मञ्ञसि, भिक्खु, चक्खुं निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति? [N.41]

''अनिच्चं, भन्ते''।

''यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा'' ति?

''दुक्खं, भन्ते''।

''यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''सोतं...घानं...जिव्हा...कायो...मनो निच्चो वा अनिच्चो वा'' ति?

''अनिच्चो, भन्ते''।

''यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा'' ति?

''दुक्खं, भन्ते''।

''यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''एवं पस्सं, भिक्खु, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति, सोतस्मिं पि निब्बिन्दति, घानस्मिं पि निब्बिन्दति, जिव्हाय पि निब्बिन्दति, कायस्मिं पि

आदीनव एवं निःसरण को यथार्थतः नहीं जानता, उस की धर्मसाधना व्यर्थ ही है। या यों कहो कि वह अभी वास्तविक धर्मसाधना से बहुत दूर है।''

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर एक भिक्षु बोला—''भन्ते! आप के इस संक्षिप्त उपदेश से सन्तोष नहीं हुआ; क्यों कि मैं इन छह स्पर्शायतनों के विषय में यथार्थ ज्ञान नहीं रखता।''

''तो क्या मानते हो, भिक्षु चक्षु नित्य है या अनित्य?''

''अनित्य है, भन्ते।'' ...पूर्ववत्...।

''भिक्षु! ऐसा जानता हुआ श्रुतवान् आर्यश्रावक चक्षु में भी अरुचि उत्पन्न कर

निब्बिन्दति, मनस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति॥ •

मिगजालवग्गो दुतियो॥

तस्सुद्दानं

[B.272] मिगजालेन द्वे वुत्ता, चत्तारो च समिद्धिना।
उपसेनो उपवाणो, छफस्सायतनिका तयो ति॥ •

लेता है, श्रोत्र में...मन में...। इस अरुचि के कारण उसे वैराग्य होने लगता है...पूर्ववत्...। आगे मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है'—ऐसा जान लेता है''॥ •

मृगजालवर्ग द्वितीय सम्पन्न॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. प्रथम मृगजालसूत्र, २. द्वितीय मृगजाल-सूत्र, ३. प्रथम समृद्धिमारप्रश्नसूत्र, ४. समृद्धिसत्त्वप्रश्नसूत्र, ५. समृद्धिदु:खप्रश्नसूत्र, ६. समृद्धिलोकप्रश्नसूत्र, ७. उपसेनआशीविषसूत्र, ८. उपवाणसान्दृष्टिकसूत्र, ९. प्रथम षट्स्पर्शायतनसूत्र, १०. द्वितीय षट्स्पर्शायतनसूत्र, एवं ११. तृतीय षट्स्पर्शायतनसूत्र॥ •

३. गिलानवग्गो ततियो

७४. पठमगिलानसुत्तं

७५. सावत्थिनिदानं। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि ...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"अमुकस्मिं, [R.46] भन्ते, विहारे अञ्ञतरो भिक्खु नवो अप्पञ्ञातो आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो। साधु, भन्ते, भगवा येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया" ति। [N.42]

अथ खो भगवा नववादं च सुत्वा गिलानवादं च, "अप्पञ्ञातो भिक्खू" ति इति विदित्वा येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो सो भिक्खु भगवन्तं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान मञ्चके समधोसि। अथ खो भगवा तं भिक्खुं एतदवोच—"अलं, भिक्खु, मा त्वं मञ्चके समधोसि। सन्तिमानि आसनानि पञ्ञत्तानि, तत्थाहं निसीदिस्सामी" ति। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने। निसज्ज खो भगवा तं भिक्खुं एतदवोच—"कच्चि ते, भिक्खु, खमनीयं, कच्चि यापनीयं, कच्चि दुक्खा वेदना पटिक्कमन्ति नो अभिक्कमन्ति, पटिक्कमोसानं पञ्ञायति नो अभिक्कमो" ति?

"न मे, भन्ते, खमनीयं, न यापनीयं, बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति नो पटिक्कमन्ति, अभिक्कमोसानं पञ्ञायति नो पटिक्कमो" ति।

---

३. तृतीय ग्लानवर्ग

७४. प्रथम ग्लानसूत्र : : बुद्धोपदिष्ट धर्म रागमुक्ति का उपाय

७५. **श्रावस्ती में** ही...। ...उस समय कोई भिक्षु भगवान् के सम्मुख पहुँचा। ...पूर्ववत् ...भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! अमुक विहार में कोई अनजान, नवप्रव्रजित भिक्षु दुःखी एवं भीषण रोग से ग्रस्त है। भन्ते! अच्छा होता, यदि आप उस भिक्षु पर कृपा करते हुए उसे देखने पधारते।"

तब भगवान् ने उस नवप्रव्रजित, अनजान, भिक्षु के रोगाक्रान्त होने की बात सुन कर तथा 'इस भिक्षु को यहाँ कोई नहीं जानता'—यह जान कर उस भिक्षु के आवास पर गये। उस रोगी भिक्षु ने भगवान् को जब दूर से ही आते देखा तो उस ने अपनी शय्या का बिछावन ठीक किया। यह देख कर भगवान् ने भिक्षु से कहा—"रहने दे, भिक्षु! तूँ बिछावन व्यवस्थित करने का प्रयास न कर। ये दूसरे आसन भी हैं, मैं वहीं किसी पर बैठ जाऊँगा"। यों कह कर भगवान् एक प्रज्ञप्त आसन पर विराजमान हुए। विराजमान हो कर भगवान् ने उस भिक्षु से पूछा—"कहो, भिक्षु! तुम्हारा रोग कैसा है? उस से होने वाली वेदनाएँ बढ़ रही हैं, या घट रही हैं? या घटती हुई ज्ञात हो रही हैं?"

"कच्चि ते, भिक्खु, न किञ्चि कुक्कुच्चं, न कोचि विप्पटिसारो" ति?

"तग्घ मे, भन्ते, अनप्पकं कुक्कुच्चं, अनप्पको विप्पटिसारो" ति।

[R.47] "कच्चि पन तं, भिक्खु, अत्ता सीलतो उपवदती" ति?

"न खो मं, भन्ते, अत्ता सीलतो उपवदती" ति।

"नो चे किर ते, भिक्खु, अत्ता सीलदो उपवदति, अथ किञ्च ते कुक्कुच्चं को च विप्पटिसारो" ति?

"न ख्वाहं भन्ते, सीलविसुद्धत्थं भगवता धम्मं देसितं आजानामी" ति।

[B.273] "नो चे किर त्वं, भिक्खु, सीलविसुद्धत्थं मया धम्मं देसितं आजानासि, अथ किमत्थं चरहि त्वं, भिक्खु मया धम्मं देसितं आजानासी" ति?

"रागविरागत्थं ख्वाहं, भन्ते, भगवता धम्मं देसितं आजानामी" ति।

[N.43] "साधु साधु, भिक्खु! साधु खो त्वं, भिक्खु, रागविरागत्थं मया धम्मं देसितं आजानासि। रागविरागत्थो हि, भिक्खु, मया धम्मो देसितो। तं किं मञ्ञसि, भिक्खु, चक्खु निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...।

सोतं...घानं...जिव्हा...कायो...मनो निच्चो वा अनिच्चो वा ति?

"नहीं, भन्ते! मैं स्वस्थता अनुभव नहीं कर रहा हूँ। रोग से मेरी वेदना बढ़ती ही जा रही हैं; घटने का नाम ही नहीं लेतीं।"

"भिक्षु! तुम्हारे चित्त में पूर्व में हुई किसी घटना के कारण कोई पश्चात्ताप तो नहीं है?"

"हाँ, भन्ते! मेरे चित्त में बहुत पश्चात्ताप हो रहा है।"

"भिक्षु! तुम्हें कहीं शील न पालन करने के कारण तो पश्चात्ताप नहीं हो रहा है?"

"नहीं, भन्ते!"

"तो, भिक्षु! तुम्हें किस कारण यह पश्चात्ताप तथा उद्विग्नता हो रही है?"

"भन्ते! मैं भगवदुपदिष्ट धर्म को शीलविशुद्धिहेतु उपदिष्ट नहीं समझता।"

"तब, भिक्षु! तुम मेरे धर्म को किस अर्थ के लिये समझते हो?"

"भन्ते! मैं भगवदुपदिष्ट धर्म को रागमुक्तिहेतु कृत समझता हूँ।"

"भिक्षु! तब तो तुम यह ठीक ही समझते हो; क्योंकि रागमुक्ति ही मेरे धर्मोपदेश का प्रमुख लक्ष्य है। तो क्या मानते हो, भिक्षु! चक्षु नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य, भन्ते!"

"अनिच्चो, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवं पस्सं, भिक्खु, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति, सोतस्मिं पि निब्बिन्दति...पे०...मनस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति...पे०...नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति।

इदमवोच भगवा। अत्तमनो सो भिक्खु भगवतो भासितं अभिनन्दि। इमस्मिं च पन वेय्याकरणस्मिं भञ्ञमाने तस्स भिक्खुनो विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—"यं किञ्चि समुदयधम्मं, सब्बं तं निरोधधम्मं" ति॥ •

७५. दुतियगिलानसुत्तं

७६. अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु...पे०...भगवन्तं एतदवोच—"अमुकस्मिं,

"श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...काय...मन नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य, भन्ते!"

"जो अनित्य है, वह दु:ख है या सुख?"

"दु:ख, भन्ते!"

"जो अनित्य, दु:ख एवं विनाशी है, क्या उसे ऐसा मानना उचित होगा—'यह मेरा है', या 'यह मैं हूँ' या 'यह मेरी आत्मा है'?"

"नहीं, भन्ते!"

"ऐसा जानते, समझते हुए विद्वान् आर्यश्रावक की चक्षु में भी अरुचि उत्पन्न हो जाती है, श्रोत्र...मन में भी...। अरुचि से वैराग्य...पूर्ववत्...मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है—ऐसा जान लेता है।"

भगवान् ने यों उपदेश किया। इस से सन्तुष्टचित्त भिक्षु ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया। इस धर्मोपदेश को सुनने के साथ ही उस भिक्षु को यह धर्मज्ञानचक्षु उत्पन्न हो गया—"यहाँ जो कुछ भी (पदार्थ) उत्पत्तिधर्म वाला है वह सब निरोध स्वभाव वाला है"। अर्थात् "यहाँ जो उत्पन्न होता है उस का एक न एक दिन विनाश होना निश्चित है॥" •

भन्ते, विहारे अञ्ञतरो भिक्खु नवो अप्पञ्ञातो आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो। साधु, भन्ते, भगवा येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया'' ति।

अथ खो भगवा नववादं च सुत्वा गिलानवादं च, ''अप्पञ्ञातो भिक्खू'' ति इति विदित्वा येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो सो भिक्खु भगवन्तं दूरतो व [N.44] आगच्छन्तं। दिस्वान मञ्चके समधोसि। अथ खो भगवा तं भिक्खु एतदवोच— ''अलं, भिक्खु, मा त्वं मञ्चके समधोसि। सन्तिमानि आसनानि पञ्ञत्तानि, तत्थाहं निसीदिस्सामी'' ति। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने। निसज्ज खो भगवा तं भिक्खुं [B.274] एतदवोच—''कच्चि ते, भिक्खु, खमनीयं, कच्चि यापनीयं, कच्चि दुक्खा वेदना पटिक्कमन्ति नो अभिक्कमन्ति, पटिक्कमोसानं पञ्ञायति नो अभिक्कमो'' ति?

''न मे, भन्ते, खमनीयं, न यापनीयं...पे०...न खो मं, भन्ते, अत्ता सीलतो उपवदती'' ति।

''नो चे किर ते, भिक्खु, अत्ता सीलतो उपवदति, अथ किञ्च ते कुक्कुच्चं को च विप्पटिसारो'' ति?

''न ख्वाहं भन्ते, सीलविसुद्धत्थं भगवता धम्मं देसितं आजानामी'' ति।

[R.48] ''नो चे किर त्वं, भिक्खु, सीलविसुद्धत्थं मया धम्मं देसितं आजानासि, अथ किमत्थं चरहि त्वं, भिक्खु मया धम्मं देसितं आजानासी'' ति?

''अनुपादापरिनिब्बानत्थं ख्वाहं, भन्ते, भगवता धम्मं देसितं आजानामी'' ति।

''साधु साधु, भिक्खु! साधु खो त्वं, भिक्खु, अनुपादापरिनिब्बानत्थं मया धम्मं देसितं आजानासि। अनुपादापरिनिब्बानत्थो हि, भिक्खु, मया धम्मो देसितो। तं किं मञ्ञसि, भिक्खु, चक्खु निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति? ''अनिच्चं, भन्ते''...पे०...।

सोतं...घानं...जिव्हा...कायो...मनो...मनोविञ्ञाणं...मनोसम्फस्सो...यम्पिदं

---

७५. द्वितीय ग्लानसूत्र : : बुद्ध धर्म का लक्ष्य निर्वाण

७६. ...तब कोई भिक्षु...पूर्ववत् (ऊपर के सूत्र के समान) ...''भिक्षु! यदि तुम मेरे द्वारा उपदिष्ट धर्म को शीलविशुद्धि के लिये नहीं समझते हो तो किस प्रयोजनपूर्ति के लिये समझते हो?''

''भन्ते! मैं भगवदुपदिष्ट धर्म को उपादानरहित निर्वाणप्राप्ति के लिये समझता हूँ।''

''उचित ही कह रहे हो, भिक्षु! उपादानरहित निर्वाणप्राप्तिहेतु ही मैंने इस धर्म का उपदेश किया है। तो क्या मानते हो, भिक्षु! चक्षु नित्य है या अनित्य?''

''अनित्य है, भन्ते!''

मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति? [N.45]

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवं पस्सं, भिक्खु, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति...पे०... मनस्मिं पि...मनोविञ्ञाणे पि...मनोसम्फस्से पि निब्बिन्दति। यम्पिदं मनोसम्फस्स-पच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति।

इदमवोच भगवा। अत्तमनो सो भिक्खु भगवतो भासितं अभिनन्दि। इमस्मिं च पन वेय्याकरणस्मिं भञ्ञमाने तस्स भिक्खुस्स अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुच्ची ति॥

७६. राधअनिच्चसुत्तं

७७. अथ खो आयस्मा राधो...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राधो भगवन्तं एतदवोच—"साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु, यमहं भगवतो धम्मं सुत्वा एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरेय्यं" ति। [B.275]

"यं खो, राध, अनिच्चं तत्र ते छन्दो पहातब्बो। किञ्च, राध, अनिच्चं तत्र ते छन्दो

"श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...मन...मनोविज्ञान...ऐसा जान लेता है...उपरिसूत्रवत्...।"

भगवान् ने यों धर्मोपदेश किया। यह धर्मोपदेश सुन कर सन्तुष्ट हुए भिक्षु ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया। यह उपदेश सुनने के बाद उस भिक्षु का चित्त उपादानरहित होकर आश्रवों से विमुक्त हो गया॥"

७६. राधअनित्यसूत्र : : अनित्यों में कामना का त्याग

७७. ...तब आयुष्मान् राध ने भगवान् से यों निवेदन किया—"अच्छा होता, भन्ते! यदि आप मुझे संक्षेप में धर्म का ऐसा उपदेश करे, जिस के सहारे से मैं एकान्तवास करते हुए एकाकी (किसी दूसरे को साथ में लिये विना) सावधानीपूर्वक, इन्द्रियों पर संयम करते हुए उत्साहपूर्वक साधना कर सकूँ।"

(तब भगवान् ने यों उपदेश किया—) "राध! जो कुछ भी अनित्य है, उस में

पहातब्बो ? चक्खु अनिच्चं, रूपा अनिच्चा, चक्खुविञ्ञाणं...चक्खुसम्फस्सो...यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं। तत्र ते छन्दो पहातब्बो...जिव्हा...कायो...मनो अनिच्चो। तत्र ते छन्दो पहातब्बो। धम्मा...मनोविञ्ञाणं...मनोसम्फस्सो...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं। तत्र ते छन्दो पहातब्बो। यं [R.49] खो, राध, अनिच्चं तत्र ते छन्दो पहातब्बो'' ति॥ •

७७. राधदुक्खसुत्तं

७८. ''यं खो, राध, दुक्खं तत्र ते छन्दो पहातब्बो। किञ्च, राध, दुक्खं? चक्खु खो, राध, दुक्खं। तत्र ते छन्दो पहातब्बो। रूपा...चक्खुविञ्ञाणं...चक्खुसम्फस्सो... यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया...पे०...अदुक्खमसुखं वा तं पि दुक्खं। तत्र ते छन्दो [N.46] पहातब्बो...पे०...मनो दुक्खो...धम्मा...मनोविञ्ञाणं...मनोसम्फस्सो...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि दुक्खं। तत्र ते छन्दो पहातब्बो। यं खो, राध, दुक्खं तत्र ते छन्दो पहातब्बो'' ति॥ •

७८. राधअनत्तसुत्तं

७९. ''यो खो, राध, अनत्ता तत्र ते छन्दो पहातब्बो। को च, राध, अनत्ता? चक्खु खो, राध, अनत्ता। तत्र ते छन्दो पहातब्बो। रूपा...चक्खुविञ्ञाणं...चक्खुसम्फस्सो... यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया...पे०...मनो अनत्ता...धम्मा...मनोविञ्ञाणं...मनो-

---

किसी प्रकार की इच्छा नहीं करनी चाहिये। राध! वह 'अनित्य' क्या है जहाँ तुम्हें इच्छा न करनी चाहिये? राध! चक्षु...रूप...चक्षुर्विज्ञान...चक्षुःसंस्पर्श तथा तज्जन्य सुखदुःखादि वेदनाएँ—यह सब कुछ अनित्य है, उस में तुम्हें कोई इच्छा (कामना) नहीं करनी चाहिये। ...जिह्वा...काय...मन अनित्य है उस में कोई कामना नहीं करनी चाहिये। राध! कहने का तात्पर्य यही है कि जो कुछ भी अनित्य है वहाँ किसी प्रकार की इच्छा, कामना नहीं करनी चाहिये॥'' •

७७. राधदुःखसूत्र : : 'दुःख' में कामना का त्याग

७८. ...''राध! जो कुछ भी दुःख है वहाँ कोई कामना नहीं करनी चाहिये।'' ...पूर्व-सूत्रवत्...। *('अनित्य' शब्द के स्थान पर 'दुःख' शब्द लगा कर विस्तार करें।)* •

७८. राधअनात्मसूत्र : : 'अनात्म' में कामना का त्याग

७९. ...''राध! जो कुछ अनात्म है वहाँ कोई कामना नहीं करनी चाहिये।'' ...पूर्वसूत्रवत्...। •

('दुःख' के स्थान पर 'अनात्म' शब्द लगा कर विस्तार करें।)

सम्फस्सो...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनत्ता। तत्र ते छन्दो पहातब्बो। यो खो, राध, अनत्ता तत्र ते छन्दो पहातब्बो'' ति॥ ●

७९. पठमअविज्जापहानसुत्तं

८०. अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि...पे०...एकमन्तं [B.276] निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच–''अत्थि नु खो, भन्ते, एको धम्मो यस्स पहाना भिक्खुनो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जती'' ति?

''अत्थि खो, भिक्खु, एको धम्मो यस्स पहाना भिक्खुनो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जती'' ति।

''कतमो पन, भन्ते, एको धम्मा यस्स पहाना भिक्खुनो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जती'' ति?

''अविज्जा खो, भिक्खु, एको धम्मो यस्स पहाना भिक्खुनो अविज्जा [R.50] पहीयति, विज्जा उप्पज्जती'' ति।

''कथं पन, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो भिक्खुनो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जती'' ति?

''चक्खुं खो, भिक्खु, अनिच्चतो जानतो पस्सतो भिक्खुनो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जति। रूपे...चक्खुविञ्ञाणं...चक्खुसम्फस्सं...यम्पिदं चक्खु-[N.47] सम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चतो

---

७९. प्रथम अविद्याप्रहाणसूत्र : : 'अविद्या' का प्रहाण

८०. ...तब किसी भिक्षु ने भगवान् के सम्मुख जा कर यह जिज्ञासा प्रकट की– ''भन्ते! ऐसा कोई एक धर्म है जिस के प्रहाण (त्याग) से अविद्या नष्ट हो कर विद्या उत्पन्न हो सके?''

''हाँ, भिक्षु! ऐसा एक धर्म है जिस के प्रहाण से...विद्या उत्पन्न हो सकती है।''

''भन्ते! वह कौन सा एक धर्म है जिस के...विद्या उत्पन्न हो सकती हो?''

''राध! अविद्या ही ऐसा एक धर्म है जिस के प्रहाण से...विद्या उत्पन्न हो सकती है।''

''भन्ते! कैसा जानने समझने पर यह अविद्या प्रहीण होती है तथा विद्या उत्पन्न होती है?''

''राध! चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुःसंस्पर्श, चक्षुःसंस्पर्शजन्य सुखदुःखादि वेदनाओं...जिह्वा...काय, मन, मनोधर्म, मनोविज्ञान, मनःसंस्पर्श, तज्जन्य सुखदुःखादि

जानतो पस्सतो भिक्खुनो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जति...पे०...मनं अनिच्चतो जानतो पस्सतो भिक्खुनो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जति। धम्मे...मनोविञ्ञाणं ...मनोसम्फस्सं...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चतो जानतो पस्सतो भिक्खुनो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जति। एवं खो, भिक्खु, जानतो एवं पस्सतो भिक्खुनो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जती'' ति॥ ●

८०. दुतियअविज्जापहानसुत्तं

८१. अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु...पे०...एतदवोच—''अत्थि नु खो, भन्ते, एको धम्मो यस्स पहाना भिक्खुनो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जती'' ति?

''अत्थि खो, भिक्खु, एको धम्मो यस्स पहाना भिक्खुनो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जती'' ति।

''कतमो पन, भन्ते, एको धम्मो यस्स पहाना भिक्खुनो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जती'' ति?

''अविज्जा खो, भिक्खु, एको धम्मो यस्स पहाना भिक्खुनो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जती'' ति।

''कथं पन, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जती'' ति?

''इध, भिक्खु, भिक्खुनो सुतं होति—'सब्बे धम्मा नालं अभिनिवेसाया' ति। [B.277] एवं चेतं, भिक्खु, भिक्खुनो सुतं होति—'सब्बे धम्मा नालं अभिनिवेसाया' ति। सो सब्बं धम्मं अभिजानाति, सब्बं धम्मं अभिञ्ञाय, सब्बं धम्मं परिजानाति, सब्बं

वेदनाओं को अनित्य जानने समझने पर अविद्या प्रहीण हो जाती है, तथा विद्या उत्पन्न हो जाती है। यों, भिक्षु! जानने समझने वाले भिक्षु साधक की अविद्या प्रहीण हो जाती है तथा उस के स्थान पर विद्या (ज्ञान) उत्पन्न हो जाती है''॥ ●

८०. द्वितीय अविद्याप्रहाणसूत्र : : अविद्या का प्रहाण

८१. ...कोई भिक्षु...पूर्वसूत्रवत्...।

''भन्ते! कैसे जानते हुए कैसे समझते हुए साधक भिक्षु की अविद्या प्रहीण होती है तथा विद्या उत्पन्न होती है?

''यहाँ, भिक्षु! किसी साधक भिक्षु द्वारा यह सुन लिया गया होता है—'धर्म अभिनिवेश (आसक्ति=झुकाव) के योग्य नहीं है'। 'सभी धर्म अभिनिवेश के योग्य नहीं है'—वह ऐसा सुन कर सभी धर्मों का समीक्षण आरम्भ करता है, उन का समीक्षण कर

धम्मं परिञ्ञाय सब्बनिमित्तानि अञ्ञतो पस्सति, चक्खुं अञ्ञतो पस्सति, रूपे... चक्खुविञ्ञाणं...चक्खुसम्फस्सं...यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अञ्ञतो पस्सति...पे०...मनं अञ्ञतो पस्सति। धम्मे...मनोविञ्ञाणं...मनोसम्फस्सं...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अञ्ञतो पस्सति। एवं खो, [N.48] भिक्खु, जानतो एवं पस्सतो भिक्खुनो अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जती'' ति॥ ●

८१. सम्बहुलभिक्खुसुत्तं

८२. अथ खो सम्बहुला भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु...पे०...एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—''इध नो, भन्ते, अञ्ञतिथिया [R.51] परिब्बाजका अम्हे एवं पुच्छन्ति—'किमत्थियं, आवुसो, समणे गोतमे ब्रह्मचरियं वुस्सती' ति? एवं पुट्ठा मयं, भन्ते, तेसं अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं ब्याकरोम—'दुक्खस्स खो, आवुसो, परिञ्ञत्थं भगवति ब्रह्मचरियं वुस्सती' ति। कच्चि मयं, भन्ते, एवं पुट्ठा एवं ब्याकरमाना वुत्तवादिनो चेव भगवतो होम, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खाम, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरोम, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छती'' ति?

''तग्घ तुम्हे, भिक्खवे, एवं पुट्ठा एवं ब्याकरमाना वुत्तवादिनो चेव मे होथ, न च

सभी धर्मों का, उन के अन्तस्तल तक, विचार करता है; ऐसा विचार कर, उन के सभी निमित्तों को, चक्षु को, रूपों को, चक्षुर्विज्ञान को, चक्षुःसंस्पर्श को, चक्षुःसंस्पर्शजन्य सुखदुःखादि वेदनाओं को...पूर्ववत्...मन को...प्रज्ञा द्वारा जान लेता है। ऐसे जानते, देखते हुए भिक्षु साधक की अविद्या प्रहीण हो जाती है तथा विद्या उत्पन्न हो जाती है॥'' ●

८१. सम्बहुलभिक्षुसूत्र : : दुःखज्ञानहेतु धर्मसाधना

८२. ...तब बहुत से भिक्षु भगवान् के सम्मुख जा कर...यों निवेदन करने लगे—''भन्ते! यहाँ बहुत से दूसरे सम्प्रदायों में दीक्षित परिव्राजक हम से यह प्रश्न करते हैं—'आप लोग श्रमण गौतम द्वारा निर्दिष्ट धर्मसाधना में ही क्यों लगे रहते हैं?' ऐसा पूछे जाने पर हम उन को इस का यही उत्तर देते हैं—'आयुष्मानो! दुःखविषयक यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिये हम भगवान् द्वारा निर्दिष्ट धर्मसाधना में लगे हुए हैं'। भन्ते! हम उन्हें यह उत्तर दे कर आप के विषय में यथार्थ ही बताते हैं ना? ऐसा कह कर हम आप पर असत्य आरोप तो नहीं लगाते? हमारा यह उत्तर आप के धर्म के अनुकूल ही है ना? या आप के सिद्धान्तों के विरुद्ध कोई नया निन्दनीय विवाद तो खड़ा नहीं कर रहे?''

''हाँ, भिक्षुओ! ऐसा उत्तर दे कर तुम लोगों ने मेरे सिद्धान्त के अनुकूल ही किया,

मं अभूतेन अब्भाचिक्खथ, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरोथ, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छति। दुक्खस्स हि, भिक्खवे, परिञ्ञत्थं मयि ब्रह्मचरियं वुस्सति। सचे पन वो, भिक्खवे, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एवं पुच्छेय्युं—'कतमं पन तं, आवुसो, दुक्खं, यस्स परिञ्ञाय समणे गोतमे ब्रह्मचरियं वुस्सती' ति? एवं पुट्ठा तुम्हे, भिक्खवे, तेसं अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं ब्याकरेय्याथ—'चक्खु खो, आवुसो, दुक्खं, तस्स परिञ्ञाय भगवति ब्रह्मचरियं वुस्सति। रूपा...पे०...यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि दुक्खं। तस्स परिञ्ञाय भगवति ब्रह्मचरियं वुस्सति...पे०...मनो दुक्खो...पे०...यम्पिदं [B.278] मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि दुक्खं। तस्स परिञ्ञाय भगवति ब्रह्मचरियं वुस्सति। इदं खो तं, आवुसो, दुक्खं, [R.52] तस्स परिञ्ञाय भगवति ब्रह्मचरियं वुस्सती' ति। एवं पुट्ठा तुम्हे, भिक्खवे, तेसं अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं ब्याकरेय्याथा'' ति॥ •

८२. लोकपञ्हासुत्तं

[N.49] ८३. अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—

'''लोको, लोको' ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, लोको ति वुच्चती'' ति?

'''लुज्जती' ति खो, भिक्खु, तस्मा लोको ति वुच्चति। किञ्च लुज्जति? चक्खु

कोई मिथ्या या अयथाभूत तथा निन्दास्पद बात नही की; क्यों कि तुम लोग दुःख को भली भाँति समझने के लिये ही मेरे द्वारा निर्दिष्ट धर्म का पालन कर रहे हो। हाँ, अब कभी वे परिव्राजक तुम लोगों से यह भी प्रश्न कर सकते हैं—'वह दुःख क्या है, जिस को भली भाँति समझने के लिये तुम उन श्रमण गौतम द्वारा निर्दिष्ट धर्म के पालन में लगे रहते हो?' ऐसा पूछे जाने पर तुम्हें उन को यह उत्तर देना चाहिये—'आयुष्मानो! चक्षु ही वह दुःख है, रूप ही...चक्षुःसंस्पर्शजन्य सुखदुःखादि वेदनाएँ वह दुःख है जिसे भली भाँति जानने कर भगवदुपदिष्ट धर्म के पालन में हम तत्पर रहते हैं। मन...मनोधर्म...मनोविज्ञान... मनःसंस्पर्श...मनःसंस्पर्शजन्य वेदनाएँ...पूर्ववत्...धर्म के पालन में तत्पर रहते हैं।' उक्त प्रश्न पूछे जाने पर, तुम्हें उन को यह उत्तर देना चाहिये॥'' •

८२. लोकप्रश्नसूत्र : : 'लोक' क्या है?

८३. ...कोई भिक्षु...भगवान् से यों बोला—''भन्ते! यहाँ 'लोक' 'लोक'—ऐसा बोला जाता है, भन्ते! यह 'लोक' क्या है?''

खो, भिक्खु, लुज्जति। रूपा लुज्जन्ति, चक्खुविञ्ञाणं लुज्जति, चक्खुसम्फस्सो लुज्जति, यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि लुज्जति...पे०...जिव्हा लुज्जति...पे०...मनो लुज्जति...धम्मा लुज्जन्ति...मनोविञ्ञाणं लुज्जति...मनोसम्फस्सो लुज्जति, यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि लुज्जति। लुज्जती ति खो, भिक्खु, तस्मा लोको ति वुच्चती'' ति॥ ●

८३. फग्गुनपञ्हासुत्तं

८४. अथ खो आयस्मा फग्गुनो...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा फग्गुनो भगवन्तं एतदवोच—

''अत्थि नु खो, भन्ते, तं चक्खु, येन चक्खुना अतीते बुद्धे परिनिब्बुते छिन्नपपञ्चे छिन्नवटुमे परियादिन्नवट्टे सब्बदुक्खवीतिवट्टे पञ्ञापयमानो पञ्ञापेय्य...पे०...अत्थि नु खो, भन्ते, सा जिव्हा, याय जिव्हाय अतीते बुद्धे परिनिब्बुते छिन्नपपञ्चे छिन्नवटुमे परियादिन्नवट्टे सब्बदुक्खवीतिवट्टे पञ्ञापयमानो पञ्ञापेय्य...पे०...अत्थि नु खो, सो भन्ते, मनो, येन मनेन अतीते बुद्धे परिनिब्बुते छिन्नपपञ्चे छिन्नवटुमे परियादिन्नवट्टे सब्बदुक्खवीतिवट्टे पञ्ञापयमानो पञ्ञापेय्या'' ति?

''नत्थि खो तं, फग्गुन, चक्खु, येन चक्खुना अतीते बुद्धे परिनिब्बुते छिन्नपपञ्चे छिन्नवटुमे परियादिन्नवट्टे सब्बदुक्खवीतिवट्टे पञ्ञापयमानो पञ्ञापेय्य...पे०... [B.279] नत्थि खो सा, फग्गुन, जिव्हा, याय जिव्हाय अतीते बुद्धे परिनिब्बुते छिन्नपपञ्चे छिन्नवटुमे परियादिन्नवट्टे सब्बदुक्खवीतिवट्टे पञ्ञापयमानो पञ्ञापेय्य [N.50, R.53]

''भिक्षु! क्यों कि यह 'लुज्जित' (नष्ट-भ्रष्ट) होता रहता है, अत: इसे 'लोक' कहते हैं। क्या नष्ट भ्रष्ट होता रहता है? चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षु:संस्पर्श, चक्षु:संस्पर्शजन्य वेदनाएँ नष्ट भ्रष्ट होती रहती हैं। ...पूर्ववत्...यहाँ मन, मनोधर्म, मनोविज्ञान, मन:संस्पर्श, मन:संस्पर्शजन्य वेदनाएँ नष्ट भ्रष्ट होती रहती हैं, अत: इसे 'लोक' कहा जाता है॥'' ●

८३. फाल्गुनप्रश्नसूत्र : : परिनिर्वाणप्राप्त बुद्ध चक्षु से अदर्शनीय

८४. ...तब आयुष्मान् फाल्गुन ने...एक ओर बैठकर भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—''भन्ते! ऐसा भी किसी का कोई चक्षु है जिस से परिनिर्वाणप्राप्त, भवपरम्परारूप वृन्त से टूटे, जगत्प्रपञ्च से दूर हुए, समाप्त हुई जन्मपरम्परा वाले, सर्वदु:खातीत बुद्ध को कोई देखना चाहे तो देख सके? ...है कोई जिह्वा...काय...मन जिस मन के द्वारा अतीत...बुद्ध को जाना जा सके?''

...पे०...नत्थि खो सो, फग्गुन, मनो, येन मनेन अतीते बुद्धे परिनिब्बुते छिन्नपपञ्चे छिन्नवटुमे परियादिन्नवट्टे सब्बदुक्खवीतिवट्टे पञ्ञापयमानो पञ्ञापेय्या'' ति॥

गिलानवग्गो ततियो॥

तस्सुद्दानं

गिलानेन दुवे वुत्ता, राधेन अपरे तयो।
अविज्जाय च द्वे वुत्ता, भिक्खु लोको च फग्गुनो ति॥

''फाल्गुन! ऐसा कोई चक्षु, जिह्वा...काय...या मन नहीं है जिस के सहारे कोई अतीत बुद्ध को देखना या...जानना चाहे तो देख या जान सके''॥

ग्लानवर्ग तृतीय सम्पन्न॥

इस तृतीय ग्लानवर्ग में ये १० सूत्र व्याख्यात हैं— १. प्रथम ग्लानसूत्र, २. द्वितीय ग्लानसूत्र, ३. राधअनित्यसूत्र, ४. राधदुःखसूत्र, ५. राधअनात्मसूत्र, ६. प्रथम अविद्याप्रहाणसूत्र, ७. द्वितीय अविद्याप्रहाणसूत्र, ८. सम्बहुलभिक्षुसूत्र, ९. लोकप्रश्नसूत्र, १०. फाल्गुनप्रश्नसूत्र॥

४. छन्नवग्गो चतुत्थो

८४. पलोकधम्मसुत्तं

८५. सावत्थिनिदानं। अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच— "'लोको, लोको' ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, लोको ति वुच्चती" ति?

"यं खो, आनन्द, पलोकधम्मं, अयं वुच्चति अरियस्स विनये लोको। किञ्च, आनन्द, पलोकधम्मं? चक्खु खो, आनन्द, पलोकधम्मं, रूपा पलोकधम्मा, चक्खुविञ्ञाणं पलोकधम्मं, चक्खुसम्फस्सो पलोकधम्मो, यम्पिदं चक्खुसम्फस्स-पच्चया ...पे०...तं पि पलोकधम्मं...पे०...जिव्हा पलोकधम्मा, रसा पलोकधम्मा, जिव्हाविञ्ञाणं पलोकधम्मं, जिव्हासम्फस्सो पलोकधम्मो, यम्पिदं जिव्हासम्फस्स-पच्चया...पे०...तं पि पलोकधम्मं...पे०...मनो पलोकधम्मो, धम्मा पलोकधम्मा, मनोविञ्ञाणं पलोकधम्मं, मनोसम्फस्सो पलोकधम्मो, यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि पलोकधम्मं। यं खो, आनन्द, पलोकधम्मं, अयं वुच्चति अरियस्स विनये लोको" ति॥ ●

८५. सुञ्ञतलोकसुत्तं

८६. अथ खो आयस्मा आनन्दो...पे०...भगवन्तं एतदवोच—[B.280, R.54] "'सुञ्ञो लोको, सुञ्ञो लोको' ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, 'सुञ्ञो लोको' ति वुच्चती" ति?

---

४. छन्नवर्ग चतुर्थ

८४. प्रलोकधर्मसूत्र : : 'लोक' क्यों कहा जाता है?

८५. ...**श्रावस्ती में** ही...। तब आयुष्मान् आनन्द ने...भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! यहाँ लोग 'लोक' 'लोक'—ऐसा कहते रहते हैं, भन्ते! यह 'लोक' क्या कहलाता है?"

"आनन्द! जो विशेषत: विनशनस्वभाव वाला है, वह हमारे धर्म (आर्यविनय) में 'लोक' कहलाता है। आनन्द! यह प्रलोकधर्म (विनशनस्वभाव) क्या है? आनन्द! यह चक्षु प्रलोकधर्म है; रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षु:संस्पर्श तथा चक्षु:संस्पर्शजन्य सुखदु:खादि वेदनाएँ प्रलोकधर्म हैं। ...जिह्वा...काय...मन, मनोधर्म, मन:संस्पर्श तथा मन:संस्पर्श-प्रत्ययजनित सुखदु:खादि वेदनाएँ प्रलोकधर्म हैं। इस तरह, आनन्द! यह प्रलोकधर्म ही हमारे आर्यविनय में 'लोक' कहलाता है"॥ ●

[N.51] ''यस्मा च खो, आनन्द, सुञ्ञं अत्तेन वा अत्तनियेन वा तस्मा सुञ्ञो लोको ति वुच्चति। किञ्च, आनन्द, सुञ्ञं अत्तेन वा अत्तनियेन वा? चक्खु खो, आनन्द, सुञ्ञं अत्तेन वा अत्तनियेन वा। रूपा सुञ्ञा अत्तेन वा अत्तनियेन वा, चक्खुविञ्ञाणं सुञ्ञं अत्तेन वा अत्तनियेन वा, चक्खुसम्फस्सो सुञ्ञो अत्तेन वा अत्तनियेन वा...पे०...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि सुञ्ञं अत्तेन वा अत्तनियेन वा। यस्मा च खो, आनन्द, सुञ्ञं अत्तेन वा अत्तनियेन वा तस्मा सुञ्ञो लोको ति वुच्चती'' ति॥ •

८६. सङ्खित्तधम्मसुत्तं

८७. एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—''साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु, यमहं भगवतो धम्मं सुत्वा एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरेय्यं'' ति।

''तं किं मञ्ञसि, आनन्द, चक्खु निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति?

''अनिच्चं, भन्ते''।

''यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा'' ति?

''दुक्खं, भन्ते''।

''यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

---

८५. शून्यत्वलोकसूत्र : : लोक शून्य है

८६. ...**आनन्द**—''भन्ते! धर्मचर्चा में लोग 'लोक शून्य है'—ऐसा कहते रहते हैं, भन्ते! यह 'शून्य लोक' क्या कहलाता है?''

भगवान्—''आनन्द! इस लोक का न कोई आत्मा है, न आत्मीय। अर्थात् यह आत्मत्व एवं आत्मीयत्व से शून्य है, अत: यह (लोक) 'शून्य लोक' कहलाता है। आनन्द! यह आत्मत्व एवं आत्मीयत्व से शून्यता क्या है? आनन्द! यहाँ चक्षु, रूप, चक्षु-विज्ञान, चक्षु:संस्पर्श एवं चक्षु:संस्पर्श प्रत्ययजनित सुखदु:खादि वेदनाएँ आत्मत्व एवं आत्मीयत्व से शून्य हैं, अत: यह (लोक) 'शून्य लोक' कहलाता है''॥ •

८६. संक्षिप्तधर्मसूत्र : : अनित्य, दु:ख

८७. ...**आनन्द**—''भन्ते! आप मुझे ऐसे संक्षिप्त धर्म का उपदेश करें, जिसे सुन कर मैं एकाकी...पूर्ववत्...धर्मसाधना कर सकूँ!''

''तो क्या मानते हो, आनन्द! यह चक्षु नित्य है या अनित्य?''

"रूपा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते"।

"चक्खुविञ्ञाणं...पे०...यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"। [R.55]

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"...पे०...।

"जिव्हा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते"...पे०...। [N.52]

"जिव्हाविञ्ञाणं...पे०...जिव्हासम्फस्सो...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"। [B.281]

"एवं पस्सं, आनन्द, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति ...पे०...चक्खुसम्फस्से पि निब्बिन्दति...पे०...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति।'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति॥ •

"अनित्य है, भन्ते...पूर्ववत्...*(विस्तार कर लें)*।

ऐसा जानता समझता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक चक्षु में भी...मनःसंस्पर्शजन्य सुखदुःखादि वेदनाओं में भी अरुचि उत्पन्न कर लेता है...पूर्ववत्...'मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है'--ऐसा जान लेता है"॥ •

८७. छन्नसुत्तं

८८. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च महाचुन्दो आयस्मा च छन्नो गिज्झकूटे पब्बते विहरन्ति। तेन खो पन समयेन येन आयस्मा छन्नो आबाधिको होति दुक्खितो बाळ्हगिलानो। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येनायस्मा [R.56] महाचुन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महाचुन्दं एतदवोच— "आयामावुसो चुन्द, येनायस्मा छन्नो तेनुपसङ्कमिस्साम गिलानपुच्छका" ति। "एवमावुसो" ति खो आयस्मा महाचुन्दो आयस्मतो सारिपुत्तस्स पच्चस्सोसि।

अथ खो आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च महाचुन्दो येनायस्मा छन्नो [N.53] तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदिंसु। निसज्ज खो आयस्मा सारिपुत्तो आयस्मन्तं छन्नं एतदवोच—"कच्चि ते, आवुसो छन्न, खमनीयं, कच्चि यापनीयं, कच्चि दुक्खा वेदना पटिक्कमन्ति नो अभिक्कमन्ति, पटिक्कमोसानं पञ्ञायति नो अभिक्कमो" ति?

"न मे, आवुसो सारिपुत्त, खमनीयं न यापनीयं, बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति नो पटिक्कमन्ति, अभिक्कमोसानं पञ्ञायति नो पटिक्कमो। सेय्यथापि, आवुसो, बलवा पुरिसो तिण्हेन सिखरेन मुद्धनि अभिमत्थेय्य; एवमेव खो, आवुसो,

---

८७. छन्नसूत्र : : अनात्मवाद

८८. एक समय भगवान् बुद्ध **राजगृह के** वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र, आयुष्मान् महाचुन्द एवं आयुष्मान् छन्न भी गृध्रकूट पर्वत पर धर्मसाधना कर रहे थे। तब कभी आयुष्मान् छन्न किसी गम्भीर रोग से आक्रान्त हो गये। यह जान कर आयुष्मान् सारिपुत्र एक दिन सायङ्काल ध्यानभावना से उठ कर आयुष्मान् चुन्द के पास जा कर उस से कहने लगे--"आयुष्मन् चुन्द! सुना है, आयुष्मान् छन्न गम्भीर रोग से आक्रान्त हैं, चलो, उन से कुशलक्षेम पूछने हेतु चला जाय।" आयुष्मान् चुन्द ने भी स्वीकृति दे दी।

तब आयुष्मान् सारिपुत्र एवं आयुष्मान् चुन्द रोगाक्रान्त छन्न भिक्षु के यहाँ गये। जा कर प्रज्ञप्त आसन पर बैठ कर उस से यों कुशलक्षेम पूछने लगे—"आयुष्मन् छन्न! तुम्हारा यह रोग कुछ कम हो रहा है? इस रोग की वेदनाएँ कुछ कम अनुभव हो रही हैं? या बढती जा रही हैं?"

(छन्न बोले—) "नहीं आयुष्मन् सारिपुत्र! न मेरा रोग कम हो रहा है, न इस से होने वाली दुःखद वेदनाएँ ही कम हो रही हैं। जैसे कोई बलवान् सिर पर किसी हथौड़े

अधिमत्ता वाता मुद्धनि ऊहनन्ति। न मे, आवुसो, खमनीयं, न यापनीयं [B.282] ...पे०...नो पटिक्कमो। सेय्यथापि, आवुसो, बलवा पुरिसो दळ्हेन वरत्तक्खण्डेन सीसे सीसवेठं ददेय्य; एवमेव खो, आवुसो, अधिमत्ता सीसे सीसवेदना। न मे, आवुसो, खमनीयं, न यापनीयं...पे०...नो पटिक्कमो। सेय्यथापि, आवुसो, दक्खो गोघातको वा गोघातकन्तेवासी वा तिण्हेन गोविकन्तनेन कुच्छिं परिकन्तेय्य; एवमेव खो, अधिमत्ता वाता कुच्छिं परिकन्तन्ति। न मे, आवुसो, खमनीयं, न यापनीयं...पे०...नो पटिक्कमो। सेय्यथापि, आवुसो, द्वे बलवन्तो पुरिसा दुब्बलतरं पुरिसं नानाबाहासु गहेत्वा [R.57] अङ्गारकासुया सन्तापेय्युं सम्परितापेय्युं; एवमेव खो, आवुसो, अधिमत्तो कायस्मिं डाहो। न मे, आवुसो, खमनीयं, न यापनीयं, बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति नो पटिक्कमन्ति, अभिक्कमोसानं पञ्ञायति नो पटिक्कमो। सत्थं, आवुसो सारिपुत्त, आहरिस्सामि, नावकङ्खामि जीवितं'' ति।

''मा आयस्मा छन्नो सत्थं आहरेसि। यापेतायस्मा छन्नो, यापेन्तं मयं आयस्मन्तं छन्नं इच्छाम। सचे आयस्मतो छन्नस्स नत्थि सप्पायानि भोजनानि, अहं आयस्मतो छन्नस्स सप्पायानि भोजनानि परियेसिस्सामि। सचे आयस्मतो छन्नस्स नत्थि सप्पायानि भेसज्जानि, अहं आयस्मतो छन्नस्स सप्पायानि भेसज्जानि परियेसिस्सामि। सचे आयस्मतो छन्नस्स नत्थि पतिरूपा उपट्ठाका, अहं आयस्मन्तं छन्नं उपट्ठहिस्सामि। मा आयस्मा छन्नो सत्थं आहरेसि। यापेतायस्मा छन्नो, यापेन्तं मयं आयस्मन्तं छन्नं इच्छामा'' ति।

से चोट कर रहा हो, इस प्रकार मेरे शिर में कष्टप्रद वातजन्य वेदनाएँ उठ रही हैं, जिन्हें मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ। या जैसे कोई बलवान् पुरुष रस्सी से किसी के सिर को दृढ़ता से बाँधने लगे, उसी के समान मुझे ये वेदनाएँ हो रही हैं, जिन्हें मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ। या जैसे कोई कुशल पशुवधक तीक्ष्ण छुरे से किसी का उदर फाड़ दे, वैसी ही वेदनाएँ इस समय मैं अनुभव कर रहा हूँ। या जैसे कोई दो बलवान् पुरुषों द्वारा किसी दुर्बल पुरुष की दोनों भुजाएँ बलपूर्वक पकड़ कर प्रज्वलित अग्निकुण्ड पर बार बार लाने ले जाने से उस को प्रबलदाह होता है, उसी तरह मेरे समस्त शरीर में असह्य दाह हो रहा है। इसे मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ। अत: मैं तो, आयुष्मानो! कोई शस्त्र लाऊँगा तथा उस से आत्महत्या कर लूँगा। मैं अब इस असह्य वेदना से जीवित रहने में असमर्थ हूँ।''

(आयुष्मान् सारिपुत्र—) ''आप, आयुष्मन् छन्न, शस्त्र का सहारा न लें; इस असह्य वेदना को भी सहन कीजिये। हम ऐसा ही चाहते हैं। यदि आप को अनुकूल भोजन न मिलता हो तो मैं आपके लिये अनुकूल भोजन ला दूँगा। यदि आपको अनुकूल

[N.54] ''न मे, आवुसो सारिपुत्त, नत्थि सप्पायानि भोजनानि; अत्थि मे सप्पायानि भोजनानि। न पि मे नत्थि सप्पायानि भेसज्जानि; अत्थि मे सप्पायानि भेसज्जानि। न पि मे नत्थि पतिरूपा उपट्ठाका; अत्थि मे पतिरूपा उपट्ठाका। अपि च मे, आवुसो, सत्था परिचिण्णो दीघरत्तं मनापेनेव, नो अमनापेन। एतं हि, आवुसो, सावकस्स पतिरूपं यं सत्थारं परिचरेय्य मनापेनेव, नो अमनापेन। 'अनुपवज्जं छन्नो भिक्खु सत्थं आहरिस्सती' ति—एवमेतं, आवुसो सारिपुत्त, धारेही'' ति।

[B.283] ''पुच्छेय्याम मयं आयस्मन्तं छन्नं कञ्चिदेव देसं, सचे आयस्मा छन्नो ओकासं करोति पञ्हस्स वेय्याकरणाया'' ति।

[R.58] ''पुच्छावुसो सारिपुत्त, सुत्वा वेदिस्सामा'' ति।

''चक्खुं, आवुसो छन्न, चक्खुविञ्ञाणं चक्खुविञ्ञाणविञ्ञातब्बे धम्मे 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्ससि...पे०...जिव्हं, आवुसो छन्न, जिव्हाविञ्ञाणं जिव्हाविञ्ञाणविञ्ञातब्बे धम्मे 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्ससि...पे०...मनं, आवुसो छन्न, मनोविञ्ञाणं मनोविञ्ञाणविञ्ञातब्बे धम्मे 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्ससी'' ति?

ओषधियाँ न मिलती हों तो मैं उन की भी व्यवस्था कर दूँगा। यदि आप की परिचर्या भली भाँति न हो रही हो तो मैं स्वयं आप की परिचर्या करूँगा। अत: आप इस वेदना को कुछ समय और सहन करें। हम आप को स्वस्थ होते हुए देखना चाहते हैं''।

''आयुष्मन् सारिपुत्र! ऐसा नहीं है कि मुझे अनुकूल पथ्य, अनुकूल ओषधियाँ तथा अनुकूल परिचर्या नहीं मिल रही है। सब कुछ अनुकूल है; परन्तु शास्ता मुझे अत्यधिक प्रिय हैं, मैं स्वस्थ रह कर उन की अधिक से अधिक सेवा करना चाहता हूँ। प्रत्येक शिष्य का यही कर्तव्य भी होता है। यह क्या हुआ कि हमारे रुग्ण होने के कारण, उलट कर, शास्ता को ही हमारी परिचर्या का निरन्तर ध्यान रखना पड़े। अत: मैं, स्वयं पर से यह कलङ्क हटाने के लिये, अब शस्त्र का ही सहारा लूँगा। आयुष्मन् सारिपुत्र! आप मेरा यह दृढ़ निश्चय समझ लें।''

''आयुष्मन् छन्न! हम इस प्रसङ्ग में तुम से कुछ प्रश्न करना चाहते हैं, यदि कहो तो हम ऐसा करें?''

''हाँ, पूछिये। यदि मेरी समझ में आयगा तो उत्तर भी दूँगा।''

''आयुष्मन् छन्न! आप चक्षु, चक्षुर्विज्ञान या चक्षुर्विज्ञानविज्ञेय धर्म के विषय में 'यह मेरा है', 'यह मैं हूँ', या 'यह मेरी आत्मा है'—ऐसा मानते हो? आयुष्मन् छन्न! जिह्वा...काय...मन...के विषय में भी ऐसा मानते हो?''

''चक्खुं, आवुसो सारिपुत्त, चक्खुविञ्ञाणं चक्खुविञ्ञाणविञ्ञातब्बे धम्मे 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सामि...पे०...जिव्हं, आवुसो सारिपुत्त, जिव्हाविञ्ञाणं जिव्हाविञ्ञाणविञ्ञातब्बे धम्मे 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सासि...पे०...मनं, आवुसो सारिपुत्त, मनोविञ्ञाणं मनोविञ्ञाणविञ्ञातब्बे धम्मे 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सामी'' ति।

''चक्खुस्मिं, आवुसो छन्न, चक्खुविञ्ञाणे चक्खुविञ्ञाणविञ्ञातब्बेसु धम्मेसु किं दिस्वा किं अभिञ्ञाय चक्खुं चक्खुविञ्ञाणं चक्खुविञ्ञाणविञ्ञातब्बे धम्मे 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्ससि...पे०...जिव्हाय, आवुसो छन्न, जिव्हाविञ्ञाणे जिव्हाविञ्ञाणविञ्ञातब्बेसु धम्मेसु किं दिस्वा किं अभिञ्ञाय जिव्हं जिव्हाविञ्ञाणं जिव्हाविञ्ञाणविञ्ञातब्बे धम्मे 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्ससि? मनस्मिं, आवुसो छन्न, मनोविञ्ञाणे मनोविञ्ञाणविञ्ञातब्बेसु धम्मेसु किं दिस्वा किं अभिञ्ञाय मनं मनोविञ्ञाणं मनोविञ्ञाणविञ्ञातब्बे [N.55] धम्मे 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्ससी'' ति?

''चक्खुस्मिं, आवुसो सारिपुत्त, चक्खुविञ्ञाणे चक्खुविञ्ञाणविञ्ञातब्बेसु धम्मेसु निरोध दिस्वा निरोधं अभिञ्ञाय चक्खुं चक्खुविञ्ञाणं चक्खुविञ्ञाण-विञ्ञातब्बे धम्मे 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सामि...पे०... जिव्हाय, आवुसो सारिपुत्त, जिव्हाविञ्ञाणे जिव्हाविञ्ञाणविञ्ञातब्बेसु [B.284] धम्मेसु निरोध दिस्वा निरोधं अभिञ्ञाय जिव्हं जिव्हाविञ्ञाणं जिव्हाविञ्ञाण-विञ्ञातब्बे धम्मे 'नेतं मम, [R.59] नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सामि ...पे०...मनस्मिं, आवुसो सारिपुत्त, मनोविञ्ञाणे मनोविञ्ञाणविञ्ञातब्बेसु धम्मेसु निरोधं दिस्वा निरोधं अभिञ्ञाय मनं मनोविञ्ञाणं मनोविञ्ञाणविञ्ञातब्बे धम्मे 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सामी'' ति।

''हाँ! आयुष्मन् सारिपुत्र! मैं इन चक्षु...पूर्ववत्...मन...के विषय में ऐसा ही मानता हूँ।''

''आयुष्मन् छन्न! आप इन चक्षु...पूर्ववत्...मन...के विषय में क्या विशेषता देख कर ऐसा मानते हो?

''आयुष्मन् सारिपुत्र! मैं इन चक्षु...पूर्ववत्...मन के विषय में 'निरोध' को देख कर, 'निरोध' को जान कर 'ये मेरे नहीं हैं', 'ये मैं नहीं हूँ', या 'ये मेरी आत्मा नहीं है'— ऐसा मानता हूँ।

एवं वुत्ते, आयस्मा महाचुन्दो आयस्मन्तं छन्नं एतदवोच—"तस्मातिह, आवुसो छन्न, इदं पि तस्स भगवतो सासनं निच्चकप्पं साधुकं मनसि कातब्बं—'निस्सितस्स चलितं, अनिस्सितस्स चलितं नत्थि। चलिते असति पसद्धि होति। पसद्धिया सति नति न होति। नतिया असति आगतिगति न होति। आगतिगतिया असति चुतूपपातो न होति। चुतूपपाते असति नेविध न हुरं न उभयमन्तरेन। एसेवन्तो दुक्खस्सा'" ति।

अथ खो आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च महाचुन्दो आयस्मन्तं छन्नं इमिना ओवादेन ओवदित्वा उट्ठायासना पक्कमिंसु। अथ खो आयस्मा छन्नो अचिरपक्कन्तेसु तेसु आयस्मन्तेसु सत्थं आहरेसि।

अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"आयस्मता, भन्ते, छन्नेन सत्थं आहरितं। तस्स का गति? को अभिसम्परायो" ति?

"ननु ते, सारिपुत्त, छन्नेन भिक्खुना सम्मुखा येव अनुपवज्जता ब्याकता" ति?

आयुष्मान् छन्न द्वारा ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् चुन्द उन से यों बोले—"आयुष्मन् छन्न! जब आप ऐसा मान रहे हो तो आप को भगवान् का यह उपदेश भी भली भाँति ध्यान में रखना चाहिये—"आश्रित (निःश्रित) में ही स्पन्दन (गति) होता है, अनाश्रित में नहीं। चलन न होने पर प्रश्रब्धि (=शान्ति, गम्भीरता) होती है, तथा प्रश्रब्धि होने पर मन का किधर भी झुकाव (=नति) नहीं होता, ऐसा झुकाव न होने पर, साधक का अगम्य की ओर गमन नहीं हुआ करता, इस अगम्य की ओर गमन न होने से साधक के च्युति (मरण) एवं उत्पाद (जन्म) नहीं होते। यह जन्म मरण न होने पर साधक की न यहाँ, न वहाँ, न दोनों के बीच में ही कोई स्थिति रहती है। यही दुःख का अन्त (=निर्वाण) कहलाता है।"

आयुष्मान् सारिपुत्र एवं आयुष्मान् चुन्द—दोनों ही आयुष्मान् छन्न को यों अववाद (उचित परामर्श) दे कर आसन से उठ कर अपने साधनास्थल पर चले आये। उन दोनों के जाने के कुछ ही समय बाद आयुष्मान् छन्न ने अपने पर शस्त्रप्रहार कर लिया।

उधर, आयुष्मान् सारिपुत्र भगवान् के सम्मुख गये, तथा उन्हें प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। तथा उन्होंने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! आयुष्मान् छन्न ने अपने शरीर पर शस्त्रप्रहार कर लिया। अब उस की क्या गति तथा उस का पुनर्जन्म कहाँ होगा?"

"सारिपुत्र! छन्न भिक्खु ने तुम को निर्दोषता बतायी थी?"

"अत्थि, भन्ते, पुब्बविज्जनं नाम वज्जिगामो। तत्थायस्मतो छन्नस्स [N.56] मित्तकुलानि सुहज्जकुलानि उपवज्जकुलानी" ति।

"होन्ति हेते, सारिपुत्त, छन्नस्स भिक्खुनो मित्तकुलानि सुहज्जकुलानि उपवज्ज-कुलानि। न खो पनाहं, सारिपुत्त, एत्तावता सउपवज्जो ति वदामि। यो खो, [R.60] सारिपुत्त, तं च कायं निक्खिपति अञ्ञं च कायं उपादियति तमहं सउपवज्जो ति वदामि। तं छन्नस्स भिक्खुनो नत्थि। 'अनुपवज्जं छन्नेन भिक्खुना सत्थं आहरितं' ति—एवमेतं, सारिपुत्त, धारेही" ति॥

●

८८. पुण्णसुत्तं

८९. अथ खो आयस्मा पुण्णो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उप-[B.285] सङ्कमित्वा...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा पुण्णो भगवन्तं एतदवोच—"साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु, यमहं भगवतो धम्मं सुत्वा एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरेय्यं" ति।

"सन्ति खो, पुण्ण, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अभिनन्दतो अभिवदतो अज्झोसाय तिट्ठतो उप्पज्जति नन्दी। 'नन्दिसमुदया दुक्ख-समुदयो, पुण्णा' ति वदामि...पे०...सन्ति खो, पुण्ण, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा...पे०...सन्ति

"हाँ, भन्ते! आयुष्मान् छन्न के पुब्बविज्झन नामक वज्जिग्राम में प्रव्रज्यापूर्व के मित्रकुल, सुहृत्कुल एवं उपव्रज्य कुल रहते थे जहाँ वह आता जाता रहता था।"

"रहते होंगे, सारिपुत्र! इतने से तो मैं छन्न की सदोषता नहीं मानता। सारिपुत्र! जो एक शरीर छोड़ता है, दूसरा शरीर धारण करता है, उसी को मैं 'उपव्रज्य' मानता हूँ। अत: सारिपुत्र! 'छन्न भिक्षु ने अनुपव्रज्य रहते हुए ही अपने शरीर पर शस्त्रप्रहार किया है'—ऐसा ही तुम्हें मानना चाहिये॥"

●

८८. पूर्णसूत्र : : धर्मप्रचार की सहिष्णुता

८९. ...तब आयुष्मान् पूर्ण भगवान् के सम्मुख गये...एक ओर बैठे आयुष्मान् पूर्ण ने भगवान् से यों निवेदन किया—"अच्छा हो, भन्ते! भगवान् मुझे धर्म का ऐसा संक्षिप्त उपदेश करें जिस के सहारे मैं एकाकी होकर एकान्त में...पूर्ववत्...उत्साहपूर्वक धर्मसाधना कर सकूँ।"

"पूर्ण! चक्षुर्विज्ञेय रूप इष्ट, सुन्दर, मनोमोहक...रागोत्पादक होते हैं। यदि कोई भिक्षु उन का अभिनन्दन करता है, उन में अभिनिवेश करता है, तब उस को उन में तृष्णा उत्पन्न होती है। 'पूर्ण! इस तृष्णा से ही दु:ख की उत्पत्ति होती है'—ऐसा मेरा मानना है।

खो, पुण्ण, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अभिनन्दतो अभिवदतो अज्झोसाय तिट्ठतो उप्पज्जति नन्दी। 'नन्दिसमुदया दुक्खसमुदयो, पुण्णा' ति वदामि।

"सन्ति खो, पुण्ण, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अनभिनन्दतो अनभिवदतो अनज्झोसाय तिट्ठतो निरुज्झति नन्दी। 'नन्दिनिरोधा दुक्खनिरोधो, पुण्णा' ति वदामि...पे०...सन्ति खो, पुण्ण, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा [N.57, R.61] कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अनभिनन्दतो अनभिवदतो अनज्झोसाय तिट्ठतो निरुज्झति नन्दी। 'नन्दिनिरोधा दुक्खनिरोधो, पुण्णा' ति वदामि।

"इमिना त्वं, पुण्ण, मया सङ्खित्तेन ओवादेन ओवदितो कतमस्मिं जनपदे विहरिस्ससी" ति?

"अत्थि, भन्ते, सुनापरन्तो नाम जनपदो, तत्थाहं विहरिस्सामी" ति।

"चण्डा खो, पुण्ण, सुनापरन्तका मनुस्सा; फरुसा खो, पुण्ण, सुनापरन्तका मनुस्सा। सचे तं, पुण्ण, सुनापरन्तका मनुस्सा अक्कोसिस्सन्ति परिभासिस्सन्ति, तत्र ते, पुण्ण, किन्ति भविस्सती" ति?

"सचे मं, भन्ते, सुनापरन्तका मनुस्सा अक्कोसिस्सन्ति परिभासिस्सन्ति, तत्र मे [B.286] एवं भविस्सति—'भद्दका वतिमे सुनापरन्तका मनुस्सा, सुभद्दका वतिमे

...जिह्वा...मन, मनोविज्ञेय धर्म इष्ट, सुन्दर...होते हैं...तृष्णा उत्पन्न होती है। 'पूर्ण! इस तृष्णा से ही दुःख की उत्पत्ति होती है'—ऐसा मेरा मानना है।

(इसके विपरीत) "पूर्ण! चक्षुर्विज्ञेय रूप इष्ट, सुन्दर, मनोमोहक होते हैं। ...पूर्ण! इन का जो अभिनन्दन अभिनिवेश नहीं करता, उसे इन में किसी प्रकार की तृष्णा नहीं होती। 'पूर्ण! तृष्णा के निरोध से दुःख का निरोध होता है'—ऐसा मेरा मानना है। ...जिह्वा...काय...मन इष्ट, कान्त, मनोमोहक...पूर्ववत्...तृष्णा के निरोध से दुख निरोध होता है'—ऐसा मेरा मानना है। पूर्ण! तुम मेरे इस संक्षिप्त धर्मोपदेश का आश्रय ले कर यथेच्छ धर्मसाधना के लिये किस जनपद में जाओगे?"

"भन्ते! मैं सूनापरन्त नामक जनपद में जा कर धर्मसाधना करूँगा।"

"अरे पूर्ण! सूनापरन्त जनपदवासी तो बहुत क्रोधी हैं, वे व्यवहार में बहुत रूक्ष हैं, वे यदि तुझे किसी प्रसङ्ग में गाली देंगे, तेरी निन्दा करेंगे, धमकायेंगे तो तूँ क्या करेगा?"

"भन्ते! वे सूनापरन्त जनपदवासी मेरे साथ उक्त दुर्व्यवहार करेंगे तो भी मुझे

सुनापरन्तका मनुस्सा, यं मे न यिमे पाणिना पहारं देन्ती' ति। एवमेत्थ, भगवा, भविस्सति; एवमेत्थ, सुगत, भविस्सती'' ति।

''सचे पन ते, पुण्ण, सुनापरन्तका मनुस्सा पाणिना पहारं दस्सन्ति, तत्र पन ते, पुण्ण, किन्ति भविस्सती'' ति?

''सचे मे, भन्ते, सुनापरन्तका मनुस्सा पाणिना पहारं दस्सन्ति, तत्र मे एवं भविस्सति—'भद्दका वतिमे सुनापरन्तका मनुस्सा, सुभद्दका वतिमे सुनापरन्तका मनुस्सा, यं मे न यिमे लेड्डुना पहारं देन्ती' ति। एवमेत्थ, भगवा, भविस्सति; एवमेत्थ, सुगत, भविस्सती'' ति।

''सचे पन ते, पुण्ण, सुनापरन्तका मनुस्सा लेड्डुना पहारं दस्सन्ति, तत्र पन ते, पुण्ण, किन्ति भविस्सती'' ति?

''सचे मे, भन्ते, सुनापरन्तका मनुस्सा लेड्डुना पहारं दस्सन्ति, तत्र मे एवं भविस्सति—'भद्दका वतिमे सुनापरन्तका मनुस्सा, सुभद्दका वतिमे सुनापरन्तका मनुस्सा, यं मे न यिमे दण्डेन पहारं देन्ती' ति। एवमेत्थ, भगवा, भविस्सति; एवमेत्थ, सुगत, भविस्सती'' ति। [R.62]

''सचे पन ते, पुण्ण, सुनापरन्तका मनुस्सा दण्डेन पहारं दस्सन्ति, तत्र पन ते, पुण्ण, किन्ति भविस्सती'' ति?

सन्तोष रहेगा, आश्वासन रहेगा कि ये मेरे साथ इतना ही दुर्व्यवहार कर रहे हैं; ये मुझे हाथ पैरों से, थप्पड़, मुक्का या लात तो नहीं मार रहे हैं, अत: ये लोग भले ही हैं। मेरे मन में, भन्ते! उन के प्रति यही शुभविचार रहेगा।''

''पूर्ण! यदि वे सूनापरन्त जनपदवासी हाथ पैरों से मारने लगेंगे तो तुम्हें कैसा लगेगा?''

''भन्ते! तब भी उन के प्रति मेरे मन में यही विचार होगा कि फिर भी ये भले ही हैं कि ये मुझे ढेले से मार कर अधिक कष्ट नहीं दे रहे हैं, केवल थप्पड़ मुक्का मार कर छोड़ दे रहे हैं।''

''पूर्ण! यदि वे कभी तुझे ढेले से मारने लगेंगे तो उन के प्रति तेरे मन में क्या विचार आयेंगे?''

''भन्ते! तब भी मैं उन के भलेपन को ही महत्त्व दूँगा, क्यों कि वे मुझे ढेले मार कर ही छोड़ दे रहे हैं; लाठी, डण्डे से तो मुझ पर आघात नहीं कर रहे हैं!''

''पूर्ण! यदि वे कभी तुझे लाठी-डण्डे से मारने लगेंगे तब उन के विषय में क्या सोचोगे?''

"सचे मे, भन्ते, सुनापरन्तका मनुस्सा दण्डेन पहारं दस्सन्ति, तत्र मे एवं [N.58] भविस्सति—'भद्दका वतिमे सुनापरन्तका मनुस्सा, सुभद्दका वतिमे सुनापरन्तका मनुस्सा, यं मे न यिमे सत्थेन पहारं देन्ती' ति। एवमेत्थ, भगवा, भविस्सति; एवमेत्थ, सुगत, भविस्सती" ति।

"सचे पन ते, पुण्ण, सुनापरन्तका मनुस्सा सत्थेन पहारं दस्सन्ति, तत्र पन ते, पुण्ण, किन्ति भविस्सती" ति?

"सचे मे, भन्ते, सुनापरन्तका मनुस्सा सत्थेन पहारं दस्सन्ति, तत्र मे एवं भविस्सति—'भद्दका वतिमे सुनापरन्तका मनुस्सा, सुभद्दका वतिमे सुनापरन्तका मनुस्सा, यं मं न यिमे तिण्हेन सत्थेन जीविता वोरोपेन्ती' ति। एवमेत्थ, भगवा, भविस्सति; एवमेत्थ, सुगत, भविस्सती" ति।

"सचे पन ते, पुण्ण, सुनापरन्तका मनुस्सा तिण्हेन सत्थेन जीविता वोरो- [B.287] पेस्सन्ति, तत्र पन ते, पुण्ण, किन्ति भविस्सती" ति?

"सचे मं, भन्ते, सुनापरन्तका मनुस्सा तिण्हेन सत्थेन जीविता वोरोपेस्सन्ति, तत्र मे एवं भविस्सति—'सन्ति खो तस्स भगवतो सावका कायेन च जीवितेन च अट्टीयमाना हरायमाना जिगुच्छमाना सत्थहारकं परियेसन्ति, तं मे इदं अपरियिट्ठञ्ञेव सत्थहारकं लद्धं' ति। एवमेत्थ, भगवा, भविस्सति; एवमेत्थ, सुगत, भविस्सती" ति।

"भन्ते! फिर भी उन का हित ही सोचूँगा कि ये मुझ पर शस्त्र से आघात नहीं कर रहे।"

"पूर्ण! यदि वे कभी तुझ पर शस्त्र से आघात करने लगें तो तुम क्या विचार करोगे?"

"तो भी, भन्ते! मैं उन के विषय में शुभविचार रखूँगा कि ये अब भी भले ही हैं कि ये मुझ पर शस्त्र से प्रहार कर छोड़ दे रहे हैं, ये मुझ पर प्राणघातक आक्रमण नहीं कर रहे।"

"पूर्ण! यदि कभी वे तुझ पर प्राणघातक आक्रमण कर दें और तुम्हारे प्राण हर लें तो तब तुम क्या करोगे?"

"तब भी, भन्ते! मेरे मन में यही शुभ विचार आयगा कि ये कितने भले हैं कि इन्होंने मुझ को अपने इस मलिन शरीर से मुक्ति दिला दी। हम भिक्षुजन तो अपने इस शरीर को सर्वथा अशुभ मान कर इस को शीघ्र त्यागने की बात सोचते ही रहते हैं। अच्छा हुआ, इन लोगों ने मुझ को यह सुअवसर दे दिया!"

"साधु साधु, पुण्ण! सक्खिस्ससि खो त्वं, पुण्ण, इमिना दमूपसमेन समन्नागतो सुनापरन्तस्मिं जनपदे वत्थुं। यस्स दानि त्वं, पुण्ण, कालं मञ्ञसी" ति।

अथ खो आयस्मा पुण्णो भगवतो वचनं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा सेनासनं संसामेत्वा पत्तचीवरमादाय येन [R.63] सुनापरन्तो जनपदो तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन सुनापरन्तो जनपदो तदवसरि। तत्र सुदं आयस्मा पुण्णो सुनापरन्तस्मिं जनपदे विहरति। अथ खो आयस्मा पुण्णो तेनेवन्तरवस्सेन पञ्चमत्तानि उपासकसतानि पटिवेदेसि। तेनेवन्तरवस्सेन पञ्चमत्तानि उपासिकासतानि पटिवेदेसि। तेनेवन्तरवस्सेन तिस्सो विज्जा सच्छाकासि। तेनेवन्तरवस्सेन परिनिब्बायि।

अथ खो सम्बहुला भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु...पे०...एकमन्तं [N.59] निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"यो सो, भन्ते, पुण्णो नाम कुलपुत्तो भगवता सङ्खित्तेन ओवादेन ओवदितो, सो कालङ्कतो। तस्स का गति को अभिसम्परायो" ति?

"पण्डितो, भिक्खवे, पुण्णो कुलपुत्तो। पच्चपादि धम्मस्सानुधम्मं। न च मं धम्माधिकरणं विहेठेसि। परिनिब्बुतो, भिक्खवे, पुण्णो कुलपुत्तो" ति॥ ●

"साधु, साधु, पूर्ण! तुम्हारे विचार बहुत उचित हैं। तुम इस संयमपूर्ण व्यवहार के कारण, उस क्रूर एवं रूक्ष सूनापरन्तक जनपद में भी शान्तिमय धर्मसाधना कर सकोगे। अब तुम जैसा उचित समझो वहाँ जा सकते हो?"

तब आयुष्मान् पूर्ण भगवान् का उपदेश शिरोधार्य कर तदनुसार आचरण का सङ्कल्प कर, आसन से उठ कर चारिकाहेतु चल दिये। यों वे क्रमश: चारिका करते हुए सूनापरन्त जनपद में पहुँचे। वहाँ रहकर शान्तिपूर्वक धर्मसाधना करने लगे।

यों, आयुष्मान् पूर्ण ने वहाँ धर्मसाधना करते हुए ही उस जनपद में अपने पाँच सौ उपासक बना लिये। उधर धर्मसाधना करते हुए तीनों विद्याओं का साक्षात्कार कर लिया। अन्त में, वे उसी वर्ष वहाँ परिनिर्वाण प्राप्त कर गये।

इसी समय बहुत से भिक्षु भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए। ...वहाँ उन्होंने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! जिस पूर्ण भिक्षु को आपने कुछ समय पूर्व संक्षिप्त धर्मोपदेश किया था, तथा जिस के आधार पर वह सूनापरन्त जनपद में धर्मसाधनाहेतु गया था, अब उस का देहपात हो चुका है। भन्ते! उस की क्या गति एवं कहाँ पुनर्जन्म होगा?"

"भिक्षुओ! वह पूर्ण कुलपुत्र तो धर्मज्ञ था। वह धर्म का धर्मानुसार पालन में

८९. बाहियसुत्तं

[B.288] ९०. अथ खो आयस्मा बाहियो येन भगवा तेनुपसङ्कमि...पे०... एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा बाहियो भगवन्तं एतदवोच—"साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु, यमहं भगवतो धम्मं सुत्वा एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरेय्यं" ति।

"तं किं मञ्ञसि, बाहिय, चक्खु निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

[R.64] "नो हेतं, भन्ते"।

"रूपा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते"...पे०...।

चक्खुविञ्ञाणं...चक्खुसम्फस्सो...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

निरन्तर तत्पर रहा। मेरे धर्मानुशासन का उस ने कभी निरादर नहीं किया। भिक्षुओ! उस पूर्ण कुलपुत्र ने तो निर्वाण प्राप्त कर लिया[१]"॥ •

८९. बाहियसूत्र : : अनित्य, दुःख

९०. ...तब कभी आयुष्मान् बाहिय भगवान् के सम्मुख...पूर्ववत्...यों निवेदन करने लगे—"भन्ते! अच्छा होता कि आप मुझे अपने धर्मों का ऐसा संक्षेप में उपदेश करते कि मैं उस के आधार पर एकान्त में...उत्साहपूर्वक साधना कर पाता!"

"तो क्या मानते हो, बाहिय! चक्षु नित्य है या अनित्य?" ...पूर्ववत्...।

---

१. यह सूत्र **मज्झिमनिकाय** के **उपरिपण्णासक**, (तृतीय भाग, ४५. पुण्णोवादसूत्र) में भी आया है, अतः वहाँ भी देखें। (बौ०भा०ग्रन्थमाला—२६)—अ०

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवं पस्सं, बाहिय, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति, [N.60] रूपेसु पि निब्बिन्दति, चक्खुविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, चक्खुसम्फस्से पि निब्बिन्दति ...पे०...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति॥

अथ खो आयस्मा बाहियो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो आयस्मा बाहियो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। "खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया" ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा बाहियो अरहतं अहोसी ति॥ •

१०. पठमएजासुत्तं

९१. "एजा, भिक्खवे, रोगो, एजा गण्डो, एजा सल्लं। तस्मातिह, [B.289, R.65]

"बाहिय! ऐसा मानते हुए श्रुतवान् आर्यश्रावक की चक्षु में भी अरुचि उत्पन्न होने लगती है, रूपों में भी...। वह जान जाता है कि मेरी भवपरम्परा क्षीण हो चुकी है, धर्मसाधना सफल हो चुकी है...अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है।"

तब आयुष्मान् भगवान् की इस देशना का अभिनन्दन, अनुमोदन कर आसन से उठ कर प्रणाम प्रदक्षिणा कर यथेच्छ चारिकाहेतु चल पड़ा। तब आयुष्मान् बाहिय कहीं एकान्त में बैठ कर...उत्साहपूर्वक वह धर्मसाधना करने लगे जिस के लिये कोई कुलपुत्र भली भाँति घर से बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, तथा तत्परता के साथ धर्मसाधना करते हुए उन धर्मों का स्वयं साक्षात्कार कर उपसम्पन्न हो कर उस साधना में तत्पर रहते हैं। यह साधना करते करते, अन्त में उसे ज्ञात हो जाता है—'मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो गयी है...मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं रहा'। तथा एक समय ऐसा आया कि इस आयुष्मान् बाहिय की ज्ञानी भी अर्हतों में गणना होने लगी॥ •

भिक्खवे, तथागतो अनेजो विहरति वीतसल्लो। तस्मातिह, भिक्खवे, भिक्खु चे पि आकङ्खेय्य 'अनेजो विहरेय्यं वीतसल्लो' ति, चक्खुं न मञ्ञेय्य, चक्खुस्मिं न मञ्ञेय्य, चक्खुतो न मञ्ञेय्य, चक्खु मे ति न मञ्ञेय्य; रूपे न मञ्ञेय्य, रूपेसु न मञ्ञेय्य, रूपतो न मञ्ञेय्य, रूपा मे ति न मञ्ञेय्य; चक्खुविञ्ञाणं न मञ्ञेय्य, चक्खुविञ्ञाणस्मिं न मञ्ञेय्य, चक्खुविञ्ञाणतो न मञ्ञेय्य, चक्खुविञ्ञाणं मे ति न मञ्ञेय्य; चक्खुसम्फस्सं न मञ्ञेय्य, चक्खुसम्फस्सस्मिं न मञ्ञेय्य, चक्खुसम्फस्सतो न मञ्ञेय्य, चक्खुसम्फस्सो मे ति न मञ्ञेय्य। यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि न मञ्ञेय्य, तस्मिं पि न मञ्ञेय्य, ततो पि न मञ्ञेय्य, तं मे ति न मञ्ञेय्य।

"सोतं न मञ्ञेय्य...घानं न मञ्ञेय्य...जिव्हं न मञ्ञेय्य, जिव्हाय न मञ्ञेय्य, [N.61] जिव्हातो न मञ्ञेय्य, जिव्हा मे ति न मञ्ञेय्य; रसे न मञ्ञेय्य...जिव्हाविञ्ञाणं न मञ्ञेय्य...जिव्हासम्फस्सं न मञ्ञेय्य...यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि न मञ्ञेय्य, तस्मिं पि न मञ्ञेय्य, ततो पि न मञ्ञेय्य, तं मे ति न मञ्ञेय्य।

"कायं न मञ्ञेय्य...मनं न मञ्ञेय्य...मनस्मिं न मञ्ञेय्य, मनतो न मञ्ञेय्य, मनो मेति न मञ्ञेय्य; धम्मे न मञ्ञेय्य...मनोविञ्ञाणं...मनोसम्फस्सं...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि न मञ्ञेय्य, तस्मिं पि न मञ्ञेय्य, ततो पि न मञ्ञेय्य, तं मे ति न मञ्ञेय्य; सब्बं न मञ्ञेय्य, सब्बस्मिं न मञ्ञेय्य, सब्बतो न मञ्ञेय्य, सब्बं मे ति न मञ्ञेय्य।

"सो एवं अमञ्ञमानो न किञ्चि पि लोके उपादियति। अनुपादियं न

---

९०. प्रथम एजासूत्र : : चित्त की चञ्चलता रोग है

९०. ..."भिक्षुओ! एजा (=चित्त की चञ्चलता, तृष्णा) रोग है, एजा व्रण है, एजा शल्य है। अतः, भिक्षुओ! तथागत स्थिरचित्त एवं तृष्णारहित हो कर साधनारत रहते हैं। यदि कोई भिक्षु भी अपने लिये यह चाहता है कि वह भी स्थिरचित्त एवं तृष्णारहित हो कर साधनारत रहे तो उस को चक्षु को, चक्षु में, चक्षु से या 'यह चक्षु मेरा है'—ऐसी आसक्ति नहीं होनी चाहिये; रूपों को, रूपों में...चक्षुर्विज्ञान को, चक्षुःसंस्पर्श को, चक्षुःसंस्पर्शजन्य वेदनाओं को अपना नहीं मानना चाहिये।

"श्रोत्र को...घ्राण को...जिह्वा...काय को...मन को...मनःसंस्पर्शप्रत्ययजन्य वेदनाओं को अपना नहीं मानना चाहिये।

ऐसा न मानता हुआ वह साधक भिक्षु किसी का उपादान नहीं करता। अनुपादान

परितस्सति। अपरितस्सं पच्चत्तञ्ञेव परिनिब्बायति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति॥ [R.66] ●

९१. दुतियएजासुत्तं

९२. ''एजा, भिक्खवे, रोगो, एजा गण्डो, एजा सल्लं। तस्मातिह, [B.290] भिक्खवे, तथागतो अनेजो विहरति वीतसल्लो। तस्मातिह, भिक्खवे, भिक्खु चे पि आकङ्खेय्य 'अनेजो विहरेय्यं वीतसल्लो' ति, चक्खुं न मञ्ञेय्य, चक्खुस्मिं न मञ्ञेय्य, चक्खुतो न मञ्ञेय्य, चक्खु मे ति न मञ्ञेय्य; रूपे न मञ्ञेय्य...चक्खुविञ्ञाणं... चक्खुसम्फस्सं...यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि न मञ्ञेय्य, तस्मिं पि न मञ्ञेय्य, ततो पि न मञ्ञेय्य, तं मे ति न मञ्ञेय्य। यं हि, भिक्खवे, मञ्ञति यस्मिं मञ्ञति यतो मञ्ञति यं मे ति मञ्ञति, ततो तं होति अञ्ञथा। अञ्ञथाभावी भवसत्तो लोको भवमेव अभिनन्दति ...पे०...।

''जिव्हं न मञ्ञेय्य, जिव्हाय न मञ्ञेय्य, जिव्हातो न मञ्ञेय्य, जिव्हा मे [N.62] ति न मञ्ञेय्य; रसे न मञ्ञेय्य...जिव्हाविञ्ञाणं...जिव्हासम्फस्सं...यम्पिदं जिव्हा-सम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि न मञ्ञेय्य, तस्मिं पि न मञ्ञेय्य, ततो पि न मञ्ञेय्य, तं मे ति न मञ्ञेय्य। यं हि, भिक्खवे, मञ्ञति यस्मिं मञ्ञति यतो मञ्ञति यं मे ति मञ्ञति, ततो तं होति अञ्ञथा। अञ्ञथाभावी भवसत्तो लोको भवमेव अभिनन्दति...पे०...।

''मनं न मञ्ञेय्य, मनस्मिं न मञ्ञेय्य, मनतो न मञ्ञेय्य, मनो मे ति न मञ्ञेय्य ...मनोविञ्ञाणं...मनोसम्फस्सं...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि न मञ्ञेय्य, तस्मिं पि न मञ्ञेय्य, ततो पि न

के कारण उसे कहीं परितर्षणा (कामना) नहीं होती। ऐसी कामना के कारण स्वयं निर्वाण प्राप्त कर ही लेता है। और वह यह भी समझ लेता है कि मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो गयी...अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं रहा''॥ ●

९१. द्वितीय एजासूत्र : : चित्त की चञ्चलता रोग ही है

९२. ...''भिक्षुओ! यह एजा (चित्त की चञ्चलता=तृष्णा) रोग है...पूर्वसूत्रवत्... वेदनाओं को अपना नहीं मानना चाहिये। भिक्षुओ! जिस को मानता है, जिस में मानता है, जिस को अपना समझता है, जिस को 'मेरा है'—ऐसा मानता है, वह उस स्थिति से अन्यथा (विपरिणाम वाला) हो जाता है। ऐसा अन्यथाभावी सांसारिक प्राणी इस संसार (भव) का ही अभिनन्दन करता है।

''...जिह्वा को...मन को...संसार का ही अभिनन्दन करता है। ...

[R.67] मञ्ञेय्य, तं मे ति न मञ्ञेय्य। यं हि, भिक्खवे, मञ्ञति यस्मिं मञ्ञति यतो मञ्ञति यं मे ति मञ्ञति, ततो तं होति अञ्ञथा। अञ्ञथाभावी भवसत्तो लोको भवमेव अभिनन्दति।

"यावता, भिक्खवे, खन्धधातुआयतना तं पि न मञ्ञेय्य, तस्मिं पि न मञ्ञेय्य, ततो पि न मञ्ञेय्य, तं मे ति न मञ्ञेय्य। सो एवं अमञ्ञमानो न किञ्चि लोके उपादियति। अनुपादियं न परितस्सति। अपरितस्सं पच्चत्तञ्ञेव परिनिब्बायति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति॥ ●

९२. पठमद्वयसुत्तं

[B.291] ९३. "द्वयं वो, भिक्खवे, देसेस्सामि। तं सुणाथ। किञ्च, भिक्खवे, द्वयं? चक्खुं चेव रूपा च, सोतं चेव सद्दा च, घानं चेव गन्धा च, जिव्हा चेव रसा च, कायो चेव फोट्ठब्बा च, मनो चेव धम्मा च—इदं वुच्चति, भिक्खवे, द्वयं।

"यो, भिक्खवे, एवं वदेय्य—'अहमेतं द्वयं पच्चक्खाय अञ्ञं द्वयं पञ्ञा-
[N.63] पेस्सामी' ति, तस्स वाचावत्थुकमेवस्स। पुट्ठो च न सम्पायेय्य। उत्तरिं च विघातं आपज्जेय्य। तं किस्स हेतु? यथा तं, भिक्खवे, अविसयस्मिं" ति॥ ●

९३. दुतियद्वयसुत्तं

९४. "द्वयं, भिक्खवे, पटिच्च विञ्ञाणं सम्भोति। कथं च, भिक्खवे, द्वयं पटिच्च

"भिक्षुओ! इसी प्रकार जितने भी स्कन्ध, धातु तथा आयतन हैं इन सभी को, सभी में, सभी से, या 'वे सब मुझ में हैं'—ऐसा न माने। वह इस तरह न मानता हुआ वह लोक में किसी का उपादान नहीं करता। उपादान न करने से उस की किसी के प्रति परितर्षणा नहीं होती। इस अपरितर्षणा से वह स्वयं तो निर्वाण प्राप्त कर ही लेता है तथा...यह जान जाता है॥" ●

९२. प्रथम द्वयसूत्र : : दो धर्मों का उपदेश

९३. ..."भिक्षुओ! मैं तुम्हें द्विक धर्मों की देशना करूँगा। उसे सुनो। भिक्षुओ! ये दो धर्म क्या हैं? चक्षु एवं रूप, श्रोत्र एवं शब्द, घ्राण एवं गन्ध, जिह्वा एवं रस, काय एवं स्प्रष्टव्य, मन एवं मनोधर्म—इसे कहते हैं, भिक्षुओ! दो (द्विक) धर्म।

"भिक्षुओ! जो यह कहे—'मैं इन दो दो धर्मों को प्रत्याख्यान कर नयी बात बता सकता हूँ'; यों यह उस का वाग्विलासमात्र है। गम्भीरता से इस विषय में पूछे जाने पर वह इस का कोई समुचित उत्तर नहीं दे सकता। बाद में आगे संवाद चलने पर वह पकड़ में भी आ सकता है (वह पराजित भी हो सकता है); क्यों कि, भिक्षुओ! उस के द्वारा इस का कोई उत्तर ही सम्भव नहीं है॥" ●

विञ्ञाणं सम्भोति? चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं। चक्खु अनिच्चं विपरिणामि अञ्ञथाभावि। रूपा अनिच्चा विपरिणामिनो अञ्ञथाभाविनो। इत्थेतं द्वयं चलं चेव ब्यथं च अनिच्चं विपरिणामि अञ्ञथाभावि। चक्खुविञ्ञाणं अनिच्चं [R.68] विपरिणामि अञ्ञथाभावि। यो पि हेतु यो पि पच्चयो चक्खुविञ्ञाणस्स उप्पादाय सो पि हेतु सो पि पच्चयो अनिच्चो विपरिणामी अञ्ञथाभावी। अनिच्चं खो पन, भिक्खवे, पच्चयं पटिच्च उप्पन्नं चक्खुविञ्ञाणं कुतो निच्चं भविस्सति! या खो, भिक्खवे, इमेसं तिण्णं धम्मानं सङ्गति सन्निपातो समवायो, अयं वुच्चति चक्खुसम्फस्सो। चक्खुसम्फस्सो पि अनिच्चो विपरिणामी अञ्ञथाभावी। यो पि हेतु यो पि पच्चयो चक्खुसम्फस्सस्स उप्पादाय सो पि हेतु सो पि पच्चयो अनिच्चो विपरिणामी अञ्ञथाभावी। अनिच्चं खो पन, भिक्खवे, पच्चयं पटिच्च उप्पन्नो चक्खुसम्फस्सो कुतो निच्चो भविस्सति! फुट्ठो, भिक्खवे, वेदेति, फुट्ठो चेतेति, फुट्ठो सञ्जानाति। इत्थेते पि धम्मा चला चेव ब्यथा च अनिच्चा विपरिणामिनो अञ्ञथाभाविनो...पे०...।

"जिव्हं च पटिच्च रसे च उप्पज्जति जिव्हाविञ्ञाणं। जिव्हा अनिच्चा विपरिणामी अञ्ञथाभावी। रसा अनिच्चा विपरिणामिनो अञ्ञथाभाविनो। इत्थेतं द्वयं चलं चेव ब्यथं च अनिच्चं विपरिणामि अञ्ञथाभावि। जिव्हाविञ्ञाणं अनिच्चं विपरिणामि अञ्ञथाभावि। यो पि हेतु यो पि पच्चयो जिव्हाविञ्ञाणस्स उप्पादाय सो

---

९३. द्वितीय द्वयसूत्र : : दो के प्रत्यय से विज्ञान की उत्पत्ति

९४. ..."भिक्षुओ! दो के प्रत्यय (अपेक्षा) से विज्ञान का सम्भव होता है। भिक्षुओ! यह कैसे होता है? (जैसे—) चक्षु की अपेक्षा (प्रत्यय) से रूपों को चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है। यहाँ चक्षु भी अनित्य है, विपरिणामी है, अन्यथाभावी है तथा रूप भी अनित्य हैं, विपरिणामी हैं, अन्यथाभावी हैं। यों ये दोनों ही अनित्य, विपरिणामी एवं अन्यथाभावी हैं। तब चक्षुर्विज्ञान भी अनित्य विपरिणामी एवं अन्यथाभावी ही होगा; क्यों कि जब चक्षुर्विज्ञान के हेतु एवं प्रत्यय—दोनों ही अनित्य हैं तो चक्षुर्विज्ञान नित्य कैसे होगा! इन तीनों—चक्षु, रूप एवं चक्षुर्विज्ञान की संगति (समवाय, एक साथ होना) ही चक्षु:संस्पर्श कहलाती है। तब यह चक्षु:संस्पर्श भी अनित्य विपरिणामी, अन्यथाभावी ही हुआ; क्यों कि चक्षु:संस्पर्श के उत्पादकहेतु एवं प्रत्यय ही जब अनित्य...हैं तो उन से उत्पन्न चक्षु:संस्पर्श नित्य कैसे होगा! भिक्षुओ! स्पर्श के होने से ही वेदना (=सुख-दु:खानुभव) होती है, चेतना होती है तथा संज्ञा होती है। ये धर्म (वेदना, चेतना तथा संज्ञा) भी अनित्य, विपरिणामी एवं अन्यथाभावी ही होंगे; क्यों कि...पूर्ववत्...।

"जिह्वा की अपेक्षा कर उत्पन्न रस से जिह्वाविज्ञान...पूर्ववत्...।

[B.292] पि हेतु सो पि पच्चयो अनिच्चो विपरिणामी अञ्ञथाभावी। अनिच्चं खो पन, भिक्खवे, पच्चयं पटिच्च उप्पन्नं जिव्हाविञ्ञाणं कुतो निच्चं भविस्सति! या खो, भिक्खवे, इमेसं तिण्णं धम्मानं सङ्गति सन्निपातो समवायो, अयं वुच्चति जिव्हासम्फस्सो। जिव्हासम्फस्सो पि अनिच्चो विपरिणामी अञ्ञथाभावी। यो पि हेतु यो पि [N.64] पच्चयो जिव्हासम्फस्सस्स उप्पादाय सो पि हेतु सो पि पच्चयो अनिच्चो विपरिणामी अञ्ञथाभावी। अनिच्चं खो पन, भिक्खवे, पच्चयं पटिच्च उप्पन्नो जिव्हा- [R.69] सम्फस्सो कुतो निच्चो भविस्सति! फुट्ठो, भिक्खवे, वेदेति, फुट्ठो चेतेति, फुट्ठो सञ्जानाति। इत्थेते पि धम्मा चला चेव ब्यथा च अनिच्चा विपरिणामिनो अञ्ञथाभाविनो...पे०...।

"मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं। मनो अनिच्चो विपरिणामी अञ्ञथाभावी। धम्मा अनिच्चा विपरिणामिनो अञ्ञथाभाविनो। इत्थेतं द्वयं चलं चेव ब्यथं च अनिच्चं विपरिणामि अञ्ञथाभावि। मनोविञ्ञाणं अनिच्चं विपरिणामि अञ्ञथाभावि। यो पि हेतु यो पि पच्चयो मनोविञ्ञाणस्स उप्पादाय सो पि हेतु सो पि पच्चयो अनिच्चो विपरिणामी अञ्ञथाभावी। अनिच्चं खो पन, भिक्खवे, पच्चयं पटिच्च उप्पन्नं मनोविञ्ञाणं कुतो निच्चं भविस्सति! या खो, भिक्खवे, इमेसं तिण्णं धम्मानं सङ्गति सन्निपातो समवायो, अयं वुच्चति मनोसम्फस्सो। मनोसम्फस्सो पि अनिच्चो विपरिणामी अञ्ञथाभावी। यो पि हेतु यो पि पच्चयो मनोसम्फस्सस्स उप्पादाय सो पि हेतु सो पि पच्चयो अनिच्चो विपरिणामी अञ्ञथाभावी। अनिच्चं खो पन, भिक्खवे, पच्चयं पटिच्च उप्पन्नो मनोसम्फस्सो कुतो निच्चो भविस्सति! फुट्ठो, भिक्खवे, वेदेति, फुट्ठो चेतेति, फुट्ठो सञ्जानाति। इत्थेते पि धम्मा चला चेव ब्यथा च अनिच्चा विपरिणामिनो अञ्ञथाभाविनो। एवं खो, भिक्खवे, द्वयं पटिच्च विञ्ञाणं सम्भोती" ति॥ •

छन्नवग्गो चतुत्थो॥

तस्सुद्दानं

पलोकसुञ्ञा सङ्खित्तं, छन्नो पुण्णो च बाहियो।
एजेन च दुवे वुत्ता, द्वयेहि अपरे दुवे ति॥ •

"मन की अपेक्षा कर उत्पन्न मनोधर्म से मनोविज्ञान...पूर्ववत्...।
इस तरह, भिक्षुओ! दो के प्रत्यय (अपेक्षा) से विज्ञान सम्भूत होता है"॥ •

छन्नवर्ग चतुर्थ समाप्त॥

इस छन्नवर्ग में इन सूत्रों का व्याख्यान हुआ है—१. प्रलोकधर्मसूत्र, २. शून्यत्व-लोकसूत्र, ३. संक्षिप्तधर्मसूत्र, ४. छन्नसूत्र, ५. पूर्णसूत्र, ६. बाहियसूत्र, ७. प्रथम एजासूत्र, ८. द्वितीय एजासूत्र, ९. प्रथम द्वयसूत्र एवं १०. द्वितीय द्वयसूत्र॥ •

५. सळवग्गो पञ्चमो

९४. अदन्तअगुत्तसुत्तं

[B.293, R.70] ९५. सावत्थिनिदानं। "छयिमे, भिक्खवे, फस्सायतना अदन्ता अगुत्ता अरक्खिता असंवुता दुक्खाधिवाहा होन्ति। कतमे छ? चक्खु, भिक्खवे, फस्सायतनं [N.65] अदन्तं अगुत्तं अरक्खितं असंवुतं दुक्खाधिवाहं होति...पे०...जिव्हा, भिक्खवे, फस्सायतनं अदन्तं अगुत्तं अरक्खितं असंवुतं दुक्खाधिवाहं होति...पे०...मनो, भिक्खवे, फस्सायतनं अदन्तं अगुत्तं अरक्खितं असंवुत्तं दुक्खाधिवाहं होति। इमे खो, भिक्खवे, छ फस्सायतना अदन्ता अगुत्ता अरक्खिता असंवुता दुक्खाधिवाहा होन्ति।

"छयिमे, भिक्खवे, फस्सायतना सुदन्ता सुगुत्ता सुरक्खिता सुसंवुता सुखाधिवाहा होन्ति। कतमे छ? चक्खु, भिक्खवे, फस्सायतनं सुदन्तं सुगुत्तं सुरक्खितं सुसंवुतं सुखाधिवाहं होति...पे०...जिव्हा, भिक्खवे, फस्सायतनं सुदन्तं सुगुत्तं सुरक्खितं सुसंवुतं सुखाधिवाहं होति...पे०...मनो, भिक्खवे, फस्सायतनं सुदन्तं सुगुत्तं सुरक्खितं सुसंवुत्तं सुखाधिवाहं होति। इमे खो, भिक्खवे, छ फस्सायतना सुदन्ता सुगुत्ता सुरक्खिता सुसंवुता सुखाधिवाहा होन्ती" ति।

९६. इदमवोच भगवा...पे०...एतदवोच सत्था—

"सळेव फस्सायतनानि भिक्खवो, असंवुतो यत्थ दुक्खं निगच्छति।
तेसं च ये संवरणं अवेदिसुं, सद्धादुतिया विहरन्तानवस्सुता॥

षड्वर्ग पञ्चम

९४. अदान्तअगुप्तसूत्र : : छह स्पर्शायतन दुःखप्रद हैं

९५. ...**श्रावस्ती में** ही...।..."भिक्षुओ! ये छह स्पर्शायतन अदान्त, अगुप्त, अरक्षित, असंयत एवं दुःखप्रद होते हैं। कौन से छह? चक्षुःस्पर्शायतन, श्रोत्रस्पर्शायतन, घ्राणस्पर्शायतन, जिह्वास्पर्शायतन, कायस्पर्शायतन एवं मनःस्पर्शायतन। भिक्षुओ! ये छह स्पर्शायतन अदान्त, अगुप्त, अरक्षित, असंयत एवं दुःखप्रद होते हैं।

"भिक्षुओ! ये छह स्पर्शायतन दान्त, गुप्त, रक्षित, संयत एवं सुखप्रद होते हैं। कौन से छह? चक्षुःस्पर्शायतन...पूर्ववत्...मनःस्पर्शायतन...।"

९६. भगवान् ने यह कहा...पूर्ववत्...पुनः भगवान् इन गाथाओं के माध्यम से यों बोले—

"भिक्षुओ! ये छह ही स्पर्शायतन होते हैं, जिन पर संयम न किया हुआ भिक्षु साधक कष्ट ही पाता है। इस के विपरीत, जिन्होंने इन छह स्पर्शायतनों का श्रद्धापूर्वक संवरण कर लिया है, वे सांसारिक तृष्णारहित होकर सुखपूर्वक समाधिलीन रहते हैं॥

"दिस्वान रूपानि मनोरमानि, अथो पि दिस्वान अमनोरमानि।
मनोरमे रागपथं विनोदये, न चाप्पियं मे ति मनं पदोसये॥
"सद्दं च सुत्वा दुभयं पियाप्पियं, पियम्हि सद्दे न समुच्छितो सिया। [R.71]
अथोप्पिये दोसगतं विनोदये, न चाप्पियं मे ति मनं पदोसये॥
"गन्धं च घत्वा सुरभिं मनोरमं, अथो पि घत्वा असुचिं अकन्तियं। [B.294]
अकन्तियस्मिं पटिघं विनोदये, छन्दानुनीतो न च कन्तिये सिया॥
"रसं च भोत्वान असादितं च सादुं, अथो पि भोत्वान असादुमेकदा। [N.66]
सादुं रसं नाज्झोसाय भुञ्जे, विरोधमस्सादुसु नोपदंसये॥
"फस्सेन फुट्ठो न सुखेन मज्जे, दुक्खेन फुट्ठो पि न सम्पवेधे।
फ़स्सद्वयं सुखदुक्खे उपेक्खे, अनानुरुद्धो अविरुद्ध केनचि॥
"पपञ्चसञ्ञा इतरीतरा नरा, पपञ्चयन्ता उपयन्ति सञ्ञिनो।
मनोमयं गेहसितं च सब्बं, पनुज्ज नेक्खम्मसितं इरीयति॥

"जो साधक मनोमोहक रूपों को या मन को कष्ट देने वाले रूपों को देख कर, मनोमोहक रूपों के प्रति उत्पन्न राग को संवृत कर ले तथा मन:कष्टदायक रूपों से द्वेष न माने॥ (१)

"मोहक एवं कष्टप्रद—दोनों ही प्रकार के शब्दों को सुन कर जो प्रिय शब्दों को सुन कर रागोन्मत्त न हो जाय तथा कष्टप्रद शब्दों को सुन कर मन में द्वेष न माने, न 'यह मेरा अप्रिय है'—ऐसा समझ कर उस के प्रति घृणाभाव न उत्पन्न करे॥ (२)

"सुरभि एवं मोहक या दुर्गन्धिमय कष्टप्रद गन्ध को पा कर, कष्टप्रद गन्ध से स्वकीय चित्त को दूषित न होने दे, तथा मोहक सुगन्ध के प्रति चित्त में राग न उत्पन्न होने दे, उस पर संवरण रखे तथा प्रिय सुगन्ध पा कर उस के प्रति रागोन्मत्त न हो जाय॥ (३)

"स्वादु एवं मनोमोहक रस को पाकर, या कभी अस्वादु एवं मन को अच्छा न लगने वाले रस को पा कर भी, न तो स्वादुरसमय खाद्य पेय पदार्थ का राग के साथ उपभोग करे तथा न अस्वादु एवं मन को अच्छा न लगने वाले रस के प्रति द्वेष भी न करे॥ (४)

"सुखद एवं दु:खद—उभयविध स्पर्शों के प्रति साधक को उभयत्र उपेक्षाभाव ही रखना चाहिये। न सुखसंस्पर्श से रागोन्मत्त हो, न दु:खसंस्पर्श के प्रति मन में द्वेष ही लावे। या उस से भय न माने। अर्थात् इन दोनों के प्रति किसी के प्रति भी अनुरोध विरोध न करे॥ (५)

"सभी प्राणी जगत्प्रपञ्च में आबद्ध हैं, वे उसी प्रपञ्च में सम्पृक्त रह कर उसी में

"एवं मनो छस्सु यदा सुभावितो, फुट्ठस्स चित्तं न विकम्पते क्वचि।
ते रागदोसे अभिभुय्य भिक्खवो, भवत्थ जातिमरणस्स पारगा" ति॥ ●

९५. मालुक्यपुत्तसुत्तं

९७. अथ खो आयस्मा मालुक्यपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि...पे०...एकमन्तं [R.72] निसिन्नो खो आयस्मा मालुक्यपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु, यमहं भगवतो धम्मं सुत्वा एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरेय्यं" ति।

[B.295] "एत्थ दानि, मालुक्यपुत्त, किं दहरे भिक्खू वक्खाम! यत्र हि नाम त्वं, भिक्खु, जिण्णो वुड्ढो महल्लको अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो सङ्खित्तेन ओवादं याचसी" ति।

"किञ्चापाहं, भन्ते, जिण्णो वुड्ढो महल्लको अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो। देसेतु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं, देसेतु सुगतो सङ्खित्तेन धम्मं, अप्पेव नामाहं भगवतो [N.67] भासितस्स अत्थं आजानेय्यं। अप्पेव नामाहं भगवतो भासितस्स दायादो अस्सं" ति।

"तं किं मञ्ञसि, मालुक्यपुत्त, ये ते चक्खुविञ्ञेय्या रूपा अदिट्ठा अदिट्ठपुब्बा,

---

लिपटे रहते हैं। यह जगत् का समस्त प्रासाद (महल) मन पर खड़ा है। उस पर विजय (संवर) प्राप्त कर नैष्कर्म्य भाव में अवस्थित हो जाय॥ (६)

"इस प्रकार, इन छह स्पर्शायतनों में जिन साधकों का मन:स्पर्शायतन सुभावित एवं सुसंवृत रहता है तो सांसारिक पदार्थों का स्पर्श (सम्पर्क) होने पर भी वह मन कम्पित (चञ्चल) नहीं होता। ऐसे साधक प्रिय के प्रति अपने राग एवं अप्रिय के प्रति अपने द्वेष को निगृहीत कर साधना करते हुए जन्ममृत्यु के चक्र से पार हो जाते हैं"॥(७)●

९५. मालुक्यपुत्रसूत्र : : अनासक्ति से दु:ख का नाश

९७. ...तब कभी आयुष्मान् मालुक्यपुत्र...भगवान् से यों निवेदन करने लगे—"भन्ते! अच्छा होता कि भगवान् मुझ को कुछ ऐसा संक्षिप्त धर्मोपदेश करते कि मैं...पूर्ववत्...।

"मालुक्यपुत्र! अब मैं उन छोटे युवा भिक्षुओं को क्या कहूँ जब तुम्हारे जैसे जीर्ण (आयु:प्राप्त), वृद्ध, जीवन के अन्त में पहुँचे हुए, अवस्थाप्राप्त भिक्षु भी अब संक्षिप्त धर्मोपदेश की बात करने लगे!"

"भन्ते! मैं अवस्था से अवश्य जीर्ण, वृद्ध, जीवन के अन्त में पहुँचा हुआ तथा अवस्थाप्राप्त हो चुका हूँ; परन्तु धर्मज्ञान में अभी परिपक्व नहीं हूँ। अत: आप मुझे ऐसा संक्षिप्त धर्मोपदेश करें कि मैं एकान्त में रह कर...पूर्ववत्..."।

न च पस्ससि न च ते होति पस्सेय्यं ति? अत्थि ते तत्थ छन्दो वा रागो वा पेमं वा'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''ये ते सोतविञ्ञेय्या सद्दा अस्सुता अस्सुतपुब्बा, न च सुणासि न च ते होति सुणेय्यं ति? अत्थि ते तत्थ छन्दो वा रागो वा पेमं वा'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''ये ते घानविञ्ञेय्या गन्धा अघायिता अघायितपुब्बा, न च घायसि न च ते होति घायेय्यं ति? अत्थि ते तत्थ छन्दो वा रागो वा पेमं वा'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''ये ते जिव्हाविञ्ञेय्या रसा असायिता असायितपुब्बा, न च सायसि न च ते होति सायेय्यं ति? अत्थि ते तत्थ छन्दो वा रागो वा पेमं वा'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''ये ते कायविञ्ञेय्या फोट्ठब्बा असम्फुट्ठा असम्फुट्ठपुब्बा, न च फुससि न च ते होति फुसेय्यं ति? अत्थि ते तत्थ छन्दो वा रागो वा पेमं वा'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''ये ते मनोविञ्ञेय्या धम्मा अविञ्ञाता अविञ्ञातपुब्बा, न च विजानासि न च ते होति विजानेय्यं ति? अत्थि ते तत्थ छन्दो वा रागो वा पेमं वा'' ति? [R.73]

''तो तुम क्या मानते हो, मालुक्यपुत्र! ये जो चक्षुर्विज्ञेय रूप हैं, जो न अभी देखे गये हैं, न पहले कभी देखे गये थे, न उन्हें वर्तमान में ही देख रहे हो, न ऐसी ही सम्भावना है कि आगे कभी इन्हें देख पाओगे; क्या उन के प्रति तुम्हारी देखने की कोई कामना, इच्छा या राग या प्रेम होता है?''

''नहीं होता है, भन्ते!''

''जो श्रोत्रविज्ञेय शब्द हैं...पूर्ववत्...प्रेम होता है?''

''नहीं होता, भन्ते!''

''जो घ्राणविज्ञेय गन्ध हैं...पूर्ववत्...प्रेम होता है?''

''नहीं होता, भन्ते!''

''जो जिह्वाविज्ञेय रस हैं...पूर्ववत्...प्रेम होता है?''

''नहीं होता, भन्ते!''

''जो कायविज्ञेय स्प्रष्टव्य हैं...पूर्ववत्...प्रेम होता है?''

''नहीं होता, भन्ते!''

"नो हेतं, भन्ते"।

"एत्थ च ते, मालुक्यपुत्त, दिट्ठसुतमुतविञ्ञातब्बेसु धम्मेसु दिट्ठे दिट्ठमत्तं भविस्सति, सुते सुतमत्तं भविस्सति, मुते मुतमत्तं भविस्सति, विञ्ञाते विञ्ञातमत्तं भविस्सति। यतो खो ते, मालुक्यपुत्त, दिट्ठसुतमुतविञ्ञातब्बेसु धम्मेसु दिट्ठे दिट्ठमत्तं [N.68, B.296] भविस्सति, सुते सुतमत्तं भविस्सति, मुते मुतमत्तं भविस्सति, विञ्ञाते विञ्ञातमत्तं भविस्सति; ततो त्वं, मालुक्यपुत्त, न तेन। यतो त्वं, मालुक्यपुत्त, न तेन; ततो त्वं, मालुक्यपुत्त, न तत्थ। यतो त्वं, मालुक्यपुत्त, न तत्थ; ततो त्वं, मालुक्यपुत्त, नेविध, न हुरं, न उभयमन्तरेन। एसेवन्तो दुक्खस्सा" ति।

"इमस्स ख्वाहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानामि—

"**रूपं** दिस्वा सति मुट्ठा, पियं निमित्तं मनसि करोतो।
सारत्तचित्तो वेदेति, तं च अज्झोस तिट्ठति॥
तस्स वड्ढन्ति वेदना, अनेका रूपसम्भवा।
अभिज्झा च विहेसा च, चित्तमस्सूपहञ्ञति।
एवं आचिनतो दुक्खं, आरा निब्बान वुच्चति॥

"जो मनोविज्ञेय धर्म हैं...पूर्ववत्...प्रेम होता है?"

"नहीं होता, भन्ते!"

"मालुक्यपुत्र! यहाँ देखे, सुने, स्मरण किये या जाने हुए धर्मों के प्रति—देखे हुओं की देखनामात्र, सुने हुओं की सुननामात्र, स्मरण किये हुओं की स्मृतिमात्र ही तुम्हें होगी। क्यों कि, मालुक्यपुत्र! जब इन में तुम्हारा एतन्मात्र ही कर्म होगा तो उन में तुम्हारी किसी प्रकार की आसक्ति नहीं होगी। न वे ही तुम से सम्पृक्त हो पायँगे। तब तुम, मालुक्यपुत्र! न यहाँ होओगे, न वहाँ, न मध्य में। यही दु:ख का अन्त (निर्वाण) कहलाता है।"

"भन्ते! आप के द्वारा उपदिष्ट इस संक्षिप्त धर्म का विस्तृत अर्थ यों समझ पाया हूँ—

"कोई मिथ्यासाधक **रूप को** देख कर स्मृतिभ्रष्ट हो जाता है, वह तत्सम्बद्ध प्रिय निमित्तों को मन में लाता रहता है। इस तरह उस में अनुरक्तचित्त वाले को वेदनाएँ (सुखदु:खानुभव) बढ़ती रहती हैं। वह उस (रूप) में स्वचित्त को आसक्त कर लेता है। इस तरह रूप से होने वाले अनेक लोभ एवं द्वेष उस के चित्त को दबाते रहते हैं। इस प्रकार वह साधक दु:ख का ही संग्रह करता है तथा निर्वाण उससे दूर होता जाता है॥

''**सद्दं** सुत्वा सति मुट्ठा, पियं निमित्तं मनसि करोतो।
सारत्तचित्तो वेदेति, तं च अज्झोस तिट्ठति॥
वेदना तस्स वड्ढन्ति, अनेका सद्दसम्भवा।
अभिज्झा च विहेसा च, चित्तमस्सूपहञ्ञति।
एवं आचिनतो दुक्खं, आरा निब्बान वुच्चति॥
''**गन्धं** घत्वा सति मुट्ठा, पियं निमित्तं मनसि करोतो। [R.74]
सारत्तचित्तो वेदेति, तं च अज्झोस तिट्ठति॥
तस्स वड्ढन्ति **वेदना**, अनेका गन्धसम्भवा।
अभिज्झा च विहेसा च, चित्तमस्सूपहञ्ञति।
एवं आचिनतो दुक्खं, आरा निब्बान वुच्चति॥
''**रसं** भोत्वा सति मुट्ठा, पियं निमित्तं मनसि करोतो।
सारत्तचित्तो वेदेति, तं च अज्झोस तिट्ठति॥
वेदना तस्स वड्ढन्ति, अनेका रससम्भवा।
अभिज्झा च विहेसा च, चित्तमस्सूपहञ्ञति।
एवं आचिनतो दुक्खं, आरा निब्बान वुच्चति॥
''**फस्सं** फुस्स सति मुट्ठा, पियं निमित्तं मनसि करोतो। [N.69, B.297]
सारत्तचित्तो वेदेति, तं च अज्झोस तिट्ठति॥
वेदना तस्स वड्ढन्ति, अनेका फस्ससम्भवा।

''कोई मिथ्यासाधक **शब्द को** सुन कर स्मृतिभ्रष्ट हो जाता है, वह तत्सम्बद्ध प्रिय निमित्तों को मन में लाता रहता है। इस तरह, उस में अनुरक्तचित्त को वेदनाएँ (सुखदु:खानुभव) बढ़ती रहती हैं। वह उस (शब्द) में स्वचित्त को आसक्त कर लेता है। इस प्रकार शब्द से होने वाले अनेक लोभ एवं द्वेष उस के चित्त को दबाते रहते हैं। यों, वह साधक दु:ख का ही संग्रह करता है तथा निर्वाण से दूर होता जाता है॥

''कोई मिथ्यासाधक **गन्ध को** सूँघ कर स्मृतिभ्रष्ट हो जाता है, वह तत्सम्बद्ध प्रिय निमित्तों को मन में लाता रहता है। इस प्रकार उस में अनुरक्तचित्त की वेदनाएँ (सुखदु:खाद्यनुभव) बढ़ती रहती हैं। वह उस (गन्ध) में स्वचित्त को आसक्त कर लेता है। यों, गन्धजन्य अनेक लोभ एवं द्वेष उस के चित्त को दबाते रहते हैं। इस प्रकार, वह मिथ्यासाधक दु:ख का ही संग्रह करता है, वह निर्वाण से बहुत दूर होता जाता है॥

''कोई मिथ्यासाधक **रस को** चख कर स्मृतिभ्रष्ट हो जाता है...पूर्ववत्...। वह निर्वाण से बहुत दूर होता जाता है॥

अभिज्झा च विहेसा च, चित्तमस्सूपहञ्ञति।
एवं आचिनतो दुक्खं, आरा निब्बान वुच्चति॥
''**धम्मं** ञत्वा सति मुट्ठा, पियं निमित्तं मनसि करोतो।
सारत्तचित्तो वेदेति, तं च अज्झोस तिट्ठति॥
वेदना तस्स वड्ढन्ति, अनेका धम्मसम्भवा।
अभिज्झा च विहेसा च, चित्तमस्सूपहञ्ञति।
एवं आचिनतो दुक्खं, आरा निब्बान वुच्चति॥ (क)
''न सो रज्जति **रूपेसु**, रूपं दिस्वा पटिस्सतो।
विरत्तचित्तो वेदेति, तं च नाज्झोस तिट्ठति॥
यथास्स पस्सतो रूपं, सेवतो चा पि वेदनं।
खीयति नोपचीयति, एवं सो चरती सतो।
एवं अपचिनतो दुक्खं, सन्तिके निब्बान वुच्चति॥
''न सो रज्जति **सद्देसु**, सद्दं सुत्वा पटिस्सतो।
विरत्तचित्तो वेदेति, तं च नाज्झोस तिट्ठति॥
यथास्स सुणतो सद्दं, सेवतो चा पि वेदनं।
खीयति नोपचीयति, एवं सो चरती सतो।
एवं अपचिनतो दुक्खं, सन्तिके निब्बान वुच्चति॥

''कोई मिथ्यासाधक **स्पर्श को** अनुभव कर स्मृतिभ्रष्ट हो जाता है...पूर्ववत्...। वह निर्वाण से दूर होता जाता है॥

''कोई मिथ्यासाधक **मनोधर्मों को** अनुभव कर स्मृतिभ्रष्ट हो जाता है...पूर्ववत्...। वह निर्वाण से दूर होता जाता है॥

(इसके विपरीत—) ''कोई सफल साधक **रूपों में** राग नहीं करता, रूपों को देख कर स्मृतिमान् रहता है। वह विरक्तचित्त से सभी सुखदु:खादि वेदनाओं का अनुभव करता है, उन में अभिनिवेश नहीं करता। अत: उस साधक के रूप देखने से तथा वेदना का अनुभव करने से भी बढ़ते नहीं हैं, घटते ही रहते हैं। ऐसा वह सफल साधक स्मृतिमान् हो कर साधना करता है, या संसार में विचरण करता है। यों, वह साधक स्वदु:खों को क्षीण करता हुआ निर्वाण के पास पहुँचता हुआ लगता है॥

''कोई सफल साधक **शब्दों में** राग नहीं करता, शब्दों को सुन कर स्मृतिमान् रहता है। वह विरक्तचित्त से सभी सुखदु:खादि वेदनाओं का अनुभव करता है, उन में अभिनिवेश नहीं करता। अत: उस साधक के शब्द, सुनने से तथा उन की वेदना का

"न सो रज्जति **गन्धेसु**, गन्धं घत्वा पटिस्सतो। [R.75]
विरत्तचित्तो वेदेति, तं च नाज्झोस तिट्ठति॥
यथास्स घायतो गन्धं, सेवतो चा पि वेदनं।
खीयति नोपचीयति, एवं सो चरती सतो।
एवं अपचिनतो दुक्खं, सन्तिके निब्बान वुच्चति॥

"न सो रज्जति **रसेसु**, रसं भोत्वा पटिस्सतो।
विरत्तचित्तो वेदेति, तं च नाज्झोस तिट्ठति॥
यथास्स सायतो रसं, सेवतो चा पि वेदनं। [N.70, B.298]
खीयति नोपचीयति, एवं सो चरती सतो।
एवं अपचिनतो दुक्खं, सन्तिके निब्बान वुच्चति॥

"न सो रज्जति **फस्सेसु**, फस्सं फुस्स पटिस्सतो।
विरत्तचित्तो वेदेति, तं च नाज्झोस तिट्ठति॥
यथास्स फुसतो फस्सं, सेवतो चा पि वेदनं।
खीयति नोपचीयति, एवं सो चरती सतो।
एवं अपचिनतो दुक्खं, सन्तिके निब्बान वुच्चति॥

"न सो रज्जति **धम्मेसु**, धम्मं ञत्वा पटिस्सतो।
विरत्तचित्तो वेदेति, तं च नाज्झोस तिट्ठति॥
यथास्स जानतो धम्मं, सेवतो चा पि वेदनं।
खीयति नोपचीयति, एवं सो चरती सतो।
एवं अपचिनतो दुक्खं, सन्तिके निब्बान वुच्चती ति॥ (ख)

अनुभव करने से भी, वृद्धिङ्गत नहीं होते, अपि तु घटते ही रहते हैं। ऐसा वह सफल साधक स्मृतिमान् हो कर साधना करता है, या संसार में विचरण करता है। यों वह स्वदुःखों को क्षीण करता हुआ निर्वाण के पास पहुँचता हुआ लगता है॥

"कोई सफल साधक **गन्धों में** राग नहीं करता, गन्धों को सूँघ कर स्मृतिमान् रहता है...पूर्ववत्...निर्वाण के पास पहुँचता हुआ लगता है॥

"कोई सफल साधक **रसों में** राग नहीं करता, रसों को चख कर भी स्मृतिमान् रहता है...पूर्ववत्...निर्वाण के पास पहुँचता हुआ लगता है॥

"कोई सफल साधक **स्पर्शों में** राग नहीं करता; स्पर्शों का वैसा वैसा अनुभव कर के भी स्मृतिमान् रहता है...पूर्ववत्...निर्वाण के पास पहुँचता हुआ लगता है।'

"इमस्स ख्वाहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामी" ति।

"साधु साधु, मालुक्यपुत्त! साधु खो त्वं, मालुक्यपुत्त. मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासि—

'रूपं दिस्वा सति मुट्ठा, पियं निमित्तं मनसि करोतो।
सारत्तचित्तो वेदेति, तं च अज्झोस तिट्ठति॥
वेदना तस्स वड्ढन्ति, अनेका रूपसम्भवा।
अभिज्झा च विहेसा च, चित्तमस्सूपहञ्ञति।
एवं आचिनतो दुक्खं, आरा निब्बान वुच्चति॥ ...पे०... ॥

[R.76] 'न सो रज्जति धम्मेसु, धम्मं ञत्वा पटिस्सतो।
विरत्तचित्तो वेदेति, तं च नाज्झोस तिट्ठति॥
यथास्स विजानतो धम्मं, सेवतो चा पि वेदनं।
खीयति नोपचीयति, एवं सो चरती सतो।
एवं अपचिनतो दुक्खं, सन्तिके निब्बान वुच्चती' ति॥

[N.71] "इमस्स खो, मालुक्यपुत्त, मया सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थो दट्ठब्बो" ति।

[B.299] अथ खो आयस्मा मालुक्यपुत्तो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो आयस्मा मालुक्यपुत्तो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—

"कोई सफल साधक **मनोधर्मों में** राग नहीं करता, मनोधर्मों को अनुभव करता हुआ भी स्मृतिमान् रहता है। ...पूर्ववत्...निर्वाण के पास पहुँचता हुआ दिखायी देता है॥

"भन्ते! आप के द्वारा उपदिष्ट संक्षिप्त धर्म का यह विस्तृत अर्थ समझता हूँ॥"

(भगवान्—) "साधु, मालुक्यपुत्र! साधु! तुमने मदुपदिष्ट धर्म का यह विस्तृत अर्थ उचित ही समझा है—

"कोई मिथ्यासाधक रूपों को देखकर...पूर्ववत्... ॥

"कोई सफल साधक मनोधर्मों में राग नहीं करता...पूर्ववत्... ॥

(मालुक्यपुत्र के पूर्व कथन का ही यहाँ विस्तार कर लें।)

"मालुक्यपुत्र! मेरे द्वारा संक्षिप्त रूप से भाषित का यही विस्तृत व्याख्यान है।"

तब आयुष्मान् मालुक्यपुत्र भगवान् के भाषण का अभिनन्दन अनुमोदन कर

यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरिय-परियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। "खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया" ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा मालुक्यपुत्तो अरहतं अहोसी ति॥ •

९६. परिहानधम्मसुत्तं

९८. "परिहानधम्मं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि अपरिहानधम्मं च छ च अभिभायतनानि। तं सुणाथ। कथं च, भिक्खवे, परिहानधम्मो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो चक्खुना रूपं दिस्वा उप्पज्जन्ति पापका अकुसला सरसङ्कप्पा संयोजनिया। तं चे भिक्खु अधिवासेति नप्पजहति न विनोदेति न ब्यन्तीकरोति न अनभावं गमेति, वेदितब्बमेतं, भिक्खवे, भिक्खुना—'परिहायामि कुसलेहि धम्मेहि'। परिहानं हेतं वुत्तं भगवता ति...पे०...।

"पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खुनो जिव्हाय रसं सायित्वा उप्पज्जन्ति...पे०...पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खुनो मनसा धम्मं विञ्ञाय उप्पज्जन्ति पापका अकुसला [R.77] सरसङ्कप्पा संयोजनिया। तं चे भिक्खु अधिवासेति नप्पजहति न विनोदेति न ब्यन्तीकरोति न अनभावं गमेति, वेदितब्बमेतं, भिक्खवे, भिक्खुना—'परिहायामि

आसन से उठ कर भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर वहाँ से चल दिये। तथा एकान्त में जा कर...पूर्ववत्...। वे अर्हतों (ज्ञानियों) में एक माने जाने लगे॥ •

९६. परिहाणधर्मसूत्र : : अभिभूत आयतन

९८. ..."भिक्षुओ! मैं तुम्हें परिहाणधर्म के विषय में उपदेश करूँ, साथ ही छह अपरिहाण-धर्म तथा अभिभू आयतनों के विषय में भी बताऊँगा। उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

परिहाणधर्म—"भिक्षुओ! 'परिहाणधर्म' क्या होता है? भिक्षुओ! भिक्षु को चक्षु से रूप को देख कर चञ्चल सङ्कल्प वाले, संयोजनों (बन्धनों) में डालने वाले, पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं। यदि भिक्षु उन को सहन करे, स्वीकार करे; छोड़े नहीं, दबावे नहीं, उन का अन्त न करे, नाश न करे तो उसे समझना चाहिये कि वह अपने कुशल धर्मों से पतित हो रहा है, उन का प्रहाण कर रहा है। भगवान् ने इसी को 'परिहाणधर्म' कहा है। ...पूर्ववत्...।

"फिर, भिक्षुओ! भिक्षु को जिह्वा से रस को चखकर, चञ्चलसङ्कल्प...पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं...पूर्ववत्...मन से मनोधर्मों को स्वीकार करने से पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं। यदि भिक्षु उन को स्वीकार करे, छोड़े नहीं, दबावे नहीं, उन का अन्त न करे, नाश न करे तो उसे समझना चाहिये कि वह अपने कुशल धर्मों से पतित

कुसलेहि धम्मेहि'। परिहानं हेतं वुत्तं भगवता ति। एवं खो, भिक्खवे, परिहानधम्मो होति।

"कथं च, भिक्खवे, अपरिहानधम्मो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो चक्खुना रूपं दिस्वा उप्पज्जन्ति पापका अकुसला सरसङ्कप्पा संयोजनिया। तं चे भिक्खु नाधिवासेति पजहति विनोदेति ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति, वेदितब्बमेतं, भिक्खवे, भिक्खुना—'न परिहायामि कुसलेहि धम्मेहि'। अपरिहानं हेतं वुत्तं भगवता ति...पे०...। [N.72, B.300] "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खुनो जिव्हाय रसं सायित्वा उप्पज्जन्ति ...पे०...पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खुनो मनसा धम्मं विञ्ञाय उप्पज्जन्ति पापका अकुसला सरसङ्कप्पा संयोजनिया। तं चे भिक्खु नाधिवासेति पजहति विनोदेति ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति, वेदितब्बमेतं, भिक्खवे, भिक्खुना—'न परिहायामि कुसलेहि धम्मेहि'। अपरिहानं हेतं वुत्तं भगवता ति। एवं खो, भिक्खवे, अपरिहानधम्मो होति।

"कतमानि च, भिक्खवे, छ अभिभायतनानि? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो चक्खुना रूपं दिस्वा नुप्पज्जन्ति पापका अकुसला सरसङ्कप्पा संयोजनिया। वेदितब्बमेतं, भिक्खवे, भिक्खुना—'अभिभूतमेतं आयतनं'। अभिभायतनं हेतं वुत्तं भगवता ति...पे०...पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खुनो मनसा धम्मं विञ्ञाय नुप्पज्जन्ति

हो रहा है, उन का प्रहाण कर रहा है। भगवान् ने इन को 'परिहाणधर्म' कहा है। इस तरह, भिक्षुओ! यह 'परिहाणधर्म' कहलाता है।

अपरिहाणधर्म-"फिर, भिक्षुओ! यह 'अपरिहाणधर्म' क्या होता है? यहाँ, भिक्षुओ! भिक्षु को चक्षु से रूप को देख कर चञ्चल सङ्कल्प वाले पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं। यदि उन्हें साधक भिक्षु स्वीकार न करे, छोड़ दे, दूर कर दे, उन का अन्त कर दे, नाश कर दे तो उसे समझना चाहिये कि उस के कुशल धर्म क्षीण नहीं हो रहे हैं। भगवान् ने इस को 'अपरिहाणधर्म' कहा है। ...पूर्ववत्...।

"श्रोत्र से शब्द सुन कर...घ्राण से गन्ध सूँघ कर, जिह्वा से रस चख कर...काय से...मन से मनोधर्मों को जान कर...पूर्ववत्...भिक्षुओ! ऐसे यह अपरिहानधर्म कहलाता है।

अभिभ्वायतन धर्म—"भिक्षुओ! कौन से छह अभिभू-आयतन होते हैं? यहाँ, भिक्षुओ! चक्षु से रूप को देखकर भी भिक्षु को यदि पापमय अकुशल धर्म न उत्पन्न होते हों तो उसे समझ लेना चाहिये कि उस का चक्षु आयतन अभिभूत हो गया। इसी को भगवान् ने प्रथम अभिभ्वायतन कहा है। ...पूर्ववत्...। फिर, भिक्षुओ! भिक्षु को श्रोत्र से

पापका अकुसला धम्मा सरसङ्कप्पा संयोजनिया। वेदितब्बमेतं, भिक्खवे, भिक्खुना— 'अभिभूतमेतं आयतनं'। अभिभायतनं हेतं वुत्तं भगवता ति। इमानि वुच्चन्ति, भिक्खवे, छ अभिभायतनानी'' ति॥

●

९७. पमादविहारीसुत्तं

९९. पमादविहारिं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि अप्पमादविहारिं च। तं [R.78] सुणाथ। कथं च, भिक्खवे, पमादविहारी होति? चक्खुन्द्रियं असंवुतस्स, भिक्खवे, विहरतो चित्तं ब्यासिञ्चति। चक्खुविञ्ञेय्येसु रूपेसु तस्स ब्यासित्तचित्तस्स पामोज्जं न होति। पामोज्जे असति पीति न होति। पीतिया असति पस्सद्धि न होति। पस्सद्धिया असति दुक्खं होति। दुक्खिनो चित्तं न समाधियति। असमाहिते चित्ते धम्मा न पातुभवन्ति। धम्मानं अपातुभावा पमादविहारी त्वेव सङ्खं गच्छति...पे०...जिव्हिन्द्रियं असंवुतस्स, भिक्खवे, विहरतो चित्तं ब्यासिञ्चति। जिव्हाविञ्ञेय्येसु रसेसु तस्स ब्यासित्तचित्तस्स...पे०...पमादविहारी त्वेव सङ्खं गच्छति...पे०...मनिन्द्रियं असंवुतस्स, भिक्खवे, विहरतो चित्तं ब्यासिञ्चति। मनोविञ्ञेय्येसु धम्मेसु तस्स ब्यासित्तचित्तस्स पामोज्जं न होति। पामोज्जे असति पीति न होति। पीतिया असति पस्सद्धि न होति। पस्सद्धिया असति दुक्खं होति। दुक्खिनो चित्तं न समाधियति। असमाहिते चित्ते [N.73] धम्मा न पातुभवन्ति। धम्मानं अपातुभावा पमादविहारी त्वेव सङ्खं गच्छति। एवं खो, भिक्खवे, 'पमादविहारी' होति। [B.301]

शब्द सुन कर...घ्राण से गन्ध सूँघ कर...जिह्वा से रस चख कर...काय से स्पर्श का अनुभव कर...मन से मनोधर्मों को जान कर...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! ये छह अभिभ्वायतन धर्म होते हैं॥''

●

९७. प्रमादविहारिसूत्र : : धर्म प्रादुर्भाव से अप्रमादविहारित्व

९९. ...''भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें प्रमादविहारी एवं अप्रमादविहारी (साधक) के विषय में बताऊँगा। उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

भिक्षुओ! कोई **प्रमादविहारी** कैसे कहलाता है? असंयत चक्षुरिन्द्रिय के सहारे साधना करने वाले का चित्त चक्षुर्विज्ञेय रूपों में व्यासक्त हो जाने के कारण प्रमुदित नहीं होता। प्रमोद के अभाव में प्रीति नहीं होती, प्रीति के अभाव में चित्त की शान्ति या गम्भीरता नहीं रह पाती। इस चित्त की शान्ति या गम्भीरता के न रहने से उस की साधना कष्टप्रद हो जाती है। तथा असमाहित चित्त में कुशल धर्म प्रादुर्भूत नहीं होते। इन कुशलधर्मों के प्रादुर्भूत न होने से ही वह साधक 'प्रमादविहारी' कहलाता है। ...जिह्वा...काय...असंयत मन के सहारे ...पूर्ववत्...।

"कथं च, भिक्खवे, अप्पमादविहारी होति? चक्खुन्द्रियं संवुतस्स, भिक्खवे, विहरतो चित्तं न ब्यासिञ्चति। चक्खुविञ्ञेय्येसु रूपेसु तस्स अब्यासित्तचित्तस्स पामोज्जं जायति। पमुदितस्स पीति जायति। पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति। पस्सद्धकायो सुखं विहरति। सुखिनो चित्तं समाधियति। समाहिते चित्ते धम्मा पातुभवन्ति। धम्मानं [R.79] पातुभावा अप्पमादविहारी त्वेव सङ्खं गच्छति...पे०...जिव्हिन्द्रियं संवुतस्स, भिक्खवे, विहरतो चित्तं न ब्यासिञ्चति...पे०...अप्पमादविहारी त्वेव सङ्खं गच्छति। मनिन्द्रियं संवुतस्स, भिक्खवे, विहरतो चित्तं न ब्यासिञ्चति। मनोविञ्ञेय्येसु धम्मेसु तस्स अब्यासित्तचित्तस्स पामोज्जं जायति। पमुदितस्स पीति जायति। पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति। पस्सद्धकायो सुखं विहरति। सुखिनो चित्तं समाधियति। समाहिते चित्ते धम्मा पातुभवन्ति। धम्मानं पातुभावा अप्पमादविहारी त्वेव सङ्खं गच्छति। एवं खो, भिक्खवे, 'अप्पमादविहारी' होती" ति॥ •

९८. संवरसुत्तं

१००. "संवरं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि असंवरं च। तं सुणाथ। कथं च, भिक्खवे, असंवरो होति? सन्ति, भिक्खवे, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति, वेदितब्बमेतं, भिक्खवे, भिक्खुना—'परिहायामि कुसलेहि धम्मेहि'। परिहानं

"तथा, भिक्षुओ! कोई साधक **अप्रमादविहारी** कैसे कहलाता है? भिक्षुओ! संयत चक्षुरिन्द्रिय से साधना करने वाले का चित्त चक्षुर्विज्ञेय रूपों में व्यासक्त होने के कारण प्रमुदित रहता है, प्रमोद के रहने पर प्रीति का उत्पाद हो जाता है। प्रीति के रहने से चित्त की शान्ति तथा गम्भीरता भी स्थिर रह पाती है। इस शान्ति या गम्भीरता के रहने से उस की साधना कष्टप्रद नहीं होती। यों इस का चित्त सुखमय होने से समाहित हो जाता है। तब इस समाहित चित्त में कुशल धर्मों का प्रादुर्भाव सरल हो जाता है। ऐसे कुशलधर्मों के प्रादुर्भूत होने से यह साधक 'अप्रमादविहारी' कहलाता है। संयत जिह्वा...संयत मन से साधना करने वाले का चित्त व्यासक्त नहीं होता... पूर्ववत्...। ऐसा साधक 'अप्रमादविहारी' कहलाता है॥" •

९८. संवरसूत्र : : इन्द्रियनिग्रह

१००. ..."भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें 'संवर' एवं 'असंवर' के विषय में बताऊँगा, उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

"भिक्षुओ! यह '**असंवर**' क्या होता है? भिक्षुओ! लोक में जो ये चक्षुर्विज्ञेय इष्ट, प्रिय, सुन्दर, मनोमोहक एवं रागभय रूप हैं, कोई मिथ्यासाधक उन का अभिनन्दन करता

हेतं वुत्तं भगवता ति...पे०...सन्ति, भिक्खवे, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा...पे०...सन्ति, भिक्खवे, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति, वेदितब्बमेतं, भिक्खवे, भिक्खुना—'परिहायामि कुसलेहि धम्मेहि'। परिहानं हेतं वुत्तं भगवता ति। एवं खो, भिक्खवे, असंवरो होति।

"कथं च, भिक्खवे, संवरो होति? सन्ति, भिक्खवे, चक्खुविञ्ञेय्या [N.74] रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति, वेदितब्बमेतं, भिक्खवे, भिक्खुना—'न [R.80] परिहायामि कुसलेहि धम्मेहि'। अपरिहानं हेतं वुत्तं भगवता ति...पे०...सन्ति, [B.302] भिक्खवे, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा...पे०...सन्ति, भिक्खवे, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति, वेदितब्बमेतं भिक्खुना—'न परिहायामि कुसलेहि धम्मेहि'। अपरिहानं हेतं वुत्तं भगवता ति। एवं खो, भिक्खवे, संवरो होती" ति॥ •

९९. समाधिसुत्तं

१०१. "समाधिं, भिक्खवे, भावेथ। समाहितो, भिक्खवे, भिक्खु यथाभूतं पजानाति। किञ्च यथाभूतं पजानाति? 'चक्खु अनिच्चं' ति यथाभूतं पजानाति; 'रूपा

है, उन में अभिनिवेश करता है तो, भिक्षुओ! उस मिथ्यासाधक को समझना चाहिये—'मेरे कुशल धर्म क्षीण हो रहे हैं'। भगवान् ऐसे साधक को 'परिहाणधर्मा' कहा है। ...पूर्ववत्...।

"जिह्वाविज्ञेय...रस...पूर्ववत्...मनोविज्ञेय धर्म...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! यह 'असंवर' कहलाता है।

"भिक्षुओ! यह '**संवर**' क्या होता है? भिक्षुओ! लोक में जो चक्षुर्विज्ञेय इष्ट, प्रिय, सुन्दर, मनोमोहक एवं रागमयरूप हैं, उन में कोई साधक न अभिनन्दन करता है, न अभिनिवेश। तब उस साधक को यह ध्यान में आता है—"मेरे कुशलधर्म क्षीण नहीं हो रहे हैं'। भगवान् ने इसी को 'अपरिहाण' कहा है। ...पूर्ववत्...।

"जिह्वाविज्ञेय...रसों...पूर्ववत्...मनोविज्ञेय...धर्मों...न अभिनन्दन करता है, न अभिनिवेश। तब उस भिक्षु को ध्यान में आ जाता है कि उस के कुशल धर्म क्षीण नहीं हो रहे हैं। भगवान् ने इसी को अपरिहाण कहा है'। भिक्षुओ! इसे 'संवर' कहते हैं॥" •

९९. समाधिसूत्र : : समाधि का अभ्यास

१०१. ..."भिक्षुओ! समाधि की भावना (अभ्यास) करनी चाहिये; क्यों कि

अनिच्चा' ति यथाभूतं पजानाति; 'चक्खुविञ्ञाणं अनिच्चं' ति यथाभूतं पजानाति; 'चक्खुसम्फस्सो अनिच्चो' ति यथाभूतं पजानाति। 'यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं' ति यथाभूतं पजानाति...पे०...'मनो अनिच्चं' ति यथाभूतं पजानाति। धम्मा...मनोविञ्ञाणं...मनोसम्फस्सो...'यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं' ति यथाभूतं पजानाति। समाधिं, भिक्खवे, भावेथ। समाहितो, भिक्खवे, भिक्खु यथाभूतं पजानाती'' ति॥ ●

१००. पटिसल्लानसुत्तं

१०२. ''पटिसल्लाने, भिक्खवे, योगमापज्जथ। पटिसल्लीनो, भिक्खवे, भिक्खु यथाभूतं पजानाति। किञ्च यथाभूतं पजानाति? 'चक्खु अनिच्चं' ति यथाभूतं पजानाति; [R.81] 'रूपा अनिच्चा' ति यथाभूतं पजानाति; 'चक्खुविञ्ञाणं अनिच्चं' ति यथाभूतं [N.75] पजानाति; 'चक्खुसम्फस्सो अनिच्चो' ति यथाभूतं पजानाति...पे०...'यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं' ति यथाभूतं पजानाति। पटिसल्लाने, भिक्खवे, योगमापज्जथ। पटिसल्लीनो, भिक्खवे, भिक्खु यथाभूतं पजानाती'' ति॥ ●

समाहित भिक्षु ही यथार्थ ज्ञान कर पाता है। भिक्षुओ! यह यथार्थ ज्ञान क्या है? जो भिक्षु 'चक्षु अनित्य है, रूप अनित्य है, चक्षुर्विज्ञान अनित्य है, चक्षु:संस्पर्श अनित्य है तथा चक्षु:संस्पर्शजन्य सुखदु:खादि वेदनाएँ अनित्य है'—यह यथार्थत: जानता है...पूर्ववत्...'मन अनित्य हैं...यह यथार्थत: जानता है, यही यथार्थ ज्ञान है।

''अत: भिक्षुओ! समाधि का अभ्यास करो; क्यों कि समाहित भिक्षु ही यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकता है''॥ ●

१००. प्रतिसल्ल्यायनसूत्र : : एकान्त जीवन का अभ्यास

१०२. ...''भिक्षुओ! एकान्त जीवन का अभ्यास करना चाहिये। भिक्षुओ! एकान्त जीवन का अभ्यस्त साधक ही यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकता है। भिक्षुओ! यह यथार्थ ज्ञान क्या है? 'चक्षु अनित्य है, रूप अनित्य हैं, चक्षुर्विज्ञान अनित्य है, चक्षु:संस्पर्श अनित्य है, चक्षु:संस्पर्शजन्य सुखदु:खादि वेदनाएँ अनित्य हैं' ...पूर्ववत्...'मन अनित्य है, मनोधर्म अनित्य हैं, मन:संस्पर्श अनित्य है, मन:संस्पर्शजन्य सुखदु:खादि वेदनाएँ अनित्य हैं'—यह यथार्थत: जानता है। अत: भिक्षुओ! एकान्त जीवन का अभ्यास करो; क्यों कि ऐसा अभ्यासी पुरुष ही यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकता है''॥ ●

१०१. पठमनतुम्हाकसुत्तं

१०३. ''यं, भिक्खवे, न तुम्हाकं तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति। किञ्च, भिक्खवे, न तुम्हाकं? चक्खु, भिक्खवे, न तुम्हाकं। तं [B.303] पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति। रूपा न तुम्हाकं। ते पजहथ। ते वो पहीना हिताय सुखाय भविस्सन्ति। चक्खुविञ्ञाणं न तुम्हाकं। तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति। चक्खुसम्फस्सो न तुम्हाकं। तं पजहथ। सो वो पहीनो हिताय सुखाय भविस्सति। यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि न तुम्हाकं। तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति...पे०...जिव्हा न तुम्हाकं। तं पजहथ। सा वो पहीना हिताय सुखाय भविस्सति। रसा न तुम्हाकं। ते पजहथ। ते वो पहीना हिताय सुखाय भविस्सन्ति। जिव्हाविञ्ञाणं न तुम्हाकं। तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति। जिव्हासम्फस्सो न तुम्हाकं। तं पजहथ। सो वो पहीनो हिताय सुखाय भविस्सति। यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि न तुम्हाकं। तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति...पे०...मनो न [R.82] तुम्हाकं। तं पजहथ। सो वो पहीनो हिताय सुखाय भविस्सति। धम्मा न तुम्हाकं। ते पजहथ। ते वो पहीना हिताय सुखाय भविस्सन्ति। मनोविञ्ञाणं न तुम्हाकं। तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति। मनोसम्फस्सो न तुम्हाकं। तं पजहथ। सो वो पहीनो हिताय सुखाय भविस्सति। यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि न तुम्हाकं। तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, यं इमस्मिं जेतवने तिणकट्ठसाखापलासं तं जनो हरेय्य

---

१०१. प्रथम नयुष्माकंसूत्र : : अहन्त्व, ममत्व का त्याग

१०३. ...''भिक्षुओ! जो तुम्हारा नहीं है, उस का त्याग कर दो। उस का त्याग करना ही तुम्हारे लिये हितकर एवं सुखकर होगा। भिक्षुओ! तुम्हारा क्या नहीं है? भिक्षुओ! चक्षु तुम्हारा नहीं है, उस का त्याग ही तुम्हारे लिये हितकर एवं सुखकर होगा। रूप...चक्षुर्विज्ञान, चक्षुःसंस्पर्शजन्य सुखदुःखादि वेदनाएँ...। ...पूर्ववत्...।

...जिह्वा...रस...जिह्वाविज्ञान...जिह्वासंस्पर्श...जिह्वासंस्पर्शजन्य वेदनाएँ...पूर्ववत्... काय...पूर्ववत्...मन...मनोधर्म...मनोविज्ञान...मनःसंस्पर्श...मनसंस्पर्शजन्य सुखदुःखादि वेदनाएँ तुम्हारी नहीं हैं, इन का त्याग ही तुम्हारे लिये हितकर एवं सुखकर है।

[N.76] वा डहेय्य वा यथापच्चयं वा करेय्य, अपि नु तुम्हाकं एवमस्स—'अम्हे जनो हरति वा डहति वा यथापच्चयं वा करोती''' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''तं किस्स हेतु''?

''न हि नो एतं, भन्ते, अत्ता वा अत्तनियं वा'' ति।

''एवमेव खो, भिक्खवे, चक्खु न तुम्हाकं। तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति। रूपा न तुम्हाकं...चक्खुविञ्ञाणं...चक्खुसम्फस्सो...पे०...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि न तुम्हाकं। तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सती'' ति॥ ●

१०२. दुतियनतुम्हाकसुत्तं

[B.304] १०४. ''यं, भिक्खवे, न तुम्हाकं तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति। किञ्च, भिक्खवे, न तुम्हाकं? चक्खु, भिक्खवे, न तुम्हाकं। तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति। रूपा न तुम्हाकं। ते पजहथ। ते वो पहीना हिताय सुखाय भविस्सन्ति। चक्खुविञ्ञाणं न तुम्हाकं। तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति। चक्खुसम्फस्सो न तुम्हाकं। तं पजहथ। सो वो पहीनो हिताय सुखाय भविस्सति...पे०... यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि न तुम्हाकं। तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति। यं पि, भिक्खवे, न तुम्हाकं तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सती'' ति॥ ●

१०३. उद्दकसुत्तं

१०५. ''उद्दको सुदं, भिक्खवे, रामपुत्तो एवं वाचं भासति—'इदं जातु वेदगू, इदं

''जैसे, भिक्षुओ! इस जेतवन के समस्त वृक्षसमूह के शाखा एवं पत्रों को कोई काट ले जाय, तो क्या तुम्हें इससे यह विचार होता है—'यह हमें काट कर ले जा रहाहै'?

''नहीं, भन्ते!'' ''वह किस कारण?'' क्यों कि उस शाखा पत्र में हमारा कोई अहन्त्व या ममत्व नहीं है।

''इसी तरह, भिक्षुओ! यह चक्षु तुम्हारा नहीं है अतः तुम उस का त्याग कर दो, वही तुम्हारे लिये हितकर सुखकर है। ...पूर्ववत्...''॥ ●

१०२. द्वितीय नयुष्माकंसूत्र : : सर्वत्र अहन्त्व, ममत्व का त्याग

१०४. ...''भिक्षुओ! जो तुम्हारा नहीं है, उस का त्याग कर दो। ...पूर्ववत्...। *जेतवन के तृण काष्ठ की उपमा को त्याग कर शेष समस्त पूर्वसूत्र का यहाँ भी विस्तार कर)* ●

जातु सब्बजी, इदं जातु अपलिखतं गण्डमूलं पलिखणिं' ति। तं खो पनेतं, [R.83] भिक्खवे, उद्दको रामपुत्तो अवेदगू येव समानो 'वेदगूस्मी' ति भासति, असब्बजी येव समानो 'सब्बजीस्मी' ति भासति, अपलिखतं येव गण्डमूलं 'पलिखतं मे गण्डमूलं' ति भासति। इध खो तं, भिक्खवे, भिक्खु सम्मा वदमानो वदेय्य—'इदं जातु वेदगू, [N.77] इदं जातु सब्बजी, इदं जातु अपलिखतं गण्डमूलं पलिखणिं' ति।

''कथं च, भिक्खवे, वेदगू होति? यतो खो, भिक्खवे, भिक्खु छन्नं फस्सायतनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति; एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु वेदगू होति।

''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु सब्बजी होति? यतो खो, भिक्खवे, भिक्खु छन्नं फस्सायतनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा अनुपादाविमुत्तो होति; एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु सब्बजी होति।

''कथं च, भिक्खवे, भिक्खुनो अपलिखतं गण्डमूलं पलिखतं होति? गण्डो ति खो, भिक्खवे, इमस्सेतं चातुम्महाभूतिकस्स कायस्स अधिवचनं मातापेत्तिक-[B.305] सम्भवस्स ओदनकुम्मासूपचयस्स अनिच्चुच्छादनपरिमद्दनभेदनविद्धंसनधम्मस्स।

---

१०३. उद्रकसूत्र : : दुःखमूल का उन्मूलन

१०५. ...''भिक्षुओ! उद्रक रामपुत्र ऐसा कहते थे—'यह मैं सर्वज्ञ हूँ, यह मैं सर्वविजयी हूँ; क्यों कि मैने व्रण के मूल को ही नष्ट कर दिया है।' परन्तु, भिक्षुओ! ऐसा कहते हुए वे उद्रक रामपुत्र वस्तुत: असर्वज्ञ एवं असर्वविजयी ही थे। गण्डमूल का उन्मूलन किये विना ही 'मैने गण्डमूल का उन्मूलन कर दिया है'—ऐसा कहते थे। भिक्षुओ! यथार्थ में कोई ज्ञानी भिक्षु ही ऐसा कह पाता है—'मैं सर्वज्ञ हूँ, मैं सर्वविजयी हूँ, मैने समस्त गण्डमूल को मूलत: उच्छिन्न कर दिया है।'

''भिक्षुओ! कोई 'सर्वज्ञ' (वेदगू) कैसे हो सकता है? जो साधक छहों स्पर्शायतनों के समुदय, विनाश, आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण को यथार्थत: जानता है वही 'सर्वज्ञ' कहलाता है। (१)

''तथा, भिक्षुओ! कैसे कोई 'सर्वजित्' होता है? जो साधक सभी छह स्पर्शायतनों के समुदय, विनाश, आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण को यथार्थत: जान लेता है तथा उपादानरहित हो कर सभी मनोविकारों से विमुक्त हो जाता है वही साधक 'सर्वजित्' कहलाता है। (२)

''तथा, भिक्षुओ! कैसे कोई साधक 'अपने समस्त गण्डमूलों का उन्मूलक' कहलाता है? भिक्षुओ! विद्वानों ने इन चार महाभूतों बने तथा माता पिता के रज एवं वीर्य से उद्भूत,

गण्डमूलं ति खो, भिक्खवे, तण्हायेतं अधिवचनं। यतो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो तण्हा [R.84] पहीना होति उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा; एवं खो, भिक्खवे, भिक्खुनो अपलिखतं गण्डमूलं पलिखतं होति।

"उद्दको सुदं, भिक्खवे, रामपुत्तो एवं वाचं भासति—'इदं जातु वेदगू, इदं जातु सब्बजी, इदं जातु अपलिखतं गण्डमूलं पलिखणिं' ति। तं खो पनेतं, भिक्खवे, उद्दको रामपुत्तो अवेदगू येव समानो 'वेदगूस्मी' ति भासति, असब्बजी येव समानो 'सब्बजीस्मी' ति भासति; अपलिखतं येव गण्डमूलं 'पलिखतं मे गण्डमूलं' ति भासति। इध खो तं, भिक्खवे, भिक्खु सम्मा वदमानो वदेय्य—'इदं जातु वेदगू, इदं जातु सब्बजी, इदं जातु अपलिखतं गण्डमूलं पलिखणिं'' ति॥ •

सळवग्गो पञ्चमो॥

तस्सुद्दानं

द्वे संगय्हा परिहानं, पमादविहारी च संवरो।
समाधि पटिसल्लानं, द्वे नतुम्हाकेन उद्दको ति॥ •

सळायतनवग्गे दुतियपण्णासको समत्तो॥

भात-दाल से वृद्धिङ्गत इस शरीर को, जो अनित्य है, गन्धादि का लेप करने पर या विविध उपाय करने पर भी अन्त में नष्टभ्रष्ट हो ही जाता है, 'गण्ड' कहा है। भिक्षुओ! 'गण्ड' तृष्णा का ही दूसरा नाम है। अतः, भिक्षुओ! जब साधक की यह तृष्णा मूलतः ऐसे उच्छिन्न हो जाती है कि उस के पुनरुत्पाद की कभी सम्भावना ही न रहे, तब वह 'उच्छिन्नगण्डमूल' कहलाता है। (३)

"भिक्षुओ! अतः उद्रक रामपुत्र जो यह कहते थे कि मैं सर्वज्ञ हूँ, मैं सर्वजित् हूँ, मैं उच्छिन्नगण्डमूल हो चुका हूँ—उन का यह कथन यथार्थ नहीं था; क्यों कि ऐसा सिंहनाद तो कोई कुशल साधक भिक्षु ही कर सकता है—'मैं सर्वज्ञ हूँ, मैं सर्वजयी हूँ, या मैं उच्छिन्नगण्डमूल हूँ'॥" •

षड्वर्ग पञ्चम का व्याख्यान समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. अदान्तअगुप्तसूत्र, २. मालुक्यपुत्रसूत्र, ३. परिहाणधर्मसूत्र, ४. प्रमादविहारिसूत्र, ५. संवरसूत्र, ६. समाधिसूत्र, ७. प्रतिसल्लायनसूत्र, ८. प्रथम नयुष्माकंसूत्र, ९. द्वितीय नयुष्माकंसूत्र, १०. उद्रकसूत्र—इन दश सूत्रों का व्याख्यान इस षड्वर्ग पञ्चम में हुआ है॥ •

षडायतनवर्ग में द्वितीय पञ्चाशत्क समाप्त॥

तस्स वग्गुद्दानं

[N.78] अविज्जा मिगजालं च, गिलानं छन्नं चतुत्थकं।
सळवग्गेन पञ्ञासं, दुतियो पण्णासको अयं ति॥ ●

पठमसतकं॥

—— ⁂ ——

इस पञ्चाशत्कवर्ग में व्याख्यात वर्गों की सूची—१. अविद्यावर्ग, २. मृगजालवर्ग, ३. ग्लानवर्ग, ४. छन्नवर्ग एवं ५. षड्वर्ग॥ इस तरह यह द्वितीय पञ्चाशत्क पूर्ण हुआ॥ ●

प्रथम शतक समाप्त॥

—— ⁂ ——

तियपण्णासकं—

१. योगक्खेमिवग्गो पठमो

१०४. योगक्खेमिसुत्तं

[R.85] १०६. सावत्थिनिदानं। ''योगक्खेमिपरियायं वो, भिक्खवे, धम्मपरियायं देसेस्सामि। तं सुणाथ। कतमो च, भिक्खवे, योगक्खेमिपरियायो धम्मपरियायो? सन्ति, भिक्खवे, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। ते [B.306] तथागतस्स पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। तेसं च पहानाय अक्खासि योगं, तस्मा तथागतो 'योगक्खेमी' ति वुच्चति...पे०...सन्ति, भिक्खवे, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। ते तथागतस्स पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। तेसं च पहानाय अक्खासि योगं, तस्मा तथागतो 'योगक्खेमी' ति वुच्चति। अयं खो, भिक्खवे, योगक्खेमिपरियायो धम्मपरियायो'' ति॥ •

१०५. उपादायसुत्तं

१०७. ''किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति किं उपादाय उप्पज्जति अज्झत्तं सुखं दुक्खं'' ति?

तृतीय पञ्चाशत्क

१. योगक्षेमिवर्ग प्रथम

१०४. योगक्षेमिसूत्र : : बुद्ध योगक्षेमी है

१०६. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! तुम्हें अब मैं उस धर्मपर्याय का उपदेश करूँगा, जिस का दूसरा नाम 'योगक्षेमिपर्याय' भी है। उसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो।

''भिक्षुओ! यह 'योगक्षेम' धर्मपर्याय क्या है? भिक्षुओ! चक्षुर्विज्ञेय रूप इष्ट, प्रिय एवं मनोमोहक...होते हैं; परन्तु ये तथागत के पूर्णतः उन्मूलित हो चुके हैं, यहाँ तक कि इन के पुनरुत्पाद की भी तथागत के लिये कोई सम्भावना नहीं रह गयी है। तथा उन के प्रहाण के लिये तथागत ने दूसरे साधकों को भी धर्मोपदेश द्वारा प्रोत्साहित किया है, अतः वे 'योगक्षेमी' कहलाते हैं।...पूर्ववत्...।

''भिक्षुओ! मनोविज्ञेय धर्म इष्ट, प्रिय एवं मनोमोहक होते हैं...पूर्ववत्...धर्मोपदेश द्वारा प्रोत्साहित किया है, अतः तथागत 'योगक्षेमी' कहलाते हैं। भिक्षुओ! यह योगक्षेमी नामक धर्मपर्याय कहलाता है॥'' •

१०५. उपादायसूत्र : : आध्यात्मिक सुख दुःख का हेतु

१०७. ...''भिक्षुओ! क्या होने पर तथा किस का उपादान कर आध्यात्मिक सुख दुःख उत्पन्न होता है?''

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...।

"चक्खुस्मिं खो, भिक्खवे, सति चक्खु उपादाय उप्पज्जति अज्झत्तं सुखं दुक्खं...पे०... मनस्मिं सति मनं उपादाय उप्पज्जति अज्झत्तं सुखं दुक्खं। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, चक्खु निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"। [N.79]

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय उप्पज्जेय्य अज्झत्तं सुखं दुक्खं" ति?

"नो हेतं, भन्ते"...पे०...।

जिव्हा निच्चा वा अनिच्चा वा ति?

"अनिच्चा, भन्ते"। [R.86]

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय उप्पज्जेय्य अज्झत्तं सुखं दुक्खं" ति?

"नो हेतं, भन्ते" ...पे०...।

"मनो निच्चो वा अनिच्चो वा ति?"

"अनिच्चो, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय उप्पज्जेय्य अज्झत्तं सुखं दुक्खं" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति

"भन्ते! हम तो भगवान् से ही जान कर...पूर्ववत्...।"

चक्षु के होने पर, भिक्षुओ! चक्षु का उपादान कर आध्यात्मिक सुख दुःख उत्पन्न होता है। ...पूर्ववत्...। मन के होने पर, मन का उपादान कर आध्यात्मिक सुख दुःख उत्पन्न होते हैं। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ, चक्षु नित्य है या अनित्य? ...पूर्ववत्...।

...पे०...मनस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति॥ •

१०६. दुक्खसमुदयसुत्तं

१०८. ''दुक्खस्स, भिक्खवे, समुदयं च अत्थङ्गमं च देसेस्सामि। तं सुणाथ। कतमो च, भिक्खवे, दुक्खस्स समुदयो? चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा। अयं [B.307] दुक्खस्स समुदयो...पे०...जिव्हं च पटिच्च रसे च उप्पज्जति जिव्हाविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा। अयं दुक्खस्स समुदयो...पे०...मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा। अयं खो, भिक्खवे, दुक्खस्स समुदयो।

[N.80] ''कतमो च, भिक्खवे, दुक्खस्स अत्थङ्गमो? चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा। तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधा उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा भवनिरोधो; भवनिरोधा जातिनिरोधो; जातिनिरोधा जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा

ऐसा जानते समझते हुए, भिक्षुओ! विद्वान् आर्यश्रावक की चक्षु में भी ...पूर्ववत्...मन में अरुचि उत्पन्न हो जाती है...विमुक्त हो गया—ऐसा ज्ञान होता है...आगे कुछ कर्तव्य शेष नहीं है—ऐसा जान जाता है''॥ •

१०६. दुःखसमुदयसूत्र : : दुःख की उत्पत्ति एवं नाश

१०८. ...''भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें दुःख के उत्पाद एवं नाश के विषय में बताऊँगा। भिक्षुओ! यह दुःख का उत्पाद कैसे होता है? चक्षु के प्रत्यय से रूपों को चक्षुर्विज्ञान होता है। इन तीनों की सङ्गति 'स्पर्श' कहलाती है। स्पर्श के प्रत्यय से वेदना तथा वेदना के प्रत्यय से तृष्णा उत्पन्न होती है। यह 'दुःख का समुदय'...पूर्ववत्...। जिह्वा के प्रत्यय से रसों से जिह्वाविज्ञान... पूर्ववत्...। मन के प्रत्यय से मनोधर्मों की मनोविज्ञान उत्पन्न होता है। ...यह भिक्षुओ! यह 'दुःखसमुदय' कहलाता है। (१)

''तथा, भिक्षुओ! दुःख का नाश कैसे होता है? चक्षु की प्रतीति (अपेक्षा) एवं रूपों से चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है। इन तीनों की सङ्गति 'स्पर्श' कहलाती है। इस स्पर्श के प्रत्यय से वेदना, तथा वेदना के प्रत्यय से तृष्णा उत्पन्न होती है। उस तृष्णा के पूर्ण त्याग एवं निरोध से उपादान का निरोध, उपादान के निरोध से भव का निरोध, भव के निरोध से जाति का निरोध, जाति के निरोध से जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं

निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति। अयं दुक्खस्स अत्थङ्गमो...पे०...जिव्हं च पटिच्च रसे च उप्पज्जति जिव्हाविञ्ञाणं...पे०...मनं [R.87] च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा। तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधा उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा भवनिरोधो; भवनिरोधा जातिनिरोधो; जातिनिरोधा जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति। अयं खो, भिक्खवे, दुक्खस्स अत्थङ्गमो'' ति॥ •

१०७. लोकसमुदयसुत्तं

१०९. ''लोकस्स, भिक्खवे, समुदयं च अत्थङ्गमं च देसेस्सामि। तं सुणाथ। कतमो च, भिक्खवे, लोकस्स समुदयो? चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना, वेदनापच्चया तण्हा; तण्हापच्चया उपादानं; उपादानपच्चया भवो; भवपच्चया जाति; जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। अथ खो, भिक्खवे, लोकस्स समुदयो ...पे०...जिव्हं च पटिच्च रसे च उप्पज्जति जिव्हाविञ्ञाणं...पे०...मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा; तण्हापच्चया उपादानं; उपादानपच्चया भवो; भवपच्चया जाति; [B.308] जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। अथ खो, भिक्खवे, लोकस्स समुदयो।

''कतमो च, भिक्खवे, लोकस्स अत्थङ्गमो? चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा। तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधा उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा भवनिरोधो; [N.81]

उपायास का निरोध हो जाता है। यों इस समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है। ...पूर्ववत्...भिक्षुओ! यह कहलाता है दुःख का अस्तगमन (नाश)॥'' (२) •

१०७. लोकसमुदयसूत्र : : लोक की उत्पत्ति एवं नाश

१०९. ...''भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें लोक की उत्पत्ति एवं नाश के विषय में बताऊँगा। उसे ध्यानपूर्वक सुनो। भिक्षुओ! यह लोक का **समुदय** क्या होता है? चक्षु के प्रत्यय से...तीनों की सङ्गति 'स्पर्श' कहलाती है। स्पर्श के प्रत्यय से वेदना तथा वेदना के प्रत्यय से तृष्णा होती है। तृष्णा के प्रत्यय से उपादान, तथा उपादान से भव, भव से जाति, तथा जाति से जरा मरण शोक परिदेव दुःख दौर्मनस्य एवं उपायास उत्पन्न होते हैं। ...पूर्ववत्... मन...उत्पन्न होते हैं। भिक्षुओ! यह लोक का समुदय कहलाता है।

भवनिरोधा जातिनिरोधो; जातिनिरोधा जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति। अयं खो, भिक्खवे, लोकस्स अत्थङ्गमो...पे०...जिव्हं च पटिच्च रसे च उप्पज्जति...पे०...मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदना-पच्चया तण्हा। तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधा उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा ...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति। अयं खो, भिक्खवे, लोकस्स अत्थङ्गमो'' ति॥

१०८. सेय्योहमस्मिसुत्तं

[R.88] ११०. ''किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति किं उपादाय किं अभिनिविस्स सेय्योहमस्मी ति वा होति, सदिसोहमस्मी ति वा होति, हीनोहमस्मी ति वा होती'' ति?

''भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...''।

''चक्खुस्मिं खो, भिक्खवे, सति चक्खुं उपादाय चक्खुं अभिनिविस्स सेय्योहमस्मी ति वा होति, सदिसोहमस्मी ति वा होति, हीनोहमस्मी ति वा होति...पे०...जिव्हाय सति...पे०...मनस्मिं सति मनं उपादाय मनं अभिनिविस्स सेय्योहमस्मी ति वा होति, सदिसोहमस्मी ति वा होति, हीनोहमस्मी ति वा होति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, चक्खु निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति?

''अनिच्चं, भन्ते''।

''यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा'' ति?

''दुक्खं, भन्ते''।

''यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय सेय्योहमस्मी ति वा

''भिक्षुओ! लोक का **अस्त** क्या है? ...पूर्ववत्... *(ऊपर के सूत्र की तरह विस्तार करें)*॥

१०८. 'मैं श्रेष्ठ हूँ'—सूत्र : : अपने में महत्त्व का विचार क्यों?

११०. ...''भिक्षुओ! किस के होने पर, किस का उपादान कर या किस में अभिनिवेश कर मनुष्य को 'मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ', 'मैं उस के समान हूँ' या 'मैं उस से हीन हूँ'—ऐसा विचार होता है?''

''भन्ते! हम तो आप के सहारे से ही...पूर्ववत्...।''

''भिक्षुओ! चक्षु के होने पर, चक्षु का उपादान कर, चक्षु के प्रति अभिनिवेश कर 'मैं उस से श्रेष्ठ हूँ', 'मैं उस के समान हूँ', या 'मैं उस से हीन हूँ'—ऐसा पुरुष को विचार होता है। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! चक्षु नित्य है या अनित्य?''

अस्स, सदिसोहमस्मी ति वा अस्स, हीनोहमस्मी ति वा अस्सा'' ति?

''नो हेतं, भन्ते'' ...पे०...जिव्हा निच्चा वा अनिच्चा वा ति?

''अनिच्चा, भन्ते'' ...पे०...।

मनो निच्चो वा अनिच्चो वा ति?

''अनिच्चो, भन्ते''।

''यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा'' ति?

''दुक्खं, भन्ते''। [N.82, B.309]

''यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय सेय्योहमस्मी ति वा अस्स, सदिसोहमस्मी ति वा अस्स, हीनोहमस्मी ति वा अस्सा'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति...पे०... मनस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति॥ •

१०९. संयोजनियसुत्तं

१११. ''संयोजनिये च, भिक्खवे, धम्मे देसेस्सामि संयोजनं च। तं [R.89] सुणाथ। कतमे च, भिक्खवे, संयोजनिया धम्मा, कतमं च संयोजनं? चक्खुं, भिक्खवे, संयोजनियो धम्मो। यो तत्थ छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं...पे०...जिव्हा संयोजनियो धम्मो...मनो संयोजनियो धम्मो। यो तत्थ छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, संयोजनिया धम्मा, इदं संयोजनं'' ति॥ •

''अनित्य है, भन्ते!...पूर्ववत्...।

''यों, देखता जानता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक चक्षु में भी अरुचि उत्पन्न कर लेता है...अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है—ऐसा जान जाता है॥'' •

१०९. संयोजनीयसूत्र : : संयोजन (बन्धन) क्या है?

१११. ...''भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें संयोजनीय धर्मों तथा संयोजन के विषय में बताऊँगा। उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

''भिक्षुओ! ये संयोजनीय धर्म कौन से हैं? तथा यह संयोजन क्या है? भिक्षुओ! चक्षु संयोजनीय धर्म है तथा वहाँ उपस्थित छन्दराग 'संयोजन' है।...पूर्ववत्...जिह्वा...काय... मन संयोजनीय धर्म है तथा वहाँ उपस्थित छन्दराग 'संयोजन' है। यों, भिक्षुओ! इन्हें कहते हैं—संयोजनीय धर्म एवं संयोजन॥ •

११०. उपादानियसुत्तं

११२. ''उपादानिये च, भिक्खवे, धम्मे देसेस्सामि उपादानं च। तं सुणाथ। कतमे च, भिक्खवे, उपादानिया धम्मा, कतमं च उपादानं? चक्खुं, भिक्खवे, उपादानियो धम्मो। यो तत्थ छन्दरागो तं तत्थ उपादानं...पे०...जिव्हा उपादानियो धम्मो...मनो उपादानियो धम्मो। यो तत्थ छन्दरागो तं तत्थ उपादानं। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, उपादानिया धम्मा, इदं उपादानं'' ति॥ ●

१११. अज्झत्तिकायतनपरिजाननसुत्तं

११३. ''चक्खुं, भिक्खवे, अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय। सोतं...घानं...जिव्हं...कायं...मनं अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं [N.83] अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय। चक्खुं च खो, भिक्खवे, अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाय...पे०...जिव्हं...कायं...मनं अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाया'' ति॥ ●

११२. बाहिरायतनपरिजाननसुत्तं

[B.310, R.90] ११४. ''रूपे, भिक्खवे, अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय। सद्दे...गन्धे...रसे...फोट्ठब्बे...धम्मे अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय। रूपे च खो, भिक्खवे, अभिजानं परिजानं

---

११०. उपादानीयसूत्र : : उपादान क्या है?

११२. ...''भिक्षुओ! तुम्हें उपादानीय धर्मों के विषय में तथा साथ ही उपादान के विषय में बताऊँगा। उसे ध्यानपूर्वक सुनो। भिक्षुओ! चक्षु उपादानीय धर्म हैं। तथा वहाँ उपस्थित रहने वाला छन्दराग उपादान है। ...पूर्ववत्... ॥'' ●

१११. आध्यात्मिकायतनपरिजाननसूत्र : : चक्षुर्ज्ञान विना दुःखक्षय नहीं

११३. ...''भिक्षुओ! चक्षु को जाने या समझे विना, त्यागे या छोड़े विना, दुःखक्षय होना असम्भव है। इसी तरह श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...काय...मन को जाने या समझे विना, त्यागे या छोड़े विना भी दुखःक्षय होना असम्भव है।

(इसके विपरीत) चक्षु...श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...काय...मन को जान कर समझ कर, त्याग कर छोड़ कर ही दुःख का क्षय करना सम्भव है॥'' ●

११२. बाह्य आयतनपरिजाननसूत्र : : रूपादि के ज्ञान से ही दुःखक्षय शक्य

११४. ...''भिक्षुओ! रूप...शब्द...गन्ध...रस...स्प्रष्टव्य एवं मनोधर्मों को न जान कर न समझ कर, न त्याग कर, न छोड़ कर दुःखों का क्षय सम्भव नहीं है।''

विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाय। सद्दे...गन्धे...रसे...फोट्ठब्बे...धम्मे अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाया'' ति॥ •

११३. उपस्सुतिसुत्तं

११५. एकं समयं भगवा नातिके विहरति गिञ्जकावसथे। अथ खो भगवा रहोगतो पटिसल्लीनो इमं धम्मपरियायं अभासि—''चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा; तण्हापच्चया उपादानं; उपादानपच्चया भवो; भवपच्चया जाति; जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। जिव्हं च पटिच्च रसे च उप्पज्जति...पे०...मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा; तण्हापच्चया उपादानं; उपादानपच्चया भवो; भवपच्चया जाति; जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा। तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधा उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा भवनिरोधो; भवनिरोधा जातिनिरोधो; जातिनिरोधा जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति...पे०...जिव्हं च पटिच्च रसे च [N.84]

''भिक्षुओ! रूप...शब्द...गन्ध...रस...स्प्रष्टव्य एवं मनोधर्मों को जान कर समझ कर, त्याग कर छोड़ कर ही दुःखक्षय सम्भव है॥'' •

११३. उपश्रुतिसूत्र : : समीप खड़े हो कर धर्मश्रवण

११५. एक समय भगवान् (बुद्ध) **ज्ञातिक** के गिञ्झकावसथ में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय उन्होंने, स्वयं से बात करते हुए के समान, ये धर्मोद्गार प्रकट किये—

''चक्षु एवं रूपों के प्रत्यय से चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है। तीनों की सङ्गति (मिलन) ही 'स्पर्श' है। स्पर्श के प्रत्यय से वेदना, वेदना के प्रत्यय से तृष्णा तथा तृष्णा के प्रत्यय से उपादान, उपादान के प्रत्यय से भव, भव के प्रत्यय से जाति जरामरण शोक परिदेव दुःख दौर्मनस्य एवं उपायास उत्पन्नं होते हैं। यों, इस समस्त दुःखस्कन्ध का उत्पाद होता है। ...जिह्वा...मन और धर्मों के प्रत्यय से मनोविज्ञान...। दुःखस्कन्ध का उत्पाद होता है।

''तथा चक्षु और रूपों के प्रत्यय से चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है। इन तीनों का मिलन 'स्पर्श' कहलाता है। स्पर्श के प्रत्यय से वेदना तथा वेदना के प्रत्यय से उत्पन्न होने

उप्पज्जति...पे०...मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा। तस्सा येव तण्हाय असेसविराग-
[B.311] निरोधा उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्ख-क्खन्धस्स निरोधो होती'' ति॥

[R.91] तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु भगवतो उपस्सुति ठितो होति। अद्दसा खो भगवा तं भिक्खुं उपस्सुति ठितं। दिस्वान तं भिक्खु एतदवोच—''अस्सोसि नो त्वं, भिक्खु, इमं धम्मपरियायं'' ति?

''एवं, भन्ते''।

''उग्गण्हाहि त्वं, भिक्खु, इमं धम्मपरियायं। परियापुणाहि त्वं, भिक्खु, इमं धम्मपरियायं। धारेहि त्वं, भिक्खु, इमं धम्मपरियायं। अत्थसंहितोयं, भिक्खु, धम्म-परियायो आदिब्रह्मचरियको'' ति॥

योगक्खेमिवग्गो पठमो॥

तस्सुद्दानं

योगक्खेमि उपादाय, दुक्खं लोको च सेय्यो च।
संयोजनं उपादानं, द्वे परिजानं उपस्सुती ति॥

—— ✻ ——

वाली तृष्णा के त्याग एवं निरोध से उपादान का निरोध...पूर्ववत्...समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है। श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...पूर्ववत्...''।

भगवान् जब यह धर्मोद्गार प्रकट कर रहे थे उसी समय एक भिक्षु भी समीप में खड़ा हुआ यह सब सुन रहा था। भगवान् ने उस को देखा तो उन्होंने उस से पूछा—''भिक्षु! तुमने मेरे द्वारा कथित धर्मपर्याय सुना?'' भिक्षु ने कहा—''हाँ, भन्ते!''

भगवान् बोले—'तो भिक्षु! तुम भी इस धर्मपर्याय को मन में धारण कर लो। हाँ, हाँ! मन में बैठा ही लो। यह तुम्हारे लिये बहुत अर्थकारी, लाभकारी तथा तुम्हारी धर्मसाधना की वृद्धि करने वाला ही होगा॥''

योगक्षेमिवर्ग प्रथम सम्पन्न॥

इस वर्ग में इन १० सूत्रों का व्याख्यान हुआ है—१. योगक्षेमिसूत्र, २. उपादायसूत्र, ३. दुःखसमुदयसूत्र, ४. लोकसमुदयसूत्र, ५. श्रेयानहमस्मिसूत्र, ६. संयोजनीयसूत्र, ७. उपादानीयसूत्र, ८. आध्यात्मिकायतनपरिजाननसूत्र, ९. बाह्यायतनपरिजाननसूत्र एवं १०. उपश्रुतिसूत्र॥

—— ✻ ——

२. लोककामगुणवग्गो दुतियो

११४. पठममारपाससुत्तं

११६. "सन्ति, भिक्खवे, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे, भिक्खु, अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति— अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु आवासगतो मारस्स, मारस्स वसं गतो, पटिमुक्कस्स मारपासो। बद्धो सो मारबन्धनेन यथाकामकरणीयो पापिमतो...पे०...।

"सन्ति, भिक्खवे, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे, भिक्खु, अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति— अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु आवासगतो मारस्स, मारस्स वसं गतो, पटिमुक्कस्स मारपासो। बद्धो सो मारबन्धनेन ...पे०...।

"सन्ति, भिक्खवे, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे, भिक्खु, अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय [N.85, B.312] तिट्ठति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु आवासगतो मारस्स, मारस्स वसं गतो, पटिमुक्कस्स मारपासो। बद्धो सो मारबन्धनेन यथाकामकरणीयो पापिमतो [R.92} ...पे०...।

"सन्ति च खो, भिक्खवे, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे, भिक्खु, नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति— अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु नावासगतो मारस्स, न मारस्स वसं गतो, उम्मुक्कस्स मारपासो। मुत्तो सो मारबन्धनेन न यथाकामकरणीयो पापिमतो...पे०...।

---

२. लोककामगुणवर्ग द्वितीय

११४. प्रथम मारपाशसूत्र : : मार के बन्धन में बद्ध

११६. ..."भिक्षुओ! चक्षुर्विज्ञेय रूप इष्ट, प्रिय, सुन्दर एवं मनोमोहक होते हैं। कोई साधक इन का अभिनन्दन करता है, इन में अभिनिवेश करता है, इन की चर्चा में रस लेता है, उन को अपना मानने लगता है तो उस साधक के लिये समझ लो कि वह मार के घर में प्रवेश कर गया, मारपाश में बँध गया, पापी मार अब उसे अपने जाल में फँसा कर उस से यथेच्छ कार्य लेगा...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! जिह्वाविज्ञेय रस...मनोविज्ञेय धर्म इष्ट, प्रिय...यथेच्छ कार्य लेगा... पूर्ववत्...।

(इस के विपरीत—) "भिक्षुओ! यदि कोई साधक उन इष्ट, कान्त, मनाप चक्षुर्विज्ञेय रूपों का अभिनन्दन नहीं करता, उन में अभिनिवेश नहीं करता, उन की चर्चा में रस नहीं

''सन्ति, भिक्खवे, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे, भिक्खु, नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु नावासगतो मारस्स, न मारस्स वसं गतो, उम्मुक्कस्स मारपासो। मुत्तो सो मारबन्धनेन न यथाकामकरणीयो पापिमतो...पे०...।

''सन्ति, भिक्खवे, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे, भिक्खु, नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु नावासगतो मारस्स, न मारस्स वसं गतो, उम्मुक्कस्स मारपासो। मुत्तो सो मारबन्धनेन न यथाकामकरणीयो पापिमतो'' ति॥ •

११५. दुतियमारपाससुत्तं

११७. ''सन्ति, भिक्खवे, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे, भिक्खु, अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु बद्धो चक्खुविञ्ञेय्येसु रूपेसु, आवासगतो मारस्स, मारस्स वसं गतो, पटिमुक्कस्स मारपासो। बद्धो सो मारबन्धनेन यथाकामकरणीयो पापिमतो...पे०...। सन्ति, भिक्खवे, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा...पे०...सन्ति, भिक्खवे, [B.313] मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे, भिक्खु, अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, [N.86] भिक्खु बद्धो मनोविञ्ञेय्येसु धम्मेसु, आवासगतो मारस्स, मारस्स वसं गतो, पटिमुक्कस्स मारपासो। बद्धो सो मारबन्धनेन यथाकामकरणीयो पापिमतो ...पे०...।

''सन्ति च खो, भिक्खवे, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे, भिक्खु, नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति—

लेता तो समझ लो कि वह मार का घर भूल चुका है, वह मारपाश से मुक्त हो गया है तथा पापी मार अब उसे अपने जाल में फँसा कर यथेच्छ कार्य नहीं ले सकेगा। ...पूर्ववत्...।

''इसी तरह, भिक्षुओ! जो जिह्वाविज्ञेय रस...पूर्ववत्...।

''भिक्षुओ! जो इष्ट, कान्त, मनाप मनोविज्ञेय धर्मों का अभिनन्दन...अभिनिवेश... चर्चा में रस नहीं लेता तो मार के घर में कभी प्रवेश न करेगा, न मार के बन्धन बँधेगा, न पापी मार उसे अपने जाल में फँसा कर उससे यथेच्छ कार्य ले पायगा॥'' •

११५. द्वितीय मारपाशसूत्र : : मारबन्धन में बद्ध

११७. ...''भिक्षुओ! चक्षुर्विज्ञेय रूप...पूर्ववत्...।

अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु मुत्तो चक्खुविञ्ञेय्येहि रूपेहि, नावासगतो मारस्स, न मारस्स वसं गतो, उम्मुक्कस्स मारपासो। मुत्तो सो मारबन्धनेन न यथाकामकरणीयो पापिमतो...पे०...। सन्ति, भिक्खवे, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा [R.93] ...पे०...सन्ति, भिक्खवे, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे, भिक्खु, नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति— अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु मुत्तो मनोविञ्ञेय्येहि धम्मेहि, नावासगतो मारस्स, न मारस्स वसं गतो, उम्मुक्कस्स मारपासो। मुत्तो सो मारबन्धनेन न यथाकामकरणीयो पापिमतो'' ति॥ ●

११६. लोकन्तगमनसुत्तं

११८. ''नाहं, भिक्खवे, गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं, दट्ठेय्यं, पत्तेय्यं ति वदामि। न च पनाहं, भिक्खवे, अप्पत्वा लोकस्स अन्तं दुक्खस्स अन्तकिरियं वदामी'' ति। इदं वत्वा भगवा उट्ठायासना विहारं पाविसि। अथ खो तेसं भिक्खूनं अचिरपक्कन्तस्स भगवतो एतदहोसि—''इदं खो नो, आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो—'नाहं, भिक्खवे, गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं, दट्ठेय्यं, पत्तेय्यं ति वदामि। न च पनाहं, भिक्खवे, अप्पत्वा लोकस्स अन्तं दुक्खस्स अन्तकिरियं वदामी' ति। को नु खो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजेय्या'' ति?

[B.314] अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—''अयं खो आयस्मा आनन्दो सत्थु चेव

(यह सूत्र भी अविकल रूप से पूर्वसूत्रवत् है, अतः यहाँ भी तद्वत् ही विस्तार कर लें।)●

११६. लोकान्तगमनसूत्र : : पैरों से चल कर लोक का अन्त पाना कठिन

११८. ...''भिक्षुओ! मैं पैरों से चल कर लोक की सीमा जानने योग्य, देखने योग्य या प्राप्त करने योग्य नहीं मानता। न मैं यही मानता हूँ लोक का अन्त जाने विना दुःख का अन्त नहीं जाना जा सकता।'' यह उपदेश सूत्र कह कर भगवान् आसन से उठ कर गन्धकुटी (भगवान् का साधनास्थल) में प्रविष्ट हो गये। भगवान् के, वहाँ से यों अकस्मात्, चले जाने के बाद उन भिक्षुओं को यह विचार हुआ—''आयुष्मानो! भगवान् तो यह उपर्युक्त संक्षिप्त उपदेशसूत्र कह कर गन्धकुटी में पधार गये। अब भगवदुक्तं इस संक्षिप्त धर्म का विस्तार कौन करे।''

तब भिक्षुओं को इस प्रसङ्ग में यह ध्यान में आया—'ये आयुष्मान् आनन्द शास्ता

संवण्णितो, सम्भावितो च विञ्ञूनं सब्रह्मचारीनं। पहोति चायस्मा आनन्दो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं [N.87] विभजितुं। यन्नूनं मयं येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमेय्याम; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं एतमत्थं पटिपुच्छेय्यामा'' ति।

अथ खो ते भिक्खू येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा आयस्मता आनन्देन सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। [R.94] एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोचुं—

''इदं खो नो, आवुसो आनन्द, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो—'नाहं, भिक्खवे, गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं, दट्ठेय्यं, पत्तेय्यं ति वदामि। न च पनाहं, भिक्खवे, अप्पत्वा लोकस्स अन्तं दुक्खस्स अन्तकिरियं वदामी' ति। तेसं नो, आवुसो, अम्हाकं अचिरपक्कन्तस्स भगवतो एतदहोसि—'इदं खो नो, आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो—नाहं, भिक्खवे, गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं, दट्ठेय्यं, पत्तेय्यं ति वदामि। न च पनाहं, भिक्खवे, अप्पत्वा लोकस्स अन्तं दुक्खस्स अन्तकिरियं वदामी ति। को नु खो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजेय्या' ति? तेसं नो, आवुसो, अम्हाकं एतदहोसि—'अयं खो, आवुसो, आयस्मा आनन्दो सत्थु चेव संवण्णितो, सम्भावितो च विञ्ञूनं सब्रह्मचारीनं। पहोति चायस्मा आनन्दो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजितुं। यन्नून मयं येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमेय्याम; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं एतमत्थं पटिपुच्छेय्यामा' ति। विभजतायस्मा आनन्दो'' ति।

द्वारा भी धर्मव्याख्याता के रूप में प्रशंसाप्राप्त हैं, सङ्घ के अन्य स्थविर भिक्षु तथा इन के कल्याणमित्र भी उन की इस विषय में प्रशंसा ही करते हैं। ये आयुष्मान् आनन्द ही भगवत्प्रोक्त इस संक्षिप्त धर्मसूत्र का अर्थ हम लोगों को विस्तार से समझा सकते हैं। तो क्यों न हम लोग आयुष्मान् आनन्द के पास चल कर उन से इस भगवदुक्त संक्षिप्त धर्मसूत्र का विस्तार समझ लें।''

तब वे सभी भिक्षु आयुष्मान् आनन्द के पास गये, वहाँ जा कर उन से कुशल-मङ्गलसंवाद के बाद एक ओर बैठ कर उन्होंने आयुष्मान् आनन्द से यों कहा—

''आयुष्मन् आनन्द! आज कुछ समय पूर्व भगवान् हम लोगों को इस संक्षिप्त धर्मसूत्र का उपदेश कर गन्धकुटी में पधार गये—...पूर्ववत्...। अब हम इस का विस्तृत

"सेय्यथापि, आवुसो, पुरिसो सारत्थिको सारगवेसी सारपरियेसनं चरमानो महतो रुक्खस्स तिट्ठतो सारवतो अतिक्कम्मेव मूलं अतिक्कम्मेव खन्धं साखापलासे सारं परियेसितब्बं मञ्ञेय्य; एवं सम्पदमिदं आयस्मन्तानं सत्थरि सम्मुखीभूते तं भगवन्तं अतिसित्वा अम्हे एतमत्थं पटिपुच्छितब्बं मञ्ञथ। सो हावुसो, भगवा जानं [B.315] जानाति, पस्सं पस्सति—चक्खुभूतो, ञाणभूतो, धम्मभूतो, ब्रह्मभूतो, वत्ता, पवत्ता, अत्थस्स निन्नेता, अमतस्स दाता, धम्मस्सामी, तथागतो। सो चेव पनेतस्स कालो[N.88] अहोसि यं भगवन्तं येव एतमत्थं पटिपुच्छेय्याथ। यथा वो भगवा ब्याकरेय्य [R.95] तथा वो धारेय्याथा" ति।

"अद्धावुसो आनन्द, भगवा जानं जानाति, पस्सं पस्सति—चक्खुभूतो, ञाणभूतो, धम्मभूतो, ब्रह्मभूतो, वत्ता, पवत्ता, अत्थस्स निन्नेता, अमतस्स दाता, धम्मस्सामी, तथागतो। सो चेव पनेतस्स कालो अहोसि यं भगवन्तं येव एतमत्थं पटिपुच्छेय्याम। यथा नो भगवा ब्याकरेय्य तथा नं धारेय्याम। अपि चायस्मा आनन्दो सत्थु चेव संवण्णितो, सम्भावितो च विञ्ञूनं सब्रह्मचारीनं। पहोति चायस्मा आनन्दो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजितुं। विभजतायस्मा आनन्दो अगरुं करित्वा" ति।

अर्थ समझने के लिये आपके पास आये हैं। कृपया हमें, आयुष्मन् आनन्द! इस का अर्थ विस्तार से समझावें।"

"आयुष्मानो! यह तो वैसी ही बात हुई जैसे कोई सार (दृढ) काष्ठ चाहने वाला उस की खोज में निकले तथा अच्छे वृक्ष के नीचे जा कर भी उसके मूल तथा स्कन्धों (बड़ी शाखाओं) की उपेक्षा कर उस वृक्ष की छोटी शाखाओं तथा टहनियों में उस सार की गवेषणा करे; क्यों कि आप लोग भगवान् के विद्यमान रहते हुए भी मुझ से यह गम्भीर अर्थ पूछने आये हैं। आयुष्मानो! वे भगवान् तो समस्त जानने योग्य को जानते हैं, देखने योग्य को देख लेते हैं। वे सम्यग्दृष्टि, ज्ञान, धर्म एवं ब्रह्म के साक्षात् मूर्तरूप हैं। वे वक्ता तथा प्रवक्ता हैं। जटिल (शङ्कास्पद) विषयों के यथार्थ निर्णायक हैं, धर्मामृत के प्रदाता हैं, धर्मस्वामी एवं तथागत हैं। इस का अर्थ तो भगवान् से ही पूछना चाहिये था। जैसा भगवान् उपदेश करते वैसा आप लोग अपने हृदय में धारण करते।"

"हाँ, आयुष्मन् आनन्द! आप का यह कथन सर्वथा उचित एवं यथार्थ है कि...पूर्ववत्...। परन्तु, आयुष्मन्! आप की भी भगवान् एक धर्मव्याख्याता के रूप में प्रशंसा ही करते हैं, तथा अन्य स्थविर भिक्षु भी आप के द्वारा विहित धर्मव्याख्यान को

"तेन हावुसो, सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति। "एवमावुसो" ति खो ते भिक्खू आयस्मतो आनन्दस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा आनन्दो एतदवोच—

"यं खो वो, आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो—'नाहं, भिक्खवे, गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं, दट्ठेय्यं, पत्तेय्यं ति वदामि। न च पनाहं, भिक्खवे, अप्पत्वा लोकस्स अन्तं दुक्खस्स अन्तकिरियं वदामी' ति, इमस्स ख्वाहं, आवुसो, भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं आजानामि। येन खो, आवुसो, लोकस्मिं लोकसञ्ञी होति लोकमानी—अयं वुच्चति अरियस्स विनये लोको। केन चावुसो, लोकस्मिं लोकसञ्ञी होति लोकमानी? चक्खुना खो, आवुसो, लोकस्मिं लोकसञ्ञी होति लोकमानी। सोतेन खो, आवुसो...घानेन खो, आवुसो...जिव्हाय खो, [B.316] आवुसो, लोकस्मिं लोकसञ्ञी होति लोकमानी। कायेन खो, आवुसो...मनेन [R.96] खो, आवुसो, लोकस्मिं लोकसञ्ञी होति लोकमानी। येन खो, आवुसो, लोकस्मिं लोकसञ्ञी होति लोकमानी—अयं वुच्चति अरियस्स विनये लोको। यं खो [N.89] वो, आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो—'नाहं, भिक्खवे, गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं, दट्ठेय्यं, पत्तेय्यं ति वदामि। न च पनाहं, भिक्खवे, अप्पत्वा लोकस्स अन्तं दुक्खस्स अन्तकिरियं वदामी' ति, इमस्स ख्वाहं, आवुसो, भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामि। आकङ्खमाना च पन तुम्हे

गम्भीरतया महत्त्व देते हैं। अत: आप भी इस भगवदुक्त संक्षिप्त धर्मसूत्र का व्याख्यान करने में समर्थ हैं। कृपया आप ही इस का विस्तृत अर्थ हम को सरलता से समझावें।"

तब आयुष्मान् आनन्द ने भिक्षुओं की बात स्वीकार कर उक्त धर्मसंक्षेप का विस्तार इस प्रकार आरम्भ किया—

"आयुष्मानो! भगवत्प्रोक्त उस...संक्षिप्त उद्देश्य का विस्तृत अर्थ मेरी समझ में इस प्रकार हो सकता है—आयुष्मानो! जिससे लोक की संज्ञा या उस का मान निर्धारित होता है उसे आर्यविनय में 'लोक' कहते हैं। आयुष्मानो! किस से लोक की संज्ञा या उस का मान होता है? आयुष्मानो! चक्षु से लोक में लोकसंज्ञा या उस का मान होता है; श्रोत्र से...घ्राण से...जिह्वा से...काय से...मन से लोक में लोकसंज्ञा या उस का मान होता है, अत: उस (मन) को ही इस आर्यविनय में 'लोक' कहते हैं। आयुष्मानो! भगवत्प्रोक्त...उस संक्षिप्त धर्म का मैं यही विस्तृत अर्थ समझता हूँ। यदि तुम चाहो तो पुन: भगवान् के

आयस्मन्तो भगवन्तं येव उपसङ्कमित्वा एतमत्थं पटिपुच्छेय्याथ। यथा वो भगवा ब्याकरोति तथा नं धारेय्याथा'' ति।

''एवमावुसो'' ति खो ते भिक्खू आयस्मतो आनन्दस्स पटिस्सुत्वा उट्ठायासना येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—

''यं खो नो, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो—'नाहं, भिक्खवे, गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं, दट्ठेय्यं, पत्तेय्यं ति वदामि। न च पनाहं, भिक्खवे, अप्पत्वा लोकस्स अन्तं दुक्खस्स अन्तकिरियं वदामी' ति, तेसं नो, भन्ते, अम्हाकं अचिरपक्कन्तस्स भगवतो एतदहोसि—'इदं खो नो, आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो—नाहं, भिक्खवे, गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं, दट्ठेय्यं, पत्तेय्यं ति वदामि। न च पनाहं, भिक्खवे, अप्पत्वा लोकस्स अन्तं दुक्खस्स अन्तकिरियं वदामी ति। को नु खो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजेय्या' ति ? तेसं नो, [R.97] भन्ते, अम्हाकं एतदहोसि—'अयं खो आयस्मा आनन्दो सत्थु चेव संवण्णितो, सम्भावितो च विञ्ञूनं सब्रह्मचारीनं। पहोति चायस्मा आनन्दो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजितुं। यन्नून मयं येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमेय्याम; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं एतमत्थं [B.317] पटिपुच्छेय्यामा' ति। अथ खो मयं, भन्ते, येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमिम्ह; [N.90] उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं एतमत्थं पटिपुच्छिम्ह। तेसं नो, भन्ते, आयस्मता आनन्देन इमेहि आकारेहि इमेहि पदेहि इमेहि ब्यञ्जनेहि अत्थो विभत्तो'' ति।

''पण्डितो, भिक्खवे, आनन्दो; महापञ्ञो, भिक्खवे, आनन्दो ! मं चे पि तुम्हे,

---

सम्मुख जा कर उन से भी इस का विस्तृत अर्थ जान लो, सुन लो; वे जैसा उपदेश करें वैसा मन में धारण कर लो।''

''ठीक है, आयुष्मन्''—कह कर वे भिक्षु पुनः भगवान् की सेवा में पहुँचे। तथा उन्हें प्रणाम कर, उन्होंने यों निवेदन किया—

''भन्ते ! भगवान् ने अभी कुछ समय पूर्व जिस संक्षिप्त धर्म का उपदेश किया था ...पूर्ववत्...भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द ने उक्त संक्षिप्त धर्म का इस आकार में इन पदों से, इन व्यञ्जनों से विस्तार किया है।''

भिक्खवे, एतमत्थं पटिपुच्छेय्याथ, अहं पि तं एवमेवं ब्याकरेय्यं यथा तं आनन्देन ब्याकतं। एसो चेवेतस्स अत्थो, एवं च नं धारेय्याथा'' ति॥ •

११७. कामगुणसुत्तं

११९. ''पुब्बेव मे, भिक्खवे, सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो एतदहोसि—'ये मे पञ्च कामगुणा चेतसो सम्फुट्ठपुब्बा अतीता निरुद्धा विपरिणता, तत्र मे चित्तं बहुलं गच्छमानं गच्छेय्य पच्चुप्पन्नेसु वा अप्पं वा अनागतेसु'। तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—'ये मे पञ्च कामगुणा चेतसो सम्फुट्ठपुब्बा अतीता निरुद्धा विपरिणता, तत्र मे अत्तरूपेन अप्पमादो सति चेतसो आरक्खो करणीयो'। तस्मातिह, भिक्खवे, तुम्हाकं पि ये ते पञ्च कामगुणा चेतसो सम्फुट्ठपुब्बा अतीता निरुद्धा विपरिणता, तत्र वो चित्तं बहुलं गच्छमानं गच्छेय्य पच्चुप्पन्नेसु वा अप्पं वा अनागतेसु। तस्मातिह, भिक्खवे, तुम्हाकं पि ये ते पञ्च कामगुणा चेतसो सम्फुट्ठपुब्बा अतीता निरुद्धा [R.98] विपरिणता, तत्र वो अत्तरूपेहि अप्पमादो सति चेतसो आरक्खो करणीयो। तस्मातिह, भिक्खवे, से आयतने वेदितब्बे...पे०...यत्थ जिव्हा च निरुज्झति, रससञ्ञा च निरुज्झति, से आयतने वेदितब्बे...पे०...यत्थ मनो च निरुज्झति, धम्मसञ्ञा च निरुज्झति, से आयतने वेदितब्बे'' ति। इदं वत्वा भगवा उट्ठायासना विहारं पाविसि।

(भगवान् बोले—) ''भिक्षुओ! आनन्द पण्डित है, महाप्रज्ञ है। भिक्षुओ! तुम मुझ से भी यदि इस का विस्तार पूछते तो मैं भी तुम लोगों को यही बताता जैसा कि आनन्द ने बताया है। इस का यही स्पष्टीकरण है, इसे तुम इसी तरह मन में बैठा लो।'' •

११७. कामगुणसूत्र : : चित्त की रक्षा

११९. ...''भिक्षुओ! जब मैं बुद्धत्व प्राप्त कर अभिसम्बुद्ध नहीं हुआ उस से पूर्व बोधिसत्त्वावस्था में ही मुझ को यह विचार हुआ—'जो अतीत में अनुभव किये गये पाँच कामगुण विगत, निरुद्ध एवं विनष्ट हो चुके हैं, उन में मेरा चित्त बहुत जाता है, फिर वर्तमान तथा अनागत की तो बात ही क्या?' अत: मैने यह निश्चय किया—'उक्त कामगुणों के प्रति, आत्महित के लिये, मुझे अप्रमत्त एवं स्मृतिमान् हो कर उन से स्वचित्त की रक्षा करनी चाहिये'। इसलिये, भिक्षुओ! तुम्हारे भी जो पूर्वकाल में अनुभूत पाँचों कामगुण विगत, निरुद्ध एवं अन्यथा हो चुके हैं वहाँ चित्त बहुत जाता होगा...अत: उन के प्रति आत्महित के लिये तुम्हें भी अप्रमत्त एवं स्मृतिमान् हो कर स्वचित्त की रक्षा करनी चाहिये। अत: भिक्षुओ! तुम्हें अपने उन आयतनों को जानना चाहिये जहाँ चक्षु एवं रूपसंज्ञा...पूर्ववत्...जिह्वा एवं रससंज्ञा...मन एवं धर्मसंज्ञा निरुद्ध हो जाती हैं।'' यह उपदेश कर भगवान् अपने साधनास्थल पर चले गये।

अथ खो तेसं भिक्खूनं अचिरपक्कन्तस्स भगवतो एतदहोसि—"इदं खो नो, आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो—'तस्मातिह, भिक्खवे, से आयतने वेदितब्बे यत्थ चक्खु च निरुज्झति, रूपसञ्ञा च निरुज्झति, से आयतने वेदितब्बे...पे०...यत्थ जिव्हा च निरुज्झति, रससञ्ञा च निरुज्झति, से आयतने वेदितब्बे...पे०...यत्थ मनो च निरुज्झति, [N.91] धम्मसञ्ञा च निरुज्झति, से आयतने वेदितब्बे' ति। को नु खो इमस्स भगवता [B.318] सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजेय्या" ति?

अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—"अयं खो आयस्मा आनन्दो सत्थु चेव संवण्णितो, सम्भावितो च विञ्ञूनं सब्रह्मचारीनं। पहोति चायस्मा आनन्दो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजितुं। यन्नून मयं येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमेय्याम; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं एतमत्थं पटिपुच्छेय्यामा" ति।

अथ खो ते भिक्खू येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा आयस्मता आनन्देन सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं [R.99] निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोचुं—

"इदं खो नो, आवुसो आनन्द, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो—'तस्मातिह, भिक्खवे, से आयतने वेदितब्बे यत्थ चक्खु च निरुज्झति, रूपसञ्ञा च निरुज्झति, से आयतने वेदितब्बे...पे०...यत्थ जिव्हा च निरुज्झति, रससञ्ञा च निरुज्झति, से आयतने वेदितब्बे...पे०...यत्थ मनो च निरुज्झति, धम्मसञ्ञा च निरुज्झति, से आयतने वेदितब्बे' ति। तेसं नो, आवुसो,

---

भगवान् के चले जाने के कुछ ही समय बाद, भिक्षुओं को यह विचार हुआ—"भगवान् ने यह धर्मोपदेश संक्षेप में कह कर, अन्त में यह कहते हुए—'अत: भिक्षुओ! तुम्हें अपने उन आयतनों को जानना चाहिये जहाँ चक्षु...पूर्ववत्...धर्मसंज्ञा निरुद्ध हो जाती है।' अब इस संक्षिप्त धर्म का विस्तार हमें कौन समझाये?"

तब उन के यह ध्यान में आया—"ये आयुष्मान् आनन्द भगवान् से प्रशंसाप्राप्त...हैं, उन के पास चल कर उन से इस धर्मसंक्षेप का विस्तार पूछा जाय।"

तब वे भिक्षु आयुष्मान् आनन्द के पास...यों कहने लगे—"आयुष्मन् आनन्द! अभी भगवान् हमें...यह संक्षिप्त धर्मोपदेश कर...कृपया आप हमें इस का विस्तार से अर्थ समझावें।"

अम्हाकं अचिरपक्कन्तस्स भगवतो एतदहोसि—'इदं खो नो, आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो...को नु खो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजेय्या' ति? तेसं नो, आवुसो, अम्हाकं एतदहोसि—'अयं खो आयस्मा आनन्दो सत्थु चेव संवण्णितो, सम्भावितो च विञ्ञूनं सब्रह्मचारीनं। पहोति चायस्मा [B.319] आनन्दो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजितुं। यन्नूनं मयं येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमेय्याम; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं एतमत्थं पटिपुच्छेय्यामा' ति। विभजतायस्मा आनन्दो'' ति।

[N.92] सेय्यथापि, आवुसो, पुरिसो सारत्थिको सारगवेसी सारपरियेसनं चरमानो महतो रुक्खस्स...पे०...विभजतायस्मा आनन्दो अगरुं करित्वा ति।

''तेनहावुसो, सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी'' ति। ''एवमावुसो'' [R.100] ति खो ते भिक्खू आयस्मतो आनन्दस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा आनन्दो एतदवोच—

''यं खो वो, आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो...इमस्स ख्वाहं, आवुसो, भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं आजानामि। सळायतननिरोधं नो एतं, आवुसो, भगवता सन्धाय भासितं—'तस्मातिह, भिक्खवे, से आयतने वेदितब्बे यत्थ चक्खु च निरुज्झति, रूपसञ्ञा च निरुज्झति, से आयतने वेदितब्बे...पे०...यत्थ मनो च निरुज्झति, धम्मसञ्ञा च निरुज्झति, से आयतने

आनन्द बोले—''आयुष्मानो! यह तो वैसी ही बात हुई जैसे कोई (सार) काष्ठ चाहने वाला...पूर्ववत्...आप लोग इस का विस्तार भगवान् से ही पूछते तथा वे जैसा बताते वैसा अपने मन में बैठा लेते।''

भिक्षु—''हाँ, आयुष्मन् आनन्द! आप का कथन यथार्थ है, परन्तु आप की भी भगवान् ने अपने धर्मव्याख्याता के रूप में प्रशंसा ही की है...अत: आप ही इस का विस्तार हमें बतावें।''

आनन्द—''आयुष्मानो! भगवान् के इस संक्षिप्त धर्मोपदेश का मैं यह विस्तृत अर्थ समझता हूँ—'भिक्षुओ! भगवान् ने यह संक्षिप्त धर्मोपदेश षडायतननिरोध के प्रसङ्ग में किया है। जैसा कि उन का उपदेश है—इसलिये, भिक्षुओ! तुम्हें अपने उन आयतनों पर विचार करना चाहिये। जहाँ चक्षु का निरोध हो जाता है, रूपसंज्ञा का निरोध हो जाता

वेदितब्बे' ति। अयं खो, आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो...इमस्स ख्वाहं, आवुसो, भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामि। आकङ्खमाना च पन तुम्हे आयस्मन्तो भगवन्तं येव उपसङ्कमथ; उपसङ्कमित्वा एतमत्थं पुच्छेय्याथ। यथा वो भगवा ब्याकरोति तथा नं धारेय्याथा'' ति।

''एवमावुसो'' ति खो ते भिक्खू आयस्मतो आनन्दस्स पटिस्सुत्वा [B.320] उट्ठायासना येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—

''यं खो नो, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो—'तस्मातिह, भिक्खवे, से आयतने वेदितब्बे यत्थ चक्खु च निरुज्झति, रूपसञ्ञा च निरुज्झति, से आयतने वेदितब्बे...पे०...यत्थ जिव्हा च निरुज्झति, रससञ्ञा च निरुज्झति, से आयतने वेदितब्बे...पे०...यत्थ मनो च निरुज्झति, धम्मसञ्ञा च निरुज्झति, से आयतने वेदितब्बे' ति। तेसं नो, [N.93, R.101] भन्ते, अम्हाकं अचिरपक्कन्तस्स भगवतो एतदहोसि—'इदं खो नो, आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो...को नु खो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजेय्या' ति? तेसं नो, भन्ते, अम्हाकं एतदहोसि—'अयं खो आयस्मा आनन्दो सत्थु चेव संवण्णितो, सम्भावितो च विञ्ञूनं सब्रह्मचारीनं। पहोति चायस्मा आनन्दो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजितुं। यन्नून मयं येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमेय्याम; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं एतमत्थं पटिपुच्छेय्यामा' ति। अथ खो मयं, भन्ते, येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमिम्ह; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं एतमत्थं पटिपुच्छिम्ह। तेसं नो, भन्ते, आयस्मता आनन्देन इमेहि आकारेहि इमेहि पदेहि इमेहि ब्यञ्जनेहि अत्थो विभत्तो'' ति।

है—उन आयतनों को जानना चाहिये...पूर्ववत्...मन...धर्मसंज्ञा का निरोध हो जाता है। यह उपदेश कर भगवान् गन्धकुटी में पुनः लौट गये थे। भगवान् के इस धर्मकथन का मैं यही विस्तार समझता हूँ। यदि आयुष्मानो ! आप लोग चाहें तो पुनः भगवान् के सम्मुख जा कर अपनी जिज्ञासा शान्त कर लें, तथा वे जैसा बतावें तदनुसार अपने हृदय में धारण कर लें।''

"पण्डितो, भिक्खवे, आनन्दो; महापञ्ञो, भिक्खवे, आनन्दो! मं चे पि तुम्हे, भिक्खवे, एतमत्थं पटिपुच्छेय्याथ, अहं पि तं एवमेवं ब्याकरेय्यं यथा तं आनन्देन ब्याकतं। एसो चेवेतस्स अत्थो। एवं च नं धारेय्याथा" ति॥ •

११८. सक्कपञ्हसुत्तं

१२०. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। अथ खो सक्को [B.321] देवानमिन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सक्को देवानमिन्दो भगवन्तं एतदवोच—"को नु [R.102] खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे नो परिनिब्बायन्ति? को पन, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायन्ती" ति?

"सन्ति खो, देवानमिन्द, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अभिनन्दतो अभिवदतो अज्झोसाय तिट्ठतो तन्निस्सितं विञ्ञाणं होति तदुपादानं। सउपादानो, देवानमिन्द, भिक्खु नो परिनिब्बायति...पे०...।

"सन्ति खो, देवानमिन्द, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा...पे०...सन्ति खो, देवानमिन्द,

---

"आयुष्मन्! आप का कथन उचित है"—यह कह कर पुन: भगवान् की सेवा में पहुँचे तथा यह समग्र घटनाक्रम...पूर्ववत्...सुनाया।

भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ! आनन्द पण्डित है, महाप्रज्ञ है। मुझ से भी तुम पूछते तो मैं भी यही विस्तार बताता जो आनन्द ने बताया है। इस का यही अर्थ है। तुम इस को इसी तरह मन में धारण कर लो॥" •

११८. शक्रप्रश्नसूत्र : : इसी जन्म में निर्वाणप्राप्ति में हेतु

१२०. एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान थे। तब देवेन्द्र शक्र भगवान् के सम्मुख आये तथा उन्हें प्रणाम कर, एक ओर खड़े हो कर यों बोले—"भन्ते! यहाँ क्या हेतु या प्रत्यय है कि कुछ लोग (साधना कर के भी) इसी जन्म में परिनिर्वृत नहीं हो पाते; तथा कुछ लोग इसी जन्म में परिनिर्वृत हो जाते हैं?"

"देवेन्द्र! चक्षुर्विज्ञेय रूप इष्ट, प्रिय, सुन्दर, मनोमोहक...पूर्ववत्...रागमय होते हैं। उन का यदि कोई भिक्षु अभिनन्दन करता है, उन में अभिनिवेश करता है, उन की चर्चा में रस लेता है, तो ऐसा अभिनन्दन, अभिनिवेश एवं अभिवदन करने वाले का तन्नि:सृत विज्ञान उपादान बन जाता है। देवेन्द्र! ऐसे सउपादान भिक्षु का परिनिर्वाण नहीं होता। ...पूर्ववत्...।

मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे [N.94] भिक्खु अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अभिनन्दतो अभिवदतो अज्झोसाय तिट्ठतो तन्निस्सितं विञ्ञाणं होति तदुपादानं। सउपादानो, देवानमिन्द, भिक्खु नो परिनिब्बायति। अय खो, देवानमिन्द, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे नो परिनिब्बायन्ति।

"सन्ति च खो, देवानमिन्द, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अनभिनन्दतो अनभिवदतो अनज्झोसाय तिट्ठतो तन्निस्सितं विञ्ञाणं होति न तदुपादानं। अनुपादानो, देवानमिन्द, भिक्खु परिनिब्बायति...पे०...।

"सन्ति खो, देवानमिन्द, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा...पे०...सन्ति खो, देवानमिन्द, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अनभिनन्दतो अनभिवदतो अनज्झोसाय तिट्ठतो तन्निस्सितं विञ्ञाणं होति न तदुपादानं। अनुपादानो, देवानमिन्द, भिक्खु परिनिब्बायति। अयं खो, देवानमिन्द, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायन्ती" ति॥ [B.322] ●

११९. पञ्चसिखसुत्तं

१२१. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। अथ खो [R.103] पञ्चसिखो गन्धब्बदेवपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा

"देवेन्द्र! जिह्वाविज्ञेय रस...पूर्ववत्...मनोविज्ञेय धर्म...विज्ञान उपादान बन जाता है। ऐसे सउपादान भिक्षु का परिनिर्वाण नहीं होता। देवेन्द्र! यह हेतु तथा प्रत्यय है कि कुछ लोग साधना कर के भी इसी जन्म में परिनिर्वृत नहीं होते। (क)

"अथ च, देवेन्द्र! चक्षुर्विज्ञेय रूप इष्ट, प्रिय...रागमय होते हैं इन का कोई भिक्षु अभिनन्दन नहीं करता, तथा उन में अभिनिवेश नहीं करता या उन की चर्चा में किसी प्रकार का रस नहीं लेता तो उस को तन्नि:सृत विज्ञान नहीं होता, न वह किसी प्रकार का उपादान ग्रहण करता है। अत:, देवेन्द्र! ऐसे निरुपादान साधक भिक्षु का इसी जन्म में परिनिर्वाण हो जाता है। ...पूर्ववत्...।

इसी प्रकार, देवेन्द्र! जिह्वाविज्ञेय रस...मनोविज्ञेय धर्म इष्ट, प्रिय...पूर्ववत्...इसी जन्म में परिनिर्वाण हो जाता है"॥ (ख) ●

११९. पञ्चशिखसूत्र : : इसी जन्म में निर्वाणप्राप्ति का हेतु

१२१. एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह** के गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान

एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो पञ्चसिखो गन्धब्बदेवपुत्तो भगवन्तं एतदवोच– ''को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे नो परिनिब्बायन्ति? को पन, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायन्ती'' ति?

''सन्ति खो, पञ्चसिख, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा...पे०...सन्ति खो, पञ्चसिख, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु [N.95] अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अभिनन्दतो अभिवदतो अज्झोसाय तिट्ठतो तन्निस्सितं विञ्ञाणं होति तदुपादानं। सउपादानो, पञ्चसिख, भिक्खु नो परिनिब्बायति। अयं खो, पञ्चसिख, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे नो परिनिब्बायन्ति।

''सन्ति च खो, पञ्चसिख, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा...पे०...सन्ति खो, पञ्चसिख, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अनभिनन्दतो अनभिवदतो अनज्झोसाय तिट्ठतो तन्निस्सितं विञ्ञाणं होति न तदुपादानं। अनुपादानो, पञ्चसिख, भिक्खु परिनिब्बायति। अयं खो, पञ्चसिख, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायन्ती'' ति॥

●

१२०. सारिपुत्तसद्धिविहारिकसुत्तं

१२२. एकं समयं आयस्मा सारिपुत्तो सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सारिपुत्तेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं [B.323] वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच–''सद्धिविहारिको, आवुसो सारिपुत्त, भिक्खु सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तो'' ति।

थे। उस समय पञ्चशिख नामक गन्धर्व देवपुत्र भगवान् के सम्मुख आया तथा उन्हें प्रणाम कर एक ओर खड़े रहते हुए भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की...पूर्वसूत्रवत्...इसी जन्म में परिनिर्वाण हो जाता है। *(अनुपद में वर्णित शक्रप्रश्नसूत्र के समान यहाँ भी विस्तार कर लें।)*॥

●

१२०. सारिपुत्रसहविहारिकसूत्र : : भिक्षु का गृहस्थ धर्म में जाने का हेतु

१२२. एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र श्रावस्ती के अनाथपिण्डिकश्रेष्ठीद्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब कोई भिक्षु उन के पास आया, तथा उन से कुशल मङ्गल के प्रश्न कर वह एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उसने आयुष्मान् सारिपुत्र

"एवमेतं, आवुसो, होति इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारस्स, भोजने अमत्तञ्ञुनो, जागरियं अननुयुत्तस्स। 'सो वतावुसो, भिक्खु इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारो भोजने अमत्तञ्ञू जागरियं अननुयुत्तो यावजीवं परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं सन्तानेस्सती' ति नेतं ठानं [R.104] विज्जति। 'सो वतावुसो, भिक्खु इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो भोजने मत्तञ्ञू जागरियं अनुयुत्तो यावजीवं परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं सन्तानेस्सती' ति ठानमेतं विज्जति।

"कथं चावुसो, इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति? इधावुसो, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं तस्स संवराय [N.96] पटिपज्जति, रक्खति चक्खुन्द्रियं, चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति। सोतेन सद्दं सुत्वा... घानेन गन्धं घायित्वा...जिव्हाय रसं सायित्वा...कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा...मनसा धम्मं विञ्ञाय न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति मनिन्द्रियं, मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति। एवं खो, आवुसो, इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति।

"कथं चावुसो, भोजने मत्तञ्ञू होति? इधावुसो, भिक्खु पटिसङ्खा योनिसो

से यह कहा—"आयुष्मन् सारिपुत्र! (मेरा) शिष्य भिक्षुधर्म छोड़ कर पुनः हीन (गृहस्थ) धर्म में प्रविष्ट हो गया।"

(सारिपुत्र बोले—) "इन्द्रियों में असंयमी, भोजन की मात्रा न जानने वाले तथा साधना में सावधान न रहने वाले की यही दशा होती है। आयुष्मन्! ऐसा भिक्षु धर्मसाधना में सफल हो—यह सम्भव नहीं। परन्तु, आयुष्मन्! जो भिक्षु इन्द्रियों पर संयम रखने वाला, भोजन की मात्रा जानने वाला तथा साधना में सावधान रहने वाला है, वह ऐसी दुःस्थिति में नहीं पड़ता। आयुष्मन्! ऐसा भिक्षु धर्मसाधना में अवश्य ही सफल होगा—यह निश्चित है। वह जीवनपर्यन्त शुद्ध धर्मसाधना में लगा रहेगा—यह सम्भव है।

आयुष्मन्! **इन्द्रियों का संयम** कैसे होता है? यहाँ, आयुष्मन्! कोई भिक्षु चक्षु से रूप देख कर भी उस के निमित्त का ग्रहण नहीं करता, उस में उस का मन लुब्ध नहीं होता। जो असंयत चक्षुरिन्द्रिय से साधना में लगता है, उस के चित्त में लोभ द्वेष एवं पापमय अकुशल धर्म प्रविष्ट होते रहते हैं अतः उस (चक्षुरिन्द्रिय) के लिये उसे प्रयत्नशील रहना चाहिये। चक्षुरिन्द्रिय की पापमय धर्मों से रक्षा करनी चाहिये। श्रोत्र से शब्द सुन कर... घ्राण से गन्ध सूँघ कर... जिह्वा से रस चख कर... काय से स्प्रष्टव्य का स्पर्श कर... मन से धर्मों को जान कर उन के निमित्त का ग्रहण करता है... पूर्ववत्... मन इन्द्रिय में संयम करता है। आयुष्मन्! इसे कहते हैं—इन्द्रियों का संयम। (क)

आहारं आहारेति—'नेव दवाय, न मदाय, न मण्डनाय, न विभूसनाय, यावदेव इमस्स कायस्स ठितिया यापनाय, विहिंसूपरतिया, ब्रह्मचरियानुग्गहाय। इति पुराणं च वेदनं पटिहङ्खामि, नवं च वेदनं न उप्पादेस्सामि, यात्रा च मे भविस्सति, अनवज्जता च फासुविहारो चा' ति। एवं खो, आवुसो, भोजने मत्तञ्ञू होति।

"कथं चावुसो, जागरियं अनुयुत्तो होति? इधावुसो, भिक्खु दिवसं चङ्कमेन निसज्जाय आवरणीयेहि धम्मेहि चित्तं परिसोधेति। रत्तिया पठमं यामं चङ्कमेन निसज्जाय आवरणीयेहि धम्मेहि चित्तं परिसोधेति। रत्तिया मज्झिमं यामं दक्खिणेन पस्सेन [R.105] सीहसेय्यं कप्पेति पादे पादं अच्चाधाय सतो सम्पजानो, उट्ठानसञ्ञं मनसि करित्वा। रत्तिया पच्छिमं यामं पच्चुट्ठाय चङ्कमेन निसज्जाय आवरणीयेहि धम्मेहि चित्तं [B.324] परिसोधेति। एवं खो, आवुसो, जागरियं अनुयुत्तो होति।

तस्मातिहावुसो, एवं सिक्खितब्बं—'इन्द्रियेसु गुत्तद्वारा भविस्साम, भोजने मत्तञ्ञुनो, जागरियं अनुयुत्ता' ति। एवं हि वो, आवुसो, सिक्खितब्बं" ति॥ •

"तथा भिक्षु! वह कैसे **भोजन में मात्रा का जानने वाला** होता है? भिक्षु! जो साधक भली भाँति ध्यान रखता हुआ भोजन करता है। तथा वह न केवल शरीर में दव (उष्णता=गर्मी) के लिये, न मद के लिये, न ऐश्वर्य प्रदर्शन के लिये भोजन करता है; अपि तु केवल अपने शरीर की स्थिति बनाये रखने के लिये, जीवननिर्वाह के लिये, विहिंसा (कष्ट) की उपरति (शमन) के लिये, धर्मसाधना में सरलता के लिये ही भोजन लेता है। वह यह भोजन ऐसा सोचता हुआ ग्रहण करता है कि इस भोजन से मैं अपनी पुराण वेदनाओं को कम कर रहा हूँ, तथा नव वेदनाओं का उत्पाद न होने दूँगा, इस तरह मेरा जीवन सरलता से आगे बढ़ता रहेगा, तथा मैं अपनी धर्मसाधना भी सुगमतापूर्वक करता रहूँगा। (ख)

"तथा भिक्षु! **साधना में सावधान** (जागर्या में अनुयुक्त) कैसे रहता है? यहाँ कोई साधक भिक्षु दिन में चंक्रमण कर आसन लगा कर आवरणीय धर्मों से स्वचित्त को शुद्ध करता है। रात्रि के प्रथम प्रहर में...पूर्ववत्...द्वितीय प्रहर में दक्षिण पार्श्व से सिंहशय्या आसन लगा कर, पैर पर पैर रख कर, स्मृतिमान् रहते हुए, सम्प्रजन्यपूर्वक उत्थानसंज्ञा को मन में रखते हुए साधना करता है। रात्रि के अन्तिम प्रहर में निद्रा से जग कर पुनः चंक्रमण कर, आसन लगा कर आवरणीय धर्मों से चित्त को शुद्ध करता है। इस तरह, भिक्षु! साधना में सावधान रहना कहलाता है। अतः साधक को यों शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—'इन्द्रियों में संयम रखना चाहिये, भोजन में मात्राज्ञ होना चाहिये तथा धर्मसाधना में सावधान रहना चाहिये'। आयुष्मानो! यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये॥" (ग) •

१२१. राहुलोवादसुत्तं

१२३. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो भगवतो रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवित्तक्को उदपादि—"परिपक्का खो राहुलस्स विमुत्तिपरिपाचनिया धम्मा; यन्नूनाहं राहुलं उत्तरिं आसवानं खये विनेय्यं" ति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय [N.97] सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो आयस्मन्तं राहुलं आमन्तेसि—"गण्हाहि, राहुल, निसीदनं। येन अन्धवनं तेनुपसङ्कमिस्साम दिवा-विहाराया" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा राहुलो भगवतो पटिस्सुत्वा निसीदनं आदाय भगवन्तं पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धि।

तेन खो पन समयेन अनेकानि देवतासहस्सानि भगवन्तं अनुबन्धानि होन्ति—"अज्ज भगवा आयस्मन्तं राहुलं उत्तरिं आसवानं खये विनेस्सती" ति।

अथ खो भगवा अन्धवनं अज्झोगाहेत्वा अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले पञ्ञत्ते आसने निसीदि। आयस्मा पि खो राहुलो भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं राहुलं भगवा एतदवोच— [R.106]

"तं किं मञ्ञसि, राहुल, चक्खु निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

---

१२१. राहुलाववादसूत्र : : राहुल को अर्हत्त्वप्राप्ति

१२३. एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती** के जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय, एकान्त में शान्त रूप से विराजमान भगवान् के मन में यह विचार उठा—"राहुल के चित्तविमुक्ति वाले धर्म परिपक्व हो चुके हैं, तो अब क्यों न उसे उस के ऊपर वाले धर्मों (आश्रवों) के क्षय के लिये सन्नद्ध करूँ।"

तब भगवान् ने प्रातःकाल, पहने हुए वस्त्र ठीक कर, पात्रचीवर ले कर श्रावस्ती में भिक्षा कर भोजन से निवृत्त हो कर, आयुष्मान् राहुल को अपने पास बुलाया और कहा—"राहुल! अपना आसन ले लो, अन्धवन में दिन की साधनाहेतु चलेंगे।" "अच्छा, भन्ते!"—यों कह कर आयुष्मान् राहुल भगवान् के पीछे पीछे चलने लगे।

उस समय अनेक हजार देवता भी भगवान् के पीछे यह देखने के लिये चलने लगे कि आज भगवान् आयुष्मान् राहुल को ऊपर वाले धर्मों के विनाश के लिये कैसे प्रोत्साहित करेंगे! तब भगवान् अन्धवन में प्रविष्ट हो कर एकान्त में किसी छायावाले वृक्ष के नीचे आसन पर विराजे। आयुष्मान् राहुल भी भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे राहुल से भगवान् ने यों पूछा—

"तो क्या मानते हो, राहुल! चक्षु नित्य है, अनित्य?"

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"रूपा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते"...पे०...।

चक्खुविञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"चक्खुसम्फस्सो निच्चो वा अनिच्चो वा" ति?

"अनिच्चो, भन्ते"।

"यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदनागतं सञ्ञागतं सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

[N.98]"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

[B.325]"नो हेतं, भन्ते" ...पे०...।

"जिव्हा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनित्य, भन्ते!"

"जो अनित्य है वह दु:ख है या सुख?"

"दु:ख है, भन्ते!"

"जो अनित्य है, दु:ख है, परिवर्तनशील (विनाशी) है उस के विषय में क्या ऐसा मानना उचित होगा कि यह मेरा है, या यह मैं हूँ, या मेरी आत्मा है?"

"नहीं, भन्ते!"

"रूप नित्य हैं या अनित्य...पूर्ववत्...चक्षुर्विज्ञान नित्य है या अनित्य? ...चक्षु:संस्पर्श नित्य है या अनित्य? ...चक्षु:संस्पर्शजन्य सुखदु:खादि वेदनाएँ नित्य हैं या अनित्य? ...पूर्ववत्...।

"अनिच्चा, भन्ते" ...पे०...।

"जिव्हाविञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते" ...।

"जिव्हासम्फस्सो निच्चो वा अनिच्चो वा" ति?

"अनिच्चो, भन्ते"।

"यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदनागतं सञ्ञागतं सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते" ...पे०...।

"मनो निच्चो वा अनिच्चो वा" ति?

"अनिच्चो, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"धम्मा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते" ...पे०...।

"मनोविञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते" ...पे०...।

"मनोसम्फस्सो निच्चो वा अनिच्चो वा" ति?

"अनिच्चो, भन्ते"।

"यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदनागतं सञ्ञागतं सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति? [N.99]

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवं पस्सं, राहुल, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति, रूपेसु पि निब्बिन्दति, चक्खुविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, चक्खुसम्फस्से पि निब्बिन्दति, यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदनागतं सञ्ञागतं सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं तस्मिं पि निब्बिन्दति...पे०...जिव्हाय पि निब्बिन्दति, रसेसु पि निब्बिन्दति, जिव्हाविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, जिव्हासम्फस्से पि निब्बिन्दति, यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदनागतं सञ्ञागतं सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं तस्मिं पि निब्बिन्दति...पे०...मनस्मिं पि निब्बिन्दति, धम्मेसु पि निब्बिन्दति, मनोविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, मनोसम्फस्से पि निब्बिन्दति, यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदनागतं सञ्ञागतं सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं तस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति।

१२४. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा राहुलो भगवतो भासितं अभिनन्दि। इमस्मिं च पन वेय्याकरणस्मिं भञ्ञमाने आयस्मतो राहुलस्स अनुपादाय आसवेहि [B.326] चित्तं विमुच्चि। अनेकानं च देवतासहस्सानं विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—"यं किञ्चि समुदयधम्मं, सब्बं तं निरोधधम्मं'' ति॥ •

१२२. संयोजनियधम्मसुत्तं

१२५. "संयोजनिये च, भिक्खवे, धम्मे देसेस्सामि संयोजनं च। तं सुणाथ।

"जिह्वा नित्य है या अनित्य? ...मन नित्य है या अनित्य? ...मन:संस्पर्शज वेदनाएँ नित्य हैं या अनित्य? ...पूर्ववत्...।

"राहुल! यो देखता जानता हुआ किसी विद्वान् आर्यश्रावक को चक्षु में भी अरुचि हो जाती है, रूपों में भी अरुचि...पूर्ववत्...इससे आगे मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है—वह ऐसा जान जाता है।"

१२४. भगवान् ने यों उपदेश किया। सन्तुष्टचित्त आयुष्मान् राहुल ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया। इस उपदेश श्रवण के साथ ही आयुष्मान् राहुल का चित्त आश्रवों से विमुक्त हो गया। उन उपस्थित हजारों देवताओं को भी यह निर्मल धर्मज्ञान उद्भूत हो गया—"जिस की उत्पत्ति होगी, उस का नाश अवश्यम्भावी है"॥ •

कतमे च, भिक्खवे, संयोजनिया धम्मा, कतमं च संयोजनं? सन्ति, भिक्खवे, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। इमे [R.108] वुच्चन्ति, भिक्खवे, संयोजनिया धम्मा। यो तत्थ छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं...पे०... सन्ति, भिक्खवे, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा...पे० ...सन्ति, भिक्खवे, मनोविञ्ञेय्या [N.100] धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, संयोजनिया धम्मा। यो तत्थ छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं'' ति॥ ●

१२३. उपादानियधम्मसुत्तं

१२६. ''उपादानिये च, भिक्खवे, धम्मे देसेस्सामि उपादानं च। तं सुणाथ। कतमे च, भिक्खवे, उपादानिया धम्मा, कतमं च उपादानं? सन्ति, भिक्खवे, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, उपादानिया धम्मा। यो तत्थ छन्दरागो तं तत्थ उपादानं...पे०...सन्ति, भिक्खवे, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा...पे०...सन्ति, भिक्खवे, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, उपादानिया धम्मा। यो तत्थ छन्दरागो तं तत्थ उपादानं'' ति॥ ●

लोककामगुणवग्गो दुतियो॥

तस्सुद्दानं

मारपासेन द्वे वुत्ता, लोककामगुणेन च।

---

१२२. संयोजनीयधर्मसूत्र : : 'संयोजन' क्या है?

१२५. ...''भिक्षुओ! मैं तुम्हें संयोजनीय धर्मों के विषय में बताऊँगा, साथ ही 'संयोजन' के विषय में भी। भिक्षुओ! चक्षुर्विज्ञेय रूप इष्ट, प्रिय, सुन्दर, मनोमोहक...होते हैं। भिक्षुओ! ये संयोजनीय धर्म कहलाते हैं। तथा उन रूपों में जो छन्दराग है वह वहाँ 'संयोजन' कहलाता है। ...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! मनोविज्ञेय धर्म इष्ट...। भिक्षुओ! ये संयोजनीय धर्म कहलाते हैं तथा इन में होने वाला छन्दराग 'संयोजन' कहलाता है''॥ ●

१२३. उपादानीयधर्मसूत्र : : 'उपादान' क्या है?

१२६. ...''भिक्षुओ! मैं तुम्हें उपादानीय धर्मों एवं उपादान का उपदेश करूँगा, उसे तुम सुनो। भिक्षुओ! ये उपादानीय धर्म कौन से हैं, तथा 'उपादान' क्या है? भिक्षुओ! चक्षुर्विज्ञेय रूप इष्ट, प्रिय...पूर्ववत्...ये उपादानीय धर्म कहलाते हैं। तथा इन धर्मों में साधक का छन्दराग 'संयोजन' कहलाता है। ...पूर्ववत्... ॥'' ●

लोककामगुणवर्ग द्वितीय समाप्त॥

सक्को पञ्चसिखो चेव, सारिपुत्तो च राहुलो।
संयोजनं उपादानं, वग्गो तेन पवुच्चती॥ ति॥ •

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. प्रथम मारपाशसूत्र, २. द्वितीय मारपाशसूत्र, ३. लोकान्तगमनसूत्र, ४. कामगुणसूत्र, ५. शक्रप्रश्नसूत्र, ६. पञ्चशिखसूत्र, ७. सारिपुत्र-सहविहारिकसूत्र, ८. राहुलाववादसूत्र, ९. संयोजनीयधर्मसूत्र एवं १०. उपादानीयधर्मसूत्र ॥•

३. गहपतिवग्गो ततियो

१२४. वेसालीसुत्तं

१२७. एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागार- [B.327, R.109] सालायं। अथ खो उग्गो गहपति वेसालिको येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो उग्गो गहपति वेसालिको भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे नो परिनिब्बायन्ति? को पन, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायन्ती" ति?

"सन्ति खो, गहपति, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अभिनन्दतो अभिवदतो अज्झोसाय तिट्ठतो तन्निस्सितं विञ्ञाणं होति तदुपादानं। सउपादानो, गहपति, भिक्खु नो परिनिब्बायति...पे०...सन्ति खो, गहपति, [N.101] जिव्हाविञ्ञेय्या रसा...पे०... सन्ति खो, गहपति, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अभिनन्दतो अभिवदतो अज्झोसाय तिट्ठतो तन्निस्सितं विञ्ञाणं होति तदुपादानं। सउपादानो, गहपति, भिक्खु नो परिनिब्बायति। अयं खो, गहपति, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे नो परिनिब्बायन्ति।

---

३. गृहपतिवर्ग तृतीय

१२४. वैशालीसूत्र : : इसी जन्म में निर्वाणप्राप्ति का हेतु

१२७. एक समय भगवान् (बुद्ध) **वैशाली** के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय वैशालीवासी उग्र गृहपति भगवान् की सेवा में आया। आ कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस वैशालीवासी उग्र गृहपति ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! क्या हेतु या क्या प्रत्यय है कि कोई प्राणी कठिन साधना कर के भी इस जन्म में परिनिर्वाण प्राप्त नहीं कर पाते; तथा कोई इसी जन्म में परिनिर्वाण प्राप्त कर लेते हैं?"

"गृहपति! चक्षुर्विज्ञेय रूप इष्ट, प्रिय, सुन्दर...मनोमोहक होते हैं, यदि साधक भिक्षु उन का अभिनन्दन या उन में अभिनिवेश एवं उन की चर्चा में रस लेता है, तो उस के ऐसा करने से उस रूप से निःसृत विज्ञान में उस का उपादान हो जाता है। ऐसे उपादान के रहते साधक भिक्षु का, साधना करने पर भी, परिनिर्वाण नहीं होता। ...मनोविज्ञेय धर्म...परिनिर्वाण नहीं होता।

''सन्ति च खो, गहपति, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अनभिनन्दतो अनभिवदतो अनज्झोसाय तिट्ठतो न तन्निस्सितं विञ्ञाणं होति न तदुपादानं। अनुपादानो, गहपति, भिक्खु परिनिब्बायति...पे०...सन्ति खो, गहपति, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा...पे०...सन्ति खो, गहपति, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अनभिनन्दतो अनभिवदतो अनज्झोसाय तिट्ठतो न तन्निस्सितं विञ्ञाणं [B.328] होति न तदुपादानं। अनुपादानो, गहपति, भिक्खु परिनिब्बायति। अयं खो, गहपति, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायन्ती'' ति॥ •

१२५. वज्जीसुत्तं

१२८. एकं समयं भगवा वज्जीसु विहरति हत्थिगामे। अथ खो उग्गो गहपति हत्थिगामको येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो उग्गो गहपति हत्थिगामको भगवन्तं एतदवोच—''को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे नो परिनिब्बायन्ति? को पन, भन्ते, हेतु को [R.110] पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायन्ती'' ति...पे०...अयं खो, गहपति, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायन्ती ति॥ •

१२६. नाळन्दसुत्तं

[N.102] १२९. एकं समयं भगवा नाळन्दायं विहरति पावारिकम्बवने। अथ खो उपालि

''फिर, गृहपति! इष्ट, कान्त, मनाप चक्षुर्विज्ञेय रूपों का जो अभिनन्दन नहीं करता, उन में अभिनिवेश नहीं करता, उन की चर्चा में रस नहीं लेता तो उसे उन रूपों से निःसृत विज्ञान उपादान के रूप में गृहीत नहीं होते। ऐसे उपादान से रहित साधक को साधना द्वारा परिनिर्वाण प्राप्त हो जाता है। ...पूर्ववत्...मनोविज्ञेय धर्मों का...परिनिर्वाण प्राप्त हो जाता है।

गृहपति! यह हेतु तथा प्रत्यय है कि कुछ प्राणी इसी जन्म में परिनिर्वाण प्राप्त नहीं कर पाते, तथा कोई प्राप्त कर लेते हैं॥'' •

१२५. वज्जिसूत्र : : इसी जन्म में निर्वाणप्राप्ति में हेतु

१२८. ...एक समय भगवान् (बुद्ध) वज्जिप्रदेश के **हस्तिग्राम** में साधनाहेतु विराजमान थे। तब उसी हस्तिग्राम का निवासी उग्र गृहपति भगवान् के पास आया ...पूर्वसूत्रवत्...।

(ऊपर वाले सूत्र के समान ही इस सूत्र का भी विस्तार कर लें।)॥ •

गहपति येन भगवा तेनुपसङ्कमि...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो उपालि गहपति भगवन्तं एतदवोच—''को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे नो परिनिब्बायन्ति? को पन, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायन्ती'' ति...पे०...अयं खो, गहपति, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायन्ती ति॥ •

१२७. भारद्वाजसुत्तं

१३०. एकं समयं आयस्मा पिण्डोलभारद्वाजो कोसम्बियं विहरति घोसितारामे। अथ खो राजा उदेनो येनायस्मा पिण्डोलभारद्वाजो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता पिण्डोलभारद्वाजेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा उदेनो आयस्मन्तं पिण्डोलभारद्वाजं एतदवोच—''को नु खो, भो भारद्वाज, हेतु को पच्चयो येनिमे दहरा भिक्खू [B.329] सुसू काळकेसा भद्रेन योब्बनेन समन्नागता पठमेन वयसा अनिकीळिताविनो कामेसु यावजीवं परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं चरन्ति, अद्धानं च आपादेन्ती'' ति?

''वुत्तं खो एतं, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन—'एथ तुम्हे, भिक्खवे, मातुमत्तीसु मातुचित्तं उपट्ठपेथ, भगिनिमत्तीसु भगिनिचित्तं

---

१२६. नालन्दासूत्र : : इसी जन्म में निर्वाणप्राप्ति में हेतु

१२९. ...एक समय भगवान् (बुद्ध) **नालन्दा** के प्रावारिक आम्रवन में साधनाहेतु विराजमान थे। तब कोई उपालि नामक गृहपति भगवान् के पास आया...पूर्वसूत्रवत्...।

(ऊपर आये वैशालीसूत्र के समान यहाँ भी विस्तार कर लें।) ॥ •

१२७. भारद्वाजसूत्र : : भिक्षु धर्मसाधना क्यों करते हैं?

१३०. एक समय आयुष्मान् पिण्डोल भारद्वाज **कौशाम्बी के** घोषिताराम में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उस समय कभी राजा उदयन आयुष्मान् पिण्डोल भारद्वाज के पास (धर्मश्रवणहेतु) आया, तथा कुशलमङ्गल पूछ कर एक ओर बैठ गया। तब एक ओर बैठे राजा उदयन ने आयुष्मान् पिण्डोल भारद्वाज से यह पूछा—''भो भारद्वाज! इस में क्या हेतु या क्या प्रत्यय है कि ये तरुण भिक्षु, जिन का अभी शैशव काल बीता ही है, इन के बाल भी (युवावस्थाद्योतक) काले ही हैं, इन की भरी तरुणाई है, चढ़ती आयु है तथा अभी इन्होंने कामभोगों का ठीक से उपभोग करना भी नहीं सीखा है, आजीवन परिपूर्ण एवं परिशुद्ध धर्म की साधना में लगे रहते हैं? तथा एक लम्बी यात्रा में निकल पड़ते हैं?''

''महाराज! उन सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध ने कहा है—'भिक्षुओ! सुनो! तुम माता की आयुवाली स्त्रियों में माता का भाव, बहन की आयुवाली स्त्रियों में

[R.111] उपट्ठपेथ, धीतुमत्तीसु धीतुचित्तं उपट्ठपेथा' ति। अयं खो, महाराज, हेतु अयं पच्चयो येनिमे दहरा भिक्खू सुसू काळकेसा भद्रेन योब्बनेन समन्नागता पठमेन वयसा अनिकीळिताविनो कामेसु यावजीवं परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं चरन्ति, अद्धानं च आपादेन्ती'' ति?

''लोलं खो, भो भारद्वाज, चित्तं। अप्पेकदा मातुमत्तीसु पि लोभधम्मा उप्पज्जन्ति, भगिनिमत्तीसु पि लोभधम्मा उप्पज्जन्ति, धीतुमत्तीसु पि लोभधम्मा उपज्जन्ति। अत्थि नु खो, भो भारद्वाज, अञ्ञो च हेतु अञ्ञो च पच्चयो येनिमे दहरा भिक्खू सुसू काळकेसा [N.103]...पे०...अद्धानं च आपादेन्ती'' ति?

''वुत्तं खो एतं, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन— 'एथ तुम्हे, भिक्खवे, इममेव कायं उद्धं पादतला अधो केसमत्थका तचपरियन्तं पूरं नानप्पकारस्स असुचिनो पच्चवेक्खथ—अत्थि इमस्मिं काये केसा लोमा नखा दन्ता तचो मंसं न्हारु अट्ठि अट्ठिमिञ्जं वक्कं हदयं यकनं किलोमकं पिहकं पप्फासं अन्तं अन्तगुणं उदरियं करीसं पित्तं सेम्हं पुब्बो लोहितं सेदो मेदो अस्सु वसा खेळो सिङ्घाणिका लसिका मुत्तं' ति। अयं पि खो, महाराज, हेतु अयं पच्चयो येनिमे दहरा भिक्खू सुसू, काळकेसा...पे०...अद्धानं च आपादेन्ती'' ति।

बहन का भाव, पुत्री की आयुवाली लड़कियों में पुत्री का भाव रखो।' महाराज! भगवान् का यह आदेश प्रथम कारण है कि ये तरुण भिक्षु...पूर्ववत्...।

''भारद्वाज! चित्त बहुत चञ्चल होता है। कभी यह माता के समान आयुवाली स्त्रियों पर चला जाता है, कभी बहन की आयुवाली स्त्रियों पर चला जाता है, कभी पुत्री की आयुवाली लड़कियों पर चला जाता है। क्या भारद्वाज! इसे छोड़कर क्या कोई दूसरा हेतु या प्रत्यय हो सकता है कि ये तरुण भिक्षु...पूर्ववत्...?''

''फिर, महाराज! उन ज्ञानी, सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, सम्यक्सम्बुद्ध ने यह भी कहा है— 'भिक्षुओ! तुम अपने इस समस्त शरीर को—ऊपर से नीचे पैरों तक तथा नीचे पैरों से ऊपर शिर के बालों तक, त्वचा सहित, पूर्णत: नाना प्रकार की अशुचि (मल) से भरा हुआ समझो। इस पर यों विचार करो—ये मेरे शरीर के केश, लोम, नख, दाँत, त्वचा, मांस, धमनियाँ (न्हारु), अस्थि, अस्थिमज्जा, वृक्क, हृदय, यकृत्, हृदय की झिल्ली (क्लोम), प्लीहा (तिल्ली), फेंफड़ा, बड़ी अन्त्र, छोटी अन्त्र, उदर, मल, पित्त, कफ, पूथ, रक्त, स्वेद, मेद (चर्बी) आँसू, वसा, क्ष्वेड़ (खँखार), नाक का मल, लसीका एवं मूत्र—ये सब मल से पूर्ण हैं। महाराज! भगवान् के इस उपदेश के कारण भी ये भिक्षु तरुण अवस्था में ही...पूर्ववत्...।

"ये ते, भो भारद्वाज, भिक्खू भावितकाया भावितसीला भावितचित्ता भावितपञ्ञा, तेसं तं सुकरं होति। ये च खो ते, भो भारद्वाज, भिक्खू अभावितकाया अभावितसीला अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा, तेसं तं दुक्करं होति। अप्पेकदा, भो भारद्वाज, असुभतो मनसि करिस्सामी ति सुभतो व आगच्छति। अत्थि नु खो, [B.330] भो भारद्वाज, अञ्ञो च खो हेतु अञ्ञो च पच्चयो येनिमे दहरा भिक्खू सुसू [R.112] काळकेसा...पे०...अद्धानं च आपादेन्ती" ति?

"वुत्तं खो एतं, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन—'एथ तुम्हे, भिक्खवे, इन्द्रियेसु गुत्तद्वारा विहरथ। चक्खुना रूपं दिस्वा मा निमित्तग्गाहिनो अहुवत्थ मानुब्यञ्जनग्गाहिनो। यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जथ। रक्खथ चक्खुन्द्रियं; चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जथ। सोतेन सद्दं सुत्वा ...पे०...घानेन गन्धं घायित्वा...जिव्हाय रसं सायित्वा... कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा... मनसा धम्मं विञ्ञाय मा निमित्तग्गाहिनो अहुवत्थ मानुब्यञ्जनग्गाहिनो। यत्वाधि-करणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जथ। रक्खथ मनिन्द्रियं; मनिन्द्रिये संवरं आपज्जथा' ति। अयं पि खो, महाराज, हेतु अयं पच्चयो येनिमे दहरा भिक्खू सुसू काळकेसा भद्रेन योब्बनेन समन्नागता पठमेन वयसा अनिकीळितविनो कामेसु यावजीवं परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं चरन्ति, अद्धानं च आपादेन्ती" ति। [N.104]

"भारद्वाज! जिस भिक्षु ने काय, शील एवं प्रज्ञा को भावना से सिद्ध कर लिया है उस के लिये यह धर्मसाधना सुकर है; परन्तु, भारद्वाज! जिस भिक्षु के काय, शील एवं प्रज्ञा भावित नहीं है उन के लिये यह धर्मसाधना दुष्कर है। भारद्वाज! कभी कभी ऐसा भी होता है कि (शरीर में) अशुभ भावना करते करते शुभ भावना होने लगती है। भारद्वाज क्या कोई दूसरा कारण है, जिस के लिये तरुण भिक्षु...पूर्ववत्... ?"

"महाराज! उन ज्ञानी...सम्यक्सम्बुद्ध ने कहा है—"भिक्षुओ! तुम इन्द्रियों पर संयम रखते हुए साधना करो। चक्षु से रूपों को देख कर उन के लोभ में न पड़ो। उन के स्वाद में आसक्त न होओ। असंयत चक्षुरिन्द्रिय वाले साधक के चित्त में लोभ, द्वेष, दौर्मनस्य आदि पापमय अकुशल धर्म प्रविष्ट हो जाते हैं। श्रोत्र से शब्द सुन कर...घ्राण से गन्ध सूँघ कर, जिह्वा से रस चख कर...काय से स्प्रष्टव्य का स्पर्श कर...मन से मनोधर्मों को जान कर...पूर्ववत्...महाराज! यह भी एक कारण हैं कि जिसकी पूर्ति हेतु तरुण भिक्षु...साधना में लग जाते हैं।"

"अच्छरियं, भो भारद्वाज; अब्भुतं, भो भारद्वाज! याव सुभासितं चिदं, भो भारद्वाज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन। एसोव खो, भो भारद्वाज, हेतु एस पच्चयो येनिमे दहरा भिक्खू सुसू काळकेसा भद्रेन योब्बनेन समन्नागता पठमेन वयसा अनिकीळिताविनो कामेसु यावजीवं परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं चरन्ति, अद्धानं च आपादेन्ती ति।

"अहं पि खो, भो भारद्वाज, यस्मिं समये अरक्खितेनेव कायेन, अरक्खिताय वाचाय, अरक्खितेन चित्तेन, अनुपट्ठिताय सतिया, असंवुतेहि इन्द्रियेहि अन्तेपुरं पविसामि, अतिविय मं तस्मिं समये लोभधम्मा परिसहन्ति। यस्मिं च ख्वाहं, भो [R.113] भारद्वाज, समये रक्खितेनेव कायेन, रक्खिताय वाचाय, रक्खितेन चित्तेन, [B.331] उपट्ठिताय सतिया, संवुतेहि इन्द्रियेहि अन्तेपुरं पविसामि, न मं तथा तस्मिं समये लोभधम्मा परिसहन्ति।

"अभिक्कन्तं, भो भारद्वाज; अभिक्कन्तं, भो भारद्वाज! सेय्यथापि, भो भारद्वाज, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य, चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेवं भोता भारद्वाजेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भो भारद्वाज, तं भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं भारद्वाजो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥ •

"आश्चर्य है, भारद्वाज! अद्भुत है, भारद्वाज! उन सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध ने कितना अच्छा कहा है। (मैं भी मानता हूँ कि) यही कारण तथा यही प्रत्यय है कि ये तरुण भिक्षु ...निर्वाणप्राप्ति की लम्बी यात्रा पर चल देते हैं।

"भारद्वाज! मैं भी जब अरक्षित काय, अरक्षित वाणी, अरक्षित चित्त, अनुपस्थित स्मृति एवं असंयत इन्द्रियों से अपने अन्तःपुर में जाता हूँ तो मुझे उस समय नाना प्रकार के लोभधर्म आवृत कर लेते हैं; इस के विपरीत, जब मैं भावितकाय, भावितवाक्, भावितचित्त, उपस्थितस्मृति एवं इन्द्रियसंयम के साथ अपने अन्तःपुर में प्रवेश करता हूँ तो उस समय कोई लोभधर्म मेरे चित्त को घेरने का साहस नहीं कर पाता।

"भारद्वाज! भगवान् ने बहुत ही उचित कहा है, बहुत ही अच्छा कहा है। जैसे कोई ओंधे (उल्टे) पात्र को सीधा कर दे, ढके हुए को खोल दे, भूले भटके अनजान (मूढ) को सही मार्ग बता दे, या अन्धकार-स्थल में तैलभरा दीपक रख दे कि आने जाने वाले मार्ग देख लें; वैसे ही भगवान् ने नाना विधियों से धर्म को समझा दिया। अतः,

१२८. सोणसुत्तं

१३१. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो सोणो गहपतिपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सोणो गहपतिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे नो परिनिब्बायन्ति? को पन, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे परि-[N.105] निब्बायन्ती" ति...पे०...अयं खो, सोण, हेतु अयं पच्चो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायन्ती ति॥ •

१२९. घोसितसुत्तं

१३२. एकं समयं आयस्मा आनन्दो कोसम्बियं विहरति घोसितारामे। अथ खो घोसितो गहपति येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो घोसितो गहपति आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—"'धातुनानत्तं, धातुनानत्तं' ति, भन्ते [R.114] आनन्द, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, धातुनानत्तं वुत्तं भगवता" ति?

"संविज्जति खो, गहपति, चक्खुधातु, रूपा च मनापा, चक्खुविञ्ञाणं च

भारद्वाज! मैं भी भगवान् की धर्म की तथा सङ्घ की शरण में जाता हूँ। भो भारद्वाज! आज से आप मुझे प्राण रहने तक अपना उपासक स्वीकार करें॥" •

१२८. सोणसूत्र : : इसी जन्म में निर्वाणप्राप्ति का कारण

१३१. एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह** स्थित वेणुवन के कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। तब सोण गृहपतिपुत्र भगवान् की सेवा में आया, तथा यों निवेदन करने लगा—"भन्ते! इस बात में क्या हेतु तथा क्या प्रत्यय है कि यहाँ कुछ मनुष्य इसी जन्म में परिनिर्वाण प्राप्त कर लेते हैं, तथा कुछ प्रयास (साधना) करने पर भी उसे प्राप्त नहीं कर पाते?"

"सोण! चक्षुर्विज्ञेय रूप, इष्ट, प्रिय, सुन्दर, मनोमोहक...पूर्ववत्...परिनिर्वाण प्राप्त कर लेता है॥" *[पीछे आये **शक्रप्रश्नसूत्र** (इसी संयुक्त का ११८वाँ सूत्र) के समान।]* •

१२९. घोषितसूत्र : : धातुओं का नानात्व

१३२. एक समय आयुष्मान् आनन्द **कौशाम्बी** के घोषिताराम में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब घोषित गृहपति आयुष्मान् आनन्द के पास आया। ...पूर्ववत्...एक ओर बैठे घोषित गृहपति ने आयुष्मान् आनन्द से पूछा—"भन्ते आनन्द! लोग धातुओं के नानात्व (विविधता) के विषय में बहुत बातें करते रहते हैं, भन्ते! यह धातुनानात्व भगवान् ने कैसे बताया है? कैसे समझाया है?"

सुखवेदनियं। फस्सं पटिच्च उप्पज्जति सुखा वेदना। संविज्जति खो, गहपति, चक्खुधातु, रूपा च अमनापा, चक्खुविञ्ञाणं च दुक्खवेदनियं। फस्सं पटिच्च उप्पज्जति दुक्खा वेदना। संविज्जति खो, गहपति, चक्खुधातु, रूपा च मनापा, उपेक्खावेदनिया, चक्खु- [B.332] विञ्ञाणं च अदुक्खमसुखवेदनियं। फस्सं पटिच्च उप्पज्जति अदुक्खमसुखा वेदना...पे०...।

"संविज्जति खो, गहपति, जिव्हाधातु, रसा च मनापा, जिव्हाविञ्ञाणं च सुखवेदनियं। फस्सं पटिच्च उप्पज्जति सुखा वेदना। संविज्जति खो, गहपति, जिव्हाधातु, रसा च उपेक्खावेदनिया, जिव्हाविञ्ञाणं च अदुक्खमसुखवेदनियं। फस्सं पटिच्च उप्पज्जति अदुक्खमसुखा वेदना...पे०...।

"संविज्जति खो, गहपति, मनोधातु, धम्मा च मनापा, मनोविञ्ञाणं च सुख-वेदनियं। फस्सं पटिच्च उप्पज्जति सुखा वेदना। संविज्जति खो, गहपति, मनोधातु, धम्मा च अमनापा, मनोविञ्ञाणं च दुक्खवेदनियं। फस्सं पटिच्च उप्पज्जति दुक्खा वेदना। संविज्जति खो, गहपति, मनोधातु, धम्मा च उपेक्खावेदनिया, मनोविञ्ञाणं च अदुक्खमसुखवेदनियं। फस्सं पटिच्च उप्पज्जति अदुक्खमसुखा वेदना। एत्तावता खो, गहपति, धातुनानत्तं वुत्तं भगवता" ति॥ •

१३०. हालिद्दिकानिसुत्तं

१३३. एकं समयं आयस्मा महाकच्चानो अवन्तीसु विहरति कुलघरे [N.106, R.115] पपाते पब्बते। अथ खो हालिद्दिकानि गहपति येनायस्मा महाकच्चानो

"गृहपति! चक्षु के सम्मुख मनोमोहक रूप विद्यमान हो तथा सुखवेदनीय चक्षुर्विज्ञान भी उपस्थित हो, इन तीनों के मिलन (स्पर्श) से सुखावेदना उत्पन्न होती है। तथा चक्षु के सम्मुख मन को कष्ट देने वाले रूप भी विद्यमान हों एवं दुःखवेदनीय चक्षुर्विज्ञान भी उपस्थित हो—इन तीनों के मिलन से दुःखावेदना उत्पन्न होती है। तथा चक्षु के सम्मुख उपेक्षणीय रूप विद्यमान हो तथा अदुःखअसुखवेदनीय चक्षुर्विज्ञान भी उपस्थित हो—इन तीनों के मिलन से अदुःखासुख वेदना उत्पन्न होती हैं। ...पूर्ववत्...। जिह्वा के सम्मुख...पूर्ववत्...। मन के सम्मुख...पूर्ववत्...।

"गृहपति! इस प्रकार भगवान् ने धातुओं का नानात्व बताया है॥" •

१३०. हालिद्दकानिसूत्र : : प्रतीत्यसमुत्पाद

१३३. एक समय आयुष्मान् महाकात्यायन अवन्ति प्रदेश के **कुलघरप्रपात** पर्वत पर साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तभी हालिद्दकानि गृहपति आयुष्मान् महाकात्यायन के पास

तेनुपसङ्कमि...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो हालिद्दिकानि गहपति आयस्मन्तं महाकच्चानं एतदवोच—"वुत्तमिदं, भन्ते, भगवता—'धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं; फस्सनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति वेदनानानत्तं' ति। कथं नु खो, भन्ते, धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं; फस्सनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति वेदनानानत्तं" ति?

"इध, गहपति, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा 'मनापं इत्थेतं' ति पजानाति चक्खुविञ्ञाणं सुखवेदनियं च। फस्सं पटिच्च उप्पज्जति सुखा वेदना। चक्खुना खो पनेव रूपं दिस्वा 'अमनापं इत्थेतं' ति पजानाति चक्खुविञ्ञाणं दुक्खवेदनियं च। फस्सं पटिच्च उप्पज्जति दुक्खा वेदना। चक्खुना खो पनेव रूपं दिस्वा 'उपेक्खाट्ठानियं इत्थेतं' ति पजानाति चक्खुविञ्ञाणं अदुक्खमसुखवेदनियं च। फस्सं पटिच्च उप्पज्जति [B.333] अदुक्खमसुखा वेदना।

"पुन च परं, गहपति, भिक्खु सोतेन सद्दं सुत्वा...पे०...घानेन गन्धं घायित्वा ...पे०... जिव्हाय रसं सायित्वा...पे०...कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा...पे०...मनसा धम्मं विञ्ञाय 'मनापं इत्थेतं' ति पजानाति मनोविञ्ञाणं सुखवेदनियं च। फस्सं पटिच्च उप्पज्जति सुखा वेदना। मनसा खो पनेव धम्मं विञ्ञाय 'अमनापं इत्थेतं' ति [R.116]

आया। ...एक ओर बैठे उस हालिद्दकानि गृहपति ने आयुष्मान् महाकात्यायन से यह पूछा—"भन्ते! भगवान् ने यह कहा है—'धातुओं की विविधता के कारण स्पर्श की विविधता बनती है, स्पर्श की विविधता से वेदनाओं में विविधता आती है।' भन्ते! यह सब कैसे होता है?—कृपया इसे विस्तार से मुझ को समझावें?"

"यहाँ, गृहपति! कोई साधक चक्षु से रूप को देख कर 'यह प्रिय है'—ऐसा समझता है, तब उस का चक्षुर्विज्ञान सुखा वेदना का अनुभव करता है। स्पर्श के कारण यहाँ सुखा वेदना अनुभूत होती है। फिर कभी वह चक्षु से रूप को देख कर 'यह अप्रिय है'—ऐसा समझता है, तब उस का चक्षुर्विज्ञान दुःखा वेदना का अनुभव करता है। स्पर्श के कारण...। फिर कभी वह चक्षु से किसी रूप को देख कर 'यह उपेक्षणीय है'—ऐसा समझता है, तब उसका चक्षुर्विज्ञान अदुःखा असुखा वेदना का अनुभव करता है। स्पर्श के कारण यहां अदुःखा असुखा वेदना अनुभूत होती है।

"फिर, गृहपति! भिक्षु श्रोत्र से शब्द सुन कर...घ्राण से गन्ध सूँघ कर...जिह्वा से रस चख कर...काया से स्प्रष्टव्य का स्पर्श कर...मन से धर्म को जान कर 'यह मेरे लिये अनुकूल है'—ऐसा समझता है, तब उस का मनोविज्ञान अनुकूल सुखा वेदना का अनुभव करता है। तीनों के स्पर्श के कारण यहाँ सुखा वेदना अनुभूत होती है। या मन से किसी विपरीत धर्म को जान कर 'यह मेरे लिये प्रतिकूल है'—ऐसा समझता है, तब उस का

पजानाति मनोविञ्ञाणं दुक्खवेदनियं च। फस्सं पटिच्च उप्पज्जति दुक्खा वेदना। मनसा खो पनेव धम्मं विञ्ञाय 'उपेक्खाट्ठानियं इत्थेतं' ति पजानाति मनोविञ्ञाणं अदुक्खम-सुखवेदनियं च। फस्सं पटिच्च उप्पज्जति अदुक्खमसुखा वेदना।

"एवं खो, गहपति, धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं; फस्सनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति वेदनानानत्तं" ति। •

१३१. नकुलपितुसुत्तं

१३४. एकं समयं भगवा भग्गेसु विहरति सुंसुमारगिरे भेसकळावने मिगदाये। अथ खो नकुलपिता गहपति येन भगवा तेनुपसङ्कमि...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो [N.107] नकुलपिता गहपति भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे नो परिनिब्बायन्ति? को पन, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायन्ती" ति?

"सन्ति खो, गहपति, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अभिनन्दतो अभिवदतो अज्झोसाय तिट्ठतो तन्निस्सितं विञ्ञाणं होति तदुपादानं। सउपादानो, गहपति, भिक्खु नो परिनिब्बायति...पे०...सन्ति खो, गहपति, जिव्हा-विञ्ञेय्या रसा...पे०...सन्ति खो, गहपति, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा

मनोविज्ञान प्रतिकूल दुःखा वेदना का अनुभव करता है। स्पर्श (इन तीनों की सङ्गति) के कारण यह दुःखा वेदना अनुभूत होती है। या मन से किसी उपेक्षित धर्म को जान कर 'यह मेरे लिये उपेक्षित है'—ऐसा समझता है, तब उसका मनोविज्ञान अदुःखा असुखा वेदना का अनुभव करता है। स्पर्श के कारण ही यह वेदना भी उद्भूत होती है।

"इस तरह, गृहपति! भगवान् ने—'धातुविविधता के कारण स्पर्शविविधता उद्भूत होती है, तथा इस स्पर्शविविधता के कारण वेदनाओं में विविधता आती है'—ऐसा कहा है"॥ •

१३१. नकुलपितृसूत्र : : इसी जन्म में निर्वाणप्राप्ति का कारण

१३४. एक समय भगवान् भर्गप्रदेश के **सुंसुमारगिरि** के भेषकड़ावन के मृगारण्य में साधनाहेतु विराजमान थे। तभी नकुलपिता गृहपति भगवान् की सेवा में पहुँचा। पहुँच कर...उस गृहपति ने भगवान् से अपनी यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! इस में क्या हेतु तथा क्या प्रत्यय है कि कुछ साधकों का तो धर्मसाधना द्वारा इसी जन्म में परिनिर्वाण हो जाता है? तथा कुछ साधक कठोर साधना कर के भी इस जन्म में निर्वाण नहीं प्रात कर पाते?"

पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अभिनन्दतो अभिवदतो अज्झोसाय तिट्ठतो तन्निस्सितं विञ्ञाणं होति तदुपादानं। सउपादानो, गहपति, भिक्खु नो परिनिब्बायति। अयं खो, गहपति, [B.334] हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायन्ति।

''सन्ति च खो, गहपति, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अनभिनन्दतो अनभिवदतो अनज्झोसाय तिट्ठतो न तन्निस्सितं विञ्ञाणं होति न तदुपादानं। अनुपादानो, गहपति, भिक्खु परिनिब्बायति...पे०...सन्ति खो, गहपति, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा...पे०...सन्ति खो, गहपति, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं नाभिनन्दतो नाभिवदतो अनज्झोसाय तिट्ठतो न तन्निस्सितं विञ्ञाणं होति न तदुपादानं। अनुपादानो, गहपति, भिक्खु परिनिब्बायति। अयं खो, गहपति, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायन्ती'' ति॥ •

१३२. लोहिच्चसुत्तं

१३५. एकं समयं आयस्मा महाकच्चानो अवन्तीसु विहरति मक्करकते अरञ्ञ-कुटिकायं। अथ खो लोहिच्चस्स ब्राह्मणस्स सम्बहुला अन्तेवासिका [R.117, N.108] कट्ठहारका माणवका येनायस्मतो महाकच्चानस्स अरञ्ञकुटिका तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा परितो परितो कुटिकाय अनुचङ्कमन्ति अनुविचरन्ति उच्चासद्दा महासद्दा कानिचि कानिचि सेलेय्यकानि करोन्ति—'इमे पन मुण्डका समणका इब्भा कण्हा बन्धुपादापच्चा, इमेसं भरतकानं सक्कता गरुकता मानिता पूजिता अपचिता''' ति।

...पूर्ववत्...॥ *[पीछे व्याख्यात* **शक्रप्रश्नसूत्र** *(इसी संयुक्त का ११८वाँ सूत्र) देखें। उसी तरह यहाँ विस्तार कर लें।]* •

१३२. लौहित्यसूत्र : :प्राचीन एवं वर्तमान ब्राह्मणों की तुलना

१३५. एक समय आयुष्मान् महाकात्यायन **अवन्तिप्रदेश** की मक्करकत नामक अरण्यकुटी में साधना कर रहे थे। तब लौहित्य ब्राह्मण के बहुत से शिष्य समिधा (यज्ञकाष्ठ) आहरण के लिये महाकात्यायन की उस अरण्यकुटी के समीप आये। तथा उस अरण्यकुटी के इधर उधर आस पास कोलाहल करने लगे। उन में कुछ महाकात्यायन के लिये ये व्यङ्ग्य भी बोलने लगे—''ये मथमुण्डे श्रमण नकली साधुवेषधारी हैं, नीच हैं, ब्रह्मा के पैरों से उत्पन्न हुए हैं, तथा ये समाज में हीन कर्मकर लोगों द्वारा ही सत्कृत, पूजित एवं सम्मानित हैं।''

अथ खो आयस्मा महाकच्चानो विहारा निक्खमित्वा ते माणवके एतदवोच— "मा माणवका सद्दमकत्थ; धम्मं वो भासिस्सामी" ति। एवं वुत्ते, ते माणवका तुण्ही अहेसुं। अथ खो आयस्मा महाकच्चानो ते माणवके गाथाहि अज्झभासि—

"सीलुत्तमा पुब्बतरा अहेसुं, ते ब्राह्मणा ये पुराणं सरन्ति।
गुत्तानि द्वारानि सुरक्खितानि, अहेसुं तेसं अभिभुय्य कोधं॥

[B.335] "धम्मे च झाने च रता अहेसुं, ते ब्राह्मणा ये पुराणं सरन्ति।
इमे च वोक्कम्म जपामसेति, गोत्तेन मत्ता विसमं चरन्ति॥

"कोधाभिभूता पुथुअत्तदण्डा, विरज्जमाना सतण्हातण्हेसु।
अगुत्तद्वारस्स भवन्ति मोघा, सुपिनेव लद्धं पुरिसस्स वित्तं॥

[R.118] "अनासका थण्डिलसायिका च, पातो सिनानं च तयो च वेदा।
खराजिनं जटापङ्को, मन्ता सीलब्बतं तपो।
कुहना वङ्कदण्डा च, उदकाचमनानि च॥

[N.109] "वण्णा एते ब्राह्मणानं, कता किञ्चिक्खभावना।

तब आयुष्मान् महाकात्यायन ने कुटिया से बाहर आ कर उन ब्राह्मणशिष्यों (माणवकों) से यह कहा—"अरे लड़को! कोलाहल बन्द करो; क्यों कि अब मैं तुम्हें धर्म की (निर्णायक) बात सुनाऊँगा।" ऐसा कहे जाने पर वे माणवक चुप हो गये। तब आयुष्मान् महाकात्यायन ने गाथाओं के माध्यम से ये धर्मवचन कहे—

"बहुत प्राचीनकाल के ब्राह्मण उत्तम शीलवान् थे। वे अपने पुराण धर्म का स्मरण रखते थे। उन का अपनी इन्द्रियों पर संयम था। उन्होंने क्रोध पर सर्वथा विजय प्राप्त कर ली थी॥

"वे ब्राह्मण अपने पुराण धर्म का स्मरण रखते हुए धर्मश्रवण एवं ध्यानभावना में निरन्तर संलग्न रहते थे। परन्तु (वर्तमान में) ये ब्राह्मण उन सत्कर्मों का परित्याग कर केवल अपने गोत्र को ही बार बार कहते सुनते रहते हैं॥

"ये व्यवहार में, निरन्तर क्रोध से अभिभूत, मिथ्या गर्व में उन्मत्त, सभी प्राणियों को दुःखाक्रान्त करते हुए, इन्द्रियों से असंयत एवं स्वप्न में प्राप्त धन के समान निरर्थक जीवनयापन कर रहे हैं॥

"आज के ब्राह्मण तो अपने कर्तव्यों की इतने ही (अधोलिखित) कर्मों से 'इतिश्री' मान लेते हैं—उपवास-व्रत रखना, भूमि पर सोना, प्रातः स्नान, तीनों वेदों का पढ़ना, रूक्ष चर्म धारण करना, जटा रखना, भस्म लपेटना, मन्त्र-तन्त्र, शीलव्रत एवं मिथ्या तप, ढोंग, टेढा दण्ड हाथ में रखना (तीर्थ) उदकपान एवं आचमन॥

चित्तं च सुसमाहितं, विप्पसन्नमनाविलं।
अखिलं सब्बभूतेसु, सो मग्गो ब्रह्मपत्तिया'' ति॥

अथ खो ते माणवका कुपिता अनत्तमना येन लोहिच्चो ब्राह्मणो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा लोहिच्चं ब्राह्मणं एतदवोचुं—''यग्घे! भवं जानेय्य, समणो महाकच्चानो ब्राह्मणानं मन्ते एकंसेन अपवदति, पटिक्कोसती'' ति। एवं वुत्ते, लोहिच्चो ब्राह्मणो कुपितो अहोसि अनत्तमनो। अथ खो लोहिच्चस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि—''न खो पन मेतं पतिरूपं योहं अञ्ञदत्थु माणवकानं येव सुत्वा समणं महाकच्चानं अक्कोसेय्यं परिभासेय्यं। यन्नूनाहं उपसङ्कमित्वा पुच्छेय्यं'' ति।

अथ खो लोहिच्चो ब्राह्मणो तेहि माणवकेहि सद्धिं येनायस्मा महाकच्चानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता महाकच्चानेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो लोहिच्चो [R.119] ब्राह्मणो आयस्मन्तं महाकच्चानं एतदवोच—''आगमंसु नु ख्विध, भो कच्चान, [B.336] अम्हाकं सम्बहुला अन्तेवासिका कट्ठहारका माणवका'' ति?

''आगमंसु ख्विध ते, ब्राह्मण, सम्बहुला अन्तेवासिका कट्ठहारका माणवका'' ति।

''वर्तमानकालीन ब्राह्मणों के ये इतने ही कर्म हैं। ये दिन रात झूठे सच्चे तुच्छ परिग्रह में ही लगे रहते हैं।

''जब कि ब्राह्मणत्वप्राप्ति का वास्तविक मार्ग यह है कि वह समाहितचित्त रहे, तथा सभी प्राणियों के लिये प्रसन्न एवं स्निग्ध विचार वाला हो''॥

कात्यायन का यह धर्मोपदेश सुन कर वे ब्राह्मण-माणवक क्रुद्ध एवं असन्तुष्ट होते हुए अपने गुरु लौहित्य ब्राह्मण के पास गये। तथा जा कर उन से यों बोले—''गुरुदेव! आप को ज्ञात हो कि यह महाकात्यायन श्रमण हम ब्राह्मणों के वेदमन्त्रों की एक सिरे से निन्दा कर रह रहा है, तिरस्कार कर रहा है।'' यह सुन कर वह लौहित्य ब्राह्मण अत्यधिक क्रुद्ध एवं असन्तुष्ट हुआ; परन्तु कुछ क्षण बाद उस ने विचारा—''यह मेरे लिये उचित नहीं होगा कि मैं इन बालकों के कथन पर विश्वास कर निश्चयपूर्वक श्रमण महाकात्यायन की निन्दा या तिरस्कार करूँ। अत: मुझे स्वयं उस के पास जा कर पहले वास्तविकता समझ लेनी चाहिये।''

तब वह लौहित्य ब्राह्मण उन माणवकों को साथ ले कर आयुष्मान् महाकात्यायन के पास गया, तथा उन से कुशलमङ्गल पूछ कर एक ओर बैठ गया। तब उस ब्राह्मण ने उन से पूछा—''भो कात्यायन! अभी कुछ समय पूर्व ये मेरे समिधाहारी कुछ माणवक आप के पास आये थे?''

"अहु पन भोतो कच्चानस्स तेहि माणवकेहि सद्धिं कोचिदेव कथासल्लापो" ति?

"अहु खो मे, ब्राह्मण, तेहि माणवकेहि सद्धिं कोचिदेव कथासल्लापो" ति।

"यथा कथं पन भोतो कच्चानस्स तेहि माणवकेहि सद्धिं अहोसि कथासल्लापो" ति?

"एवं खो मे, ब्राह्मण, तेहि माणवकेहि सद्धिं अहोसि कथासल्लापो—

'सीलुत्तमा पुब्बतरा अहेसुं, ते ब्राह्मणा ये पुराणं सरन्ति।

...पे०...अखिलं सब्बभूतेसु, सो मग्गो ब्रह्मपत्तिया'॥ ति॥

[N.110] "एवं खो मे, ब्राह्मण, तेहि माणवकेहि सद्धिं अहोसि कथासल्लापो" ति।

"'अगुत्तद्वारो' ति भवं कच्चानो आह। कित्तावता नु खो, भो कच्चान, अगुत्तद्वारो होती" ति?

"इध, ब्राह्मण, एकच्चो चक्खुना रूपं दिस्वा पियरूपे रूपे अधिमुच्चति अप्पियरूपे रूपे ब्यापज्जति, अनुपट्ठितकायस्सति च विहरति, परित्तचेतसो तं च चेतो-
[R.120] विमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति। सोतेन सद्दं सुत्वा...घानेन गन्धं घायित्वा...जिव्हाय रसं सायित्वा...कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा...मनसा धम्मं विञ्ञाय पियरूपे धम्मे अधिमुच्चति, अप्पियरूपे च धम्मे ब्यापज्जति, अनुपट्ठितकायस्सति च विहरति, परित्तचेतसो तं च

"हाँ, ब्राह्मण! आप के ये माणवक मेरे पास आये थे।"

"भो कात्यायन! उस समय आप की इन से कुछ बातचीत हुई थी?"

"हाँ, ब्राह्मण! हुई थी?" "क्या बात हुई थी?"

"मैने उन से यह कहा था—'बहुत प्राचीनकाल के ब्राह्मण...पूर्ववत्...प्रसन्न एवं स्नेहिल विचारोंवाला हो।' मेरा इन से यही संवाद हुआ था।"

"इस संवाद में आप ने आजकल के ब्राह्मणों को 'अगुप्तद्वार' कहा, इस शब्द से आप का क्या तात्पर्य है?"

"ब्राह्मण! यहाँ कोई चक्षुरिन्द्रिय से रूप को देख कर उस रूप में यदि वह प्रिय हो तो उस में आसक्त होता है, अथवा वह रूप यदि अप्रिय हो तो उस के प्रति द्वेष प्रकट करता है, तथा अनुपस्थित स्मृति से क्लेशयुक्त चित्त हो कर साधना करता है। वह चेतोविमुक्ति या प्रज्ञाविमुक्ति को यथार्थतः नहीं जानता। इस से, उस के उत्पन्न पापमय अकुशल धर्म सर्वथा निरुद्ध नहीं हो पाते। यों वह 'अगुप्तद्वार' कहलाता है।

चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति। एवं खो, ब्राह्मण, अगुत्तद्वारो होती'' ति।

''अच्छरियं, भो कच्चान; अब्भुतं, भो कच्चान! यावञ्चिदं भोता कच्चानेन अगुत्तद्वारो व समानो अगुत्तद्वारो ति अक्खातो।

'''गुत्तद्वारो' ति भवं कच्चानो आह। कित्तावता नु खो, भो कच्चान, गुत्तद्वारो होती'' ति? [B.337]

''इध, ब्राह्मण, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा पियरूपे रूपे नाधिमुच्चति, अप्पियरूपे रूपे न ब्यापज्जति, उपट्ठितकायस्सति च विहरति, अप्पमाणचेतसो तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति। सोतेन सद्दं सुत्वा...घानेन गन्धं घायित्वा...जिव्हाय रसं सायित्वा ...कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा...मनसा धम्मं विञ्ञाय पियरूपे धम्मे नाधिमुच्चति, अप्पियरूपे धम्मे न ब्यापज्जति, उपट्ठितकायस्सति च विहरति, अप्पमाणचेतसो तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति। एवं खो, ब्राह्मण, गुत्तद्वारो होती'' ति।

''अच्छरियं, भो कच्चान; अब्भुतं, भो कच्चान! यावञ्चिदं भोता [N.111, R.121]

''श्रोत्र से...घ्राण से...जिह्वा से...काया से...मन से धर्मों को जान कर उन में आसक्त होता है...पूर्ववत्...'अगुप्तद्वार' कहलाता है।''

आश्चर्य है, भो कात्यायन! अद्भुत है, भो कात्यायन! आप ने तो 'अगुप्तद्वार' का अर्थ इन्द्रियों में जैसा असंयम होता है वैसा असंयम ठीक ठीक बता दिया।

''हाँ, आपने अपने उस संवाद में 'गुप्तद्वार' शब्द भी कहा था, उस का अर्थ क्या होगा?''

''ब्राह्मण! कोई यहाँ चक्षु से रूपों को देख कर उन में प्रिय रूपों के प्रति आसक्त नहीं होता है; अप्रियों के प्रति द्वेष न करता हुआ उपस्थित स्मृति से उदारचित्त वाला हो कर साधना करता है। वह चित्तविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को यथार्थतः जानता है। उस के वे अकुशल पापमय धर्म निरुद्ध हो जाते हैं। श्रोत्र से शब्द सुन कर...घ्राण से गन्ध सूँघ कर...जिह्वा से रस चख कर...काया से स्प्रष्टव्यों का स्पर्श कर...मन से धर्मों को जान कर प्रिय धर्मों में आसक्त नहीं होता, तथा अप्रियों के प्रति द्वेष न कर उपस्थित स्मृति से उदारचित्त हो कर साधना करता है। वह चित्तविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को यथार्थतः जानता है। तब उस के समस्त अकुशल धर्म पूर्णतः निरुद्ध हो जाते हैं। ब्राह्मण! यों वह साधक 'गुप्तद्वार' कहलाता है।''

कच्चानेन गुत्तद्वारो व समानो गुत्तद्वारो ति अक्खातो। अभिक्कन्तं, भो कच्चान, अभिक्कन्तं, भो कच्चान! सेय्यथापि, भो कच्चान, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य, चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेवं भोता कच्चानेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भो कच्चान, तं भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं कच्चानो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं। यथा च भवं कच्चानो मक्करकते उपासककुलानि उपसङ्कमति; एवमेव लोहिच्चकुलं उपसङ्कमतु। तत्थ ये माणवका वा माणविका वा भवन्तं कच्चानं अभिवादेस्सन्ति पच्चुट्ठिस्सन्ति आसनं वा उदकं वा दस्सन्ति, तेसं तं भविस्सति दीघरत्तं हिताय सुखाया''॥ ति॥ ●

१३३. वेरहच्चानिसुत्तं

१३६. एकं समयं आयस्मा उदायी कामण्डायं विहरति तोदेय्यस्स ब्राह्मणस्स अम्बवने। अथ खो वेरहच्चानिगोत्ताय ब्राह्मणिया अन्तेवासी माणवको येनायस्मा उदायी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता उदायिना सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं [B.338] सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो ते माणवकं आयस्मा उदायी धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। अथ खो सो माणवको आयस्मता उदायिना धम्मिया कथाय सन्दस्सितो समादपितो

''आश्चर्य है, भो कात्यायन! अद्भुत है, भो कात्यायन! आपने इन्द्रियों में जैसा संयम होता है वैसा ही संयम यथार्थतः बता दिया। भो कात्यायन! आप ने बहुत ही यथार्थ कहा है। जैसे कोई ओंधे (उल्टे) पात्र को सीधा कर दे...पूर्ववत्...आप मुझे प्राण रहने तक उपासक स्वीकार करें। जैसे आप कात्यायन! इस मक्करकट में अन्य उपासककुलों में (भिक्षाकुलों में) जाते रहते हैं उसी तरह हमारे लौहित्यकुल में पधारा करें। वहाँ आने पर हमारे परिवार की बालक-बालिकाएँ आप को प्रणाम करेंगे, अभ्युत्थान द्वारा स्वागत करेंगे, आसन देंगे, चरणधोवन एवं आचमन आदि के लिये जल देंगे, इन शुभ कर्मों से उन का चिरकाल तक हित ही होगा''॥ ●

१३३. वेरहच्चानिसूत्र : : धर्म का सत्कार

१३६. एक समय आयुष्मान् उदायी **कामण्डा**वासी तोदेय ब्राह्मण के आम्रवन में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब किसी वेरहच्चानि गोत्र की ब्राह्मणी का अन्तेवासी माणवक आयुष्मान् उदायी के पास आया तथा उन से कुशलमङ्गल पूछ कर एक ओर बैठ गया। उस को आयुष्मान् उदायी ने धार्मिक कथा सुना कर सन्तुष्ट, आश्वस्त, समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया। इस तरह वह माणवक आयुष्मान् उदायी द्वारा सुनायी गयी धार्मिक कथा

समुत्तेजितो सम्पहंसितो उट्ठायासना येन वेरहच्चानिगोत्ता ब्राह्मणी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा वेरहच्चानिगोत्तं ब्राह्मणिं एतदवोच—"यग्घे, भोति, जानेय्यासि! [R.122] समणो उदायी धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं, सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेती" ति।

"तेन हि त्वं, माणवक, मम वचनेन समणं उदायिं निमन्तेहि स्वातनाय [N.112] भत्तेना" ति। "एवं भोती" ति खो सो माणवको वेरहच्चानिगोत्ताय ब्राह्मणिया पटिस्सुत्वा येनायस्मा उदायी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं उदायिं एतदवोच—"अधिवासेतु किर भवं, उदायि, अम्हाकं आचरियभरियाय वेरहच्चानि-गोत्ताय ब्राह्मणिया स्वातनाय भत्तं" ति। अधिवासेसि खो आयस्मा उदायी तुण्ही-भावेन।

अथ खो आयस्मा उदायी तस्सा रत्तिया अच्चयेन पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन वेरहच्चानिगोत्ताय ब्राह्मणिया निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो वेरहच्चानिगोत्ता ब्राह्मणी आयस्मन्तं उदायिं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि। अथ खो वेरहच्चानिगोत्ता ब्राह्मणी आयस्मन्तं उदायिं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं पादुका आरोहित्वा उच्चे आसने निसीदित्वा सीसं ओगुण्ठित्वा आयस्मन्तं उदायिं एतदवोच—"भण, समण, धम्मं" ति।

से सन्तुष्ट एवं सम्प्रहृष्ट हो कर वेरहच्चानी गोत्रा ब्राह्मणी के पास गया, तथा उस को बताया—"भवति! आप जानती हैं या नहीं कि यहाँ एक उदायी नामक श्रमण धर्मोपदेश करते हैं जो सर्वथा आदिकल्याण, मध्येकल्याण एवं पर्यवसान (अन्त) में भी कल्याण प्रदाता है। वह धर्म श्रेष्ठ, सर्वथा पूर्ण एवं परिशुद्ध तथा श्वेत शङ्ख की तरह शुभ्र है।"

"माणवक! यदि ऐसी बात है तो उस श्रमण को कल हमारे घर पर भोजनहेतु निमन्त्रण दे आओ।"

"बहुत अच्छा"—कह कर वह माणवक पुनः श्रमण उदायी के आश्रम पर गया, तथा उन से निवेदन किया—"मेरी आचार्यपत्नी आप को कल के भोजन के लिये निमन्त्रित कर रही हैं।" आयुष्मान् उदायी ने मौन भाव से यह निमन्त्रण स्वीकार किया।

तब आयुष्मान् उदायी, उस रात्रि के बीतने पर, प्रातःकाल शरीर के वस्त्र व्यवस्थित कर, पात्रचीवर ले कर, भिक्षाहेतु उक्त ब्राह्मणी के आवास पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर प्रज्ञप्त आसन पर बैठ गये। तब उस ब्राह्मणी ने अच्छे अच्छे स्वादु एवं स्निग्ध खाद्य पदार्थ परोसे। उन्हें खा कर आयुष्मान् उदायी अत्यधिक सन्तुष्ट एवं प्रमुदित हुए। तब, ऐसा देख

"भविस्सति, भगिनि, समयो" ति वत्वा उट्ठायासना पक्कमि।

दुतियं पि खो सो माणवको येनायस्मा उदायी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता उदायिना सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो तं माणवकं आयस्मा उदायी धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। दुतियं पि खो सो माणवको आयस्मता उदायिना धम्मिया कथा सन्दस्सितो समादपितो समुत्तेजितो सम्पहंसितो उट्ठायासना येन [B.339] वेरहच्चानिगोत्ता ब्राह्मणी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा वेरहच्चानिगोत्तं ब्राह्मणिं एतदवोच—"यग्घे, भोति, जानेय्यासि! समणो उदायी धम्मं देसेति आदिकल्याणं [R.123] मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेती" ति।

"एवमेवं पन त्वं, माणवक, समणस्स उदायिस्स वण्णं भाससि। समणो पनुदायी 'भण, समण, धम्मं' ति वुत्तो समानो 'भविस्सति, भगिनि, समयो' ति वत्वा उट्ठायासना पक्कन्तो" ति।

"तथा हि पन त्वं, भोति, पादुका आरोहित्वा उच्चे आसने निसीदित्वा सीसं [N.113] ओगुण्ठित्वा एतदवोच—'भण, समण, धम्मं' ति। धम्मगरुनो हि ते भवन्तो धम्मगारवा" ति।

"तेन हि त्वं, माणवक, मम वचनेन समणं उदायिं निमन्तेहि स्वातनाय भत्तेना" ति। "एवं, भोती" ति खो सो माणवको वेरहच्चानिगोत्ताय ब्राह्मणिया पटिस्सुत्वा

कर, वह वेरहच्चानिगोत्रा ब्राह्मणी पीढे से उठ कर एक ऊँचे आसन पर बैठ कर शिर पर पल्ला रख कर आयुष्मान् उदायी से बोली—"श्रमण! आप हमें कुछ धर्मोपदेश करें।"

आयुष्मान् उदायी—"भगिनि! समय आने पर यह धर्मोपदेश भी किया जायगा"— यों कह कर आसन से उठ कर अपने आश्रम पर चले आये।

फिर कभी दूसरी बार भी वह माणवक आयुष्मान् उदायी के पास आम्रवन में गया ...पूर्ववत्...श्वेत शङ्ख की तरह शुभ्र है।"

यह सुन कर ब्राह्मणी बोली—"तूँ तो व्यर्थ ही उन श्रमण की प्रशंसा करता है। परन्तु वे श्रमण हमें 'श्रमण! कुछ धर्मोपदेश करो'—यह निवेदन करने पर कोई धर्मोपदेश नहीं करते, तथा आसन से उठ कर चल देते हैं।"

"भवति! आप भी तो ऊँचे आसन पर बैठ कर उन से धर्मोपदेशहेतु निवेदन करती हैं; अयि! वे धर्मोपदेशक हैं, अत: उन का तथा उन के धर्म का सम्मान करना चाहिये।"

येनायस्मा उदायी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं उदायिं एतदवोच– "अधिवासेतु किर भवं उदायि अम्हाकं आचरियभरियाय वेरहच्चानिगोत्ताय ब्राह्मणिया स्वातनाय भत्तं" ति। अधिवासेसि खो आयस्मा उदायी तुण्हीभावेन।

अथ खो आयस्मा उदायी तस्सा रत्तिया अच्चयेन पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन वेरहच्चानिगोत्ताय ब्राह्मणिया निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो वेरहच्चानिगोत्ता ब्राह्मणी आयस्मन्तं उदायिं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि। अथ खो वेरहच्चानिगोत्ता ब्राह्मणी आयस्मन्तं उदायिं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं पादुका आरोहित्वा नीचे आसने निसीदित्वा सीसं विवरित्वा आयस्मन्तं उदायिं एतदवोच—"किस्मिं नु खो, भन्ते, सति अरहन्तो सुखदुक्खं पञ्ञापेन्ति, किस्मिं असति अरहन्तो सुखदुक्खं न पञ्ञापेन्ती" ति?

"चक्खुस्मिं खो, भगिनि, सति अरहन्तो सुखदुक्खं पञ्ञापेन्ति, चक्खुस्मिं असति अरहन्तो सुखदुक्खं न पञ्ञापेन्ति...पे०...जिव्हाय सति अरहन्तो सुखदुक्खं पञ्ञापेन्ति, जिव्हाय असति अरहन्तो सुखदुक्खं न पञ्ञापेन्ति...पे०...मनस्मिं [R.124] सति अरहन्तो सुखदुक्खं पञ्ञापेन्ति, मनस्मिं असति अरहन्तो सुखदुक्खं न पञ्ञापेन्ती" ति।

एवं वुत्ते, वेरहच्चानिगोत्ता ब्राह्मणी आयस्मन्तं उदायिं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते! सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा[B.340]

"तो, माणवक! एक बार, मेरे कहने से, उन्हें पुनः निवेदन कर कल के भोजनहेतु निमन्त्रित कर आ।" "अच्छा, देवि!" कह कर वह माणवक आयुष्मान् उदायी को कल के भोजनहेतु निमन्त्रण देने गया। आयुष्मान् ने मौन भाव से स्वीकार कर लिया। ...पूर्ववत्... वह वेरहच्चानिगोत्रा ब्राह्मणी पीढे से उठ कर एक नीचे आसन पर बैठ कर, शिर से वस्त्र (पल्ला) हटा कर आयुष्मान् उदायी से यों निवेदन करने लगी—"भन्ते! क्या होने पर ज्ञानिजन सुखदुःख का होना बताते हैं, तथा किस के न होने पर सुखदुःख का न होना बताते हैं?"

"भगिनि! चक्षु (में राग) के होने पर ज्ञानिजन सुखदुःख का होना बताते हैं तथा चक्षु में (राग के) न होने पर सुखदुःख का न होना बताते हैं! ...पूर्ववत्...जिह्वा के होने पर...जिह्वा के न होने पर...पूर्ववत्...मन के होने पर...मन के न होने पर ज्ञानिजन सुख-दुःख का न होना बताते हैं।"

ऐसा कहे जाने पर उस वेरहच्चानिगोत्र वाली ब्राह्मणी ने आयुष्मान् उदायी से यह

विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य, चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेवं अय्येन उदायिना अनेकपरियासेन धम्मो पकासितो। [N.114] एसाहं, अय्य उदायि, तं भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासिकं ममं अय्यो उदायी धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ •

गहपतिवग्गो ततियो॥

तस्सुद्दानं

वेसाली वज्जि नाळन्दा, भारद्वाज सोणो च घोसितो।
हालिद्दिको नकुलपिता, लोहिच्चो वेरहच्चानी॥ ति॥ •

कहा—''भन्ते! आप ने बहुत उचित कहा, बहुत यथार्थ कहा। जैसे कोई ओंधे पात्र को सीधा कर दे...पूर्ववत्...। आर्य उदायि! आज से मैं भगवान् की...धर्म की...सङ्घ की शरण में जाती हूँ। आज से आप आर्य मुझे, प्राण रहने तक, आप की शरण में आयी हुई समझिये॥'' •

गृहपतिवर्ग तृतीय सम्पन्न॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. वैशालीसूत्र, २. वज्जिसूत्र, ३. नालन्दासूत्र, ४. भारद्वाजसूत्र, ५. सोणसूत्र, ६. घोषितसूत्र, ७. हालिद्दिकानिसूत्र, ८. नकुलपितृसूत्र, ९. लौहित्यसूत्र एवं १०. वेरहच्चानिसूत्र॥ •

४. देवदहवग्गो चतुत्थो

१३४. देवदहसुत्तं

१३७. एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति देवदहं नाम सक्यानं निगमो। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''नाहं, भिक्खवे, सब्बेसं येव भिक्खूनं छसु [R.125] फस्सायतनेसु अप्पमादेन करणीयं ति वदामि, न च पनाहं, भिक्खवे, सब्बेसं येव भिक्खूनं छसु फस्सायतनेसु नाप्पमादेन करणीयं ति वदामि। ये ते, भिक्खवे, भिक्खू अरहन्तो खीणासवा वुसितवन्तो कतकरणीया ओहितभारा अनुप्पत्तसदत्था परिक्खीण-भवसंयोजना सम्मदञ्ञा विमुत्ता, तेसाहं, भिक्खवे, भिक्खूनं छसु फस्सायतनेसु नाप्पमादेन करणीयं ति वदामि। तं किस्स हेतु? कतं तेसं अप्पमादेन, अभब्बा ते पमज्जितुं।

''ये च खो ते, भिक्खवे, भिक्खू सेक्खा अप्पत्तमानसा अनुत्तरं योगक्खेमं पत्थयमाना विहरन्ति, तेसाहं, भिक्खवे, भिक्खूनं छसु फस्सायतनेसु अप्पमादेन करणीयं ति वदामि। तं किस्स हेतु? सन्ति, भिक्खवे, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा मनोरमा पि

---

४. देवदहवर्ग चतुर्थ

१३४. देवदहसूत्र : : अप्रमादपूर्वक साधना

१३७. एक समय भगवान् (बुद्ध) शाक्यों के प्रदेश में शाक्यों के अधीन **देवदह** नामक निगम में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ कभी भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित कर यह कहा—''भिक्षुओ! मैं समस्त भिक्षुओं के लिये—'छहों स्पर्शायतनों में प्रमादरहित हो कर साधना करनी चाहिये'—यह उपदेश नहीं करता। तथा न समस्त भिक्षुओं के लिये यही उपदेश करता हूँ—'प्रमाद या प्रमादरहित हो कर किसी भी तरह धर्मसाधना करनी ही चाहिये'। भिक्षुओ! जो भिक्षु अर्हत्त्व प्राप्त कर चुके हैं क्षीणास्त्रव हो चुके हैं, धर्मसाधना पूर्ण कर चुके हैं तथा कृतकृत्य हो चुके हैं, जिन्होंने अपने कन्धों से सांसारिक भार उतार फेंका है, जिन्होंने सदर्थ (निर्वाण) प्राप्त कर लिया है, जिन के भवबन्धन क्षीण हो चुके हैं, जो सम्यग्ज्ञान के सहारे विमुक्त हो चुके हैं, भिक्षुओ! ऐसे साधक भिक्षुओं के लिये मैं 'छहों स्पर्शायतनों में अप्रमादपूर्वक विहार करना चाहिये'—ऐसा अनुशासन नहीं करता, क्यों कि वे प्रमाद कर ही नहीं सकते। प्रमाद करना उन के लिये सम्भव नहीं है।

तथा जो भिक्षु अभी शैक्ष्य (अर्हत्त्व का प्रत्याशी) हैं, जिन की चित्तवृत्तियाँ अभी पूर्णतः निरुद्ध नहीं हुई हैं, जो उत्तम योगक्षेम (आसक्ति से मुक्ति) की आशा में हैं, तथा साधनारत हैं उन के लिये मैं यह अनुशासन करता हूँ—'तुम्हें इन छहों स्पर्शायतनों में अप्रमाद (सावधानी) पूर्वक विहार करना चाहिये'। वह क्यों? वह इसलिये कि भिक्षुओ!

अमनोरमा पि। त्यास्स फुस्स फुस्स चित्तं न परियादाय तिट्ठन्ति। चेतसो अपरियादाना [B.341] आरद्धं होति विरियं असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, पस्सद्धो कायो असारद्धो, समाहितं चित्तं एकग्गं। इमं ख्वाहं, भिक्खवे, अप्पमादफलं सम्पस्समानो तेसं भिक्खूनं छसु फस्सायतनेसु अप्पमादेन करणीयं ति वदामि...पे०...सन्ति, भिक्खवे, मनोविञ्ञेय्या धम्मा मनोरमा पि अमनोरमा पि। त्यास्स फुस्स फुस्स चित्तं न परियादाय तिट्ठन्ति। चेतसो अपरियादाना आरद्धं होति विरियं असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, [N.115] पस्सद्धो कायो असारद्धो, समाहितं चित्तं एकग्गं। इमं ख्वाहं, भिक्खवे, अप्पमादफलं सम्पस्समानो तेसं भिक्खूनं छसु फस्सायतनेसु अप्पमादेन करणीयं ति वदामी'' ति॥ •

१३५. खणसुत्तं

[R.126] १३८. ''लाभा वो, भिक्खवे, सुलद्धं वो, भिक्खवे, खणो वो पटिलद्धो ब्रह्मचरियवासाय। दिट्ठा मया, भिक्खवे, छफस्सायतनिका नाम निरया। तत्थ यं किञ्चि चक्खुना रूपं पस्सति अनिट्ठरूपं येव पस्सति, नो इट्ठरूपं; अकन्तरूपं येव पस्सति, नो कन्तरूपं; अमनापरूपं येव पस्सति, नो मनापरूपं। यं किञ्चि सोतेन सद्दं सुणाति ...पे०...यं किञ्चि घानेन गन्धं घायति...यं किञ्चि जिव्हाय रसं सायति...यं किञ्चि कायेन फोट्ठब्बं फुसति...यं किञ्चि मनसा धम्मं विजानाति अनिट्ठरूपं येव विजानाति, नो इट्ठरूपं; अकन्तरूपं येव विजानाति, नो कन्तरूपं; अमनापरूपं येव विजानाति, नो

ये चक्षुर्विज्ञेय रूप मनोमोहक भी होते हैं तथा मन:प्रदूषक भी। वे भिक्षु उन का स्पर्श कर के भी उन्हें बहुत अधिक स्वीकार नहीं करते। इस तरह उन को स्वीकार न करने से उन का साधना में उत्साह निरन्तर बना रहता है। उपस्थित स्मृति भी निरन्तर तद्वत् ही बनी रहती है। शान्त काय उत्साहसम्पन्न बना रहता है। चित्त भी समाहित रहता हुआ एकाग्र बना रहता है। भिक्षुओ! इस अप्रमाद की इन अच्छाइयों को देख कर ही मैं उन्हें 'अप्रमादपूर्वक साधना करो'—ऐसा अनुशासन करता हूँ। ...पूर्ववत्...भिक्षुओ! ये मनोविज्ञेय धर्म मनोमोहक भी होते हैं, मन:प्रदूषक भी...पूर्ववत्...ऐसा अनुशासन करता हूँ॥'' •

१३५. क्षणसूत्र : : भिक्षु जीवन का माहात्म्य

१३८. ...''भिक्षुओ! तुम्हें लाभ हुआ, बहुत अधिक लाभ हुआ है कि तुम्हें यह ब्रह्मचर्य-(धर्म-) साधना का सुअवसर मिला। भिक्षुओ! मैंने षट्स्पर्शायतनिक नाम के नरक देखे हैं। वहाँ चक्षु से जो कुछ भी रूप दिखायी देता है वह अनिष्ट फलप्रद ही होता है, इष्ट फलप्रद नहीं; अप्रिय ही होता है, प्रिय नहीं। मनोमोहक न हो कर वह मन:प्रदूषक

मनापरूपं। लाभा वो, भिक्खवे, सुलद्धं वो, भिक्खवे, खणो वो पटिलद्धो ब्रह्मचरियवासाय।

"दिट्ठा मया, भिक्खवे, छफस्सायतनिका नाम सग्गा। तत्थ यं किञ्चि चक्खुना रूपं पस्सति इट्ठरूपं येव पस्सति, नो अनिट्ठरूपं; कन्तरूपं येव पस्सति, नो अकन्तरूपं; मनापरूपं येव पस्सति, नो अमनापरूपं...पे०...यं किञ्चि जिव्हाय रसं सायति...पे०...यं किञ्चि मनसा धम्मं विजानाति इट्ठरूपं येव विजानाति, नो अनिट्ठरूपं; कन्तरूपं येव विजानाति, नो अकन्तरूपं; मनापरूपं येव विजानाति, नो अमनापरूपं। लाभा वो, भिक्खवे, सुलद्धं वो, भिक्खवे, खणो वो पटिलद्धो ब्रह्मचरियवासाया" ति॥ •

१३६. पठमरूपारामसुत्तं

१३९. "रूपारामा, भिक्खवे, देवमनुस्सा रूपरता रूपसम्मुदिता। रूपविपरिणामविरागनिरोधा दुक्खा, भिक्खवे, देवमनुस्सा विहरन्ति। सद्दारामा, भिक्खवे, देवमनुस्सा सद्दरता सद्दसम्मुदिता। सद्दविपरिणामविरागनिरोधा दुक्खा, [B.342] भिक्खवे, देवमनुस्सा विहरन्ति। गन्धारामा...रसारामा...फोट्ठब्बारामा...धम्मारामा, भिक्खवे, देवमनुस्सा धम्मरता धम्मसम्मुदिता। धम्मविपरिणामविरागनिरोधा दुक्खा, भिक्खवे, देवमनुस्सा विहरन्ति। तथागतो च खो, भिक्खवे, अरहं [R.127] सम्मासम्बुद्धो रूपानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं [N.116] च यथाभूतं विदित्वा न रूपारामो न रूपरतो न रूपसम्मुदितो। रूपविपरिणाम-

---

ही होता है। अत: तुम्हें लाभ ही हुआ है...। ...पूर्ववत्...। मन से जो धर्म जाना जाता है वह अनिष्ट फलप्रद ही होता है...पूर्ववत्...।

भिक्षुओ! मैने षट्स्पर्शायतनिक स्वर्ग भी देखे हैं। वहाँ चक्षु से जो भी रूप दिखायी देता है वह इष्ट फलप्रद ही होता है, कभी अनिष्ट फलप्रद नहीं होता; प्रिय ही होता है, अप्रिय नहीं। मनोमोहक ही होता है मन:प्रदूषक नहीं। ...पूर्ववत्...। अत:, भिक्षुओ! तुम्हें यह भिक्षु-जीवन स्वीकार करने से लाभ ही हुआ है, अलाभ नहीं। भिक्षुओ! तुम्हें, यह भिक्षु-जीवन स्वीकार करने से ही इस लोकोत्तर धर्म की साधना करने का ऐसा सुअवसर मिल गया—यह साधारण बात नहीं है॥" •

१३६. प्रथम रूपारामसूत्र : : अज्ञजनों का मतिभ्रम

१३९. ..."भिक्षुओ! ये देवता एवं मनुष्य—ये सभी रूप के अभिलाषुक तथा रूप से प्रसन्न रहने वाले हैं। भिक्षुओ! इन रूपों के विपरिणत (परिवर्तित) होने पर यही देवता एवं मनुष्य दु:ख का अनुभव करते हैं। भिक्षुओ! सभी देवता एवं मनुष्य शब्दश्रवण के अभिलाषुक एवं शब्द से प्रसन्न रहने वाले हैं। ...गन्ध...रस...स्प्रष्टव्य...धर्म के अभिलाषुक

विरागनिरोधा सुखो, भिक्खवे, तथागतो विहरति। सद्दानं...गन्धानं...रसानं...फोट्ठब्बानं ...धम्मानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा न धम्मारामो न धम्मरतो न धम्मसम्मुदितो। धम्मविपरिणामविरागनिरोधा सुखो, भिक्खवे, तथागतो विहरति''।

१४०. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

''रूपा सद्दा रसा गन्धा, फस्सा धम्मा च केवला।
इट्ठा कन्ता मनापा च, यावतत्थी ति वुच्चति॥
''सदेवकस्स लोकस्स, एते वो सुखसम्मता।
यत्थ चेते निरुज्झन्ति, तं तेसं दुक्खसम्मतं॥
''सुखं दिट्ठमरियेभि, सक्कायस्स निरोधनं।
पच्चनीकमिदं होति, सब्बलोकेन पस्सतं॥
''यं परे सुखतो आहु, तदरिया आहु दुक्खतो।
यं परे दुक्खतो आहु, तदरिया सुखतो विदू॥
''पस्स धम्मं दुराजानं, सम्मूळ्हेत्थ अविद्दसु।
निवुतानं तमो होति, अन्धकारो अपस्सतं॥

होते हैं, धर्म से प्रसन्न रहने वाले हैं। परन्तु, भिक्षुओ! तथागत ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध रूपों का...शब्दों का...गन्धों का...रसों का ...स्प्रष्टव्यों का...धर्मों का समुदय, नाश, आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण भली भाँति जानते हैं, अत: ये इन धर्मों के विपरिणत (परिवर्तित) होने पर भी सुखपूर्वक साधना में निरत रहते हैं।''

१४०. भगवान् ने यह कहा। साथ ही अधोलिखित गाथाओं के माध्यम से यह भी कहा—

''ये रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श एवं मनोधर्म—सभी जब तक इष्ट, प्रिय, सुन्दर एवं मनोमोहक कहलाते हैं॥

''समस्त देवलोक सहित मनुष्यों को ये सुख प्रिय लगते हैं; जब ये इन को नहीं मिलते, किसी कारण से निरुद्ध हो जाते हैं तो उन्हें बहुत कष्ट (दु:ख) अनुभव होता है॥

''किन्तु पण्डित (आर्य) जन तो सत्कायदृष्टिनिरोध को ही 'सुख' समझते हैं। इन का यह विचार सांसारिक प्राणियों के विचार से विपरीत है॥

''जो साधारण प्राणी जिसे सुख मानते हैं, उसे ही ये आर्यजन 'दु:ख' मानते हैं, तथा जिसे वे (प्राणी) दु:ख मानते हैं उसे आर्यजन अपने लिये 'सुख' मानते हैं।

''इस दुर्ज्ञेय धर्म को देखो, क्लेशावरण से आवृत मूढ, अज्ञों के लिये यह (धर्म) अन्धकारतुल्य होता है। परन्तु ज्ञानी सन्तों के लिये यही प्रकाशरूप है॥

"सतं च विवटं होति, आलोको पस्सतामिव। [R.128]
सन्तिके न विजानन्ति, मग्गा धम्मस्स अकोविदा॥
"भवरागपरेतेभि, भवरागानुसारीभि।
मारधेय्यानुपन्नेहि, नायं धम्मो सुसम्बुधो॥
"को नु अञ्ञत्र मरियेभि, पदं सम्बुद्धुमरहति। [B.343]
यं पदं सम्मदञ्ञाय, परिनिब्बन्ति अनासवा"॥ ति॥ •

१३७. दुतियरूपारामसुत्तं

१४१. "रूपारामा, भिक्खवे, देवमनुस्सा रूपरता रूपसम्मुदिता। रूप-[N.117] विपरिणामविरागनिरोधा दुक्खा, भिक्खवे, देवमनुस्सा विहरन्ति। सद्दारामा...गन्धारामा ...रसारामा...फोट्ठब्बारामा...धम्मारामा, भिक्खवे, देवमनुस्सा धम्मरता धम्मसम्मुदिता। धम्मविपरिणामविरागनिरोधा दुक्खा, भिक्खवे, देवमनुस्सा विहरन्ति। तथागतो च खो, भिक्खवे, अरहं सम्मासम्बुद्धो रूपानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा न रूपारामो न रूपरतो न रूपसम्मुदितो। रूपविपरिणाम-विरागनिरोधा सुखो, भिक्खवे, तथागतो विहरति। सद्दानं...गन्धानं...रसानं...फोट्ठब्बानं ...धम्मानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा न धम्मारामो न धम्मरतो न धम्मसम्मुदितो। धम्मविपरिणामविरागनिरोधा सुखो, भिक्खवे, तथागतो विहरती" ति॥ •

१३८. पठमनतुम्हाकसुत्तं

१४२. "यं, भिक्खवे, न तुम्हाकं तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय

"ज्ञानी सन्तों के लिये यह (धर्म) अनावृत (खुला) प्रकाश है; परन्तु अज्ञ जन इस के समीप रहते हुए भी इसे समझ नहीं पाते॥

"सांसारिक राग में आसक्त, एवं भवस्रोत में बहते, मारपाश से आबद्ध ये दीन हीन अज्ञ प्राणी धर्म का यथार्थ महत्त्व नहीं समझ पाते॥

"पण्डित (आर्य) जनों के अतिरिक्त भला कौन इस सम्बुद्ध पद के योग्य हो सकता है। जिस (सम्बुद्ध) पद को प्राप्त कर, चित्तविकारों से रहित हो कर वे परिनिर्वाण को सुगमता से प्राप्त कर जाते हैं॥" •

१३७. द्वितीय रूपारामसूत्र : : अज्ञजनों का मतिभ्रम

१४१. ..."भिक्षुओ! सभी देवता एवं मनुष्य रूप को ही इष्ट, प्रिय...समझते हैं...पूर्ववत्...। *(ऊपर के सूत्र के समान ही इस का विस्तार समझ लें।)* •

भविस्सति। किञ्च, भिक्खवे, न तुम्हाकं? चक्खु, भिक्खवे, न तुम्हाकं; तं पजहथ। तं [R.129] वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति...पे०...जिव्हा न तुम्हाकं; तं पजहथ। सा वो पहीना हिताय सुखाय भविस्सति...पे०...मनो न तुम्हाकं; तं पजहथ। सो वो पहीनो हिताय सुखाय भविस्सति। सेय्यथापि, भिक्खवे, यं इमस्मिं जेतवने तिणकट्ठ-साखापलासं तं जनो हरेय्य वा डहेय्य वा यथापच्चयं वा करेय्य, अपि नु तुम्हाकं एवमस्स—'अम्हे जनो हरति वा डहति वा यथापच्चयं वा करोती''' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''तं किस्स हेतु''? ''न हि नो एतं, भन्ते, अत्ता वा अत्तनियं वा'' ति।

''एवमेव खो, भिक्खवे, चक्खु न तुम्हाकं; तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय [N.118, B.344] सुखाय भविस्सति...पे०...जिव्हा न तुम्हाकं; तं पजहथ। सा वो पहीना हिताय सुखाय भविस्सति...पे०...मनो न तुम्हाकं; तं पजहथ। सो वो पहीनो हिताय सुखाय भविस्सती'' ति॥ •

१३९. दुतियनतुम्हाकसुत्तं

१४३. ''यं, भिक्खवे, न तुम्हाकं तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति। किञ्च, भिक्खवे, न तुम्हाकं? रूपा, भिक्खवे, न तुम्हाकं; ते पजहथ। ते वो पहीना हिताय सुखाय भविस्सन्ति। सद्दा...गन्धा...रसा...फोट्ठब्बा...धम्मा न तुम्हाकं; ते

---

१३८. प्रथम 'नयुष्माकं 'सूत्र : : ममत्वरहित का त्याग

१४२. ...''भिक्षुओ! जो तुम्हारा नहीं है उस का त्याग कर दो। उस का त्याग ही तुम्हारे लिये हितकर एवं सुखप्रद होगा। भिक्षुओ! तुम्हारा क्या नहीं है? यह चक्षु (का विषय) तुम्हारा नहीं है...पूर्ववत्...जिह्वा...काय...मन तुम्हारा नहीं है, उसे त्याग दो। उस का त्याग ही तुम्हारे लिये हितकर एवं सुखकर होगा। जैसे इस जेतवन (के समस्त वृक्षों) के शाखा एवं पत्र कोई काट ले जाय या जला दे, या इस का कुछ भी उचित अनुचित उपयोग करे; परन्तु उस के कारण तुम्हारे मन में यह विचार होता है—'इस मनुष्य ने हमारा कुछ छीन लिया या जला दिया?

''नहीं, भन्ते!''

''वह क्यों?''

''वह इसलिये कि इस जेतवन के इन शाखापलाशों में तुम्हारा ममत्व एवं आत्मीयत्व नहीं है। इसी तरह, भिक्षुओ! यहाँ यह चक्षु तुम्हारा नहीं है, इसे त्याग दो। यही तुम्हारे लिये हितकर एवं सुखप्रद होगा। यह मन तुम्हारा नहीं है...पूर्ववत्... हितकर एवं सुखप्रद ही होगा॥'' •

पजहथ। ते वो पहीना हिताय सुखाय भविस्सन्ति। सेय्यथापि, भिक्खवे, यं इमस्मिं जेतवने...पे०...एवमेव खो, भिक्खवे, रूपा न तुम्हाकं; ते पजहथ। ते वो पहीना हिताय सुखाय भविस्सन्ती'' ति॥ ●

१४०. अज्झत्तानिच्चहेतुसुत्तं

१४४. ''चक्खुं, भिक्खवे, अनिच्चं। यो पि हेतु यो पि पच्चयो चक्खुस्स उप्पादाय सो पि अनिच्चो। अनिच्चसम्भूतं, भिक्खवे, चक्खु कुतो निच्चं भविस्सति! ...पे०...जिव्हा अनिच्चा। यो पि हेतु यो पि पच्चयो जिव्हाय उप्पादाय सो पि [R.130] अनिच्चो। अनिच्चसम्भूता, भिक्खवे, जिव्हा कुतो निच्चा भविस्सति...पे०...मनो अनिच्चो। यो पि, भिक्खवे, हेतु यो पि पच्चयो मनस्स उप्पादाय सो पि अनिच्चो। अनिच्चसम्भूतो, भिक्खवे, मनो कुतो निच्चो भविस्सति! एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति...पे०...जिव्हाय पि निब्बिन्दति...पे०... निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति॥ ●

१४१. अज्झत्तदुक्खहेतुसुत्तं

१४५. ''चक्खुं, भिक्खवे, दुक्खं। यो पि हेतु यो पि पच्चयो चक्खुस्स उप्पादाय सो पि दुक्खो। दुक्खसम्भूतं, भिक्खवे, चक्खु कुतो सुखं भविस्सति...पे०...जिव्हा दुक्खा। यो पि हेतु यो पि पच्चयो जिव्हाय उप्पादाय सो पि दुक्खो। दुक्खसम्भूता, भिक्खवे, जिव्हा कुतो सुखा भविस्सति...पे०...मनो दुक्खो। यो पि हेतु यो पि पच्चयो

---

१३९. द्वितीय 'नयुष्माकं 'सूत्र : : आत्मीयत्वरहित का त्याग

१४३. ...''भिक्षुओ! जो तुम्हारा नहीं है उस का त्याग ही तुम्हारे लिये हितकर है...पूर्ववत्...''॥ *(पूर्व सूत्र की तरह ही विस्तार कर लें।)* ●

१४०. अध्यात्मअनित्यहेतुसूत्र : : अध्यात्म अनित्यत्वहेतु निरूपण

१४४. ...''भिक्षुओ! चक्षु अनित्य है। इस तरह, चक्षु की उत्पत्ति में जो हेतु या प्रत्यय है वह भी अनित्य है। तब इस अनित्य से प्रादुर्भूत चक्षु कैसे नित्य हो सकता है! ...पूर्ववत्...जिह्वा अनित्य है...मन अनित्य है...कैसे नित्य हो सकता है। ऐसा जानते, समझते हुए विद्वान् आर्यश्रावक की चक्षु में अरुचि हो जाती है...पूर्ववत्...मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है—ऐसा जान जाता है॥'' ●

१४१. अध्यात्मदु:खहेतुसूत्र : : अध्यात्म दु:खहेतु निरूपण

१४५. ...''भिक्षुओ! चक्षु दु:ख है, इस चक्षु की उत्पत्ति में हेतु एवं प्रत्यय भी दु:ख है। तब इस दु:ख से प्रादुर्भूत चक्षु 'सुख' कैसे होगा! ...पूर्ववत्...''॥ ●

[N.119] मनस्स उप्पादाय सो पि दुक्खो। दुक्खसम्भूतो, भिक्खवे, मनो कुतो सुखो भविस्सति! एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥ •

१४२. अज्झत्तानत्तहेतुसुत्तं

१४६. ''चक्खुं, भिक्खवे, अनत्ता। यो पि हेतु यो पि पच्चयो चक्खुस्स [B.345] उप्पादाय सो पि अनत्ता। अनत्तसम्भूतं, भिक्खवे, चक्खु कुतो अत्ता भविस्सति ...पे०...जिव्हा अनत्ता। यो पि हेतु यो पि पच्चयो जिव्हाय उप्पादाय सो पि अनत्ता। अनत्तसम्भूता, भिक्खवे, जिव्हा कुतो अत्ता भविस्सति...पे०...मनो अनत्ता। यो पि हेतु यो पि पच्चयो मनस्स उप्पादाय सो पि अनत्ता। अनत्तसम्भूतो, भिक्खवे, मनो कुतो [R.131] अत्ता भविस्सति! एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥ •

१४३. बाहिरानिच्चहेतुसुत्तं

१४७. ''रूपा, भिक्खवे, अनिच्चा। यो पि हेतु यो पि पच्चयो रूपानं उप्पादाय सो पि अनिच्चो। अनिच्चसम्भूता, भिक्खवे, रूपा कुतो निच्चा भविस्सन्ति! सद्दा... गन्धा...रसा... फोट्ठब्बा...धम्मा अनिच्चा। यो पि हेतु यो पि पच्चयो धम्मानं उप्पादाय सो पि अनिच्चो। अनिच्चसम्भूता, भिक्खवे, धम्मा कुतो निच्चा भविस्सन्ति! एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥ •

१४४. बाहिरदुक्खहेतुसुत्तं

१४८. ''रूपा, भिक्खवे, दुक्खा। यो पि हेतु यो पि पच्चयो रूपानं उप्पादाय सो पि दुक्खो। दुक्खसम्भूता, भिक्खवे, रूपा कुतो सुखा भविस्सन्ति! सद्दा...गन्धा...रसा... फोट्ठब्बा...धम्मा दुक्खा। यो पि हेतु यो पि पच्चयो धम्मानं उप्पादाय सो पि दुक्खो। दुक्खसम्भूता, भिक्खवे, धम्मा कुतो सुखा भविस्सन्ति! एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥ •

---

१४२. अध्यात्मअनात्महेतुसूत्र : : आन्तरिक अनात्महेतु-निरूपण

१४६. ...''भिक्षुओ! चक्षु अनात्म है, इस चक्षु का उत्पादकहेतु या प्रत्यय भी अनात्म ही है। तब इस अनात्म से प्रादुर्भूत चक्षु आत्मवान् कैसे होगा! ...पूर्ववत्...''॥ •

१४३. बाह्यअनित्यहेतुसूत्र : : बाह्य अनात्महेतु-निरूपण

१४७. ...''भिक्षुओ! रूप अनित्य हैं, तथा उन के उत्पादक जो हेतु या प्रत्यय हैं वे भी अनित्य हैं। तब अनित्य से उत्पन्न रूप 'नित्य' कैसे होगा! ...पूर्ववत्...''॥ •

१४४. बाह्यदुःखहेतुसूत्र : : बाह्य दुःखहेतु-निरूपण

१४८. ...''भिक्षुओ! रूप दुःख हैं, तथा उन के उत्पादकहेतु या प्रत्यय भी अनित्य ही हैं। तब दुःख से प्रादुर्भूत चक्षु 'सुख' कैसे होगा! ...पूर्ववत्...''॥ •

१४५. बाहिरानत्तहेतुसुत्तं

१४९. ''रूपा, भिक्खवे, अनत्ता। यो पि हेतु यो पि पच्चयो रूपानं [N.120] उप्पादाय सो पि अनत्ता। अनत्तसम्भूता, भिक्खवे, रूपा कुतो अत्ता भविस्सन्ति! सद्दा... गन्धा...रसा...फोट्ठब्बा...धम्मा अनत्ता। यो पि हेतु यो पि पच्चयो धम्मानं उप्पादाय सो पि अनत्ता। अनत्तसम्भूता, भिक्खवे, धम्मा कुतो अत्ता भविस्सन्ति! [B.346, R.132] एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको रूपेसु पि निब्बिन्दति, सद्देसु पि...गन्धेसु पि...रसेसु पि...फोट्ठब्बेसु पि...धम्मेसु पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति॥ •

देवदहवग्गो चतुत्थो॥

तस्सुद्दानं

देवदहो खणो रूपा, द्वे नतुम्हाकमेव च।
हेतुना पि तयो वुत्ता, दुवे अज्झत्तबाहिरा ति॥ •

---

१४५. बाह्यअनात्महेतुसूत्र : : बाह्य अनात्महेतु-निरूपण

१४९. ...''भिक्षुओ! रूप अनात्म हैं। उन के उत्पादन में जो भी हेतु या प्रत्यय हैं वे भी अनात्म हैं, तब अनात्म से प्रादुर्भूत रूप 'आत्मवान्' कैसे होंगे! ...पूर्ववत्...। यों जानते हुए विद्वान् आर्यश्रावक की इन अनात्म रूपों के भोग में अरुचि होगी...पूर्ववत्...मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है—यह जान लेता है॥'' •

देवदहवर्ग चतुर्थ सम्पन्न॥

इस वर्ग में व्याख्यात १२ सूत्रों की सूची—१. देवदहसूत्र, २. क्षणसूत्र, ३. प्रथम रूपारामसूत्र, ४. द्वितीय रूपारामसूत्र, ५. प्रथम 'नयुष्माकं'सूत्र, ६. द्वितीय 'नयुष्माकं'सूत्र, ७. अध्यात्मअनित्यहेतुसूत्र, ८. अध्यात्मदु:खहेतुसूत्र, ९. अध्यात्मअनात्महेतुसूत्र, १०. बाह्यअनित्यहेतुसूत्र, ११. बाह्यदु:खहेतुसूत्र, १२. बाह्यअनात्महेतुसूत्र॥ •

५. नवपुराणवग्गो पञ्चमो

१४६. कम्मनिरोधसुत्तं

१५०. "नवपुराणानि, भिक्खवे, कम्मानि देसेस्सामि कम्मनिरोधं कम्मनिरोध-गामिनिं च पटिपदं। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी ति।

कतमं च, भिक्खवे, पुराणकम्मं? चक्खु, भिक्खवे, पुराणकम्मं अभिसङ्खतं अभिसञ्चेतयितं वेदनियं दट्ठब्बं...पे०...जिव्हा पुराणकम्मा अभिसङ्खता अभिसञ्चेतयिता वेदनिया दट्ठब्बा...पे०...मनो पुराणकम्मो अभिसङ्खतो अभिसञ्चेतयितो वेदनियो दट्ठब्बो। इदं वुच्चति, भिक्खवे, पुराणकम्मं।

कतमं च, भिक्खवे, नवकम्मं? यं खो, भिक्खवे, एतरहि कम्मं करोति कायेन वाचाय मनसा, इदं वुच्चति, भिक्खवे नवकम्मं। कतमो च, भिक्खवे, कम्मनिरोधो? यो [R.133] खो, भिक्खवे, कायकम्मवचीकम्ममनोकम्मस्स निरोधा विमुत्तिं फुसति, अयं [N.121] वुच्चति, भिक्खवे, कम्मनिरोधो। कतमा च, भिक्खवे, कम्मनिरोधगामिनी पटिपदा? अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि—अयं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मनिरोधगामिनी पटिपदा।

---

५. नवपुराणवर्ग पञ्चम

१४६. कर्मनिरोधसूत्र : : नये या पुराने कर्मों का निरोध

१५०. ..."भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें नये तथा पुराने कर्मों के विषय में बताऊँगा, साथ ही उन के निरोध तथा उन का निरोधकारक मार्ग (उपाय) भी बताऊँगा। उसे ध्यानपूर्वक सुनो, सुन कर भली भाँति मन में बैठा लो।

पुराणकर्म—"भिक्षुओ! पुराने कर्म क्या होते हैं? भिक्षुओ! चक्षु पुराण कर्म है। वह अभिसंस्कृत (=कृत्रिम, हेतुसमुद्भूत), चेतना से समुद्भूत तथा सुखदुःख आदि वेदनाओं का अनुभव करने वाला समझना चाहिये। ...पूर्ववत्...जिह्वा...मन पुराणकर्म है, इसे अभिसंस्कृत, चेतनासमुद्भूत एवं वेदनाओं का अनुभविता समझना चाहिये। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—'पुराणकर्म'।

नवकर्म—"भिक्षुओ! नवकर्म क्या होता है? भिक्षुओ! मन, वाक् एवं काया से जो वर्तमान में कर्म किया जा रहा है उसे 'नवकर्म' कहते हैं।

कर्मनिरोध—"भिक्षुओ! कर्मनिरोध क्या है? कायकर्म, वाक्कर्म एवं मनःकर्म के निरोध से जो त्याग का अनुभव होता है—यही कर्मनिरोध कहलाता है।

कर्मनिरोध का मार्ग (उपाय)—"भिक्षुओ! इस कर्मनिरोध का उपाय क्या है?

इति खो, भिक्खवे, देसितं मया पुराणकम्मं, देसितं नवकम्मं, देसितो कम्मनिरोधो, देसिता कम्मनिरोधगामिनी पटिपदा। यं खो, भिक्खवे, सत्थारा [B.347] करणीयं सावकानं हितेसिना अनुकम्पकेन अनुकम्पं उपादाय, कतं वो तं मया। एतानि, भिक्खवे, रुक्खमूलानि एतानि सुञ्ञागारानि। झायथ, भिक्खवे; मा पमादत्थ; मा पच्छाविप्पटिसारिनो अहुवत्थ। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी'' ति॥ ●

१४७. अनिच्चनिब्बानसप्पायसुत्तं

१५१. ''निब्बानसप्पायं वो, भिक्खवे, पटिपदं देसेस्सामि। तं सुणाथ...पे०... कतमा च सा, भिक्खवे, निब्बाणसप्पाया पटिपदा? इध, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुं अनिच्चं ति पस्सति, रूपा अनिच्चा ति पस्सति, चक्खुविञ्ञाणं अनिच्चं ति पस्सति, चक्खुसम्फस्सो अनिच्चो ति पस्सति। यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं ति पस्सति...पे०...जिव्हा अनिच्चा ति पस्सति, रसा अनिच्चा ति पस्सति, जिव्हाविञ्ञाणं अनिच्चं ति पस्सति, जिव्हा-सम्फस्सो अनिच्चो ति पस्सति, यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति [R.134] वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं ति पस्सति...पे०...मनो

यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग; जैसे—सम्यग्दृष्टि, सम्यक्सङ्कल्प, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्मान्त, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति एवं सम्यक्समाधि—भिक्षुओ! इसे कहते हैं—कर्मनिरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग। इस तरह भिक्षुओ! मैंने तुम को पुराने कर्मों का निर्वचन कर दिया, नवकर्मों का भी। साथ ही कर्मनिरोध का उपदेश भी दे दिया तथा उक्त निरोध का उपाय भी बता दिया।

धर्माभ्यास के साधन—''भिक्षुओ! एक हितैषी, दयालु शास्ता द्वारा तुम्हारे प्रति जो कुछ करना था वह सब मैंने कर दिया। भिक्षुओ! एकान्त अरण्य (वन) प्रदेशों में ये वृक्षमूल हैं, ये एकाकी जनसमूह से दूर साधनास्थल हैं, इन में बैठ कर शान्त भाव से साधनारत रहो। साधना में किसी भी प्रकार का प्रमाद न करो। तुम ऐसा कोई कार्य न कर बैठना कि बाद में तुम्हें उस के लिये कोई पश्चात्ताप करना पड़े। यही तुम्हारे लिये मेरा अनुशासन है॥'' ●

१४७. अनित्यनिर्वाणसत्प्रायसूत्र : : 'अनित्य' निर्वाणसाधक मार्ग

१५१. ...''भिक्षुओ! मैं तुम्हें निर्वाणसाधना के अनुकूल मार्ग बताऊँगा। उसे सुनो... पूर्ववत्...। भिक्षुओ! निर्वाणसाधना के अनुकूल मार्ग क्या है? भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु देखता है कि चक्षु अनित्य है, रूप अनित्य है, चक्षुर्विज्ञान अनित्य है, चक्षुःसंस्पर्श अनित्य है, चक्षुःसंस्पर्शजन्य सुखदुःखादि वेदना अनित्य हैं...पूर्ववत्...जिह्वा...मन...

अनिच्चो ति पस्सति, धम्मा अनिच्चा ति पस्सति, मनोविञ्ञाणं अनिच्चं ति पस्सति, मनोसम्फस्सो अनिच्चो ति पस्सति, यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं ति पस्सति। अयं खो सा, भिक्खवे, निब्बानसप्पाया पटिपदा'' ति॥ •

१४८. दुक्खनिब्बानसप्पायसुत्तं

१५२. ''निब्बानसप्पायं वो, भिक्खवे, पटिपदं देसेस्सामि। तं सुणाथ...पे०... कतमा च सा, भिक्खवे, निब्बानसप्पाया पटिपदा? इध, भिक्खवे, चक्खुं दुक्खं ति पस्सति, रूपा दुक्खा ति पस्सति, चक्खुविञ्ञाणं दुक्खं ति पस्सति, चक्खुसम्फस्सो [N.122] दुक्खो ति पस्सति, यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि दुक्खं ति पस्सति...पे०...जिव्हा दुक्खा ति पस्सति...पे०...मनो दुक्खो ति पस्सति, धम्मा दुक्खा ति पस्सति, मनोविञ्ञाणं दुक्खं ति पस्सति, मनोसम्फस्सो दुक्खो ति पस्सति, यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति [B.348] वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि दुक्खं ति पस्सति। अयं खो सा, भिक्खवे, निब्बानसप्पाया पटिपदा'' ति॥ •

१४९. अनत्तनिब्बानसप्पायसुत्तं

१५३. ''निब्बानसप्पायं वो, भिक्खवे, पटिपदं देसेस्सामि। तं सुणाथ ...पे०...कतमा च सा, भिक्खवे, निब्बानसप्पाया पटिपदा? इध, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुं अनत्ता ति पस्सति, रूपा अनत्ता ति पस्सति, चक्खुविञ्ञाणं अनत्ता ति पस्सति, चक्खुसम्फस्सो अनत्ता ति पस्सति, यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं [R.135] सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनत्ता ति पस्सति...पे०...मनो अनत्ता ति पस्सति, धम्मा अनत्ता ति पस्सति, मनोविञ्ञाणं अनत्ता ति पस्सति, मनोसम्फस्सो अनत्ता ति पस्सति, यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं

मनोधर्म...मनोविज्ञान...मन:संस्पर्श... मन:संस्पर्शजन्य वेदना अनित्य हैं। भिक्षुओ! भिक्षु का यह 'अनित्य' दर्शन ही निर्वाणसाधना के अनुकूल मार्ग है''॥ •

१४८. दु:खनिर्वाणसत्प्रायसूत्र : : 'दु:ख' निर्वाणसाधक मार्ग

१५२. ...''भिक्षुओ! मैं तुम्हें निर्वाणसाधना के अनुकूल मार्ग बताऊँगा। उसे सुनो... पूर्ववत्...। भिक्षुओ! वह मार्ग कौन सा है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु देखता है कि चक्षु दु:ख है, रूप दु:ख है...पूर्ववत्...वेदना दु:ख है। भिक्षुओ! भिक्षु का यह 'दु:ख' दर्शन ही निर्वाणसाधना का अनुकूल मार्ग है''॥ •

वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनत्ता ति पस्सति। अयं खो सा, भिक्खवे, निब्बानसप्पाया पटिपदा'' ति॥ ●

१५०. निब्बानसप्पायपटिपदासुत्तं

१५४. ''निब्बानसप्पायं वो, भिक्खवे, पटिपदं देसेस्सामि। तं सुणाथ...पे०... कतमा च सा, भिक्खवे, निब्बानसप्पाया पटिपदा? तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, चक्खु निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति?

''अनिच्चं, भन्ते''।

''यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा'' ति?

''दुक्खं, भन्ते''।

''यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''रूपा निच्चा वा अनिच्चा वा'' ति? [N.123]

''अनिच्चा, भन्ते''।

''चक्खुविञ्ञाणं...पे०...चक्खुसम्फस्सो...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति?

''अनिच्चं, भन्ते''।

''यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा'' ति?

''दुक्खं, भन्ते''।

---

१४९. अनात्मनिर्वाणसत्प्रायसूत्र : : 'अनात्म' निर्वाणसाधक मार्ग

१५३. ...''भिक्षुओ!...यहाँ कोई भिक्षु देखता है कि चक्षु अनात्म है...पूर्ववत्...। यह 'अनात्म' दर्शन ही निर्वाणसाधना के अनुकूल मार्ग है''॥ ●

१५०. निर्वाणसत्प्रायसूत्र : : निर्वाण साधक मार्ग

१५४. ...''भिक्षुओ! मैं तुम्हें निर्वाणसाधना के अनुकूल मार्ग बताऊँगा। उसे सुनो। भिक्षुओ! यह अनुकूल मार्ग क्या है? क्या मानते हो, भिक्षुओ! चक्षु नित्य है या अनित्य?''

''अनित्य है, भन्ते!''

''रूप नित्य हैं या अनित्य? ...पूर्ववत्...।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति, रूपेसु पि निब्बिन्दति, चक्खुविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, चक्खुसम्फस्से पि निब्बिन्दति...पे०... [R.136] यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति ...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाति। अयं खो सा, भिक्खवे, निब्बानसप्पाया पटिपदा'' ति॥ ●

१५१. अन्तेवासिकसुत्त

[B.349] १५५. "अनन्तेवासिकमिदं, भिक्खवे, ब्रह्मचरियं वुस्सति अनाचरियकं। सन्तेवासिको, भिक्खवे, भिक्खु साचरियको दुक्खं न फासु विहरति। अनन्तेवासिको, भिक्खवे, भिक्खु अनाचरियको सुखं फासु विहरति।

"कथं च, भिक्खु, सन्तेवासिको साचरियको दुक्खं न फासु विहरति। इध, भिक्खवे, भिक्खुनो चक्खुना रूपं दिस्वा उप्पज्जन्ति पापका अकुसला धम्मा सरसङ्कप्पा सञ्ञोजनिया। त्यास्स अन्तो वसन्ति, अन्तस्स वसन्ति पापका अकुसला धम्मा ति।

ऐसा देखते हुए, ऐसा जानते हुए विद्वान् आर्यश्रावक की चक्षु के प्रति अरुचि हो जाती है...पूर्ववत्...आगे मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है—ऐसा जान लेता है। भिक्षुओ! यही निर्वाणसाधना का अनुकूल मार्ग है''॥ ●

१५१. अन्तेवासिकसूत्र : : अन्तेवासी तथा आचार्य के विना की गयी साधना ही हितकर

१५५. ..."भिक्षुओ! भिक्षु को यह धर्मसाधना अन्तेवासी (अन्त:करण में रहने वाले क्लेश) के विना ही पूर्ण करनी चाहिये। इसी तरह आचार्य (आचरण किये जा सकने वाले क्लेश) के विना ही पूर्ण करनी चाहिये। भिक्षुओ! अन्तेवासी तथा आचार्य सहित साधनाकर्ता भिक्षु अपने दु:खों का भली भाँति परिहार नहीं कर सकता; तथा अन्तेवासी एवं आचार्य रहित साधनाकर्ता भिक्षु अपने दु:खों का भली भाँति परिहार कर सकता है।

भिक्षुओ! अन्तेवासी तथा आचार्य सहित साधना करने वाला क्यों अपने दु:खों का परिहार भली भाँति नहीं कर पाता? यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु को, चक्षु से रूप देख कर, चञ्चल सङ्कल्प वाले, बन्धन में डालने वाले पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं। ये अकुशल

तस्मा सन्तेवासिको ति वुच्चति। ते नं समुदाचरन्ति, समुदाचरन्ति नं पापका अकुसला धम्मा ति। तस्मा साचरियको ति वुच्चति...पे०...।

"पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खुनो जिव्हाय रसं सायित्वा उप्पज्जन्ति पापका अकुसला धम्मा सरसङ्कप्पा सञ्ञोजनिया। त्यास्स अन्तो वसन्ति, अन्तस्स वसन्ति पापका अकुसला धम्मा ति। तस्मा सन्तेवासिको ति वुच्चति। ते नं समुदा-[N.124] रन्ति, समुदाचरन्ति नं पापका अकुसला धम्मा ति। तस्मा साचरियको ति वुच्चति ...पे०...। "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खुनो मनसा धम्मं विञ्ञाय उप्पज्जन्ति पापका अकुसला धम्मा सरसङ्कप्पा सञ्ञोजनिया। त्यास्स अन्तो वसन्ति, अन्तस्स [R.137] वसन्ति पापका अकुसला धम्मा ति। तस्मा सन्तेवासिको ति वुच्चति। ते नं समुदाचरन्ति, समुदाचरन्ति नं पापका अकुसला धम्मा ति। तस्मा साचरियको ति वुच्चति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु सन्तेवासिको साचरियको दुक्खं न फासु विहरति। (क)

"कथं च, भिक्खुवे, भिक्खु, अनन्तेवासिको अनाचरियको सुखं फासु विहरति। इध, भिक्खवे, भिक्खुनो चक्खुना रूपं दिस्वा न उप्पज्जन्ति पापका अकुसला धम्मा सरसङ्कप्पा सञ्ञोजनिया। त्यास्स न अन्तो वसन्ति, नास्स अन्तो वसन्ति पापका अकुसला धम्मा ति। तस्मा अनन्तेवासिको ति वुच्चति। ते नं न समुदाचरन्ति, न समुदाचरन्ति नं पापका अकुसला धम्मा ति। तस्मा अनाचरियको ति वुच्चति...पे०...।

"पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खुनो जिव्हाय रसं सायित्वा न उप्पज्जन्ति पापका अकुसला धम्मा सरसङ्कप्पा सञ्ञोजनिया। त्यास्स न अन्तो वसन्ति, नास्स अन्तो वसन्ति पापका अकुसला धम्मा ति। तस्मा अनन्तेवासिको ति वुच्चति। ते नं न [B.350]

धर्म उस के अन्तःकरण में प्रविष्ट हो जाते हैं। अतः उस भिक्षु की यह साधना 'अन्तेवासीसहित' कहलाती है। तथा वे पापमय अकुशल धर्म उस के साथ समुदाचरण करते (रहते) हैं, अतः वह साधक 'आचार्यसहित' कहलाता है। ...पूर्ववत्...।

जिह्वा से रस को चख कर...मन से धर्म को जान कर...पूर्ववत्...। (क)

फिर, भिक्षुओ! अन्तेवासी तथा आचार्य के विना साधक कैसे सुखपूर्वक साधना करता है? यहाँ, भिक्षुओ! वह भिक्षु साधक को चक्षु से रूप को देख कर चञ्चलसङ्कल्प, बन्धनकारक, पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न नहीं होते, न वे उस के अन्तःकरण में टिकने की स्थिति बना पाते हैं, अतः वह 'अनन्तेवासिक' कहलाता है। साथ ही वे पापधर्म समुदाचरण भी नहीं कर पाते, अतः उस साधक को 'अनाचरियक' कहलाता है। ...पूर्ववत्...।

समुदाचरन्ति, न समुदाचरन्ति नं पापका अकुसला धम्मा ति। तस्मा अनाचरियको ति वुच्चति...पे०...।

"पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खुनो मनसा धम्मं विञ्ञाय न उप्पज्जन्ति पापका अकुसला धम्मा सरसङ्कप्पा सञ्ञोजनिया। त्यास्स न अन्तो वसन्ति, नास्स अन्तो वसन्ति पापका अकुसला धम्मा ति। तस्मा अनन्तेवासिको ति वुच्चति। ते नं न समुदाचरन्ति, न समुदाचरन्ति नं पापका अकुसला धम्मा ति। तस्मा अनाचरियको ति वुच्चति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु अनन्तेवासिको अनाचरियको सुखं फासु विहरति। अनन्तेवासिकमिदं, भिक्खवे, ब्रह्मचरियं वुस्सति। अनाचरियकं सन्तेवासिको, [R.138] भिक्खवे, भिक्खु साचरियको दुक्खं न फासु विहरति। अनन्तेवासिको, भिक्खवे, भिक्खु अनाचरियको सुखं फासु विहरती" ति॥ •

१५२. किमत्थियब्रह्मचरियसुत्तं

१५६. "सचे वो, भिक्खवे, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एवं पुच्छेय्युं— [N.125] 'किमत्थियं, आवुसो, समणे गोतमे ब्रह्मचरियं वुस्सती' ति; एवं पुट्ठा तुम्हे, भिक्खवे, तेसं अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं ब्याकरेय्याथ—'दुक्खस्स खो, आवुसो, परिञ्ञाय भगवति ब्रह्मचरियं वुस्सती' ति। सचे पन वो, भिक्खवे, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एवं पुच्छेय्युं—'कतमं पनावुसो, दुक्खं, यस्स परिञ्ञाय समणे गोतमे ब्रह्मचरियं वुस्सती' ति; एवं पुट्ठा तुम्हे, भिक्खवे, तेसं अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं ब्याकरेय्याथ—

'चक्खु खो, आवुसो, दुक्खं; तस्स परिञ्ञाय भगवति ब्रह्मचरियं वुस्सति। रूपा

फिर वह भिक्षु जिह्वा से रस चख कर...मन से धर्मों को जान कर...पूर्ववत्...।

इस तरह, भिक्षुओ! यह ऐसा अनन्तेवासिक एवं अनाचार्यक साधक सुखपूर्वक साधना कर पाता है॥" •

१५२. किमर्थब्रह्मचर्यसूत्र : : दुःखविनाशहेतु धर्मसाधना आवश्यक

१५६. ..."यदि, भिक्षुओ! दूसरे सम्प्रदायों में दीक्षित कोई परिव्राजक तुम से यह पूछें—'भिक्षुओ! तुम यह धर्मसाधना किस प्रयोजन की सिद्धि के लिये करते हो?' तो तुम्हें उन परिव्राजकों को यह उत्तर देना चाहिये—'आयुष्मानो! दुःखविनाशहेतु हम भगवान् द्वारा उपदिष्ट इस धर्म की साधना करते हैं।' यदि वे पूछें—'वह दुःख क्या है, जिस के विनाशहेतु तुम यह साधना करते हो?' यह पूछे जाने पर तुम्हें उन परिव्राजकों के सम्मुख इस प्रश्न का यों व्याख्यान करना चाहिये—

दुक्खा; तेसं परिञ्ञाय भगवति ब्रह्मचरियं वुस्सति। चक्खुविञ्ञाणं दुक्खं; तस्स परिञ्ञाय भगवति ब्रह्मचरियं वुस्सति। चक्खुसम्फस्सो दुक्खो; तस्स परिञ्ञाय भगवति ब्रह्मचरियं वुस्सति। यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि दुक्खं; तस्स परिञ्ञाय भगवति ब्रह्मचरियं वुस्सति...पे०...जिव्हा दुक्खा...मनो दुक्खो...तस्स परिञ्ञाय भगवति ब्रह्मचरियं वुस्सति। यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि दुक्खं; तस्स परिञ्ञाय भगवति ब्रह्मचरियं वुस्सति। इदं खो, आवुसो, दुक्खं; यस्स परिञ्ञाय भगवति ब्रह्मचरियं वुस्सती' ति। एवं पुट्ठा [B.351] तुम्हे, भिक्खवे, तेसं अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं ब्याकरेय्याथा'' ति॥

१५३. अत्थिनुखोपरियायसुत्तं

१५७. ''अत्थि नु खो, भिक्खवे, परियायो यं परियायं आगम्म भिक्खु अञ्ञत्रेव सद्धाय, अञ्ञत्र रुचिया, अञ्ञत्र अनुस्सवा, अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का, [R.139] अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अञ्ञं ब्याकरेय्य—'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानामी''' ति?

''भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा भगवन्नेत्तिका भगवम्पटिसरणा। साधु [N.126] वत, भन्ते, भगवन्तं येव पटिभातु एतस्स भासितस्स अत्थो। भगवतो सुत्वा भिक्खू धारेस्सन्ती'' ति।

'आयुष्मानो! चक्षु दुःख है, उस के नाशहेतु हम इस भगवदुक्त धर्म का पालन करते हैं। रूप...चक्षुर्विज्ञान...चक्षुःसंस्पर्श...चक्षुःसंस्पर्शजन्य वेदनाएँ दुःख हैं, इन के नाशहेतु हम भगवदुक्त धर्म का पालन करते हैं। ...पूर्ववत्...।

'जिह्वा...काय...मन...पूर्ववत्...। आयुष्मानो! यह दुःख है जिस के नाशहेतु हम भगवदुक्त धर्म की साधना करते हैं।' भिक्षुओ! उक्त प्रश्न के पूछे जाने पर तुम्हें उस का इसी प्रकार से उत्तर देना चाहिये॥''

१५३. अस्तिनुखलुपर्यायसूत्र : : आत्मज्ञानकथन के हेतु

१५७. ...''भिक्षुओ! ऐसा भी कोई क्रम (पर्याय) है जिस के सहारे से भिक्षु श्रद्धा, रुचि, अनुश्रव (सुनी हुई बात) आकार के विचार या दृष्टिनिध्यानक्षान्ति के विना ही अपने ज्ञान से यह कह सके—'मेरी भवपरम्परा क्षीण हो गयी है, मेरी धर्मसाधना सफल हो गयी है, मैं कृतकृत्य हो चुका हूँ, मेरा अब कोई कर्तव्य शेष नहीं है—ऐसा मैं जानता हूँ?'''

''भन्ते! धर्मनिर्णय के लिये तो हम आप पर ही आधृत हैं, आप जैसा निर्देश देंगे वैसा हम स्वीकार कर लेंगे।''

"तेन हि, भिक्खवे, सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच– "अत्थि, भिक्खवे, परियायो यं परियायं आगम्म भिक्खु अञ्ञत्रेव सद्धाय, अञ्ञत्र रुचिया, अञ्ञत्र अनुस्सवा, अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का, अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अञ्ञं ब्याकरेय्य—'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं. नापरं इत्थत्ताया ति पजानामी' ति।

"कतमो च, भिक्खवे, परियायो यं परियायं आगम्म भिक्खु अञ्ञत्रेव सद्धाय ...पे०...अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अञ्ञं ब्याकरोति—'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया ति पजानामी' ति? इध, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा सन्तं वा अज्झत्तं रागदोसमोहं, अत्थि मे अज्झत्तं रागदोसमोहो ति पजानाति; असन्तं वा अज्झत्तं रागदोसमोहं, नत्थि मे अज्झत्तं रागदोसमोहो ति पजानाति। यं तं, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा सन्तं वा अज्झत्तं रागदोसमोहं, अत्थि मे अज्झत्तं रागदोसमोहो ति पजानाति; असन्तं वा अज्झत्तं रागदोसमोहं, नत्थि मे अज्झत्तं रागदोसगोहो ति पजानाति; अपि नु मे, भिक्खवे, धम्मा सद्धाय वा वेदितब्बा, [B.352] रुचिया वा वेदितब्बा, अनुस्सवेन वा वेदितब्बा, आकारपरिवितक्केन वा वेदितब्बा, दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया वा वेदितब्बा" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"ननु मे, भिक्खवे, धम्मा पञ्ञाय दिस्वा वेदितब्बा" ति?

"तो, भिक्षुओ! सुनो, मैं तुम्हें बतलाता हूँ। ध्यानपूर्वक सुनो।"

भिक्षुओं ने भगवान् का यह आदेश स्वीकार कर लिया। भगवान् बोले—"हाँ, भिक्षुओ! ऐसा भी क्रम है जिसके सहारे से...पूर्ववत्...ऐसा मैं जानता हूँ'।"

"भन्ते! वह कौन सा क्रम है...पूर्ववत्... ?"

"यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु चक्षु से रूप को देख कर अपने में विद्यमान राग, द्वेष, मोह को जान कर 'मुझ में राग, द्वेष, मोह हैं'—ऐसा समझ लेता है, या अपने में राग, द्वेष, मोह को अविद्यमान जान कर 'मुझ में राग, द्वेष मोह नहीं है'—ऐसा समझ लेता है, तो, भिक्षुओ! उस भिक्षु साधक का ऐसा जानना या समझना क्या किसी श्रद्धा से, किसी रुचि से, किसी अनुश्रुति से, किसी आकारपरिवितर्क से या किसी दृष्टिनिर्ध्यानक्षान्ति से होता है?"

"नहीं, भन्ते!"

"भिक्षुओ! ये धर्म प्रज्ञा के द्वारा देखे या जाने जा सकते हैं?"

"एवं, भन्ते"।

"अयं खो, भिक्खवे, परियायो यं परियायं आगम्म भिक्खु अञ्ञत्रेव सद्धाय, अञ्ञत्र रुचिया, अञ्ञत्र अनुस्सवा, अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का, अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झान-क्खन्तिया अञ्ञं ब्याकरोति—'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया ति पजानामी' ति...पे०...।

"पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु जिव्हाय रसं सायित्वा सन्तं वा अज्झत्तं [N.127] ...पे०...रागदोसमोहो ति पजानाति; असन्तं वा अज्झत्तं रागदोसमोहं, नत्थि मे अज्झत्तं रागदोसमोहो ति पजानाति। यं तं, भिक्खवे, जिव्हाय रसं सायित्वा सन्तं वा अज्झत्तं रागदोसमोहं, अत्थि मे अज्झत्तं रागदोसमोहो ति पजानाति; असन्तं वा अज्झत्तं रागदोसमोहं, नत्थि मे अज्झत्तं रागदोसमोहो ति पजानाति; अपि नु मे, भिक्खवे, धम्मा सद्धाय वा वेदितब्बा, रुचिया वा वेदितब्बा, अनुस्सवेन वा वेदितब्बा, आकार-परिवितक्केन वा वेदितब्बा, दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया वा वेदितब्बा" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"ननु मे, भिक्खवे, धम्मा पञ्ञाय दिस्वा वेदितब्बा" ति?

"एवं, भन्ते"।

"अयं पि खो, भिक्खवे, परियायो यं परियायं आगम्म भिक्खु अञ्ञत्रेव सद्धाय, अञ्ञत्र रुचिया, अञ्ञत्र अनुस्सवा, अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का, अञ्ञत्र दिट्ठि-निज्झानक्खन्तिया अञ्ञं ब्याकरोति—'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया ति पजानामी' ति...पे०...।

"पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु मनसा धम्मं विञ्ञाय सन्तं वा अज्झत्तं [R.140] रागदोसमोहं, अत्थि मे अज्झत्तं रागदोसमोहो ति पजानाति; असन्तं वा अज्झत्तं रागदोसमोहं, नत्थि मे अज्झत्तं रागदोसमोहो ति पजानाति। यं तं, भिक्खवे, भिक्खु मनसा धम्मं विञ्ञाय सन्तं वा अज्झत्तं रागदोसमोहं, अत्थि मे अज्झत्तं रागदोसमोहो ति पजानाति; असन्तं वा अज्झत्तं रागदोसमोहं, नत्थि मे अज्झत्तं रागदोसमोहो ति पजानाति; अपि नु मे, भिक्खवे, धम्मा सद्धाय वा वेदितब्बा, रुचिया वा वेदितब्बा, अनुस्सवेन वा वेदितब्बा, आकारपरिवितक्केन वा वेदितब्बा, दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया वा वेदितब्बा" ति?

"हाँ, भन्ते!"

"तो, भिक्षुओ! यही क्रम है जो किसी श्रद्धा के विना...पूर्ववत्...।

"नो हेतं, भन्ते"।

"ननु मे, भिक्खवे, धम्मा पञ्ञाय दिस्वा वेदितब्बा" ति?

"एवं, भन्ते"।

"अयं पि खो, भिक्खवे, परियायो यं परियायं आगम्म भिक्खु अञ्ञत्रेव सद्धाय, [B.353] अञ्ञत्र रुचिया, अञ्ञत्र अनुस्सवा, अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का, अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अञ्ञं ब्याकरोति—'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं [N.128] करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानामी" ति॥ •

१५४. इन्द्रियसम्पन्नसुत्तं

१५८. अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"'इन्द्रियसम्पन्नो, इन्द्रियसम्पन्नो' ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, इन्द्रियसम्पन्नो होती" ति?

"चक्खुन्द्रिये चे, भिक्खु उदयब्बयानुपस्सी विहरन्तो चक्खुन्द्रिये निब्बिन्दति ...पे०...जिव्हिन्द्रिये चे, भिक्खु, उदयब्बयानुपस्सी विहरन्तो जिव्हिन्द्रिये निब्बिन्दति ...पे०...मनिन्द्रिये चे, भिक्खु, उदयब्बयानुपस्सी विहरन्तो मनिन्द्रिये निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति...पे०... विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। एत्तावता खो, भिक्खु, इन्द्रियसम्पन्नो होती" ति॥ •

"फिर, भिक्षुओ! जिह्वा से रस चख कर स्वयं में विद्यमान...मन से धर्मों को जान कर...पूर्ववत्...। *(ऊपर 'चक्षु' वाला समस्त पाठ यहाँ भी पढ़ लें।)*॥ •

१५४. इन्द्रियसम्पन्नसूत्र : : इन्द्रियसम्पन्न कौन होता है?

१५८. ...तब कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया...पूर्ववत्...यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! विज्ञ जन 'इन्द्रियसम्पन्न' 'इन्द्रियसम्पन्न'—ऐसा कहते रहते हैं, भन्ते! यह 'इन्द्रियसम्पन्नता' क्या होती है?

"भिक्षु! चक्षुरिन्द्रिय में उत्पाद एवं विनाश देख कर साधना करते हुए साधक का चक्षुरिन्द्रिय के प्रति निर्वेद (=अरुचि, ग्लानि) हो जाती है...पूर्ववत्...जिह्वेन्द्रिय में...मन इन्द्रिय में उत्पाद एवं विनाश देख कर साधना करने वाला साधक मन इन्द्रिय में अरुचि मान लेता है। इस अरुचि के कारण शनैः शनैः क्रमशः उसे संसार के प्रति वैराग्य हो जाता है...पूर्ववत्...चित्त के विमुक्त होने पर उसे 'वह विकारों से विमुक्त हो गया'—ऐसा ज्ञान हो जाता है। वह 'मेरी भवपरम्परा क्षीण हो गयी...पूर्ववत्...ऐसा जान जाता है। भिक्षु! ऐसे साधक को ही 'इन्द्रियसम्पन्न' कहते हैं॥" •

१५५. धम्मकथिकपुच्छसुत्तं

१५९. अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"'धम्मकथिको, धम्मकथिको' [R.141] ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, धम्मकथिको होती" ति?

"चक्खुस्स चे, भिक्खु निब्बिदाय विरागाय निरोधाय धम्मं देसेति, 'धम्मकथिको भिक्खू' ति अलं वचनाय। चक्खुस्स चे, भिक्खु, निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति, 'धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो भिक्खू' ति अलं वचनाय। चक्खुस्स चे, भिक्खु, निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादाविमुत्तो होति, 'दिट्ठधम्मनिब्बानप्पत्तो भिक्खू' ति अलं वचनाय। ...पे०... जिव्हाय चे, भिक्खु, निब्बिदाय विरागाय निरोधाय धम्मं देसेति, 'धम्मकथिको भिक्खू' ति अलं वचनाय...पे०...मनस्स चे, भिक्खु, निब्बिदाय विरागाय निरोधाय धम्मं देसेति, 'धम्मकथिको भिक्खू' ति अलं [N.129] वचनाय। मनस्स चे, भिक्खु, निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति, 'धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो भिक्खू' ति अलं वचनाय। मनस्स चे, भिक्खु, निब्बिदा विरागा [B.354] निरोधा अनुपादाविमुत्तो होति, 'दिट्ठधम्मनिब्बानप्पत्तो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति॥

नवपुराणवग्गो पञ्चमो॥

तस्सुद्दानं

कम्मं चत्तारि सप्पाया, अनन्तेवासि किमत्थिया।

---

१५५. धर्मकथिकपृच्छासूत्र : : धर्मकथिक कौन होता है?

१५९. ...तब कोई भिक्षु, जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा...भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—भन्ते! लोक में कोई कोई 'धर्मकथिक' नाम से आहूत किया जाता है। भन्ते! यह 'धर्मकथिक' कौन होता है?"

"भिक्षु! यदि कोई उपदेशक चक्षु के प्रति निर्वेद, वैराग्य या निरोध उत्पादक धर्मोपदेश करता है तो यह उपदेशक 'धर्मकथिक' कहा जाने योग्य है। वह स्वयं भी यदि चक्षु के प्रति निर्वेदसम्पन्न, वैराग्यसम्पन्न एवं निरोधसम्पन्न हो चुका है तो वह इस स्थिति में 'धर्मानुधर्मप्रतिपन्न' भी कहा जा सकने योग्य है। तथा यदि वह ऐसा धर्मकथिक चक्षु के निर्वेद, वैराग्य एवं निरोध से उपादानरहित हो कर आश्रवविमुक्त हो गया हो तो उसे 'इसी जन्म में निर्वाणप्राप्त' भी कहा जा सकता है। ...पूर्ववत्...।

"यदि कोई उपदेशक जिह्वा के प्रति...काय के प्रति...मन के प्रति...पूर्ववत्... ॥" •

नवपुराणवर्ग समाप्त॥

अत्थि नु खो परियायो, इन्द्रियकथिकेन चा ति॥

सळायतनवग्गे ततियपण्णासको समत्तो॥

तस्स वग्गुद्दानं

योगक्खेमि च लोको च, गहपति देवदहेन च।
नवपुराणेन पण्णासो, ततियो तेन वुच्चती ति॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. कर्मनिरोधसूत्र, २. अनित्यनिर्वाणसत्प्रायसूत्र, ३. दुःखनिर्वाणसत्प्रायसूत्र, ४. अनात्मनिर्वाणसत्प्रायसूत्र, ५. निर्वाणसत्प्रायसूत्र, ६. अन्तेवासिकसूत्र, ७. किमर्थब्रह्मचर्यसूत्र, ८. अस्ति नु खलु पर्यायसूत्र, ९. इन्द्रियसम्पन्नसूत्र एवं १०. धर्मकथिकपृच्छासूत्र॥

षडायतनवर्ग में तृतीय पञ्चाशत्क सम्पन्न॥

इस पञ्चाशत्क में व्याख्यात वर्गों की सूची—१. योगक्षेमिवर्ग, २. लोककामगुणवर्ग, ३. गृहपतिवर्ग, ४. देवदहवर्ग एवं ५. नव-पुराणवर्ग॥

चतुत्थं पण्णासकं—

१. नन्दिक्खयवग्गो पठमो

१५६. अज्झत्तनन्दिक्खयसुत्तं

१६०. "अनिच्चं येव, भिक्खवे, भिक्खु 'चक्खुं अनिच्चं' ति पस्सति, [R.142] सास्स होति सम्मादिट्ठि। सम्मापस्सं निब्बिन्दति। नन्दिक्खया रागक्खयो; रागक्खया नन्दिक्खयो। नन्दिरागक्खया चित्तं सुविमुत्तं ति वुच्चति...पे०...अनिच्चं येव, भिक्खवे, भिक्खु 'जिव्हं अनिच्चं' ति पस्सति, सास्स होति सम्मादिट्ठि। सम्मा पस्सं निब्बिन्दति। नन्दिक्खया रागक्खयो; रागक्खया...पे०...चित्तं सुविमुत्तं ति वुच्चति। अनिच्चं येव, भिक्खवे, भिक्खु 'मनं अनिच्चं' ति पस्सति, सास्स होति सम्मादिट्ठि। सम्मा पस्सं निब्बिन्दति। नन्दिक्खया रागक्खयो; रागक्खया नन्दिक्खयो। नन्दिरागक्खया चित्तं सुविमुत्तं ति वुच्चती" ति॥ ●

१५७. बाहिरनन्दिक्खयसुत्तं

१६१. "अनिच्चे येव, भिक्खवे, भिक्खु रूपे अनिच्चा ति पस्सति, सास्स होति सम्मादिट्ठि। सम्मा पस्सं निब्बिन्दति। नन्दिक्खया रागक्खयो; रागक्खया नन्दिक्खयो। नन्दिरागक्खया चित्तं सुविमुत्तं ति वुच्चति। अनिच्चे येव, भिक्खवे, भिक्खु [B.355] सद्दे...गन्धे...रसे...फोट्ठब्बे...धम्मे अनिच्चा ति पस्सति, सास्स होति सम्मा-[N.130] दिट्ठि। सम्मा पस्सं निब्बिन्दति। नन्दिक्खया रागक्खयो; रागक्खया नन्दिक्खयो। नन्दिरागक्खया चित्तं सुविमुत्तं ति वुच्चती" ति॥ ●

---

१. नन्दिक्षयवर्ग

१५६. अध्यात्मनन्दिक्षयसूत्र : : सम्यग्दृष्टि

१६०. ..."भिक्षुओ! जो साधक भिक्षु अनित्य चक्षु को 'अनित्य चक्षु है'—ऐसा मानता है, वह दृष्टि ही इस की 'सम्यग्दृष्टि' है। वह ऐसी सम्यग्दृष्टि रखता हुआ इस चक्षुरिन्द्रिय के विषयों में अरुचियुक्त हो जाता है। उन का अभिनन्दन (तृष्णा) नहीं करता। इस तृष्णा के क्षय से उस का उन विषयों के प्रति राग क्षीण हो जाता है। राग के क्षीण होने से तृष्णा का क्षय अवश्यम्भावी है। यों, इस तृष्णा के क्षीण होने से उस का चित्त आश्रवों से भली भाँति मुक्त हो जाता है। इस तरह वह जान जाता है कि मेरा चित्त अब विमुक्त हो गया। ...पूर्ववत्...।

अनित्य जिह्वा को...अनित्य मन को...पूर्ववत्...मेरा चित्त विमुक्त हो गया॥" ●

१५७. बाह्यनन्दिक्षयसूत्र : : सम्यग्दृष्टि

१६१. ..."भिक्षुओ! जो साधक अनित्य रूपों को 'रूप अनित्य हैं'—ऐसा मानता

१५८. अज्झत्तअनिच्चनन्दिक्खयसुत्तं

१६२. "चक्खुं, भिक्खवे, योनिसो मनसि करोथ; चक्खानिच्चतं च यथाभूतं समनुपस्सथ। चक्खुं, भिक्खवे, भिक्खु योनिसो मनसिकरोन्तो, चक्खानिच्चतं च यथाभूतं समनुपस्सन्तो चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति। नन्दिक्खया रागक्खयो; रागक्खया नन्दिक्खयो। नन्दिरागक्खया चित्तं सुविमुत्तं ति वुच्चति। सोतं, भिक्खवे, योनिसो मनसि [R.143] करोथ...घानं...जिव्हं, भिक्खवे, योनिसो मनसि करोथ; जिव्हानिच्चतं च यथाभूतं समनुपस्सथ। जिव्हं, भिक्खवे, भिक्खु योनिसो मनसिकरोन्तो, जिव्हानिच्चतं च यथाभूतं समनुपस्सन्तो जिव्हाय पि निब्बिन्दति। नन्दिक्खया रागक्खयो; रागक्खया नन्दिक्खयो। नन्दिरागक्खया चित्तं सुविमुत्तं ति वुच्चति। कायं...मनं, भिक्खवे, योनिसो मनसि करोथ; मनानिच्चतं च यथाभूतं समनुपस्सथ। मनं, भिक्खवे, भिक्खु योनिसो मनसिकरोन्तो, मनानिच्चतं च यथाभूतं समनुपस्सन्तो मनस्मिं पि निब्बिन्दति। नन्दिक्खया रागक्खयो; रागक्खया नन्दिक्खयो। नन्दिरागक्खया चित्तं सुविमुत्तं ति वुच्चती" ति॥ ●

१५९. बाहिरअनिच्चनन्दिक्खयसुत्तं

१६३. "रूपे, भिक्खवे, योनिसो मनसि करोथ; रूपानिच्चतं च यथाभूतं समनुपस्सथ। रूपे, भिक्खवे, भिक्खु योनिसो मनसिकरोन्तो, रूपानिच्चतं च यथाभूतं

है... पूर्वसूत्रवत्...। *(इन्द्रियों के स्थान पर उन के विषय रख कर इस सूत्र का पूर्व सूत्र के समान ही विस्तार कर लें।)*॥ ●

१५८. अध्यात्मअनित्यनन्दिक्षयसूत्र : : इन्द्रियविषयक चिन्तन

१६२. ..."भिक्षुओ! चक्षु के विषय में सूक्ष्मता से चिन्तन करो। चक्षु की अनित्यता का भी यथार्थतः ज्ञान करो। इन दोनों बातों पर सूक्ष्मता से समीक्षण करते करते एक समय ऐसा आयगा कि तुम्हें इस चक्षुरिन्द्रिय के प्रति भी अरुचि (ग्लानि) उत्पन्न हो जायगी। इस प्रकार इस चक्षु में तृष्णा के क्षीण होने से उस के प्रति आसक्ति भी क्षीण हो जायगी। आसक्ति के क्षीण होने से तृष्णा का क्षय अवश्यम्भावी है। इस तृष्णा के क्षय से साधक का चित्त आश्रवों से विमुक्त हो जायगा। तथा ऐसा होने पर साधक को 'मेरा चित्त आश्रव-विमुक्त हो गया'—ऐसा ज्ञान हो जायगा।

"श्रोत्र के विषय में...पूर्ववत्...जिह्वा...काय...मन के विषय में, भिक्षुओ! सूक्ष्मता से चिन्तन करो...पूर्ववत्... ॥" ●

१५९. बाह्यअनित्यनन्दिक्षयसूत्र : : रूपादिविषयक चिन्तन

१६२. ..."भिक्षुओ! रूप के विषय में सूक्ष्मता से चिन्तन करो। रूप की अनित्यता

समनुपस्सन्तो रूपेसु पि निब्बिन्दति। नन्दिक्खया रागक्खयो; रागक्खया नन्दिक्खयो। नन्दिरागक्खया चित्तं सुविमुत्तं ति वुच्चति। सद्दे...गन्धे...रसे...फोट्ठब्बे...धम्मे, भिक्खवे, योनिसो मनसि करोथ; धम्मानिच्चतं च यथाभूतं समनुपस्सथ। धम्मे, भिक्खवे, भिक्खु योनिसो मनसिकरोन्तो, धम्मानिच्चतं च यथाभूतं समनुपस्सन्तो धम्मेसु पि निब्बिन्दति। नन्दिक्खया रागक्खयो; रागक्खया नन्दिक्खयो। नन्दिरागक्खया चित्तं सुविमुत्तं ति वुच्चती'' ति॥

१६०. जीवकम्बवनसमाधिसुत्तं

१६४. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति जीवकम्बवने। तत्र [N.131, B.356] खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''भिक्खवो'' ति...पे०...''समाधिं, भिक्खवे, भावेथ। समाहितस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो यथाभूतं ओक्खायति। किञ्च यथाभूतं ओक्खायति? चक्खुं अनिच्चं ति यथाभूतं ओक्खायति, रूपा अनिच्चा ति यथाभूतं [R.144] ओक्खायति, चक्खुविञ्ञाणं अनिच्चं ति यथाभूतं ओक्खायति, चक्खुसम्फस्सो अनिच्चो ति यथाभूतं ओक्खायति, यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं ति यथाभूतं ओक्खायति ...पे०...जिव्हा अनिच्चा ति यथाभूतं ओक्खायति...पे०...मनो अनिच्चो ति यथाभूतं ओक्खायति, धम्मा अनिच्चा ति यथाभूतं ओक्खायति ...पे०...यम्पिदं मनोसम्फस्स-

---

का भी यथार्थतः ज्ञान करो। इन दोनों बातों पर सूक्ष्मता से समीक्षण करते करते एक समय ऐसा आयगा कि तुम्हें इन रूपों के प्रति ग्लानि उत्पन्न हो जायगी। इस प्रकार इन रूपों में तृष्णा के क्षय से उन के प्रति आसक्ति का भी क्षय हो जायगा। आसक्ति के क्षय से तृष्णा का क्षय अवश्यम्भावी है। इस तृष्णा के क्षय से साधक का चित्त आश्रवों से मुक्त हो जायगा।

''शब्द...गन्ध...रस...स्प्रष्टव्य...मनोधर्मों के विषय में, भिक्षुओ! सूक्ष्मता से चिन्तन करो...पूर्ववत्...॥''

१६०. जीवकाम्रवनसमाधिसूत्र : : समाधिभावना अवश्यकरणीय

१६४. एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के जीवक कौमारभृत्यद्वारा प्रदत्त आम्रवण में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित कर उन को, यह उपदेश किया—''भिक्षुओ! समाधि की भावना (अभ्यास) करो; क्यों कि समाधिनिष्ठ साधक को यथार्थ ज्ञान हो जाया करता है। क्या यथार्थ ज्ञान होता है? वह 'चक्षु अनित्य है'—ऐसा यथार्थतः जान लेता है, 'रूप अनित्य हैं'—यह यथार्थतः जान लेता है। चक्षुर्विज्ञान...चक्षुःसंस्पर्श...'चक्षुःसंस्पर्शज वेदनाएं अनित्य है'—ऐसा यथार्थतः

पच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं ति यथाभूतं ओक्खायति। समाधिं, भिक्खवे, भावेथ। समाहितस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो यथाभूतं ओक्खायती'' ति॥ ●

१६१. जीवकम्बवनपटिसल्लानसुत्तं

१६५. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति जीवकम्बवने। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि...पे०...''पटिसल्लाने, भिक्खवे, योगमापज्जथ। पटिसल्लीनस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो यथाभूतं ओक्खायति। किञ्च यथाभूतं ओक्खायति? चक्खुं अनिच्चं ति यथाभूतं ओक्खायति, रूपा अनिच्चा ति यथाभूतं ओक्खायति, चक्खुविञ्ञाणं अनिच्चं ति यथाभूतं ओक्खायति, चक्खुसम्फस्सो अनिच्चो ति यथाभूतं ओक्खायति, यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं ति यथाभूतं ओक्खायति...पे०...मनो अनिच्चो ति यथाभूतं ओक्खायति, [R.145] धम्मा...मनोविञ्ञाणं...मनोसम्फस्सो...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं ति यथाभूतं ओक्खायति। पटिसल्लाने, भिक्खवे, योगमापज्जथ। पटिसल्लीनस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो यथाभूतं ओक्खायती'' ति॥ ●

१६२. कोट्ठिकअनिच्चसुत्तं

[N.132] १६६. अथ खो आयस्मा महाकोट्ठिको येन भगवा तेनुपसङ्कमि...पे०... [B.357] एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा कोट्ठिको भगवन्तं एतदवोच—''साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु, यमहं भगवतो धम्मं सुत्वा एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरेय्यं'' ति।

जान लेता है। ...पूर्ववत्...। जिह्वा...काय...मन...धर्म...मनोविज्ञान...मन:संस्पर्श... मन:संस्पर्शजन्य वेदनाएँ अनित्य हैं...पूर्ववत्...यथार्थथ: जान लेता है॥'' ●

१६१. जीवकाम्रवनप्रतिसल्लायनसूत्र : : एकान्त चिन्तन

१६५. एक समय भगवान् राजगृह के जीवक कौमारभृत्यद्वारा प्रदत्त आम्रवण में साधनाहेतु विराजमान थे। ...भिक्षुओ! एकान्त चिन्तन पर ध्यान दो। एकान्त चिन्तन का अभ्यास करो; क्यों कि एकान्तचिन्तक साधक को यथार्थ ज्ञान हो जाया करता है। यह यथार्थ ज्ञान क्या है? ...पूर्ववत्... *(ऊपर वाले सूत्र के आधार पर विस्तार कर लें।)*॥ ●

१६२. कौष्ठिकअनित्यसूत्र : : अनित्य में कामना का त्याग

१६६. ...तब आयुष्मान् महाकौष्ठिक भगवान् के सम्मुख गये...भगवान् से यह

"यं खो, कोट्ठिक, अनिच्चं तत्र ते छन्दो पहातब्बो। किञ्च, कोट्ठिक, अनिच्चं? चक्खु खो, कोट्ठिक, अनिच्चं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। रूपा अनिच्चा; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। चक्खुविञ्ञाणं अनिच्चं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। चक्खुसम्फस्सो अनिच्चो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो...पे०...जिव्हा अनिच्चा; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। रसा अनिच्चा; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। जिव्हाविञ्ञाणं अनिच्चं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। जिव्हासम्फस्सो अनिच्चो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो...पे०...मनो अनिच्चो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। धम्मा अनिच्चा; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। मनोविञ्ञाणं अनिच्चं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। मनोसम्फस्सो अनिच्चो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। यं खो, कोट्ठिक, अनिच्चं तत्र ते छन्दो पहातब्बो" ति॥

●

१६३. कोट्ठिकदुक्खसुत्तं

१६७. अथ खो आयस्मा महाकोट्ठिको...पे०...भगवन्तं एतदवोच—[R.146] "साधु मे, भन्ते...पे०...विहरेय्यं" ति।

"यं खो, कोट्ठिक, दुक्खं तत्र ते छन्दो पहातब्बो। किञ्च, कोट्ठिक, दुक्खं? चक्खु खो, कोट्ठिक, दुक्खं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। रूपा दुक्खा; तत्र ते छन्दो पहातब्बो।

निवेदन किया—"अच्छा हो, भन्ते! यदि आप मुझ को ऐसा संक्षिप्त धर्मोपदेश करने की कृपा करें जिस के सहारे मैं एकान्त में जा कर उत्साहपूर्वक साधना कर सकूँ।"

"कौष्ठिक! जो अनित्य है, तुम्हें उस की कामना नहीं करनी चाहिये। कौष्ठिक! यह अनित्य क्या है? कौष्ठिक! चक्षु अनित्य है...रूप अनित्य है...चक्षुर्विज्ञान अनित्य है...चक्षुःसंस्पर्श ...चक्षुःसंस्पर्शजन्य सुखदुःखादि वेदनाएँ अनित्य हैं, तुम्हें उन की कामना नहीं करनी चाहिये। ...पूर्ववत्...जिह्वा...रस...जिह्वाविज्ञान...जिह्वासंस्पर्श...जिह्वासंस्पर्शजन्य वेदनाएँ अनित्य हैं... पूर्ववत्...। मन...मनःसंस्पर्शजन्य वेदनाएँ अनित्य हैं, तुम्हें उन की कामनाएँ नहीं करनी चाहिये। संक्षेप में, कौष्ठिक! जो अनित्य है तुम्हें उस की कामना नहीं करनी चाहिये"॥

●

१६३. कौष्ठिकदुःखसूत्र : : दुःख में कामना का त्याग

१६७. तब आयुष्मान् महाकौष्ठिक...भगवान् को प्रणाम कर...यह निवेदन किया— "अच्छा हो, भन्ते! ...पूर्ववत्...साधना कर सकूँ।"

चक्खुविञ्ञाणं दुक्खं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। चक्खुसम्फस्सो दुक्खो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा [N.133] अदुक्खमसुखं वा तं पि दुक्खं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो...पे०...जिव्हा दुक्खा; तत्र ते छन्दो पहातब्बो...पे०...मनो दुक्खो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। धम्मा दुक्खा; तत्र ते [B.358] छन्दो पहातब्बो। मनोविञ्ञाणं दुक्खं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। मनोसम्फस्सो दुक्खो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि दुक्खं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। यं खो, कोट्ठिक, दुक्खं तत्र ते छन्दो पहातब्बो'' ति॥ ●

१६४. कोट्ठिकअनत्तसुत्तं

१६८. एकमन्तं...पे०...विहरेय्यं ति।

''यो खो, कोट्ठिक, अनत्तो तत्र ते छन्दो पहातब्बो। को च, कोट्ठिक, अनत्ता? चक्खु खो, कोट्ठिक, अनत्ता; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। रूपा अनत्ता; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। चक्खुविञ्ञाणं अनत्ता; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। चक्खुसम्फस्सो अनत्ता; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनत्ता; तत्र ते छंदो पहातब्बो...पे०...जिव्हा अनत्ता; तत्र ते छन्दो पहातब्बो...पे०...मनो अनत्ता; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। धम्मा अनत्ता; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। मनोविञ्ञाणं...मनोसम्फस्सो...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति [R.147] वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनत्ता; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। यो खो, कोट्ठिक, अनत्ता तत्र ते छन्दो पहातब्बो'' ति॥ ●

१६५. मिच्छादिट्ठिपहानसुत्तं

१६९. अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि...पे०...एकमन्तं निसिन्नो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''कथं नु खो, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो मिच्छादिट्ठि पहीयती'' ति?

''चक्खुं खो, भिक्खु, अनिच्चतो जानतो पस्सतो मिच्छादिट्ठि पहीयति। रूपे

''कौष्ठिक! जो दुःख है, तुम्हें उस की कामना नहीं करनी चाहिये। ...पूर्ववत्...। *(ऊपर वाले सूत्र की तरह विस्तार कर लें।)* ●

१६४. कौष्ठिकअनात्मसूत्र : : अनात्म में कामना का त्याग

१६८. ...पूर्ववत्...''अच्छा हो, भन्ते! ...एकान्त में उत्साहपूर्वक साधना कर सकूँ''। कौष्ठिक! जो अनात्म है तुम्हें उस की कामना नहीं करनी चाहिये...पूर्वसूत्रवत्... ॥ ●

अनिच्चतो जानतो पस्सतो मिच्छादिट्ठि पहीयति। चक्खुविञ्ञाणं अनिच्चतो जानतो पस्सतो मिच्छादिट्ठि पहीयति। चक्खुसम्फस्सं अनिच्चतो जानतो पस्सतो मिच्छादिट्ठि पहीयति...पे०...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चतो जानतो पस्सतो मिच्छादिट्ठि पहीयति। एवं [N.134] खो, भिक्खु, जानतो एवं पस्सतो मिच्छादिट्ठि पहीयती'' ति॥ •

१६६. सक्कायदिट्ठिपहानसुत्तं

१७०. अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु...पे०...एतदवोच—''कथं नु खो, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो सक्कायदिट्ठि पहीयती'' ति? [B.359]

''चक्खुं खो, भिक्खु, दुक्खतो जानतो पस्सतो सक्कायदिट्ठि पहीयति। रूपे दुक्खतो जानतो पस्सतो सक्कायदिट्ठि पहीयति। चक्खुविञ्ञाणं दुक्खतो जानतो पस्सतो सक्कायदिट्ठि पहीयति। चक्खुसम्फस्सं दुक्खतो जानतो पस्सतो सक्कायदिट्ठि पहीयति ...पे०...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि दुक्खतो जानतो पस्सतो सक्कायदिट्ठि पहीयति। एवं खो, भिक्खु, जानतो एवं पस्सतो सक्कायदिट्ठि पहीयती'' ति॥ •

१६७. अत्तानुदिट्ठिपहानसुत्तं

१७१. अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु...पे०...एतदवोच—''कथं नु खो, [R.148] भन्ते, जानतो कथं पस्सतो अत्तानुदिट्ठि पहीयती'' ति?

''चक्खुं खो, भिक्खु, अनत्ततो जानतो पस्सतो अत्तानुदिट्ठि पहीयति। रूपे अनत्ततो जानतो पस्सतो अत्तानुदिट्ठि पहीयति। चक्खुविञ्ञाणं अनत्ततो जानतो पस्सतो

---

१६५. मिथ्यादृष्टिप्रहाणसूत्र : : मिथ्यादृष्टिप्रहाण का उपाय

१६९. ...तब कोई भिक्षु...भगवान् से यों निवेदन किया—''भन्ते! क्या जान कर क्या देख कर मिथ्यादृष्टि का प्रहाण होता है?''

''भिक्षु! चक्षु को अनित्य जान कर तथा देख कर मिथ्यादृष्टि प्रहीण होती है। रूप... चक्षुर्विज्ञान...चक्षुःसंस्पर्श...चक्षुःसंस्पर्शजन्य वेदनाएँ...श्रोत्र...मन...पूर्ववत्॥ •

१६६. सत्कायदृष्टिप्रहाणसूत्र : : सत्कायदृष्टि के प्रहाण का उपाय

१७०. ...तब कोई भिक्षु...भगवान् से यों निवेदन करने लगा—''भन्ते! क्या जान कर, क्या देख कर सत्कायदृष्टि का प्रहाण होता है?''

''भिक्षु! चक्षु को दुःखस्वरूप जान कर तथा देख कर सत्कायदृष्टि का प्रहाण होता है। रूप...चक्षुर्विज्ञान...चक्षुःसंस्पर्श...चक्षुःसंस्पर्शजन्य वेदनाएँ अनित्य हैं—यह जान कर देख कर सत्कायदृष्टि का प्रहाण होता है। ...श्रोत्र...मन...पूर्ववत्॥'' •

अत्तानुदिट्ठि पहीयति। चक्खुसम्फस्सं अनत्ततो जानतो पस्सतो अत्तानुदिट्ठि पहीयति। यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनत्ततो जानतो पस्सतो अत्तानुदिट्ठि पहीयति...पे०...जिव्हं अनत्ततो जानतो पस्सतो अत्तानुदिट्ठि पहीयति...पे०...मनं अनत्ततो जानतो पस्सतो अत्तानुदिट्ठि पहीयति। धम्मे ...मनोविञ्ञाणं...मनोसम्फस्सं ...यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनत्ततो जानतो पस्सतो अत्तानुदिट्ठि पहीयती'' ति॥ •

नन्दिक्खयवग्गो पठमो॥

तस्सुद्दानं

[N.135] नन्दिक्खयेन चत्तारो, जीवकम्बवने दुवे।
कोट्ठिकेन तयो वुत्ता, मिच्छा सक्काय अत्तनो ति॥ •

---

१६७. आत्मानुदृष्टिप्रहाणसूत्र : : आत्मानुदृष्टि के प्रहाण का उपाय

१७१. ...तब कोई भिक्षु...भगवान् से यों निवेदन करने लगा—''भन्ते! क्या जान कर क्या देख कर आत्मानुदृष्टि का प्रहाण होता है?''

''भिक्षु! चक्षु को अनात्म जान कर देख कर आत्मदृष्टि का प्रहाण होता है। रूप... चक्षुर्विज्ञान...पूर्ववत्...श्रोत्र...मन...प्रहाण होता है॥'' •

नन्दिक्षयवर्ग प्रथम समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. अध्यात्मनन्दिक्षयसूत्र, २. बाह्य-नन्दिक्षयसूत्र, ३. अध्यात्मअनित्यनन्दिक्षयसूत्र, ४. बाह्यअनित्यनन्दिक्षयसूत्र, ५. जीवकाम्र-वनसमाधिसूत्र, ६. जीवकाम्रवनप्रतिसल्लायनसूत्र, ७. कौष्ठिकअनित्यसूत्र, ८. कौष्ठिक-दुःखसूत्र, ९. कौष्ठिकअनात्मसूत्र, १०. मिथ्यादृष्टिप्रहाणसूत्र, ११. सत्कायदृष्टिप्रहाणसूत्र, १२. आत्मानुदृष्टिप्रहाणसूत्र॥ •

सट्ठिपेय्यालो

१६८. अज्झत्तअनिच्चछन्दसुत्तं

१७२. "यं, भिक्खवे, अनिच्चं तत्र वो छन्दो पहातब्बो। किञ्च, [B.360] भिक्खवे, अनिच्चं? चक्खु, भिक्खवे, अनिच्चं; तत्र वो छन्दो पहातब्बो...पे०...[R.149] जिव्हा अनिच्चा; तत्र वो छन्दो पहातब्बो...पे०...मनो अनिच्चो; तत्र वो छन्दो पहातब्बो। यं भिक्खवे, अनिच्चं तत्र वो छन्दो पहातब्बो" ति॥ ●

१६९. अज्झत्तअनिच्चरागसुत्तं

१७३. "यं, भिक्खवे, अनिच्चं तत्र वो रागो पहातब्बो। किञ्च, भिक्खवे, अनिच्चं? चक्खु, भिक्खवे, अनिच्चं; तत्र वो रागो पहातब्बो...पे०...जिव्हा अनिच्चा; तत्र वो रागो पहातब्बो...पे०...मनो अनिच्चो; तत्र वो रागो पहातब्बो। यं, भिक्खवे, अनिच्चं तत्र वो रागो पहातब्बो" ति॥ ●

१७०. अज्झत्तअनिच्चछन्दरागसुत्तं

१७४. "यं, भिक्खवे, अनिच्चं तत्र वो छन्दरागो पहातब्बो। किञ्च, भिक्खवे, अनिच्चं? चक्खु, भिक्खवे, अनिच्चं; तत्र वो छन्दरागो पहातब्बो...पे०...जिव्हा अनिच्चा; तत्र वो छन्दरागो पहातब्बो...पे०...मनो अनिच्चो; तत्र वो छन्दरागो पहातब्बो। यं, भिक्खवे, अनिच्चं तत्र वो छन्दरागो पहातब्बो" ति॥ ●

षष्टिपेय्याल

१६८. अध्यात्मअनित्यछन्दसूत्र : : कामना पर नियन्त्रण

१७२. ..."भिक्षुओ! जो कुछ भी अनित्य है, उस में कामना का त्याग करना चाहिये। भिक्षुओ! यह अनित्य क्या है? भिक्षुओ! चक्षु अनित्य है, उस में कामना का त्याग करना चाहिये। ...पूर्ववत्...जिह्वा अनित्य है...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! जो अनित्य है उस का त्याग करना चाहिये"॥ ●

१६९. अध्यात्मअनित्यरागसूत्र : : आसक्ति पर नियन्त्रण

१७३. ..."भिक्षुओ! जो कुछ भी अनित्य है वहाँ राग (आसक्ति) नहीं करना चाहिये। भिक्षुओ! यह अनित्य क्या है? भिक्षुओ! चक्षु अनित्य है, उस में राग नहीं करना चाहिये। ...जिह्वा...मन...पूर्ववत्..."॥ ●

१७०. अध्यात्मअनित्यछन्दरागसूत्र : : कामना एवं आसक्ति पर नियन्त्रण

१७४. ..."भिक्षुओ! जो कुछ भी अनित्य है उस में कामना एवं आसक्ति नहीं करनी चाहिये। भिक्षुओ! यह अनित्य क्या है? भिक्षुओ! चक्षु अनित्य है, वहाँ तुम्हें न कामना करनी चाहिये, न आसक्ति। ...जिह्वा...मन...पूर्ववत्..."॥ ●

१७१-१७३. दुक्खछन्दादिसुत्तं

१७५-१७७. ''यं, भिक्खवे, दुक्खं तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। किञ्च, भिक्खवे, दुक्खं? चक्खु, भिक्खवे, दुक्खं; तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो...पे०...जिव्हा दुक्खा...पे०...मनो दुक्खो; तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। यं, भिक्खवे, [N.136, R.150] दुक्खं तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो'' ति॥ ●

१७४-१७६. अनत्तछन्दादिसुत्तं

१७८-१८०. ''यो, भिक्खवे, अनत्ता तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, [B.361] छन्दरागो पहातब्बो। को च, भिक्खवे, अनत्ता? चक्खु, भिक्खवे, अनत्ता; तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो...पे०...जिव्हा अनत्ता; तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो...पे०...मनो अनत्ता; तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। यो, भिक्खवे, अनत्ता तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो'' ति॥ ●

१७७-१७९. बाहिरानिच्चछन्दादिसुत्तं

१८१-१८३. ''यं, भिक्खवे, अनिच्चं तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो,

---

१७१-१७३. दु:खछन्दादिसूत्र : : दु:ख में कामना, आसक्ति आदि पर नियन्त्रण

१७५-१७७. ...''भिक्षुओ! जो कुछ भी दु:ख है उस में कामना, आसक्ति तथा कामना आसक्ति—दोनों का त्याग करना चाहिये। भिक्षुओ! यह दु:ख क्या है? भिक्षुओ! यह चक्षु दु:ख है, इस में कामना या आसक्ति एवं कामना तथा आसक्ति—दोनों का त्याग कर देना चाहिये। ...जिह्वा...मन...पूर्ववत्...''॥ ●

१७४-१७६. अनात्मछन्दादिसूत्र : : अनात्म में कामना, आसक्ति आदि पर नियन्त्रण

१७८-१८०. ...''भिक्षुओ! जो भी 'अनात्म' पदार्थ हैं, उन में कामना, राग, कामना एवं आसक्ति—दोनों नहीं करना चाहिये। भिक्षुओ! यह 'अनात्म' क्या है? भिक्षुओ! चक्षु अनात्म है, इस में कामना या आसक्ति एवं कामना तथा आसक्ति—दोनों नहीं करना चाहिये। ...पूर्ववत्...जिह्वा...मन अनात्म हैं, इनमें...पूर्ववत्...''॥ ●

१७७-१७९. बाह्यअनित्यछन्दादिसूत्र : : बाह्य अनित्यों में कामना आदि का त्याग

१८१-१८३. ...''भिक्षुओ! जो भी अनित्य पदार्थ हैं, उन में कामना, राग एवं

छन्दरागो पहातब्बो। किञ्च, भिक्खवे, अनिच्चं? रूपा, भिक्खवे, अनिच्चा; तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। सद्दा अनिच्चा; तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। गन्धा अनिच्चा; तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। रसा अनिच्चा; तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। फोट्ठब्बा अनिच्चा; तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। धम्मा अनिच्चा; तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। यं, भिक्खवे, अनिच्चं तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो'' ति॥ ●

१८०-१८२. बाहिरदुक्खछन्दादिसुत्तं

१८४-१८६. ''यं, भिक्खवे, दुक्खं तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। किञ्च, भिक्खवे, दुक्खं? रूपा, भिक्खवे, दुक्खा; तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। सद्दा...गन्धा...रसा...फोट्ठब्बा...धम्मा दुक्खा; तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। यं, [N.137] भिक्खवे, दुक्खं तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो'' ति॥ ●

१८३-१८५. बाहिरानत्तछन्दादिसुत्तं

१८७-१८९. ''यो, भिक्खवे, अनत्ता तत्र वो छन्दो पहातब्बो, [B.362, R.151] रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। को च, भिक्खवे, अनत्ता? रूपा, भिक्खवे,

---

कामना आसक्ति का त्याग कर देना चाहिये। भिक्षुओ! यह बाह्य अनित्य पदार्थ क्या है? भिक्षुओ! रूप बाह्य पदार्थ अनित्य हैं, उन में कामना...त्याग कर देना चाहिये। शब्द...गन्ध...रस...स्प्रष्टव्य... धर्म अनित्य हैं इन में कामना का, आसक्ति का एवं कामना तथा आसक्ति—दोनों का त्याग कर देना चाहिये। संक्षेप में, भिक्षुओ! जो भी अनित्य हैं उन में इन कामना आदि का त्याग कर देना चाहिये॥'' ●

१८०-१८२. बाह्यदुःखछन्दादिसूत्र : : रूप आदि में कामना आदि का त्याग

१८४-१८६. ...''भिक्षुओ! जो दुःख है उस में कामना, राग एवं कामना तथा आसक्ति—दोनों का त्याग करना चाहिये। भिक्षुओ! यह 'दुःख' क्या है? भिक्षुओ! रूप ही दुःख हैं, इन में...। शब्द...गन्ध...रस...स्प्रष्टव्य...धर्म दुःख हैं, इन में...। भिक्षुओ! जो दुःख है, उस में कामना आदि का त्याग करना चाहिये॥'' ●

१८३-१८५. बाह्यअनात्मछन्दादिसूत्र : : रूप आदि में कामना आदि का त्याग

१८७-१८९. ...''भिक्षुओ! जो अनात्म पदार्थ हैं, उन में कामना आदि का त्याग कर देना चाहिये। भिक्षुओ! यह 'अनात्म' क्या है? रूप अनात्म हैं, इन में...। शब्द...

अनत्ता; तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। सद्दा...गन्धा... रसा...फोट्ठब्बा...धम्मा अनत्ता; तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। यो, भिक्खवे, अनत्ता तत्र वो छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो'' ति॥ ●

१८६. अज्झत्तातीतानिच्चसुत्तं

१९०. ''चक्खु, भिक्खवे, अनिच्चं अतीतं...पे०...जिव्हा अनिच्चा अतीता ...पे०...मनो अनिच्चो अतीतो। एवं पस्सं सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति...पे०...जिव्हाय पि निब्बिन्दति...पे०...मनस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति॥ ●

१८७. अज्झत्तानागतानिच्चसुत्तं

१९१. ''चक्खु, भिक्खवे, अनिच्चं अनागतं...पे०...जिव्हा अनिच्चा अनागता... पे०...मनो अनिच्चो अनागतो। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥ ●

१८८. अज्झत्तपच्चुप्पन्नानिच्चसुत्तं

१९२. ''चक्खु, भिक्खवे, अनिच्चं पच्चुप्पन्नं...पे०...जिव्हा अनिच्चा पच्चुप्पन्ना ...पे०...मनो अनिच्चो पच्चुप्पन्नो। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥

गन्ध...रस...स्प्रष्टव्य...मनोधर्म 'अनात्म' हैं इन में कामना आदि का त्याग कर देना चाहिये। संक्षेप में, भिक्षुओ! जो भी अनात्म है उस में कामना आदि का त्याग कर देना चाहिये॥'' ●

१८६. अध्यात्मातीतानित्यसूत्र : : अध्यात्म अतीत अनित्य का त्याग

१९०. ...''भिक्षुओ! अतीत चक्षु अनित्य है...पूर्ववत्...अतीत जिह्वा अनित्य है...अतीत मन अनित्य है। ऐसा जाननेवाले देखनेवाले विद्वान् आर्यश्रावक की चक्षु में अरुचि हो जाती है... पूर्ववत्...जिह्वा में...मन में अरुचि हो जाती है, अरुचि के कारण वैराग्य तथा वैराग्य से विमुक्ति एवं विमुक्ति से 'विमुक्त हो गया'—यह ज्ञान हो जाता है। साथ ही वह—'मेरी भवपरम्परा क्षीण हो गयी...अब मेरा कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहा'—यह भी जान जाता है॥'' ●

१८७. अध्यात्मानागतानित्यसूत्र : : अध्यात्म अनागत अनित्य का त्याग

१९१. ...''भिक्षुओ! अनागत चक्षु अनित्य है...पूर्ववत्...अनागत जिह्वा...अनागत मन अनित्य है—ऐसा जाननेवाले देखनेवाले विद्वान् आर्यश्रावक की...पूर्ववत्... ॥'' ●

१८९-१९१. अज्झत्तातीतादिदुक्खसुत्तं

१९३-१९५. "चक्खु, भिक्खवे, दुक्खं अतीतं अनागतं [N.138, R.152] पच्चुप्पन्नं...पे०... जिव्हा दुक्खा अतीता अनागता पच्चुप्पन्ना...पे०...मनो दुक्खो अतीतो अनागतो पच्चुप्पन्नो। एवं पस्सं, भिक्खवे...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ ●

१९२-१९४. अज्झत्तातीतादिअनत्तसुत्तं

१९६-१९८. "चक्खु, भिक्खवे, अनत्ता अतीतं अनागतं पच्चुप्पन्नं [B.363] ...पे०...जिव्हा अनत्ता...पे०...मनो अनत्ता अतीतो अनागतो पच्चुप्पन्नो। एवं पस्सं ...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ ●

१९५-१९७. बाहिरातीतादिअनिच्चसुत्तं

१९९-२०१. "रूपा, भिक्खवे, अनिच्चा अतीता अनागता पच्चुप्पन्ना। सद्दा... गन्धा...रसा...फोट्ठब्बा...धम्मा अनिच्चा अतीता अनागता पच्चुप्पन्ना। एवं पस्सं...पे०... नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ ●

१९८-२००. बाहिरातीतादिदुक्खसुत्तं

२०२-२०४. "रूपा, भिक्खवे, दुक्खा अतीता अनागता पच्चुप्पन्ना। सद्दा... गन्धा...रसा...फोट्ठब्बा...धम्मा दुक्खा अतीता अनागता पच्चुप्पन्ना। एवं पस्सं...पे०... नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ ●

---

१८८. अध्यात्मप्रत्युत्पन्नानित्यसूत्र : : अध्यात्म वर्तमान अनित्य का त्याग

१९२. ..."भिक्षुओ! प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) चक्षु अनित्य है...पूर्ववत्...वर्तमान जिह्वा... वर्तमान मन अनित्य है—ऐसा जाननेवाले देखनेवाले विद्वान्...पूर्ववत्... ॥" ●

१८९-१९१. अध्यात्मअतीतादिदुःखसूत्रः : अध्यात्म अतीतादि दुःख का त्याग

१९३-१९५. ..."भिक्षुओ! अतीत, अनागत एवं प्रत्युत्पन्न चक्षु दुःख है...पूर्ववत्...अतीत, अनागत एवं प्रत्युत्पन्न जिह्वा दुःख है...मन...पूर्ववत्... ॥" ●

१९२-१९४. अध्यात्मातीतादिअनात्मसूत्रः : अध्यात्म अतीतादि अनात्म का त्याग

१९६-१९८. ..."भिक्षुओ! अतीत, अनागत एवं प्रत्युत्पन्न चक्षु अनात्म है...पूर्ववत्... अतीत...जिह्वा अनात्म है...मन...पूर्ववत्... ॥" ●

१९५-१९७. बाह्यातीतादिअनित्यसूत्र : : बाह्य अतीतरूपादि अनित्य का त्याग

१९९-२०१. ..."भिक्षुओ! अतीत, अनागत एवं प्रत्युत्पन्न रूप अनित्य हैं। ...शब्द... गन्ध...रस...स्प्रष्टव्य...धर्म...पूर्ववत्... ॥" ●

१९८-२००. बाह्यातीतादिदुःखसूत्र : : बाह्य अतीतरूपादि दुःख का त्याग

२०२-२०४. ..."भिक्षुओ! अतीत, अनागत एवं प्रत्युत्पन्न रूप दुःख हैं। ...शब्द...गन्ध ...रस...स्प्रष्टव्य...धर्म...पूर्ववत्... ॥" ●

२०१-२०३. बाहिरातीतादिअनत्तसुत्तं

२०५-२०७. "रूपा, भिक्खवे, अनत्ता अतीता अनागता पच्चुप्पन्ना। सद्दा... गन्धा...रसा...फोट्ठब्बा...धम्मा अनत्ता अतीता अनागता पच्चुप्पन्ना। एवं पस्सं...पे०... नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ •

२०४. अज्झत्तातीतयदनिच्चसुत्तं

२०८. "चक्खु, भिक्खवे, अनिच्चं अतीतं। यदनिच्चं तं दुक्खं। यं दुक्खं [R.153] तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं [N.139] सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं...पे०...जिव्हा अनिच्चा अतीता। यदनिच्चं तं दुक्खं। यं दुक्खं तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं...पे०...मनो अनिच्चो अतीतो। यदनिच्चं तं दुक्खं। यं दुक्खं तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ •

२०५. अज्झत्तानागतयदनिच्चसुत्तं

२०९. "चक्खु, भिक्खवे, अनिच्चं अनागतं। यदनिच्चं तं दुक्खं। यं दुक्खं [B.364] तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं...पे०...जिव्हा अनिच्चा अनागता। यदनिच्चं तं दुक्खं। यं दुक्खं तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं...पे०...मनो अनिच्चो अनागतो। यदनिच्चं तं दुक्खं। यं दुक्खं

२०१-२०३. बाह्यातीतादिअनात्मसूत्र : : बाह्य अतीतादि अनात्म का त्याग

२०५-२०७. ..."भिक्षुओ! अतीत, अनागत एवं प्रत्युत्पन्न रूप अनात्म हैं। ...शब्द...गन्ध ...रस...स्प्रष्टव्य...धर्म...पूर्ववत्... ॥" •

२०४. अध्यात्मातीतयदनित्यसूत्र : : जो अतीत अनित्य है उस का त्याग

२०८. ..."भिक्षुओ! अतीत चक्षु अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है। तथा जो अनात्म है वह 'न मेरा है, न वह मैं हूँ, न वह मेरा आत्मा है'—ऐसा भलीभाँति प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये। ...पूर्ववत्...। जिह्वा...मन...। इसे जान कर विद्वान् आर्यश्रावक...जाति क्षीण हुई...ऐसा जान लेता है"॥ •

२०५. अध्यात्मानागतयदनित्यसूत्र : : जो अनागत अनित्य है उस का त्याग

२०९. ..."भिक्षुओ! अनागत चक्षु अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है। जो अनात्म है वह...पूर्ववत्...।

तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं, भिक्खवे...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥

२०६. अज्झत्तपच्चुप्पन्नयदनिच्चसुत्तं

२१०. ''चक्खु, भिक्खवे, अनिच्चं पच्चुप्पन्नं। यदनिच्चं तं दुक्खं। यं दुक्खं तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं...पे०...जिव्हा अनिच्चा पच्चुप्पन्ना। यदनिच्चं तं दुक्खं। यं दुक्खं तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं...पे०...मनो अनिच्चो पच्चुप्पन्नो। यदनिच्चं तं दुक्खं। यं दुक्खं तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥ ●

२०७-२०९. अज्झत्तातीतादियंदुक्खसुत्तं

२११-२१३. ''चक्खु, भिक्खवे, दुक्खं अतीतं अनागतं [N.140, R.154] पच्चुप्पन्नं। यं दुक्खं तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं...पे०...जिव्हा दुक्खा...पे०...मनो दुक्खो अतीतो अनागतो पच्चुप्पन्नो। यं दुक्खं तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥ ●

२१०-२१२. अज्झत्तातीतादियदनत्तसुत्तं

२१४-२१६. ''चक्खु, भिक्खवे, अनत्ता अतीतं अनागतं पच्चुप्पन्नं। यदनत्ता तं

अनागत मन अनित्य है...पूर्ववत्... ॥ ●

२०६. अध्यात्मप्रत्युत्पन्नयदनित्यसूत्र : : जो वर्तमान अनित्य है उस का त्याग

२१०. ...''भिक्षुओ! जो वर्तमान चक्षु है वह अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है। जो अनात्म है वह...पूर्ववत्...।

वर्तमान मन अनित्य है...पूर्ववत्... ॥ ●

२०७-२०९. अध्यात्मातीतादियद्दुःखसूत्र : : अध्यात्मातीतादि दुःख का त्याग

२११-२१३. ...''भिक्षुओ! अतीत अनागत वर्तमान चक्षु दुःख है, जो दुःख है वह अनात्म है...पूर्ववत्...।

...जिह्वा...मन दुःख है, जो दुःख है वह अनात्म है...पूर्ववत्... ॥ ●

[B.365] 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं...पे०... जिव्हा अनत्ता...पे०...मनो अनत्ता अतीतो अनागतो पच्चुप्पन्नो। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताय ति पजानाती'' ति॥ •

२१३-२१५. बाहिरातीतादियदनिच्चसुत्तं

२१७-२१९. ''रूपा, भिक्खवे, अनिच्चा अतीता अनागता पच्चुप्पन्ना। यदनिच्चं तं दुक्खं। यं दुक्खं तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। सद्दा...गन्धा...रसा...फोट्ठब्बा...धम्मा अनिच्चा अतीता अनागता पच्चुप्पन्ना। यदनिच्चं तं दुक्खं। यं दुक्खं तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताय ति पजानाती'' ति॥ •

२१६-२१८. बाहिरातीतादियंदुक्खसुत्तं

[R.155] २२०-२२२. ''रूपा, भिक्खवे, दुक्खा अतीता अनागता पच्चुप्पन्ना। यं दुक्खं तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। सद्दा...गन्धा...रसा ..फोट्ठब्बा...धम्मा दुक्खा अतीता अनागता [N.141] पच्चुप्पन्ना। यं दुक्खं तदनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताय ति पजानाती'' ति॥ •

२१०-२१२. अध्यात्मातीतादियदनात्मसूत्र : : अध्यात्मातीतादि अनात्म का त्याग

२१४-२१६. ...''भिक्षुओ! अतीत अनागत वर्तमान चक्षु अनात्म है। जो अनात्म है वह न मेरा है, न मैं वह हूँ, न वह मेरी आत्मा है—ऐसा प्रज्ञा द्वारा भली भाँति जान लेना चाहिये। ...पूर्ववत्...जिह्वा...मन अनात्मा है। ...पूर्ववत्... ॥ •

२१३-२१५. बाह्यातीतादियदनित्यसूत्र : : बाह्यातीतादि अनित्य का त्याग

२१७-२१९. ...''भिक्षुओ! अतीत अनागत वर्तमान रूप अनित्य हैं। जो अनात्म है वह दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है। जो अनात्म है वह न मेरा है...पूर्ववत्...। शब्द ...गन्ध ...रस...स्प्रष्टव्य...धर्म...पूर्ववत्... ॥ •

·२१६-२१८. बाह्यातीतादियद्दुःखसूत्र : : बाह्यातीतादि दुःख उस त्याग

२२०-२२२. ...''भिक्षुओ! अतीत अनागत प्रत्युत्पन्न रूप दुःख होते हैं। जो दुःख

२१९-२२१. बाहिरातीतादियदनत्तसुत्तं

२२३-२२५. ''रूपा, भिक्खवे, अनत्ता अतीता अनागता पच्चुप्पन्ना। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। सद्दा...गन्धा...रसा...फोट्ठब्बा...धम्मा अनत्ता अतीता अनागता पच्चुप्पन्ना। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥ ●

२२२. अज्झत्तायतनअनिच्चसुत्तं

२२६. ''चक्खु, भिक्खवे, अनिच्चं...पे०...जिव्हा अनिच्चा...पे०...मनो [B.366] अनिच्चो। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥ ●

२२३. अज्झत्तायतनदुक्खसुत्तं

२२७. ''चक्खु, भिक्खवे, दुक्खं...पे०...जिव्हा दुक्खा...पे०...मनो दुक्खो। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥ ●

२२४. अज्झत्तायनअनत्तसुत्तं

२२८. ''चक्खु, भिक्खवे, अनत्ता...पे०...जिव्हा अनत्ता...पे०...मनो [R.156] अनत्ता। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥ ●

होगा वह अनात्मा होगा। जो अनात्मा होगा वह...पूर्ववत्...। शब्द...गन्ध...रस... स्प्रष्टव्य...मनोधर्म ...पूर्ववत्... ॥ ●

२१९-२२१. बाह्यातीतादियदनात्मसूत्र : : बाह्यातीतादि अनात्म का त्याग

२२३-२२५. ...''भिक्षुओ! अतीत अनागत प्रत्युत्पन्न रूप अनात्म होते हैं। जो अनात्म होता है उस के विषय में 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरी आत्मा नहीं है'—ऐसा प्रज्ञापूर्वक भलीभाँति समझ लेना चाहिये। शब्द...गन्ध...रस...स्प्रष्टव्य... मनोधर्म...पूर्ववत्... ॥ ●

२२२. अध्यात्मायतनानित्यसूत्र : : अनित्य का त्याग

२२६. ...''भिक्षुओ! चक्षु अनित्य है, ...पूर्ववत्...जिह्वा अनित्य है...पूर्ववत्...मन अनित्य है—ऐसा जानता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक...पूर्ववत्... ॥ ●

२२३. अध्यात्मायतनदुःखसूत्र : : दुःख का त्याग

२२७. ...''भिक्षुओ! चक्षु दुःख है। ...पूर्ववत्...। जिह्वा दुःख है...पूर्ववत्...मन अनित्य है—ऐसा जानता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक...पूर्ववत्... ॥ ●

२२४. अध्यात्मायतनानात्मसूत्र : : अनात्म का त्याग

२२८. ...''भिक्षुओ! चक्षु अनात्म है, ...पूर्ववत्...जिह्वा अनात्म है...मन अनात्म है—ऐसा जानता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक...पूर्ववत्:. ॥ ●

२२५. बाहिरायतनअनिच्चसुत्तं

२२९. "रूपा, भिक्खवे, अनिच्चा। सद्दा...गन्धा...रसा...फोट्ठब्बा...धम्मा अनिच्चा। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ •

२२६. बाहिरायतनदुक्खसुत्तं

[N.142]२३०. "रूपा, भिक्खवे, दुक्खा। सद्दा...गन्धा...रसा...फोट्ठब्बा...धम्मा दुक्खा। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ •

२२७. बाहिरायतनअनत्तसुत्तं

२३१. "रूपा, भिक्खवे, अनत्ता। सद्दा...गन्धा...रसा...फोट्ठब्बा...धम्मा अनत्ता। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ •

सट्ठिपेय्यालो समत्तो॥

तस्सुद्दानं

छन्देनट्ठारस होन्ति, अतीतेन च द्वे नव।
यदनिच्चाट्ठारस वुत्ता, तयो अज्झत्तबाहिरा।
पेय्यालो सट्ठिको वुत्तो, बुद्धेनादिच्चबन्धुना ति॥ •

सुत्तन्तानि सट्ठि॥

---

२२५. बाह्यायतनअनित्यसूत्र : : अनित्य का त्याग

२२९. ..."भिक्षुओ! रूप अनित्य हैं। शब्द...गन्ध...रस...स्प्रष्टव्य...मनोधर्म अनित्य हैं—ऐसा जानता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक...पूर्ववत्...॥ •

२२६. बाह्यायतनदुःखसूत्र : : दुःख का त्याग

२३०. ..."भिक्षुओ! रूप दुःख हैं। शब्द...गन्ध...रस...स्प्रष्टव्य...मनोधर्म दुःख हैं—ऐसा जान कर विद्वान् आर्यश्रावक...पूर्ववत्...॥ •

२२७. बाह्यायतनानात्मसूत्र : : अनात्म का त्याग

२३१. ..."भिक्षुओ! रूप अनात्म पदार्थ हैं। शब्द...गन्ध...रस...स्प्रष्टव्य...मनोधर्म अनात्म हैं—ऐसा जान कर विद्वान् आर्यश्रावक...पूर्ववत्...॥ •

षष्टिपेय्याल सम्पन्न॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों का विवरण—इस षष्टिपेय्यालवर्ग में भगवान् तथागत सम्यक्सम्बुद्ध ने इन साठ (६०) सूत्रों का व्याख्यान किया है। ये समग्र मिल कर ही 'षष्टिपेय्याल' कहलाते हैं। इन में अट्ठारह (१८) 'छन्द' से सम्बद्ध हैं, अट्ठारह 'अतीत' से, अट्ठारह 'यदनित्य' से, तथा तीन तीन 'अध्यात्म' एवं 'बाह्य' से॥ •

३. समुद्दवग्गो ततियो

२२८. पठमसमुद्दसुत्तं

२३२. "'समुद्दो, समुद्दो' ति, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो [B.367, R.157] भासति। नेसो, भिक्खवे, अरियस्स विनये समुद्दो। महा एसो, भिक्खवे, उदकरासि महाउदकण्णवो। चक्खु, भिक्खवे, पुरिसस्स समुद्दो; तस्स रूपमयो वेगो। यो तं रूपमयं वेगं सहति अयं वुच्चति, भिक्खवे, अतरि चक्खुसमुद्दं सऊमिं सावट्टं सगाहं सरक्खसं; तिण्णो पारङ्गतो थले तिट्ठति ब्राह्मणो। ...पे०...। जिव्हा, भिक्खवे, पुरिसस्स समुद्दो; तस्स रसमयो वेगो। यो तं रसमयं वेगं सहति अयं वुच्चति, भिक्खवे, अतरि जिव्हासमुद्दं सऊमिं सावट्टं सगाहं सरक्खसं; तिण्णो पारङ्गतो थले तिट्ठति ब्राह्मणो। ...पे०...। मनो, भिक्खवे, पुरिसस्स समुद्दो; तस्स धम्ममयो वेगो। यो तं धम्ममयं वेगं सहति अयं वुच्चति, भिक्खवे, अतरि मनोसमुद्दं सऊमिं सावट्टं सगाहं सरक्खसं; तिण्णो पारङ्गतो थले तिट्ठति ब्राह्मणो" ति।

२३३. इदमवोच...पे०...सत्था— [N.143]

"यो इमं समुद्दं सगाहं सरक्खसं, सऊमिं सावट्टं सभयं दुत्तरं अच्चतरि।
स वेदगू वुसितब्रह्मचरियो, लोकन्तगू पारगतो ति वुच्चती"॥ ति॥ ●

---

३. समुद्रवर्ग तृतीय

२२८. प्रथम समुद्रसूत्र : : चक्षु का समुद्रप्रतीक से निरूपण

२३२. ..."भिक्षुओ! अज्ञ पृथग्जन 'समुद्र', 'समुद्र'—ऐसा कहते रहते हैं; परन्तु, भिक्षुओ! आर्यविनय (हमारे धर्मानुशासन) में इस को समुद्र नहीं कहते। यह तो महान् जलराशिमात्र है। इस को लोकभाषा में महान् उदकार्णव भी कहते हैं। वस्तुतः, भिक्षुओ! पुरुष के लिये चक्षु 'समुद्र' है, रूप जिसका वेग है। भिक्षुओ! जो इस रूपमय वेग को सह लेता है, उस के लिये कहा जाता है कि इस ने उत्ताल तरङ्ग, भ्रमर एवं ग्राह (मकर आदि सङ्कटापन्न स्थान) रूप राक्षसों से युक्त चक्षुःसमुद्र को पार कर लिया है। वह तो ब्राह्मण (निष्पाप) हो कर स्थल (किनारे) पर खड़ा है। ...श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...काय...मन पुरुष के लिये समुद्र हैं। इस के मनोधर्म वेग हैं। ...पूर्ववत्...स्थल पर खड़ा है।"

२३३. भगवान् ने यह कहा। फिर वे इस गाथा के माध्यम से यह भी बोले—

"जो (साधक) इस ग्राह एवं सङ्कटापन्न स्थानरूपी राक्षससहित, उत्ताल तरङ्गों वाले, एवं स्थान स्थान पर भयङ्कर भ्रमरचक्रवाले दुस्तर समुद्र को पार कर गया है; वही वस्तुतः वेद का ज्ञाता, सफल धर्मसाधक, लोक के अन्त (पार) तक पहुँचने वाला कहलाता है"॥

●

२२९. दुतियसमुद्दसुत्तं

२३४. "'समुद्दो, समुद्दो' ति, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो भासति। नेसो, भिक्खवे, अरियस्स विनये समुद्दो। महा एसो, भिक्खवे, उदकरासि महाउदकण्णवो। [R.158] सन्ति, भिक्खवे, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियस्स विनये समुद्दो। एत्थायं सदेवको लोको समारको सब्रह्मको सस्समणब्राह्मणी पजा सदेवमनुस्सा येभुय्येन समुन्ना तन्ताकुलकजाता कुलगण्ठिकजाता मुञ्जपब्बजभूता, अपायं दुग्गतिं विनिपातं संसारं नातिवत्तति...पे०...।

[B.368] "सन्ति, भिक्खवे, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा...पे०...सन्ति, भिक्खवे, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियस्स विनये समुद्दो। एत्थायं सदेवको लोको समारको सब्रह्मको सस्समणब्राह्मणी पजा सदेवमनुस्सा येभुय्येन समुन्ना तन्ताकुलकजाता कुलगण्ठिकजाता मुञ्जपब्बजभूता, अपायं दुग्गतिं विनिपातं संसारं नातिवत्तती ति।

"यस्स रागो च दोसो च, अविज्जा च विराजिता।
सो इमं समुद्दं सगाहं सरक्खसं, सऊमिभयं तदुत्तरं अच्चतरि॥
सङ्गातिगो मच्चुजहो निरूपधि, पहासि दुक्खं अपुनब्भवाय।
अत्थङ्गतो सो न पुनेति, अमोहयी मच्चुराजं ति ब्रूमी" ति॥ •

---

२२९. द्वितीय समुद्रसूत्र : : दूसरे प्रकार से चक्षु का समुद्रप्रतीक से वर्णन

२३४. ..."भिक्षुओ!...पूर्ववत्...यह तो एक महान् जलराशिमात्र है। भिक्षुओ! यहाँ इस आर्यविनय में ये इष्ट, प्रिय, सुन्दर एवं मनोमोहक चक्षुर्विज्ञेय रूप ही 'महासमुद्र' कहलाते हैं। इसी में ये मार, ब्रह्मा, देवताओं सहित लोक के प्राणी, श्रमण एवं ब्राह्मणजन आकण्ठ निमग्न हैं। डूबते-उतराते हैं। ये बार बार नरक में दुर्गतिमय नरक योनि में गिरते रहते हैं। इनका भवजाल से मोक्ष नहीं होता। ...पूर्ववत्...।

"जिह्वाविज्ञेय रस...मनोविज्ञेय धर्म...पूर्ववत्...।

"जिस साधक के राग, द्वेष एवं अविद्या—क्षीण हो चुके हैं, वह इस दुरवगाह एवं दुस्तर तथा उत्ताल तरङ्गों वाले समुद्र को पार कर गया है।

"जो सांसारिक आसक्ति एवं जीवन-मरण से दूर हो चुका है, मानसिक विकारों (उपधियों) को त्याग चुका है, अपुनर्भव के लिये तथाकथित दुःख को छोड़ चुका है,

२३०. बाळिसिकोपमसुत्तं

२३५. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, बाळिसिको आमिसगतबळिसं गम्भीरे [N.144] उदकरहदे पक्खिपेय्य। तमेनं अञ्ञतरो आमिसचक्खु मच्छो गिलेय्य। एवं हि [R.159] सो, भिक्खवे, मच्छो गिलितबळिसो बाळिसिकस्स अनयं आपन्नो ब्यसनं आपन्नो यथाकामकरणीयो बाळिसिकस्स। एवमेव खो, भिक्खवे, छयिमे बळिसा लोकस्मिं अनयाय सत्तानं वधाय पाणिनं। कतमे छ? सन्ति, भिक्खवे, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे, भिक्खु, अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति, अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु गिलितबळिसो. मारस्स अनयं आपन्नो ब्यसनं आपन्नो यथाकामकरणीयो पापिमतो।...पे०...सन्ति, भिक्खवे, जिव्हा-विञ्ञेय्या रसा...पे०...सन्ति, भिक्खवे, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे, भिक्खु, अभिनन्दति-अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति, अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु गिलितबळिसो, मारस्स अनयं आपन्नो ब्यसनं आपन्नो यथाकामकरणीयो पापिमतो।

''सन्ति च, भिक्खवे, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पिय-[B.369] रूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति,

---

जिस के पाप अस्त हो चुके हैं, उस ने मृत्युराज (मार) को परास्त कर दिया है—ऐसा मैं मानता हूँ''॥

●

२३०. बाडिशिकोपमसूत्र : : छह प्रकार के बडिश (मछली पकड़ने का काँटा)

२३५. ''भिक्षुओ! जैसे कोई बाडिशिक (काँटे से मछली पकड़ने वाला) माँस लगे काँटे को गम्भीर जलवाले ह्रद में फैंके। तब कोई मछली वहाँ आ कर माँस के लोभ में उस काँटे को निगलने का प्रयास करे। जैसे, भिक्षुओ! वह काँटा निगलने वाली मछली उस बाडिशिक के बन्धन में आ जाय, तथा उस के किसी भी उपयोग के लिये सुलभ हो जाय; उसी तरह, भिक्षुओ! ये छह काँटे संसार में कष्टप्रद एवं प्राणियों को सांसारिक विपत्तियों में डालने वाले हैं। कौन से छह? भिक्षुओ! लोक में अनेक चक्षुर्विज्ञेय रूप इष्ट, प्रिय, सुन्दर एवं मनोमोहक होते हैं, कोई अज्ञ पुरुष उन का अभिनन्दन करता है, उन की चर्चा में रस लेता है, उन में अभिनिवेश करता है, भिक्षुओ! ऐसे मनुष्य को कहते हैं—मार के जाल में फँसा हुआ, मार के द्वारा प्रदत्त लोभ में बँधा हुआ, मार द्वारा विपत्ति में डाला हुआ, पापी मार के लिये सुगमता से उपयोग में आने वाला।...पूर्ववत्...।

अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु न गिलितबळिसो, मारस्स अभेदि बळिसं परिभेदि बळिसं न अनयं आपन्नो.न ब्यसनं आपन्नो न यथाकामकरणीयो पापिमतो...पे०...।

"सन्ति, भिक्खवे, जिव्हाविञ्ञेय्या रसा...पे०...सन्ति, भिक्खवे, मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति, अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु न गिलितबळिसो, मारस्स अभेदि बळिसं, परिभेदि बळिसं, न अनयं आपन्नो न ब्यसनं आपन्नो न यथाकामकरणीयो पापिमतो" ति॥ •

२३१. खीररुक्खोपमसुत्तं

[R.160] २३६. "यस्स कस्सचि, भिक्खवे, भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा चक्खु-[N.145] विञ्ञेय्येसु रूपेसु यो रागो सो अत्थि, यो दोसो सो अत्थि, यो मोहो सो अत्थि, यो रागो सो अप्पहीनो, यो दोसो सो अप्पहीनो, यो मोहो सो अप्पहीनो तस्स परित्ता चे पि चक्खुविञ्ञेय्या रूपा चक्खुस्स आपाथं आगच्छन्ति परियादियन्तेवस्स चित्तं; को पन वादो अधिमत्तानं! तं किस्स हेतु? यो, भिक्खवे, रागो सो अत्थि, यो दोसो सो अत्थि, यो मोहो सो अत्थि, यो रागो सो अप्पहीनो, यो दोसो सो अप्पहीनो, यो मोहो सो अप्पहीनो...पे०...।

"यस्स कस्सचि, भिक्खवे, भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा जिव्हाविञ्ञेय्येसु रसेसु यो रागो सो अत्थि...पे०...।

"भिक्षुओ! लोक में जिह्वाविज्ञेय रस...पूर्ववत्...मनोविज्ञेय धर्म...पापी मार के लिये सुगमता से उपयोग में आने वाला।

(इस के विपरीत—) "भिक्षुओ! लोक में चक्षुर्विज्ञेय रूप इष्ट...हैं, इन का यदि कोई विज्ञ साधक अभिनन्दन नहीं करता, इन की चर्चा में रस नहीं लेता, इन में अभिनिवेश नहीं करता, भिक्षुओ! ऐसा सफल साधक पापी मार के जाल में न फँसा हुआ, मारबन्धन में न बँधा हुआ, मार द्वारा विपत्ति में न डाला हुआ तथा पापी मार के लिये सुगमता से उपयोग में न आने वाला कहा जाता है। ...पूर्ववत्...।

"...जिह्वाविज्ञेय रस...मनोविज्ञेय धर्म...पूर्ववत्...पापी मार के उपयोग में न आने वाला कहा जाता है॥" •

२३१. क्षीरवृक्षोपमसूत्र : : आसक्ति के हेतु

२३६. "भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षु या भिक्षुणी का चक्षुर्विज्ञेय रूपों में जो राग (आसक्ति) लगा हुआ है, या जो द्वेष है, जो मोह है, वे सभी उन के प्रहीण न हो जायँ तो यदि कभी कुछ भी रूप उस के सामने आ जायँ तो वह तत्काल उन में आसक्त हो

"यस्स कस्सचि, भिक्खवे, भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा मनोविञ्ञेय्येसु धम्मेसु यो रागो सो अत्थि, यो दोसो सो अत्थि, यो मोहो सो अत्थि, यो रागो सो अप्पहीनो, यो दोसो सो अप्पहीनो, यो मोहो सो अप्पहीनो, तस्स परित्ता चे पि मनोविञ्ञेय्या धम्मा मनस्स आपाथं आगच्छन्ति परियादियन्तेवस्स चित्तं; को पन वादो अधिमत्तानं! तं किस्स हेतु? यो, भिक्खवे, रागो सो अत्थि, यो दोसो सो [B.370] अत्थि, यो मोहो सो अत्थि, यो रागो सो अप्पहीनो, यो दोसो सो अप्पहीनो, यो मोहो सो अप्पहीनो।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, खीररुक्खो अस्सत्थो वा निग्रोधो वा पिलक्खो वा उदुम्बरो वा दहरो तरुणो कोमारको। तमेनं पुरिसो तिण्हाय कुठारिया यतो यतो आभिन्देय्य आगच्छेय्य खीरं" ति?

"एवं, भन्ते"।

"तं किस्स हेतु"?

"यं हि, भन्ते, खीरं तं अत्थी" ति।

"एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा चक्खुविञ्ञेय्येसु रूपेसु यो रागो सो अत्थि, यो दोसो सो अत्थि, यो मोहो सो अत्थि, यो रागो सो अप्पहीनो, यो दोसो सो अप्पहीनो, यो मोहो सो अप्पहीनो, तस्स परित्ता चे पि चक्खुविञ्ञेय्या रूपा चक्खुस्स आपाथं आगच्छन्ति परियादियन्तेवस्स चित्तं; को पन

जाता है, फिर विशेष रूप उपस्थित होने पर तो कहना ही क्या है! उस में क्या कारण है? क्यों कि उस के वे राग द्वेष मोह अभी प्रहीण नहीं हुए हैं।...पूर्ववत्...जिह्वाविज्ञेय...मनोविज्ञेय धर्मों में जो राग, जो द्वेष, जो मोह...पूर्ववत्...।

"जैसे, भिक्षुओ! कोई तरुण (छोटा, नया) अश्वत्थ (पीपल), न्यग्रोध (वट), प्लक्ष (पाकड़), उदुम्बर (गूलर) आदि दुग्ध वृक्ष हो, जिस को उत्पन्न हुए कुछ ही समय हुआ हो। उस को कोई लकड़हारा आ कर तीक्ष्ण कुठार द्वारा जहाँ तहाँ काटने लगे तो, भिक्षुओ! क्या उस के कटे हुए स्थानों से दूध निकलेगा?"

"हाँ, भन्ते!"

"वह क्यों?"

"क्यों कि उस में दूध भरा हुआ है। भिक्षुओ! उसी तरह किसी भिक्षु भिक्षुणी का चित्त चक्षुर्विज्ञेय रूपों के राग में, द्वेष में, मोह में आबद्ध है; उस के ये दोष क्षीण नहीं हुए हैं; उस के सामने छोटे से छोटा भी चक्षुर्विज्ञेय रूप आदि के राग आदि का विषय आ जाय तो वहाँ भी आबद्ध हो ही जायगा, विशेष रूप से किसी राग आदि के उपस्थित होने पर

वादो अधिमत्तानं! तं किस्स हेतु? यो, भिक्खवे, रागो सो अत्थि, यो दोसो सो अत्थि, यो मोहो सो अत्थि, [R.161] यो रागो सो अप्पहीनो, यो दोसो सो अप्पहीनो, यो मोहो सो अप्पहीनो...पे०...।

''यस्स कस्सचि, भिक्खवे, भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा जिव्हाविञ्ञेय्येसु [N.146] रसेसु यो रागो सो अत्थि...पे०...।

''यस्स कस्सचि, भिक्खवे, भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा मनोविञ्ञेय्येसु धम्मेसु यो रागो सो अत्थि, यो दोसो सो अत्थि, यो मोहो सो अत्थि, यो रागो सो अप्पहीनो, यो दोसो सो अप्पहीनो, यो मोहो सो अप्पहीनो, तस्स परित्ता चे पि मनोविञ्ञेय्या धम्मा मनस्स आपाथं आगच्छन्ति परियादियन्तेवस्स चित्तं; को पन वादो अधिमत्तानं! तं किस्स हेतु? यो, भिक्खवे, रागो सो अत्थि, यो दोसो सो अत्थि, यो मोहो सो अत्थि, यो रागो सो अप्पहीनो, यो दोसो सो अप्पहीनो, यो मोहो सो अप्पहीनो।

''यस्स कस्सचि, भिक्खवे, भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा चक्खुविञ्ञेय्येसु रूपेसु यो रागो सो नत्थि, यो दोसो सो नत्थि, यो मोहो सो नत्थि, यो रागो सो पहीनो, [B.371] यो दोसो सो पहीनो, यो मोहो सो पहीनो, तस्स अधिमत्ता चे पि चक्खुविञ्ञेय्या रूपा चक्खुस्स आपाथं आगच्छन्ति नेवस्स चित्तं परियादियन्ति; को पन वादो परित्तानं! तं किस्स हेतु? यो, भिक्खवे, रागो सो नत्थि, यो दोसो सो नत्थि, यो मोहो सो नत्थि, यो रागो सो पहीनो, यो दोसो सो पहीनो, यो मोहो सो पहीनो...पे०...।

''यस्स कस्सचि, भिक्खवे, भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा जिव्हाविञ्ञेय्येसु रसेसु...पे०...मनोविञ्ञेय्येसु धम्मेसु यो रागो सो नत्थि, यो दोसो सो नत्थि, यो मोहो सो नत्थि, यो रागो सो पहीनो, यो दोसो सो पहीनो, यो मोहो सो पहीनो, तस्स अधिमत्ता चे पि मनोविञ्ञेय्या धम्मा मनस्स आपाथं आगच्छन्ति नेवस्स चित्तं परियादियन्ति; को पन वादो परित्तानं! तं किस्स हेतु? यो, भिक्खवे, रागो सो नत्थि, यो दोसो सो नत्थि, यो मोहो सो नत्थि, यो रागो सो पहीनो, यो दोसो सो पहीनो, यो मोहो सो पहीनो।

तो कहना ही क्या है! वह क्यों? वह इसलिये कि उन के चित्त से राग द्वेष मोह क्षीण नहीं हुए हैं। ...पूर्ववत्...। ...जिह्वाविज्ञेय रस में...मनोविज्ञेय धर्मों में ...पूर्ववत्...।

(परन्तु इस के विपरीत—) ''भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षु या भिक्षुणी का चित्त राग द्वेष मोह से आबद्ध नहीं है तो उन के सम्मुख चक्षुर्विज्ञेय रूपों में कितना भी बड़ा रागादि का विषय क्यों न आ जाय, उस में भी वे आबद्ध नहीं होते; साधारण रागादि का

"सेय्यथापि, भिक्खवे, खीररुक्खो अस्सत्थो वा निग्रोधो वा पिलक्खो वा उदुम्बरो वा सुक्खो कोळापो तेरोवस्सिको। तमेनं पुरिसो तिण्हाय कुठारिया यतो यतो आभिन्देय्य आगच्छेय्य खीरं" ति? [R.162]

"नो हेतं, भन्ते"।

"तं किस्स हेतु"? [N.147]

"यं हि, भन्ते, खीरं तं नत्थी" ति।

"एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा चक्खुविञ्ञेय्येसु रूपेसु यो रागो सो नत्थि, यो दोसो सो नत्थि, यो मोहो सो नत्थि, यो रागो सो पहीनो, यो दोसो सो पहीनो, यो मोहो सो पहीनो, तस्स अधिमत्ता चे पि चक्खुविञ्ञेय्या रूपा चक्खुस्स आपाथं आगच्छन्ति नेवस्स चित्तं परियादियन्ति; को पन वादो परित्तानं! तं किस्स हेतु? यो, भिक्खवे, रागो सो नत्थि, यो दोसो सो नत्थि, यो मोहो सो नत्थि, यो रागो सो पहीनो, यो दोसो सो पहीनो, यो मोहो सो पहीनो...पे०...।

"यस्स कस्सचि, भिक्खवे, भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा जिव्हाविञ्ञेय्येसु रसेसु...पे०...।

"यस्स कस्सचि, भिक्खवे, भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा मनो-[B.372] विञ्ञेय्येसु धम्मेसु यो रागो सो नत्थि, यो दोसो सो नत्थि, यो मोहो सो नत्थि, यो रागो सो पहीनो, यो दोसो सो पहीनो, यो मोहो सो पहीनो, तस्स अधिमत्ता चे पि

तो कहना ही क्या है। वह क्यों? वह इसलिये कि उस के राग द्वेष मोह उच्छिन्न हो चुके हैं। ...जिह्वाविज्ञेय रसों में ...मनोविज्ञेय धर्मों में...पूर्ववत्...उच्छिन्न हो चुका है।

"भिक्षुओ! जैसे कोई पुराना बहुत वर्षों का कोई अश्वत्थ, न्यग्रोध, प्लक्ष, या उदुम्बर आदि दुग्धवृक्ष (क्षीरी वृक्ष) हो, जो सूख कर स्थाणु के रूप में खड़ा हो, उसे कोई लकड़हारा तीक्ष्ण कुठार द्वारा कहीं से भी काटे तो क्या उस के उस स्थान से दूध निकलेगा?"

"नहीं, भन्ते!"

"वह क्यों?"

"वह इसलिये कि उस वृक्ष में क्षीर है ही नहीं।"

"इसी तरह, भिक्षुओ! जिस किसी भी भिक्षु या भिक्षुणी का चक्षुर्विज्ञेय रूपों में राग द्वेष या मोह नहीं है, उन के सम्मुख बड़े से बड़ा चक्षुर्विज्ञेय रूप आ जाय, तो भी वह उन के चित्त को आबद्ध नहीं कर सकता, छोटे रूपों के विषय में कहना ही क्या है! क्यों कि उन के राग, द्वेष, मोह क्षीण हो चुके हैं। ...पूर्ववत्...।

मनोविञ्ञेय्या धम्मा मनस्स आपाथं आगच्छन्ति नेवस्स चित्तं परियादियन्ति; को पन वादो परित्तानं! तं किस्स हेतु? यो, भिक्खवे, रागो सो नत्थि, यो दोसो सो नत्थि, यो मोहो सो नत्थि, यो रागो सो पहीनो, यो दोसो सो पहीनो, यो मोहो सो पहीनो'' ति॥●

२३२. कोट्ठिकसुत्तं

२३७. एकं समयं आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च महाकोट्ठिको बाराणसियं विहरन्ति इसिपतने मिगदाये। अथ खो आयस्मा महाकोट्ठिको सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सारिपुत्तेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा महाकोट्ठिको आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—

''किं नु खो, आवुसो सारिपुत्त, चक्खु रूपानं संयोजनं, रूपा चक्खुस्स संयोजनं ...पे०...जिव्हा रसानं संयोजनं, रसा जिव्हाय संयोजनं...पे०...मनो धम्मानं संयोजनं, [R.163] धम्मा मनस्स संयोजनं'' ति?

[N.148]''न खो, आवुसो कोट्ठिक, चक्खु रूपानं संयोजनं, न रूपा चक्खुस्स संयोजनं। यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं...पे०...न जिव्हा रसानं संयोजनं, न रसा जिव्हाय संयोजनं। यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं...पे०...न मनो धम्मानं संयोजनं, न धम्मा मनस्स संयोजनं। यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं।

''...जिह्वाविज्ञेय रसों में...मनोविज्ञेय धर्मों में...पूर्ववत्...। उस के राग, द्वेष, मोह प्रहीण हो चुके हैं''॥ ●

२३२. कौष्ठिकसूत्र : : कामना एवं आसक्ति ही बन्धन है

२३७. एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र एवं आयुष्मान् महाकौष्ठिक **वाराणसी** के ऋषिपतन मृगदाव में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब कभी आयुष्मान् महाकौष्ठिक सायङ्काल ध्यानभावना से उठ कर आयुष्मान् सारिपुत्र के पास गये। तथा उन्होंने उन से यह प्रश्न किया—

''आयुष्मन् सारिपुत्र! क्या चक्षु रूपों का संयोजन (बन्धन) है या रूप चक्षु के संयोजन हैं; इसी तरह, क्या जिह्वा रसों का संयोजन हैं या रस जिह्वा के संयोजन है...पूर्ववत्...धर्म मन के संयोजन हैं?''

''आयुष्मन् कौष्ठिक! न चक्षु रूपों का संयोजन है, न रूप ही चक्षु के संयोजन हैं; अपि तु उन दोनों के प्रत्यय से वहाँ जो छन्दराग उत्पन्न होता है वही 'संयोजन' है। ...पूर्ववत्...। न जिह्वा...न काय...न मन...छन्दराग ही संयोजन है।

"सेय्यथापि, आवुसो, काळो च बलीवद्दो ओदातो च बलीबद्दो एकेन दामेन वा योत्तेन वा संयुत्ता अस्सु। यो नु खो एवं वदेय्य—'काळो बलीवद्दो ओदातस्स बली-वद्दस्स संयोजनं, ओदातो बलीवद्दो काळस्स बलीवद्दस्स संयोजनं' ति, सम्मा [B.373] नु खो सो वदमानो वदेय्या" ति?

"नो हेतं, आवुसो"।

"तं किस्स हेतु?"

"न खो, आवुसो, काळो बलीवद्दो ओदातस्स बलीवदस्स संयोजनं, न ओदातो बलीवद्दो काळस्स बलीवद्दस्स संयोजनं। येन च खो ते एकेन दामेन वा योत्तेन वा संयुत्ता तं तत्थं संयोजनं।

"एवमेव खो, आवुसो, न चक्खु रूपानं संयोजनं, न रूपा चक्खुस्स संयोजनं। यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं...पे०...न जिव्हा रसानं संयोजनं...पे०...न मनो धम्मानं संयोजनं, न धम्मा मनस्स संयोजनं। यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं।

"चक्खु वा, आवुसो, रूपानं संयोजनं अभविस्स, रूपा वा चक्खुस्स संयोजनं, नयिदं ब्रह्मचरियवासो पञ्ञायेथ सम्मा दुक्खक्खयाय। यस्मा च खो, आवुसो, न चक्खु

बलीवर्दों की उपमा—"आयुष्मन्! जैसे किसी गाड़ी में एक काला तथा एक सफेद—दो बैल रस्सी एवं जूए से बँधे हुए हों। उन के विषय में कोई यह पूछे—'यहाँ यह काला बैल सफेद बैल का संयोजन है या सफेद बैल काले बैल का संयोजन है?'; तो क्या उस का ऐसा प्रश्न उचित है?"

"नहीं, आयुष्मन्!"

"वह क्यों?"

"क्यों कि वहाँ न तो काला बैल सफेद बैल का संयोजन है, तथा न सफेद बैल ही काले बैल का संयोजन है; अपि तु वे वहाँ जो एक रस्सी तथा एक जूए से आबद्ध हैं वह आबन्धन ही उन का संयोजन है।"

"इसी तरह, आयुष्मन्! न चक्षु रूपों का संयोजन है, न रूप ही चक्षु के संयोजन हैं। अपि तु वहाँ उन दोनों के प्रत्यय से होनेवाला छन्दराग ही उन दोनों का संयोजन है। ...न जिह्वा...पूर्ववत्...। ...न मनोधर्म मन के...अपि तु दोनों के प्रत्यय से वहाँ उपस्थित छन्दराग ही संयोजन है।

"आयुष्मन्! यदि चक्षु रूपों का संयोजन होता या रूप चक्षु के संयोजन होते तो यह धर्मसाधना सफल नहीं समझी जाती। क्यों कि, आयुष्मन्! न चक्षु रूपों का संयोजन

रूपानं संयोजनं, न रूपा चक्खुस्स संयोजनं; यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्द-[R.164] रागो तं तत्थ संयोजनं, तस्मा ब्रह्मचरियवासो पञ्ञायति सम्मा दुक्खक्खयाय ...पे०... ।

"जिव्हा, आवुसो, रसानं संयोजनं अभविस्स, रसा वा जिव्हाय संयोजनं, नयिदं ब्रह्मचरियवासो पञ्ञायेथ सम्मा दुक्खक्खयाय। यस्मा च खो, आवुसो, न जिव्हा रसानं संयोजनं, न रसा जिव्हाय संयोजनं; यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं, तस्मा ब्रह्मचरियवासो पञ्ञायति सम्मा दुक्खक्खयाय...पे०... ।

[N.149] "मनो वा, आवुसो, धम्मानं संयोजनं अभविस्स, धम्मा वा मनस्स संयोजनं, नयिदं ब्रह्मचरियवासो पञ्ञायेथ सम्मा दुक्खक्खयाय। यस्मा च खो, आवुसो, न मनो धम्मानं संयोजनं, न धम्मा मनस्स संयोजनं; यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं, तस्मा ब्रह्मचरियवासो पञ्ञायति सम्मा दुक्खक्खयाय।

"इमिनापेतं, आवुसो, परियायेन वेदितब्बं यथा न चक्खु रूपानं संयोजनं, न [B.374] रूपा चक्खुस्स संयोजनं। यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं...पे०...न जिव्हाय रसानं संयोजनं...पे०...न मनो धम्मानं संयोजनं, न धम्मा मनस्स संयोजनं। यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं।

"संविज्जति खो, आवुसो, भगवतो चक्खु। पस्सति भगवा चक्खुना रूपं। छन्दरागो भगवतो नत्थि। सुविमुत्तचित्तो भगवा। संविज्जति खो, आवुसो, भगवतो सोतं। सुणाति भगवा सोतेन सद्दं। छन्दरागो भगवतो नत्थि। सुविमुत्तचित्तो भगवा। संविज्जति खो, आवुसो, भगवतो घानं। घायति भगवा घानेन गन्धं। छन्दरागो भगवतो नत्थि। सुविमुत्तचित्तो भगवा। संविज्जति खो, आवुसो, भगवतो जिव्हा। सायति भगवा

है और न रूप ही चक्षु के संयोजन हैं, अपि तु उन दोनों के प्रत्यय से वहाँ जो छन्दराग उत्पन्न होते हैं वही वहाँ संयोजन है; अतः उन दुःखों के क्षय के लिये धर्मसाधना का उपदेश किया जाता है। ...पूर्ववत्...।

...जिह्वा यदि रसों की बन्धन होती...उपदेश किया जाता है।

"आयुष्मन्! इस उदाहरण से भी यही जानना चाहिये न चक्षु, न श्रोत्र, न घ्राण, न जिह्वा, न काय, न मन, रूप आदि बन्धन हैं; न रूप आदि ही चक्षुरादि के बन्धन हैं; अपि तु वहाँ उपस्थित छन्दराग ही बन्धन है।

"आयुष्मन्! भगवान् को भी चक्षु विद्यमान हैं, भगवान् भी चक्षु से रूपों को देखते हैं; किन्तु भगवान् को कोई छन्दराग नहीं होता; क्यों कि भगवान् का चित्त विकारों

जिव्हाय रसं। छन्दरागो भगवतो नत्थि। सुविमुत्तचित्तो भगवा। संविज्जति खो, आवुसो, भगवतो कायो। फुसति भगवा कायेन फोट्ठब्बं। छन्दरागो भगवतो नत्थि। सुविमुत्त-चित्तो भगवा। संविज्जति खो, आवुसो, भगवतो मनो। विजानाति भगवा मनसा [R.165] धम्मं। छन्दरागो भगवतो नत्थि। सुविमुत्तचित्तो भगवा।

''इमिना खो एतं, आवुसो, परियायेन वेदितब्बं यथा न चक्खु रूपानं संयोजनं, न रूपा चक्खुस्स संयोजनं; यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं। न सोतं...न घानं...न जिव्हा रसानं संयोजनं, न रसा जिव्हाय संयोजनं; यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं। न कायो...न मनो धम्मानं संयोजनं, न धम्मा मनस्स संयोजनं; यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं'' ति॥

२३३. कामभूसुत्तं

२३८. एकं समयं आयस्मा च आनन्दो आयस्मा च कामभू कोसम्बियं [N.150] विहरन्ति घोसितारामे। अथ खो आयस्मा कामभू सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता आनन्देन सद्धिं [B.375] सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा कामभू आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—

''किं नु खो, आवुसो आनन्द, चक्खु रूपानं संयोजनं, रूपा चक्खुस्स संयोजनं ...पे०...जिव्हा रसानं संयोजनं, रसा जिव्हाय संयोजनं...पे०...मनो धम्मानं संयोजनं, धम्मा मनस्स संयोजनं'' ति?

''न खो, आवुसो कामभू, चक्खु रूपानं संयोजनं, न रूपा चक्खुस्स संयोजनं। यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं...पे०...न जिव्हा रसानं

से सर्वथा मुक्त है। ...श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...काय...मन...भगवान् का चित्त विकारों से सर्वथा मुक्त है।

''आयुष्मन् इस (भगवान् वाले) उदाहरण से तुम्हें यह बात भलीभाँति समझ लेनी चाहिये कि चक्षु रूपों का संयोजन नहीं है...पूर्ववत्...छन्दराग ही वहाँ बन्धन है''॥

२३३. कामभूसूत्र : : छन्दराग ही बन्धन

२३८. एक समय आयुष्मान् आनन्द एवं आयुष्मान् कामभू—दोनों ही **कौशाम्बी** के घोषिताराम में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब आयुष्मान् कामभू सायङ्काल समाधिभावना से उठ कर आयुष्मान् आनन्द के पास पहुँचे तथा...यह प्रश्न किया—''आयुष्मन् आनन्द!

संयोजनं, न रसा जिव्हाय संयोजनं...पे०...न मनो धम्मानं संयोजनं, न धम्मा मनस्स संयोजनं। यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं।

[R.166] ''सेय्यथापि, आवुसो, काळो च बलीबद्दो ओदातो च बलीबद्दो एकेन दामेन वा योत्तेन वा संयुत्ता अस्सु। यो नु खो एवं वदेय्य—'काळो बलीबद्दो ओदातस्स बलीवद्दस्स संयोजनं, ओदातो बलीवद्दो काळस्स बलीवद्दस्स संयोजनं' ति, सम्मा नु खो सो वदमानो वदेय्या'' ति?

''नो हेतं, आवुसो''।

''न खो, आवुसो, काळो बलीवद्दो ओदातस्स बलीबदस्स संयोजनं, न पि ओदातो बलीवद्दो काळस्स बलीवद्दस्स संयोजनं। येन च खो ते एकेन दामेन वा योत्तेन वा संयुत्ता तं तत्थं संयोजनं। एवमेव खो, आवुसो, न चक्खु रूपानं संयोजनं, न रूपा चक्खुस्स संयोजनं...पे०...न जिव्हा...पे०...न मनो...पे०...यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं'' ति॥ •

२३४. उदायीसुत्तं

२३९. एकं समयं आयस्मा च आनन्दो आयस्मा च उदायी कोसम्बियं विहरन्ति घोसितारामे। अथ खो आयस्मा उदायी सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता आनन्देन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं [N.151] कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा उदायी आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—

''यथेव नु खो, आवुसो आनन्द, अयं कायो भगवता अनेकपरियायेन अक्खातो [B.376] विवटो पकासितो—'इतिपायं कायो अनत्ता' ति, सक्का एवमेव विञ्ञाणं पिदं आचिक्खितुं देसेतुं पञ्ञापेतुं पट्ठपेतुं विवरितुं विभजितुं उत्तानीकातुं—'इति पिदं विञ्ञाणं अनत्ता''' ति?

चक्षु रूपों का संयोजन है? या रूप चक्षु का संयोजन है? ...पूर्ववत्...। ...उन दोनों के प्रत्यय से उत्पन्न होने वाला छन्दराग ही वहाँ संयोजन है''॥ •

(भगवान् के उदाहरण को छोड़ कर शेष पूर्वसूत्रवत् यहाँ विस्तार कर लें।)

२३४. उदायिसूत्र : : विज्ञान ही अनात्म है

२३९. एक समय आयुष्मान् आनन्द एवं आयुष्मान् उदायी **कौशाम्बी** के घोषिताराम में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब कभी आयुष्मान् उदायी समाधिभावना से उठ कर आयुष्मान् आनन्द के पास...तथा उन से यह प्रश्न पूछा—

''आयुष्मन् आनन्द! जैसे भगवान् ने इस शरीर के विषय में यथाप्रसङ्ग बहुत ही

''यथेव खो, आवुसो उदायी, अयं कायो भगवता अनेकपरियायेन अक्खातो विवटो पकासितो—'इतिपायं कायो अनत्ता' ति, सक्का एवमेव विञ्ञाणं पिदं आचिक्खितुं देसेतुं पञ्ञापेतुं पट्ठपेतुं विवरितुं विभजितुं उत्तानीकातुं—'इति पिदं विञ्ञाणं अनत्ता''' ति?

''चक्खुं च, आवुसो, पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं'' ति? [R.167]

''एवमावुसो'' ति।

''यो चावुसो, हेतु यो च पच्चयो चक्खुविञ्ञाणस्स उप्पादाय सो च हेतु सो च पच्चयो सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं अपरिसेसं निरुज्झेय्य, अपि नु खो चक्खुंविञ्ञाणं पञ्ञायेथा'' ति? ''नो हेतं, आवुसो''।

''इमिना पि खो एतं, आवुसो, परियायेन भगवता अक्खातं विवटं पकासितं—'इति पिदं विञ्ञाणं अनत्ता''' ति। ...पे०...।

''जिव्हं, चावुसो, पटिच्च रसे च उप्पज्जति जिव्हाविञ्ञाणं'' ति?

''एव-मावुसो'' ति।

''यो चावुसो, हेतु यो च पच्चयो जिव्हाविञ्ञाणस्स उप्पादाय सो च हेतु सो च पच्चयो सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं अपरिसेसं निरुज्झेय्य, अपि नु खो जिव्हाविञ्ञाणं पञ्ञायेथा'' ति?

''नो हेतं, आवुसो''।

''इमिना पि खो एतं, आवुसो, परियायेन भगवता अक्खातं विवटं पकासितं—'इति पिदं विञ्ञाणं अनत्ता''' ति। ...पे०...।

''मनं, चावुसो, पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं'' ति? [N.152]

विस्तार से स्पष्ट व्याख्यान कर उसे 'अनात्म' घोषित किया है, वैसे ही क्या विज्ञान को भी उसी प्रकार स्पष्टत. 'अनात्म' कहा जा सकता है?''

''हाँ, आयुष्मन् उदायि! जैसे भगवान् ने...पूर्ववत्...विज्ञान को भी स्पष्टतः 'अनात्म' कहा जा सकता है। (मैं आप से ही पूछता हूँ—) आयुष्मन्! चक्षु और रूप के प्रत्यय से चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है ना?''

''हाँ, आयुष्मन्!''

तो क्या चक्षुर्विज्ञान की उत्पत्ति में जो हेतु तथा प्रत्यय हैं उन का यदि सर्वथा निरोध हो जाय तो क्या फिर भी चक्षुर्विज्ञान का ज्ञान होगा?''

''नहीं, आयुष्मन्!''

''इस तरह भी भगवान् ने समझाया है कि विज्ञान अनात्म है।

"एवमावुसो" ति।

"यो चावुसो, हेतु यो च पच्चयो मनोविञ्ञाणस्स उप्पादाय सो च हेतु सो च पच्चयो सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं अपरिसेसं निरुज्झेय्य, अपि नु खो मनोविञ्ञाणं पञ्ञायेथा" ति?

"नो हेतं, आवुसो"।

"इमिना पि खो एतं, आवुसो, परियायेन भगवता अक्खातं विवटं पकासितं— 'इति पिदं विञ्ञाणं अनत्ता''' ति।

"सेय्यथापि, आवुसो, पुरिसो सारत्थिको सारगवेसी सारपरियेसनं चरमानो [B.377] तिण्हं कुठारिं आदाय वनं पविसेय्य। सो तत्थ पस्सेय्य महन्तं कदलिक्खन्धं [R.168] उजुं नवं अकुक्कुकजातं। तमेनं मूले छिन्देय्य; मूले छेत्वा अग्गे छिन्देय्य; अग्गे छेत्वा पत्तवट्टिं विनिब्भुजेय्य। सो तत्थ फेग्गुं पि नाधिगच्छेय्य, कुतो सारं! एवमेव खो, आवुसो, भिक्खु छसु फस्सायतनेसु नेवत्तानं न अत्तनियं समुपस्सति। सो एवं असमनुपस्सन्तो न किञ्चि लोके उपादियति। अनुपादियं न परितस्सति। अपरितस्सं पच्चत्तञ्ञेव परिनिब्बायति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति॥ •

२३५. आदित्तपरियायसुत्तं

२४०. "आदित्तपरियायं वो, भिक्खवे, धम्मपरियायं देसेस्सामि। तं सुणाथ।

"श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...काय...मन...। मनोविज्ञान का हेतु एवं प्रत्यय सर्वथा निरुद्ध हो जाय तो क्या फिर भी मनोविज्ञान का ज्ञान होगा?"

"नहीं, आयुष्मन्!"

"इस तरह भी भगवान् ने समझाया है कि विज्ञान 'अनात्म' है।

"आयुष्मन्! जैसे कोई दृढ़ काष्ठ के उपयोग का इच्छुक पुरुष अरण्य में जा कर वहाँ एक हाथ ऊँचा, नया एवं कोमल केले का वृक्ष देखे, उसे वह तीक्ष्ण कुठार से मूलतः उच्छिन्न कर दे। उस के बाद वह उसे खण्डशः विभक्त कर दे, तब उस की त्वचा को भी पृथक् कर दे, फिर भी वह उस में साधारण काष्ठ भी न पाये, दृढ़ (सारवान्) काष्ठ की बात तो बहुत दूर! वैसे ही भिक्षु इन छह स्पर्शायतनों में न आत्मा देखता है, न आत्मीय। ऐसा न देखता हुआ वह लोक में किसी का भी उपादान नहीं करता। उपादान न करने के कारण वह कोई त्रास भी नहीं पाता। त्रास न होने के कारण वह अपने अन्दर ही निर्वाण अधिगत कर लेता है। पुनः अन्त में उसे ज्ञात हो जाता है—मेरी भवपरम्परा (जाति) क्षीण हो गयी...अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है"॥ •

कतमो च, भिक्खवे, आदित्तपरियायो धम्मपरियायो? वरं, भिक्खवे, तत्ताय अयो-सलाकाय आदित्ताय सम्पज्जलिताय सजोतिभूताय चक्खुन्द्रियं सम्पलिमट्ठं, न त्वेव चक्खुविञ्ञेय्येसु रूपेसु अनुब्यञ्जनसो निमित्तग्गाहो। निमित्तस्सादगथितं वा, भिक्खवे, विञ्ञाणं तिट्ठमानं तिट्ठेय्य अनुब्यञ्जनस्सादगथितं वा तस्मिं चे समये कालं करेय्य, ठानमेतं विज्जति यं द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरं गतिं गच्छेय्य—निरयं वा, तिरच्छानयोनिं वा। इमं ख्वाहं, भिक्खवे, आदीनवं दिस्वा एवं वदामि।

"वरं, भिक्खवे, तिण्हेन अयोसङ्कुना आदित्तेन सम्पज्जलितेन सजोति-[N.153] भूतेन सोतिन्द्रियं सम्पलिमट्ठं, न त्वेव सोतविञ्ञेय्येसु सद्देसु अनुब्यञ्जनसो निमित्तग्गाहो। निमित्तस्सादगथितं वा, भिक्खवे, विञ्ञाणं तिट्ठमानं तिट्ठेय्य अनुब्यञ्जन-स्सादगथितं वा तस्मिं चे समये कालं करेय्य, ठानमेतं विज्जति यं द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरं गतिं गच्छेय्य—निरयं वा, तिरच्छानयोनिं वा। इमं ख्वाहं, भिक्खवे, आदीनवं [R.169] दिस्वा एवं वदामि। [B.378]

"वरं, भिक्खवे, तिण्हेन नखच्छेदनेन आदित्तेन सम्पज्जलितेन सजोतिभूतेन घानिन्द्रियं सम्पलिमट्ठं, न त्वेव घानविञ्ञेय्येसु गन्धेसु अनुब्यञ्जनसो निमित्तग्गाहो।

---

२३५. आदीप्तपर्यायसूत्र : : इन्द्रियसंयम

२४०. ..."भिक्षुओ! अब मैं आदीप्त (प्रज्वलित) के उदाहरण से धर्मोपदेश करूँगा, उसे सुनो। भिक्षुओ! यह आदीप्त के उदाहरण से धर्मोपदेश क्या है? भिक्षुओ! तीव्र लपटों से जलती हुई लाल लोहे की शलाकाओं से चक्षुरिन्द्रिय को जला देना ही अच्छा है, परन्तु चक्षुर्विज्ञेय रूपों के लोभ में फँसना या उन का स्वाद चखना अच्छा नहीं। भिक्षुओ! ऐसा पुरुष जिस समय चक्षुर्विज्ञेय रूपों के लोभ में फँस कर उन का स्वाद चख रहा होता है, उस समय उस का देहपात हो जाने से उस की दो ही गतियाँ होती हैं—या तो वह उस कारण नरक में जा गिरता है, या फिर उस का जन्म तिरश्चीन योनि में होता है। भिक्षुओ! इसी बुराई को देख कर मैं ऐसा कहता हूँ।

"भिक्षुओ! तीव्र लपटों वाली जलती हुई लोहे की लाल शलाका से श्रोत्रेन्द्रिय को जला देना ही अच्छा है, परन्तु श्रोत्रविज्ञेय शब्दों के लोभ में फँस कर उन का स्वाद चखना अच्छा नहीं। भिक्षुओ! ऐसा पुरुष श्रोत्रविज्ञेय शब्दों के लोभ में फँस कर...पूर्ववत्...दो ही गति होती हैं—या तो उस का नरकपात होता है या तिरश्चीन योनि में प्रादुर्भाव। यह बुराई देख कर ही भिक्षुओ! मैं ऐसा कहता हूँ।

"भिक्षुओ! तीव्र लपटों से युक्त प्रदीप्त नखच्छेदन शस्त्र (नाखून काटने की नहरनी) से नाक को जला देना अच्छा होगा, किन्तु घ्राणविज्ञेय गन्धों का लोभी बन कर उन का

निमित्तस्सादगथितं वा, भिक्खवे, विञ्ञाणं तिट्ठमानं तिट्ठेय्य अनुब्यञ्जनस्सादगथितं वा तस्मिं चे समये कालं करेय्य, ठानमेतं विज्जति यं द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरं गतिं गच्छेय्य—निरयं वा, तिरच्छानयोनिं वा। इमं ख्वाहं, भिक्खवे, आदीनवं दिस्वा एवं वदामि।

"वरं, भिक्खवे, तिण्हेन खुरेन आदित्तेन सम्पज्जलितेन सजोतिभूतेन जिव्हिन्द्रियं सम्पलिमट्ठं, न त्वेव जिव्हाविञ्ञेय्येसु रसेसु अनुब्यञ्जनसो निमित्तग्गाहो। निमित्तस्सादगथितं वा, भिक्खवे, विञ्ञाणं तिट्ठमानं तिट्ठेय्य अनुब्यञ्जनस्सादगथितं वा तस्मिं चे समये कालं करेय्य, ठानमेतं विज्जति यं द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरं गतिं गच्छेय्य—निरयं वा, तिरच्छानयोनिं वा। इमं ख्वाहं, भिक्खवे, आदीनवं दिस्वा एवं वदामि।

"वरं, भिक्खवे, तिण्हाय सत्तिया आदित्ताय सम्पज्जलिताय सजोतिभूतेन कायिन्द्रियं सम्पलिमट्ठं, न त्वेव कायविञ्ञेय्येसु फोट्ठब्बेसु अनुब्यञ्जनसो निमित्तग्गाहो। निमित्तस्सादगथितं वा, भिक्खवे, विञ्ञाणं तिट्ठमानं तिट्ठेय्य अनुब्यञ्जनस्सादगथितं वा तस्मिं चे समये कालं करेय्य, ठानमेतं विज्जति यं द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरं गतिं गच्छेय्य—निरयं वा, तिरच्छानयोनिं वा। इमं ख्वाहं, भिक्खवे, आदीनवं दिस्वा एवं वदामि।

"वरं, भिक्खवे, सोत्तं। सोत्तं खो पनाहं, भिक्खवे, वञ्झं जीवितानं वदामि, अफलं जीवितानं वदामि, मोमूहं जीवितानं वदामि, न त्वेव तथारूपे वितक्के वितक्केय्य यथारूपानं वितक्कानं वसं गतो सङ्घं भिन्देय्य। इमं ख्वाहं, भिक्खवे, वञ्झं जीवितानं [N.154, R.170] आदीनवं दिस्वा एवं वदामि।

स्वाद लेना उचित नहीं...तिरश्चीन योनि में प्रादुर्भूत होता है। भिक्षुओ! इसी बुराई को देख कर मैं ऐसा कहता हूँ।

"भिक्षुओ! भले ही कोई अपनी जिह्वेन्द्रिय को जलते हुए तीक्ष्ण छुरे से एक ही वेग (झटके) में काट डाले, परन्तु उस के लिये यह उचित नहीं होगा कि वह जिह्वाविज्ञेय रसों के लोभ में आसक्त हो कर उन का स्वाद चखे...तिरश्चीन योनि में उद्भूत हो। इस में यही कमी देख कर मैं ऐसा कहता हूँ।

"भिक्षुओ! भले ही अग्नि से लहलहाते तीक्ष्ण भाले से इस काया का शतशः छेदन भेदन कर दिया जाय, परन्तु कायविज्ञेय स्प्रष्टव्य विषयों के लोभ में पड़ कर उन के स्वाद में आनन्द मनाये—यह उचित नहीं; अतएव...तिरश्चीन योनि में उत्पन्न होता है—...ऐसा मैं कहता हूँ।

"भिक्षुओ! इस की अपेक्षा सोया रहना अच्छा है। यद्यपि मैं इस शयन (निद्रा) को वन्ध्य जीवन, निष्फल जीवन कहता हूँ, मोह में आबद्ध जीवन कहता हूँ। साधक को

"तत्थ, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'तिट्ठतु ताव तत्ताय अयोसलाकाय आदित्ताय सम्पज्जलिताय सजोतिभूताय चक्खुन्द्रियं सम्पलिमट्ठं। हन्दाहं इदमेव मनसि करोमि—इति चक्खु अनिच्चं, रूपा अनिच्चा, चक्खुविञ्ञाणं अनिच्चं, चक्खुसम्फस्सो अनिच्चो, यम्पिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं।

'तिट्ठतु ताव तिण्हेन अयोसङ्कुना आदित्तेन सम्पज्जलितेन सजोतिभूतेन [B.379] सोतिन्द्रियं सम्पलिमट्ठं। हन्दाहं इदमेव मनसि करोमि—इति सोतं अनिच्चं, सद्दा अनिच्चा, सोतविञ्ञाणं अनिच्चं, सोतसम्फस्सो अनिच्चो, यम्पिदं सोतसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं।

'तिट्ठतु ताव तिण्हेन नखच्छेदनेन आदित्तेन सम्पज्जलितेन सजोतिभूतेन घानिन्द्रियं सम्पलिमट्ठं। हन्दाहं इदमेव मनसि करोमि—इति घानं अनिच्चं, गन्धा अनिच्चा, घानविञ्ञाणं अनिच्चं, घानसम्फस्सो अनिच्चो, यम्पिदं घानसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं...पे०...तं पि अनिच्चं।

'तिट्ठतु ताव तिण्हेन खुरेन आदित्तेन सम्पज्जलितेन सजोतिभूतेन जिव्हिन्द्रियं सम्पलिमट्ठं। हन्दाहं इदमेव मनसि करोमि—इति जिव्हा अनिच्चा, रसा अनिच्चा, जिव्हाविञ्ञाणं अनिच्चं, जिव्हासम्फस्सो अनिच्चो, यम्पिदं जिव्हासम्फस्सपच्चया उप्पज्जति... पे०...तं पि अनिच्चं।

अपने मन में ऐसे वितर्क विचार नहीं आने देना चाहिये कि जिन के कारण सङ्घ में भेद (फूट) पैदा हो। इस में वन्ध्य जीवन का दोष देख कर ही मैं ऐसा कहता हूँ॥

"भिक्षुओ! विद्वान् आर्यश्रावक यही सोचता है—'प्रदीप्त अय:शलाका से अपनी चक्षुरिन्द्रिय को दग्ध करने से हम को क्या प्रयोजन! हम तो अब यही चिन्तन करेंगे—चक्षु अनित्य है, रूप अनित्य है, चक्षुर्विज्ञान अनित्य है, चक्षु:संस्पर्श अनित्य चक्षु:संस्पर्शजन्य सुखदु:खादि वेदनाएँ अनित्य हैं।

"भिक्षुओ! वह यह भी चिन्तन करता है—'मुझे प्रदीप्त अय:शलाका अपनी श्रोत्रेन्द्रिय दग्ध करने से कोई प्रयोजन नहीं, मैं तो यही सतत चिन्तन करूँगा—श्रोत्र अनित्य है, शब्द अनित्य हैं...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! वह यह भी चिन्तन करता है—'मुझे प्रदीप्त नखच्छेदन शस्त्र से अपनी घ्राणेन्द्रिय दग्ध करने से क्या प्रयोजन! मैं तो यही मनन करूँगा—घ्राणेन्द्रिय अनित्य हैं, गन्ध अनित्य हैं...पूर्ववत्...।

[R.171]'तिट्ठतु ताव तिण्हाय सत्तिया आदित्ताय सम्पज्जलिताय सजोतिभूताय कायिन्द्रियं सम्पलिमट्ठं। हन्दाहं इदमेव मनसि करोमि—इति कायो अनिच्चो, फोट्ठब्बा अनिच्चा, कायविञ्ञाणं अनिच्चं, कायसम्फस्सो अनिच्चो, यम्पिदं कायसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं...पे०...तं पि अनिच्चं।

'तिट्ठतु ताव सोत्तं। हन्दाहं इदमेव मनसि करोमि—इति मनो अनिच्चो, धम्मा अनिच्चा, मनोविञ्ञाणं अनिच्चं, मनोसम्फस्सो अनिच्चो, यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया [N.155] उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अनिच्चं'।

"एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति, रूपेसु पि निब्बिन्दति, चक्खुविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, चक्खुसम्फस्से पि निब्बिन्दति...पे०... यम्पिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। अयं खो, भिक्खवे, आदित्तपरियायो धम्मपरियायो" ति॥ •

...'मुझे तीक्ष्ण एवं प्रदीप्त छुरे द्वारा अपनी जिह्वा काटने का क्या प्रयोजन! मैं तो यही चिन्तन करूँगा—यह जिह्वेन्द्रिय अनित्य है, रस अनित्य है, ...पूर्ववत्...।

...'इसी तरह मुझे तीक्ष्ण एवं भाले द्वारा अपनी काया को खण्डित करने से क्या प्रयोजन! मैं तो काया के विषय में यही चिन्तन करूँगा—मेरा यह काय अनित्य है, इस के स्प्रष्टव्य का विषय अनित्य हैं...पूर्ववत्...।

"...'इसी तरह मुझे निरन्तर शयन करने से क्या लाभ! मैं तो अब यही चिन्तन मनन करूँगा—मेरा मन अनित्य है, इस के धर्म अनित्य हैं, मनोविज्ञान अनित्य है, मन:संस्पर्श अनित्य है, मन:संस्पर्शजन्य सुखदु:खादि वेदनाएँ अनित्य है।'''

इस तरह देखता हुआ, समझता हुआ वह विद्वान् आर्यश्रावक चक्षु में, रूपों में, चक्षुर्विज्ञान में, चक्षु:संस्पर्श में, चक्षु:संस्पर्शजन्य वेदनाओं में अरुचि उत्पन्न कर लेता है। ...मन:संस्पर्शजन्य वेदनाओं में अपनी अरुचि उत्पन्न कर लेता है। इस अरुचि के कारण उन्हें इन में वैराग्य हो जाता है। वैराग्य के उस का चित्त आश्रवों से विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने पर उसको 'मेरा चित्त विमुक्त हो गया'—यह ज्ञान हो जाता है। तथा वह यह भी जान लेता है—'मेरी भवपरम्परा क्षीण हो गयी, मेरी धर्मसाधना सफल हुई, मैं कृतकृत्य हो चुका, अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं रहा'। भिक्षुओ! आदीप्त के उदाहरण से यह धर्मोपदेश है॥" •

२३६. पठमहत्थपादोपमसुत्तं

२४१. ''हत्थेसु, भिक्खवे, सति आदाननिक्खेपनं पञ्ञायति; पादेसु [B.380] सति अभिक्कमपटिक्कमो पञ्ञायति; पब्बेसु सति सम्मिञ्जनपसारणं पञ्ञायति; कुच्छिस्मिं सति जिघच्छा पिपासा पञ्ञायति। एवमेव खो, भिक्खवे, चक्खुस्मिं सति चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति अज्झत्तं सुखं दुक्खं...पे०...जिव्हाय सति जिव्हाय-सम्फस्सपच्चया उप्पज्जति अज्झत्तं सुखं दुक्खं...पे०...मनस्मिं सति मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति अज्झत्तं सुखं दुक्खं...पे०...।

''हत्थेसु, भिक्खवे, असति आदाननिक्खेपनं न पञ्ञायति; पादेसु असति अभिक्कमपटिक्कमो न पञ्ञायति; पब्बेसु असति सम्मिञ्जनपसारणं न पञ्ञायति; कुच्छिस्मिं असति जिघच्छा पिपासा न पञ्ञायति। एवमेव खो, भिक्खवे, [R.172] चक्खुस्मिं असति चक्खुसम्फस्सपच्चया नुप्पज्जति अज्झत्तं सुखं दुक्खं...पे०...जिव्हाय असति जिव्हासम्फस्सपच्चया नुप्पज्जति...पे०...मनस्मिं असति मनोसम्फस्सपच्चया नुप्पज्जति अज्झत्तं सुखं दुक्खं'' ति॥ ●

२३७. दुतियहत्थपादोपमसुत्तं

२४२. ''हत्थेसु, भिक्खवे, सति आदाननिक्खेपनं होति; पादेसु सति अभिक्कमपटिक्कमो होति; पब्बेसु सति सम्मिञ्जनपसारणं होति; कुच्छिस्मिं सति [N.156] जिघच्छा पिपासा होति। एवमेव खो, भिक्खवे, चक्खुस्मिं सति चक्खुसम्फस्सपच्चया

---

२३६. प्रथम हस्तपादोपमसूत्र : : हस्त एवं पाद आदि की उपमा

२४१. ...''भिक्षुओ! हाथों के होने से आदान प्रदान का कार्य समझा जाता है। तथा पैरों के होने से चलना फिरना समझा जाता है। पर्व (सन्धियों) के होने से सङ्कोच एवं प्रसारण का कार्य समझा जाता है। उदर के होने से भूख प्यास का ज्ञान समझा जाता है। इसी तरह, भिक्षुओ! चक्षु के होने पर चक्षुःसंस्पर्शजन्य सुखदुःखादि वेदनाओं का अनुभव समझा जाता है...मन के होने पर मनःसंस्पर्शजन्य सुखदुःखादि वेदनाओं का अनुभव समझा जाता है।

''इसी तरह, भिक्षुओ! हाथों के न होने पर आदान प्रदान नहीं हो पाता। पैरों के न होने से चलना फिरना, पर्वों के न होने से सङ्कोच एवं प्रसारण नहीं हो पाता। उदर के न होने से भूख प्यास का ज्ञान न हो पायगा; इसी तरह, भिक्षुओ! चक्षु के न होने पर चक्षुःसंस्पर्शजन्य वेदनाओं का अनुभव...पूर्ववत्...तथा मन के न होने पर मनःसंस्पर्शजन्य सुखदुःखादि वेदनाओं का अनुभव भी न होगा''॥ ●

उप्पज्जति अज्झत्तं सुखं दुक्खं...पे०...जिव्हाय सति...पे०...मनस्मिं सति मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति अज्झत्तं सुखं दुक्खं...पे०...।

''हत्थेसु, भिक्खवे, असति आदाननिक्खेपनं न होति; पादेसु असति अभिक्कमपटिक्कमो न होति; पब्बेसु असति सम्मिञ्जनपसारणं न होति; कुच्छिस्मिं असति जिघच्छा पिपासा न होति। एवमेव खो, भिक्खवे, चक्खुस्मिं असति चक्खुसम्फस्सपच्चया नुप्पज्जति अज्झत्तं सुखं दुक्खं...पे०...जिव्हाय असति जिव्हायसम्फस्सपच्चया नुप्पज्जति...पे०...मनस्मिं असति मनोसम्फस्सपच्चया नुप्पज्जति अज्झत्तं सुखं दुक्खं'' ति॥ •

समुद्दवग्गो ततियो॥

तस्सुद्दानं

[B.381] द्वे समुद्दा बाळिसिको, खीररुक्खेन कोट्ठिको।
कामभू उदायी चेव, आदित्तेन च अट्ठमं।
हत्थपादूपमा द्वे ति, वग्गो तेन पवुच्चती ति॥ •

---

२३७. द्वितीय हस्तपादोपमसूत्र : : हस्त एवं पाद आदि की उपमा

२४२. ...''भिक्षुओ! हाथों के होने से आदान प्रदान होता है...पूर्वसूत्रवत्...॥•

(ऊपर के सूत्र की तरह विस्तार कर लें।)

समुद्रवर्ग तृतीय समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. प्रथम समुद्रवर्ग, २. द्वितीय समुद्रसूत्र, ३. बाडिशिकोपमसूत्र, ४. क्षीरवृक्षोपमसूत्र, ५. कौष्ठिकसूत्र, ६. कामभूसूत्र, ७. उदायिसूत्र, ८. आदीप्तपर्यायसूत्र, ९. प्रथम हस्तपादोपमसूत्र एवं १०. द्वितीय हस्तपादोपमसूत्र॥ •

४. आसीविसवग्गो चतुत्थो

२३८. आसीविसोपमसुत्तं

२४३. "सेय्यथापि चत्तारो आसीविसा उग्गतेजा घोरविसा। अथ पुरिसो आगच्छेय्य जीवितुकामो अमरितुकामो सुखकामो दुक्खप्पटिकूलो। तमेनं एवं वदेय्युं—'इमे ते, अम्भो पुरिस, चत्तारो आसीविसा उग्गतेजा घोरविसा कालेन [R.173] कालं वुट्ठापेतब्बा, कालेन कालं न्हापेतब्बा, कालेन कालं भोजेतब्बा, कालेन कालं संवेसेतब्बा। यदा च खो ते, अम्भो पुरिस, इमेसं चतुन्नं आसीविसानं उग्गतेजानं घोरविसानं अञ्ञतरो वा अञ्ञतरो वा कुप्पिस्सति, ततो त्वं, अम्भो पुरिस, मरणं वा निगच्छसि मरणमत्तं वा दुक्खं। यं ते, अम्भो पुरिस, करणीयं तं करोही' ति।

"अथ खो सो, भिक्खवे, पुरिसो भीतो चतुन्नं आसीविसानं उग्गतेजानं घोरविसानं येन वा तेन वा पलायेथ। तमेनं एवं वदेय्युं—'इमे खो, अम्भो पुरिस, पञ्च वधका पच्चत्थिका पिट्ठितो अनुबन्धा यत्थेव नं पस्सिस्साम तत्थेव जीविता [N.157] वोरोपेस्सामा ति। यं ते, अम्भो पुरिस, करणीयं तं करोही' ति।

"अथ खो सो, भिक्खवे, पुरिसो भीतो चतुन्नं आसीविसानं उग्गतेजानं घोरविसानं, भीतो पञ्चन्नं वधकानं पच्चत्थिकानं येन वा तेन वा पलायेथ। तमेनं एवं वदेय्युं—'अयं ते, अम्भो पुरिस, छट्ठो अन्तरचरो वधको उक्खित्तासिको पिट्ठितो

---

४. आशीविषवर्ग चतुर्थ

२३८. आशीविषोपमसूत्र : :चार महाभूत चार विषधर सर्पों के तुल्य

२४३. ..."भिक्षुओ! जैसे चार घोर विषधर सर्प हों। तब कोई ऐसा पुरुष आवे जो जीना चाहता हो, मरना नहीं; सुख पाना चाहता हो, दुःख नहीं। उसे कोई पुरुष यों बतावे—'अरे भाई! ये चारों सर्प घोर विष वाले तथा उग्र तेज वाले हैं; इन की तुम सेवा किया करो। इन्हें समय समय पर स्नान कराओ, समय समय पर खाने को दो, समय समय पर इन को बिलों में प्रवेश करा दो। अन्यथा यदि इन चारों में से कोई भी कभी तुम पर क्रुद्ध हो गया तो तुम अपनी मृत्यु ही समझो या मृत्यु के समान दुःख। यह मैने तुम को बता दिया। अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो करो।'

"तब वह पुरुष उन चारों घोर विषधर सर्पों से डर कर वहाँ से दूर भाग जाय। उस से फिर कोई यों कहे—'अरे पुरुष तेरे शत्रु के रूप में पाँच वधक (हत्यारे) तेरे पीछे लगे हुए हैं। वे तुझे जहाँ भी एकाकी देखेंगे तेरी हत्या कर देंगे। अब तुम्हें अपनी रक्षा का जो उपाय करना हो कर लो।'

"भिक्षुओ! तब वह पुरुष उन चारों विषधर सर्पों से तथा पाँच वधकों से डर कर

पिट्ठितो अनुबन्धो यत्थेव नं पस्सिस्साम तत्थेव सिरो पातेस्सामी ति। यं ते, अम्भो पुरिस, करणीयं तं करोही' ति।

''अथ खो सो, भिक्खवे, पुरिसो भीतो चतुन्नं आसीविसानं उग्गतेजानं [B.382] घोरविसानं, भीतो पञ्चन्नं वधकानं पच्चत्थिकानं, भीतो छट्ठस्स अन्तरचरस्स वधकस्स उक्खित्तासिकस्स येन वा तेन वा पलायेथ। सो पस्सेय्य सुञ्ञं गामं। यञ्ञदेव घरं पविसेय्य रित्तकञ्ञेव पविसेय्य तुच्छकञ्ञेव पविसेय्य सुञ्ञकञ्ञेव पविसेय्य। यञ्ञदेव भाजनं परिमसेय्य रित्तकञ्ञेव परिमसेय्य तुच्छकञ्ञेव परिमसेय्य सुञ्ञकञ्ञेव परिमसेय्य। तमेनं एवं वदेय्युं—'इदानि, अम्भो पुरिस, इमं सुञ्ञं गामं चोरा गामघातका पविसन्ति। यं ते, अम्भो पुरिस, करणीयं तं करोही' ति।

''अथ खो सो, भिक्खवे, पुरिसो भीतो चतुन्नं आसीविसानं उग्गतेजानं [R.174] घोरविसानं, भीतो पञ्चन्नं वधकानं पच्चत्थिकानं, भीतो छट्ठस्स अन्तरचरस्स वधकस्स उक्खित्तासिकस्स, भीतो चोरानं गामघातकानं येन वा तेन वा पलायेथ। सो पस्सेय्य महन्तं उदकण्णवं ओरिमं तीरं सासङ्कं सप्पटिभयं, पारिमं तीरं खेमं अप्पटिभयं। न चस्स नावा सन्तारणी उत्तरसेतु वा अपारा पारं गमनाय। अथ खो, भिक्खवे, तस्स

वहाँ से बहुत दूर भाग जाय। उस से फिर कोई यह कहे—'अरे पुरुष तुम्हारा यह छठा गुप्त वधक, तलवार उठाये, तुम्हारे पीछे यह सोच कर लगा हुआ है कि जहाँ भी इसे पाऊँगा इस का शिर काट कर दूर फेंक दूँगा। मैने तुम को बता दिया, अब जैसी तुम्हारी इच्छा हो करो।'

''तब वह पुरुष उन चारों विषधर सर्पों से, पाँचों वधकों तथा इस छठे गुप्त वधक के भय से दूर भाग जाने का प्रयास करे। वहाँ उसे एक जनशून्य ग्राम दिखायी दे। वहाँ जा कर वह उस ग्राम के जिस घर में भी घुसे उसे वह घर प्राणिरहित ही दीखे, वहाँ रखे जिस पात्र में हाथ डाले वह उस को शून्य एवं रिक्त (खाली) ही दीखे। उसी समय कोई आ कर उस को बतावे—'अरे पुरुष! तूँ यहाँ क्या कर रहा है! इस ग्राम में तत्काल कुछ डाकू आने वाले हैं, जो तुझे मार डालेंगे। मैने तुझ को सचाई बता दी, अब तुझे जो प्रतीकार करना हो कर ले।'

''तब, भिक्षुओ! यह सुन कर वह पुरुष उन चारों विषधर सर्पों से, पाँचों वधकों से, छठे उस खड्गधारी गुप्त वधक से, तथा इस शून्य ग्राम को लूटने के लिये आने वाले डाकुओं से डरा हुआ इधर उधर दूर भाग जाय। भागता हुआ वह एक स्थान पर ऐसा जलाशय देखे जिस के इस ओर का किनारा पर विविध भयोत्पादक तथा नाना प्रकार की शङ्काएँ पैदा करने वाला हो, परन्तु उस (दूसरी) ओर का किनारा निर्भय एवं नि:शङ्क हो।

पुरिसस्स एवमस्स—'अयं खो महाउदकण्णवो ओरिमं तीरं सासङ्कं सप्पटिभयं, पारिमं तीरं खेमं अप्पटिभयं, नत्थि च नावा सन्तारणी उत्तरसेतु वा अपारा पारं गमनाय। यन्नूनाहं तिणकट्ठसाखापलासं सङ्कड्ढित्वा कुल्लं बन्धित्वा तं कुल्लं निस्साय हत्थेहि च पादेहि च वायममानो सोत्थिना पारं गच्छेय्यं' ति।

"अथ खो सो, भिक्खवे, पुरिसो तिणकट्ठसाखापलासं सङ्कड्ढित्वा कुल्लं [N.158] बन्धित्वा तं कुल्लं निस्साय हत्थेहि च पादेहि च वायममानो सोत्थिना पारं गच्छेय्य, तिण्णो पारङ्गतो थले तिट्ठति ब्राह्मणो।

"उपमा खो म्यायं, भिक्खवे, कता अत्थस्स विञ्ञापनाय। अयं चेत्थ अत्थो—

"**चत्तारो आसीविसा उग्गतेजा घोरविसा** ति खो, भिक्खवे, चतुन्नेतं महाभूतानं अधिवचनं—पठवीधातुया, आपोधातुया, तेजोधातुया, वायोधातुया।

"**पञ्च वधका पच्चत्थिका** ति खो, भिक्खवे, पञ्चन्नेतं उपादानक्खन्धानं [B.383] अधिवचनं, सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धस्स, वेदनुपादानक्खन्धस्स, सञ्ञुपादान-क्खन्धस्स, सङ्खारुपादानक्खन्धस्स, विञ्ञाणुपादानक्खन्धस्स।

"**छट्ठो अन्तरचरो वधको उक्खित्तासिको** ति खो, भिक्खवे, नन्दीरागस्सेतं अधिवचनं।

किन्तु उसे उस पार जाने का कोई साधन—पुल या नाव—न मिले। तब उस को यह विचार हो—'इस जलाशय के उस पार का किनारा निर्भय एवं निःशङ्क अवश्य है, परन्तु वहाँ तक पहुँचने का कोई साधन (पुल या नाव आदि) नहीं दीख रहा है। क्यों न मैं तृण, शाखा एवं पलाश एकत्र कर एक छोटी नाव बना कर, उस नाव के सहारे से, हाथ पैरों से श्रम करता हुआ, सुविधापूर्वक उस पार पहुँच जाऊँ।'

"भिक्षुओ! तब वह पुरुष किसी वृक्ष की शाखा एवं पत्र काट कर उन से एक छोटी नाव बना कर उस में बैठ कर, हाथ पैर चलाता हुआ, उस जलाशय के उस पार पहुँच कर निष्पाप स्थल पर आ कर खड़ा हो जाता है।

"भिक्षुओ! मैने तुम को यह दृष्टान्त सुनाया है, अपनी बात को समझाने के लिये। इस दृष्टान्त का अर्थ यों है—

"भिक्षुओ! उन **चार उग्रतेज घोर विष सर्पों** का इन चार महाभूतों से तात्पर्य है—१. पृथ्वीधातु, २. अब्धातु, ३. तेजोधातु एवं ४. वायुधातु।

"उन **शत्रुभूत पाँच वधकों** का पाँच उपादानस्कन्धों से तात्पर्य है—१. रूपोपादानस्कन्ध, २. वेदनोपादानस्कन्ध, ३. संज्ञोपादानस्कन्ध, ४. संस्कारोपादानस्कन्ध, एवं ५. विज्ञानोपादानस्कन्ध।

''**सुञ्ञो गामो** ति खो, भिक्खवे, छन्नेतं अज्झत्तिकानं आयतनानं अधिवचनं। [R.175] चक्खुतो चे पि नं, भिक्खवे, पण्डितो ब्यत्तो मेधावी उपपरिक्खति रित्तकञ्ञेव खायति, तुच्छकञ्ञेव खायति, सुञ्ञकञ्ञेव खायति...पे०...जिव्हातो चे पि नं, भिक्खवे...पे०...मनतो चे पि नं, भिक्खवे, पण्डितो ब्यत्तो मेधावी उपपरिक्खति रित्तकञ्ञेव खायति, तुच्छकञ्ञेव खायति, सुञ्ञकञ्ञेव खायति।

''**चोरा गामघातका** ति खो, भिक्खवे, छन्नेतं बाहिरानं आयतनानं अधिवचनं। चक्खु, भिक्खवे, हञ्ञति मनापामनापेसु रूपेसु; सोतं, भिक्खवे...पे०...घानं, भिक्खवे ...पे०...जिव्हा, भिक्खवे, हञ्ञति मनापामनापेसु रसेसु; कायो, भिक्खवे...पे०...मनो, भिक्खवे, हञ्ञति मनापामनापेसु धम्मेसु।

''**महाउदकण्णवो** ति खो, भिक्खवे, चतुन्नेतं ओघानं अधिवचनं—कामोघस्स, भवोघस्स, दिट्ठोघस्स, अविज्जोघस्स।

''**ओरिमं तीरं सासङ्कं सप्पटिभयं** ति खो, भिक्खवे, सक्कायस्सेतं अधिवचनं।

[N.159] ''**पारिमं तीरं खेमं अप्पटिभयं** ति खो, भिक्खवे, निब्बानस्सेतं अधिवचनं।

''**कुल्लं** ति खो, भिक्खवे, अरियस्सेतं अट्ठङ्गिकस्स मग्गस्स अधिवचनं, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठिया...पे०...सम्मासमाधिस्स।

''तस्स **हत्थेहि च पादेहि च वायामो** ति खो, भिक्खवे, विरियारम्भस्सेतं अधिवचनं।

''भिक्षुओ ! उस **छठे गुप्त वधक** का नन्दीराग (तृष्णा=आसक्ति) से तात्पर्य है।

''भिक्षुओ ! **शून्य ग्राम** से छह आध्यात्मिक आयतनों का तात्पर्य है। भिक्षुओ ! कोई चतुर, बुद्धिमान्, पण्डित चक्षु की परीक्षा करता है तो उसे शून्य, रिक्त एवं तुच्छ ही पाता है। ...पूर्ववत्...श्रोत्र की...घ्राण की...जिह्वा की...काय की...मन की परीक्षा करता है तो उसे शून्य रिक्त एवं तुच्छ ही पाता है।

''भिक्षुओ ! **ग्रामघातक चौर** का छह बाह्य आयतनों से तात्पर्य है। भिक्षुओ ! चक्षु का प्रिय अप्रिय रूपों से संसर्ग होता रहता है, श्रोत्र का...घ्राण का...जिह्वा का...काय का...मन का, भिक्षुओ ! प्रिय अप्रिय धर्मों से संसर्ग होता रहता है।

''भिक्षुओ ! **महान् जलाशय** का चार ओघों से तात्पर्य है।

''भिक्षुओ ! **साशङ्क एवं भयप्रद इस तीर** का सत्कायदृष्टि से तात्पर्य है।

''भिक्षुओ ! **निर्भय एवं पर तीर** से तात्पर्य है—निर्वाण का।

भिक्षुओ ! **कुल्य** (नौका) से आर्य अष्टाङ्गिकमार्ग का तात्पर्य है। जैसे—सम्यग्दृष्टि... पूर्ववत्...सम्यक्समाधि।

"**तिण्णो पारङ्गतो थले तिट्ठति ब्राह्मणो** ति खो, भिक्खवे, अरहतो एतं अधिवचनं'' ति॥ ●

२३९. रथोपमसुत्तं

२४४. ''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु दिट्ठेव धम्मे सुख-[B.384] सोमनस्सबहुलो विहरति, योनि चस्स आरद्धा होति आसवानं खयाय। कतमेहि तीहि? इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति, भोजने मत्तञ्ञू, जागरियं अनुयुत्तो।

''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति? इध भिक्खवे, [R.176] भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति, नानुब्यञ्जनग्गाही; यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं। तस्स संवराय पटिपज्जति; रक्खति चक्खुन्द्रियं; चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति। सोतेन सद्दं सुत्वा...घानेन गन्धं घायित्वा...जिव्हाय रसं सायित्वा...कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा...मनसा धम्मं विञ्ञाय न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही; यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं। तस्स संवराय पटिपज्जति; रक्खति मनिन्द्रियं; मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, सुभूमियं चातुम्महापथे आजञ्ञरथो युत्तो अस्स ठितो ओधस्तपतोदो। तमेनं दक्खो योग्गाचरियो अस्सदम्मसारथि अभिरुहित्वा वामेन हत्थेन

''भिक्षुओ! **हाथ पैरों से श्रम** का तात्पर्य है—धर्मसाधना में उद्योग।

''भिक्षुओ! **पार जा कर सुखद भूमि पर खड़े होने** से तात्पर्य है—अर्हत्त्वप्राप्ति''॥ ●

२३९. रथोपमसूत्र : : धर्मत्रय से सुखप्राप्ति

२४४. ...''भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त भिक्षु इसी जन्म में सुख सौमनस्यपूर्वक साधना में आगे बढ़ता है तथा इस के आश्रव क्षीण होने लगते हैं। वे तीन धर्म कौन हैं? १. इन्द्रियों पर, २. भोजन में मात्राज्ञता एवं ३. साधना में निरन्तर सावधान रहना।

इन्द्रियसंयम—''कैसे, भिक्षुओ! भिक्षु इन्द्रियों पर संयमशील होता है? यहाँ, भिक्षुओ! भिक्षु चक्षु से रूपों को देख कर न उन के लिये ललचाता है, न उन का स्वाद (रस) लेता है; क्यों कि असंयत चक्षुरिन्द्रिय से साधना करने पर उस के चित्त में लोभ, द्वेष एवं पापमय अकुशल धर्म अपना घर बना लेते हैं। उन के संवर के लिये वह यत्नवान् होता है, अपनी चक्षुरिन्द्रिय की रक्षा करता है।

''श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...काय...मन...।

''भिक्षुओ! जैसे किसी सुरम्य समतल चतुष्पथ पर पुष्ट अश्वों से युक्त कोई रथ

रस्मियो गहेत्वा दक्खिनेन हत्थेन पतोदं गहेत्वा येनिच्छकं यदिच्छकं सारेय्य पि पच्चासारेय्य पि। एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु इमेसं छन्नं इन्द्रियानं आरक्खाय [N.160] सिक्खति, संयमाय सिक्खति, दमाय सिक्खति, उपसमाय सिक्खति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति। (१)

"कथं च, भिक्खवे, भिक्खु भोजने मत्तञ्ञू होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु पटिसङ्खा योनिसो आहारं आहारेति—'नेव दवाय, न मदाय, न मण्डनाय, न विभूसनाय, यावदेव इमस्स कायस्स ठितिया, यापनाय, विहिंसूपरतिया, ब्रह्मचरियानुग्गहाय, इति पुराणं च वेदनं पटिहङ्खामि, नवं च वेदनं न उप्पादेस्सामि, यात्रा च मे भविस्सति, अनवज्जता च फासुविहारो चा' ति। सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो वणं [R.177] आलिम्पेय्य यावदेव रोहनत्थाय, सेय्यथा वा पन अक्खं अब्भञ्जेय्य यावदेव [B.385] भारस्स नित्थरणत्थाय; एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु पटिसङ्खा योनिसो आहारं आहारेति—'नेव दवाय, न मदाय, न मण्डनाय, न विभूसनाय, यावदेव इमस्स कायस्स ठितिया, यापनाय, विहिंसूपरतिया, ब्रह्मचरियानुग्गहाय, इति पुराणं च वेदनं पटिहङ्खामि, नवं च वेदनं न उप्पादेस्सामि, यात्रा च मे भविस्सति, अनवज्जता च फासुविहारो चा' ति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु भोजने मत्तञ्ञू होति। (२)

खड़ा हो, जिस में चाबुक (=प्रतोद) लटकी हो। कोई दक्ष सारथि उस पर चढ़ कर बाँये हाथ से घोड़ों की लगाम (रस्सी) पकड़ कर तथा दाहिने हाथ में चाबुक ले कर, आगे पीछे, जिधर इच्छा हो उस रथ को चलाये। भिक्षुओ! वैसे ही साधक भिक्षु इन छह इन्द्रियों की रक्षा के लिये, इन पर संयम के लिये, इन का दमन करने के लिये, इन्हें शान्त रखने के लिये शिक्षा ग्रहण करता है। इस तरह, भिक्षुओ! भिक्षु इन्द्रियसंयत हो पाता है। (१)

भोजन में मात्राज्ञता—भिक्षुओ! कैसे कोई भिक्षु भोजन में मात्रा का जाननेवाला होता है? भिक्षुओ! कोई भिक्षु प्राप्त भोजन को बहुत सोच समझ कर खाता है—वह न उसे अतिरिक्त शारीरिक बल वृद्धि के लिये, न मद के लिये, न शरीर को सुदर्शन बनाने के लिये, न उसे अलंकृत करने के लिये खाता है; अपि तु वह उसे जीवन रहने तक शरीर स्थिति के लिये, कष्ट से दूर रहने के लिये, तथा यह सोच कर कि इस से पुरानी वेदनाओं का निवारण होगा तथा नयी वेदनाओं का उत्पाद भी न होगा, मेरा जीवननिर्वाह भी सफलता से होता रहेगा, कोई दोष भी न आवे तथा शरीर में लाघव भी बना रहे—इसलिये ग्रहण करता है। जैसे, भिक्षुओ! कोई रोगी अपने व्रण पर लेपन-ओषधि इसलिये लगाता है कि उस का व्रण पूर्ण हो जाय, या कोई गाड़ीवान अपनी गाड़ी के धुरे में तैल आदि इसलिये देता है कि उस की गाड़ी यात्रा के मध्य में ही न रुक जाय; इसी तरह साधक

''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु जागरियं अनुयुत्तो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु दिवसं चङ्कमेन निसज्जाय आवरणीयेहि धम्मेहि चित्तं परिसोधेति। रत्तिया पठमं यामं चङ्कमेन निसज्जाय आवरणीयेहि धम्मेहि चित्तं परिसोधेति। रत्तिया मज्झिमं यामं दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेति पादे पादं अच्चाधाय सतो सम्पजानो उट्ठानसञ्ञं मनसि करित्वा। रत्तिया पच्छिमं यामं पच्चुट्ठाय चङ्कमेन निसज्जाय आवरणीयेहि धम्मेहि चित्तं परिसोधेति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु जागरियं अनुयुत्तो होति। (३)

इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु दिट्ठेव धम्मे सुखसोमनस्सबहुलो विहरति, योनि चस्स आरद्धा होति आसवानं खयाया'' ति॥ •

२४०. कुम्मोपमसुत्तं

२४५. ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, कुम्मो कच्छपो सायन्हसमयं अनुनदीतीरे गोचरपसुतो अहोसि। सिङ्गालो पि खो, भिक्खवे, सायन्हसमयं अनुनदीतीरे [N.161] गोचरपसुतो अहोसि। अद्दसा खो, भिक्खवे, कुम्मो कच्छपो सिङ्गालं दूरतो व गोचरपसुतं। दिस्वान सोण्डिपञ्चमानि अङ्गानि सके कपाले समोदहित्वा अप्पोस्सुक्को तुण्हीभूतो सङ्कसायति। सिङ्गालो पि खो, भिक्खवे, अद्दस कुम्मं कच्छपं दूरतो [R.178]

भिक्षु मात्रा जानता हुआ ही भोजन ग्रहण करता है कि...पूर्ववत्...। इस तरह वह भिक्षु भोजन में मात्राज्ञ कहलाता है। (२)

जागरणशील—''भिक्षुओ! कैसे कोई भिक्षु जागरणशील (साधना) में सावधान रहता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु दिन में चंक्रमण कर या बैठ कर आवरणीय धर्मों से स्वचित्त को शुद्ध करता है। रात्रि के प्रथम याम में चंक्रमण कर...रात्रि के मध्यम याम में दक्षिण पार्श्व से सिंहशय्या आसन लगा कर, पैर पर पैर रख कर, स्मृतिमान्, सम्यक्प्रज्ञ एवं उपस्थित संज्ञावाला होता है। रात्रि के पश्चिम याम में उठ कर, चंक्रमण कर या बैठ कर आवरणीय धर्मों से स्वचित्त को शुद्ध करता है। यों, भिक्षुओ! साधक भिक्षु जागरणशील होता है। (३)

''इस तरह, भिक्षुओ! साधक भिक्षु इसी जन्म में सुखसौमनस्यपूर्वक साधना करता है, तथा इस के आश्रव क्षीण होने लगते हैं॥'' •

२४०. कूर्मोपमसूत्र : : कूर्म के समान इन्द्रियरक्षा

२४५. ...''भिक्षुओ! पहले कभी कोई कछुवा (कूर्म) भोजन की खोज में किसी नदी के किनारे पहुँचा। इसी समय एक शृगाल (गीदड़) भी अपने लिये भोजन खोजता हुआ वहाँ पहुँचा। कछुए ने भोजन की खोज में आते हुए उस शृगाल को दूर से ही देख लिया। उसे देखते ही वह अपने सभी अङ्गों को कपाल (खोपड़ी) में छिपा कर स्तब्ध हो

व गोचरपसुतं। दिस्वान येन कुम्मो कच्छपो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा कुम्मं कच्छपं पच्चुपट्ठितो अहोसि—'यदायं कुम्मो कच्छपो सोण्डिपञ्चमानं अङ्गानं अञ्ञतरं वा अञ्ञतरं वा अङ्गं अभिनिन्नामेस्सति, तत्थेव नं गहेत्वा उद्दालित्वा खादिस्सामी' ति। [B.386] यदा खो, भिक्खवे, कुम्मो कच्छपो सोण्डिपञ्चमानं अङ्गानं अञ्ञतरं वा अञ्ञतरं वा अङ्गं न अभिनिन्नामि, अथ सिङ्गालो कुम्मम्हा निब्बिज्ज पक्कामि, ओतारं अलभमानो।

"एवमेव खो, भिक्खवे, तुम्हे पि मारो पापिमा सततं समितं पच्चुपट्ठितो—'अप्पेव नामाहं इमेसं चक्खुतो वा ओतारं लभेय्यं...पे०...जिव्हातो वा ओतारं लभेय्यं ...पे०...मनतो वा ओतारं लभेय्यं' ति। तस्मातिह, भिक्खवे, इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो विहरथ। चक्खुना रूपं दिस्वा मा निमित्तग्गाहिनो अहुवत्थ, मा अनुब्यञ्जनग्गाहिनो। यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जथ, रक्खथ चक्खुन्द्रियं, चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जथ। सोतेन सद्दं सुत्वा...घानेन गन्धं घायित्वा...जिव्हाय रसं सायित्वा...कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा...मनसा धम्मं विञ्ञाय मा निमित्तग्गाहिनो अहुवत्थ, मा अनुब्यञ्जनग्गाहिनो। यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जथ, रक्खथ मनिन्द्रियं, मनिन्द्रिये

कर एक स्थान पर बैठ गया। उधर शृगाल ने भी अपने लिये भोजन खोजते हुए उस कछुअे को दूर से ही देख लिया। देख कर वह कछुए के पास गया। तथा उस कछुए पर दृष्टि गड़ा कर एक स्थान पर रुक गया तथा यों सोचने लगा—'जैसे ही यह कछुआ कभी अपने किसी अङ्ग को अपने कपाल से बाहर निकालेगा, वैसे ही मैं इसे एक वेग (झपाटे) में चीर कर खा जाऊँगा।' जब बहुत समय बीतने पर भी कछुए ने अपना कोई भी अङ्ग कपाल से बाहर न निकाला और शृगाल को उसे खाने का अवसर न मिला तो, अवसर न मिलने के कारण, निराश हो कर उसे खाये विना ही वहाँ से चल दिया।

"इसी तरह, भिक्षुओ! तुम लोगों पर भी यह पापी मार निरन्तर अवसर की सम्भावना में बैठा है—'मैं इन के चक्षुरिन्द्रिय से असावधानी करने पर...पूर्ववत्...मन से असावधानी करने पर इन्हें अपने वश में कर लूँगा।' अत:, भिक्षुओ! तुम लोग अपनी इन्द्रियों को संयत रखो। चक्षु से रूपों को देख कर उन के लिये लोभ (लालच) न करो। या उन का स्वाद चखने के लिये आग्रह न करो। असंयत चक्षुरिन्द्रिय विचरण करने पर लोभ, द्वेष आदि अकुशल धर्म तुम्हारे चित्त में प्रविष्ट हो जाते हैं। अत: उस (चक्षुरिन्द्रिय) को संयत रखने का प्रयास करो। ...मन इन्द्रियं को संयत रखने का सतत प्रयास करो।

संवरं आपज्जथ। यतो तुम्हे, भिक्खवे, इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो विहरिस्सथ, अथ तुम्हेहि पि मारो पापिमा निब्बिज्ज पक्कमिस्सति, ओतारं अलभमानो—कुम्मम्हा व सिङ्गालो ति।

"कुम्मो व अङ्गानि सके कपाले, समोदहं भिक्खु मनोवितक्के। [R.179]
अनिस्सितो अञ्ञमहेठयानो, परिनिब्बुतो नूपवदेय्य कञ्ची" ति॥ •

२४१. पठमदारुक्खन्धोपमसुत्तं

२४६. एकं समयं भगवा कोसम्बियं विहरति गङ्गाय नदिया तीरे। [N.162] अद्दसा खो भगवा महन्तं दारुक्खन्धं गङ्गाय नदिया सोतेन वुय्हमानं। दिस्वान भिक्खू आमन्तेसि—"पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, अमुं महन्तं दारुक्खन्धं गङ्गाय नदिया सोतेन वुय्हमानं" ति?

"एवं, भन्ते"।

"सचे सो, भिक्खवे, दारुक्खन्धो न ओरिमं तीरं उपगच्छति, न पारिमं तीरं उपगच्छति, न मज्झे संसीदिस्सति, न थले उस्सीदिस्सति, न मनुस्सग्गाहो [B.387] गहेस्सति, न अमनुस्सग्गाहो गहेस्सति, न आवट्टग्गाहो गहेस्सति, न अन्तोपूति भविस्सति; एवं हि सो, भिक्खवे, दारुक्खन्धो समुद्दनिन्नो भविस्सति समुद्दपोणो

यदि, भिक्षुओ! तुम लोग निरन्तर स्वकीय इन्द्रियों को संयत रखने में सावधान रहोगे तो यह पापी मार तुम्हें स्वाधीन करने का कोई अवसर न पा कर निराश हो कर स्वतः ही पीछे हट जायगा; जैसे वह शृगाल उस कछुए से निराश हो कर पीछे हट गया।

"जैसे कछुआ स्वकीय अङ्गों को अपने कपाल में समेट लेता है उसी तरह, तुम भी, भिक्षुओ! अपने मानसिक सङ्कल्प विकल्पों को दबाते हुए, क्लेशरहित, दूसरे को न सताते हुए परिनिवृत्त हो जाओ, किसी दूसरे पर आरोप न लगाओ"॥ •

२४१. प्रथम दारुस्कन्धोपमसूत्र : : सम्यग्दृष्टि निर्वाणगामिनी होती है

२४६. एक समय भगवान् बुद्ध **कौशाम्बी में** गङ्गा नदी के तट पर साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय उन्होंने एक वृक्ष की विशाल शाखा को गङ्गा नदी के प्रवाह में बहते देखा। यह देख कर उन्होंने भिक्षुओं को अपने पास बुलाया तथा उन्हें यों पूछा— "भिक्षुओ! क्या तुम इस गङ्गा नदी के प्रवाह में बहते हुए इस विशाल वृक्षशाखास्कन्ध को देख रहे हो?"

"हाँ, भन्ते!"

"यदि यह विशाल दारुस्कन्ध न इस पार लगे, न उस पार लगे, न बीच में डूब जाय, न भूमि पर आ लगे, न किसी मनुष्य या अमनुष्य द्वारा यह बाहर निकाल लिया जाय, न किसी भ्रमर में फँस जाय, या न कहीं बीच में हो रुक जाय तो यह दारुस्कन्ध

समुद्दपब्भारो। तं किस्स हेतु? समुद्दनिन्नो, भिक्खवे, गङ्गाय नदिया सोतो समुद्दपोणो समुद्दपब्भारो।

"एवमेव खो, भिक्खवे, सचे तुम्हे पि न ओरिमं तीरं उपगच्छथ, न पारिमं तीरं उपगच्छथ; न मज्झे संसीदिस्सथ, न थले उस्सीदिस्सथ, न मनुस्सग्गाहो गहेस्सति, न [R.180] अमनुस्सग्गाहो गहेस्सति, न आवट्टग्गाहो गहेस्सति, न अन्तोपूति भविस्सथ; एवं तुम्हे, भिक्खवे, निब्बाननिन्ना भविस्सथ निब्बानपोणा निब्बानपब्भारा। तं किस्स हेतु? निब्बाननिन्ना, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि निब्बानपोणा निब्बानपब्भारा" ति।

एवं वुत्ते, अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"किं नु खो, भन्ते, ओरिमं तीरं, किं पारिमं तीरं, को मज्झे संसीदो, को थले उस्सादो, को मनुस्सग्गाहो, को अमनुस्सग्गाहो, को आवट्टग्गाहो, को अन्तोपूतिभावो" ति?

"**ओरिमं तीरं** ति खो, भिक्खु, छन्नेतं अज्झत्तिकानं आयतनानं अधिवचनं।

"**पारिमं तीरं** ति खो, भिक्खु, छन्नेतं बाहिरानं आयतनानं अधिवचनं।

"**मज्झे संसीदो** ति खो, भिक्खु, नन्दीरागस्सेतं अधिवचनं।

"**थले उस्सादो** ति खो, भिक्खु, अस्मिमानस्सेतं अधिवचनं।

सीधा समुद्र में ही जा कर गिरेगा। वह क्यों? क्यों कि, भिक्षुओ! यह गङ्गा नदी की धारा समुद्र तक बहती है, समुद्र में ही गिरती है, समुद्र में ही जा मिलती है।

"इसी तरह, भिक्षुओ! तुम भी यदि (इस संसार में) न इस पार लगे, न उस पार लगे, न बीच में ही रुके (डूबे), न भूमि पर चढ़े, न किसी मनुष्य या (भूत प्रेत आदि) अमनुष्य द्वारा उठा लिये गये, न किसी भँवर में फँसे, न कहीं बीच में ही सड़े, तो तुम भी, भिक्षुओ! निर्वाण तक पहुँच जाओगे। वह क्यों? वह इसलिये कि सम्यग्दृष्टि निर्वाण तक जाती है, निर्वाण में ही जा लगती है।"

भगवान् द्वारा ऐसा उपदेश किये जाने पर, एक भिक्षु ने प्रश्न किया—भन्ते! यह 'इधर वाला किनारा' क्या है? या 'उधर वाला किनारा' क्या है? यह 'बीच में डूबना' क्या है? यह 'भूमि पर चढ़ जाना' क्या है? यह 'मनुष्य द्वारा पकड़ा जाना' क्या है? यह 'अमनुष्य द्वारा पकड़ा जाना' क्या है? यह 'भँवर में फँसना' क्या है? यह 'बीच में सड़ जाना' क्या है?

"भिक्षु! **इस पार** से छह आध्यात्मिक आयतनों का ग्रहण है।

"भिक्षु! **उस पार** से छह आयतनों का ग्रहण है।

"भिक्षु! **बीच में डूबना** से तृष्णाराग का अधिवचन है।

"भिक्षु! **भूमि पर चढ़ जाने** से ममत्व-अहङ्कार का ग्रहण है।

"कतमो च, भिक्खु, **मनुस्सग्गाहो** ? इध, भिक्खु, गिहिसंसट्ठो विहरति सहनन्दी सहसोकी सुखितेसु सुखितो दुक्खितेसु दुक्खितो उप्पन्नेसु किच्चकरणीयेसु अत्तना तेसु योगं आपज्जति। अयं वुच्चति, भिक्खु, मनुस्सग्गाहो। [N.163]

"कतमो च, भिक्खु, **अमनुस्सग्गाहो** ? इध, भिक्खु, एकच्चो अञ्ञतरं देवनिकायं पणिधाय ब्रह्मचरियं चरति—'इमिनाहं सीलेन वा वतेन वा तपेन वा ब्रह्मचरियेन वा देवो वा भविस्सामि देवञ्ञतरो वा' ति। अयं वुच्चति, भिक्खु, अमनुस्सग्गाहो।

आवट्टग्गाहो ति खो, भिक्खु, पञ्चन्नेतं कामगुणानं अधिवचनं।

"कतमो च, भिक्खु, **अन्तोपूतिभावो** ? इध, भिक्खु, एकच्चो दुस्सीलो होति पापधम्मो असुचिसङ्कस्सरसमाचारो पटिच्छन्नकम्मन्तो अस्समणो समणपटिञ्ञो अब्रह्मचारी ब्रह्मचारिपटिञ्ञो अन्तोपूति अवस्सुतो कसम्बुजातो। अयं वुच्चति, भिक्खु, 'अन्तोपूतिभावो''' ति। [B.388, R.181]

तेन खो पन समयेन नन्दो गोपालको भगवतो अविदूरे ठितो होति। अथ खो नन्दो गोपालको भगवन्तं एतदवोच—"अहं खो, भन्ते, न ओरिमं तीरं उपगच्छामि, न पारिमं तीरं उपगच्छामि, न मज्झे संसीदिस्सामि, न थले उस्सीदिस्सामि, न मं

"भिक्षु ! यह **मनुष्य द्वारा पकड़ा जाना** क्या है ? कोई भिक्षु गृहस्थों के संसर्ग में अधिक रहे, उन के आनन्द में आनन्द मनावे, उन के शोक में शोक माने, उन के सुखी होने पर सुख का अनुभव करे, उन के दुःखी होने पर दुःख का अनुभव करे, उन के (गृहस्थ के) समारोह (उत्सव) कृत्यों में स्वयं भी सहयोग करने लग जाता है— भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं—'मनुष्य द्वारा पकड़ा जाना'।

"भिक्षु ! यह **अमनुष्य द्वारा पकड़ा जाना** क्या है ? यहाँ भिक्षु कोई साधक किसी देवनिकाय का सङ्कल्प कर धर्मसाधना करने लगे—'मैं इस शील, व्रत, तप से तथा साधना से अमुक देवनिकाय में उत्पन्न होऊँगा, या अमुक देवता बनूँगा'। भिक्षु ! यह कहलाता है—'अमनुष्य द्वारा पकड़ा जाना'।"

भँवर में फँसना अर्थात् पाँच कामगुणों के अधीन होना।

"भिक्षु ! यह **बीच में सड़ जाना** क्या है ? यहाँ कोई भिक्षु दुःशील होता है, पापमय धर्मों वाला, अपवित्र, दुराचारी, गुप्तरूप से दुष्कर्म करने वाला, अश्रमण, अब्रह्मचारी, या श्रमण एवं ब्रह्मचारी का मिथ्या ढोंग रचनेवाला, आन्तरिक दुर्गुणों से सम्पन्न होता है उस के ये दुर्गुण 'बीच में सड़ जाना' कहलाते हैं।"

उस समय नन्द गोपालक भगवान् के समीप ही खड़ा था। उस ने भगवान् से

मनुस्सग्गाहो गहेस्सति, न अमनुस्सग्गाहो गहेस्सति, न आवट्टग्गाहो गहेस्सति, न अन्तोपूति भविस्सामि। लभेय्याहं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं'' ति।

''तेन हि त्वं, नन्द, सामिकानं गावो निय्यातेही'' ति।

''गमिस्सन्ति, भन्ते, गावो वच्छगिद्धिनियो'' ति।

''निय्यातेहेव त्वं, नन्द, सामिकानं गावो'' ति।

अथ खो नन्दो गोपालको सामिकानं गावो निय्यातेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—''निय्यातिता, भन्ते, सामिकानं गावो। लभेय्याहं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं'' ति।

अलत्थ खो नन्दो गोपालको भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो च पनायस्मा नन्दो एको वूपकट्ठो...पे०...अञ्ञतरो च पनायस्मा नन्दो अरहतं अहोसी ति॥ •

२४२. दुतियदारुक्खन्धोपमसुत्तं

२४७. एकं समयं भगवा किमिलायं विहरति गङ्गाय नदिया तीरे। अद्दसा खो [N.164] भगवा महन्तं दारुक्खन्धं गङ्गाय नदिया सोतेन वुय्हमानं। दिस्वान भिक्खू आमन्तेसि—''पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, अमुं महन्तं दारुक्खन्धं गङ्गाय नदिया सोतेन [R.182] वुय्हमानं'' ति?

निवेदन किया—''भन्ते! जिस में मैं न इस पार लगूँ, न उस पार लगूँ...पूर्ववत्...न बीच में ही सड़ जाऊँ, ऐसी प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा देवें।''

''तो, नन्द! तुम पहले अपने स्वामी की ये गौएँ लौटा कर आओ।''

''भन्ते! ये गौएँ तो अपने बछड़ों के प्रेम में स्वयं ही घर पहुँच जायँगी।''

''नहीं, नन्द! तुम स्वयं इन्हें लौटा कर आओ।''

तब नन्द गोपालक, उन गौओं को उन के स्वामियों को लौटा कर, पुनः भगवान् के पास आया, तथा यों निवेदन करने लगा—''भन्ते! वे सब गौएँ उन के स्वामियों को लौटा दी हैं, अब मैं आप से प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा प्राप्त करूँ।''

तब उस नन्द गोपालक ने भगवान् से प्रव्रज्या एतं उपसम्पदा प्राप्त की। यों, वह, उपसम्पन्न होने के कुछ समय बाद, एकान्त में, एकाकी रह कर साधना करता हुआ अर्हतों में विशिष्ट स्थान पा गया॥ •

२४२. द्वितीय दारुस्कन्धसूत्र : : सम्यग्दृष्टि ही निर्वाणगामिनी

२४७. एक समय भगवान् (बुद्ध) **किमिला** में गङ्गानदी के तट पर...पूर्ववत्...।

"एवं, भन्ते" ...पे०... ।

एवं वुत्ते, आयस्मा किमिलो भगवन्तं एतदवोच—किं नु खो, भन्ते, ओरिमं तीरं...पे०...कतमो च, किमिल, अन्तोपूतिभावो। इध, किमिल, भिक्खु अञ्ञतरं सङ्किलिट्ठं आपत्तिं आपन्नो होति यथारूपाय आपत्तिया न वुट्ठानं पञ्ञायति। अयं वुच्चति, किमिल, अन्तोपूतिभावो ति॥ •

२४३. अवस्सुतपरियायसुत्तं

२४८. एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थुस्मिं निग्रोधारामे। [B.389] तेन खो पन समयेन कापिलवत्थवानं सक्यानं नवं सन्थागारं अचिरकारितं होति अनज्झावुट्ठं समणेन वा ब्राह्मणेन वा केनचि वा मनुस्सभूतेन। अथ खो कापिलवत्थवा सक्या येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो कापिलवत्थवा सक्या भगवन्तं एतदवोचुं—"इध, भन्ते, कापिलवत्थवानं सक्यानं नवं सन्थागारं अचिरकारितं अनज्झावुट्ठं [R.183] समणेन वा ब्राह्मणेन वा केनचि वा मनुस्सभूतेन। तं, भन्ते, भगवा पठमं परिभुञ्जतु। भगवता पठमं परिभुत्तं पच्छा कापिलवत्थवा सक्या परिभुञ्जिस्सन्ति। तदस्स कापिलवत्थवानं सक्यानं दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन।

(ऊपर के सूत्र की तरह इस सूत्र का भी विस्तार कर लें।)

ऐसा कहने पर आयुष्मान् किमिल भगवान् से बोले—...पूर्ववत्... ॥ •

(ऊपर वाले सूत्र के समान ही... ।)

२४३. अवश्रुतपर्यायसूत्र : : महामोग्गल्लान द्वारा अनासक्ति योग का प्रवचन

२४८. एक समय भगवान् शाक्य प्रदेश के **कपिलवस्तु**स्थित न्यग्रोधाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय कपिलवस्तुवासी शाक्यों ने एक नया संस्थागार तत्काल ही बनवाया था। जिस में कि अभी तक श्रमण, ब्राह्मण या कोई मनुष्य नहीं ठहरा था। तब वे कपिलवस्तुवासी शाक्य भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए, तथा उन्हें प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। एक ओर बैठे उन शाक्यों ने भगवान् से यों निवेदन किया—"यहाँ, भन्ते! हम कपिलवस्तुवासी शाक्यों ने अभी अब एक नया संस्थागार बनवाया है, जिस में कि अभी तक कोई भी श्रमण, ब्राह्मण या कोई आगन्तुक मनुष्य नहीं ठहरा है। भन्ते! भगवान् उस में प्रथम वास करें। आप के प्रथम वास के बाद हम उस का उपयोग-उपभोग करेंगे। यही हम शाक्यों के लिये चिरकाल तक हितकर एवं सुखप्रद होगा।"

भगवान् ने यह निवेदन मौन भाव से स्वीकार कर लिया।

अथ खो कापिलवत्थवा सक्या भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा येन नवं सन्थागारं तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा सब्बसन्थरिं सन्थागारं सन्थरित्वा आसनानि पञ्ञापेत्वा उदकमणिकं पतिट्ठापेत्वा तेलप्पदीपं आरोपेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोचुं— [N.165] "सब्बसन्थरिसन्थतं, भन्ते, सन्थागारं, आसनानि पञ्ञत्तानि, उदकमणिको पतिट्ठापितो, तेलप्पदीपो आरोपितो। यस्स दानि, भन्ते, भगवा कालं मञ्ञती" ति। अथ खो भगवा निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सद्धिं भिक्खुसङ्घेन येन नवं सन्थागारं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पादे पक्खालेत्वा सन्थागारं पविसित्वा मज्झिमं थम्भं निस्साय पुरत्थाभिमुखो निसीदि। भिक्खुसङ्घो पि खो पादे पक्खालेत्वा सन्थागारं पविसित्वा पच्छिमं भित्तिं निस्साय पुरत्थाभिमुखो निसीदि भगवन्तं येव पुरक्खत्वा। कापिलवत्थवा सक्या पादे पक्खालेत्वा सन्थागारं पविसित्वा पुरत्थिमं भित्तिं निस्साय पच्छिमाभिमुखा निसीदिंसु भगवन्तं येव पुरक्खत्वा। अथ खो भगवा कापिलवत्थवे सक्ये बहुदेव रत्तिं धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा [B.390] उय्योजेसि—"अभिक्कन्ता खो, गोतमा, रत्ति। यस्स दानि कालं मञ्ञथा' ति। [R.184] "एवं, भन्ते" ति खो कापिलवत्थवा सक्या भगवतो पटिस्सुत्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कमिंसु।

तब उन शाक्यों ने भगवान् की स्वीकृति जान कर, वे आसन से उठ कर, भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर उस नवनिर्मित संस्थागार में गये, तथा वहाँ सब तरह की शुद्धि कर, संस्थागार को झाड़ पोंछ कर, आसन बिछा कर, जल के घड़े यथास्थान रख कर, प्रकाशहेतु तैल प्रदीप जला कर पुन: भगवान् के सम्मुख आये तथा उन से यों निवेदन किया—"भन्ते! हम ने उस संस्थागार को परिशुद्ध कर उस में आसन बिछा कर, जलपूर्ण घट रख कर, दीपक जला दिये हैं। अब आप जैसा उचित समझें।" तब भगवान्, शरीर के वस्त्र व्यवस्थित कर, पात्रचीवर ले कर, भिक्षुसङ्घ के साथ उस नये संस्थागार में पहुँचे। वहाँ पहुँच कर अपने चरण धो कर, तथा संस्थागार में प्रविष्ट हो कर मध्यम स्तम्भ का सहारा ले कर पूर्वाभिमुख विराजमान हुए। इसी तरह, भिक्षुसङ्घ भी पैर धो कर संस्थागार में जाकर पश्चिम दीवार का सहारा ले कर पूर्वाभिमुख बैठ गया। कपिलवस्तुवासी शाक्य भी, अपने पैर धो कर संस्थागार में प्रवेश कर पूर्वी दीवार का सहारा ले कर पश्चिमाभिमुख हो कर ऐसा बैठे जिस से भगवान् का उन्हें स्पष्ट दर्शन हो सके। तब भगवान् ने उन कपिलवस्तुवासी शाक्यों को बहुत रात्रि तक धार्मिक उपदेश से सन्दृष्ट, समादपित (आश्वस्त), समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट कर ध्यान दिलाया—"गौतमगोत्रोत्पन्न शाक्यगण, अब बहुत रात्रि

अथ खो भगवा अचिरपक्कन्तेसु कापिलवत्थवेसु सक्येसु आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं आमन्तेसि—"विगतथीनमिद्धो खो, मोग्गल्लान, भिक्खुसङ्घो। पटिभातु तं, मोग्गल्लान, भिक्खूनं धम्मी कथा। पिट्ठि मे आगिलायति; तमहं आयमिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा महामोग्गल्लानो भगवतो पच्चस्सोसि। अथ खो भगवा चतुग्गुणं सङ्घाटिं पञ्ञापेत्वा दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेसि, पादे पादं अच्चाधाय, सतो सम्पजानो उट्ठानसञ्ञं मनसि करित्वा। तत्र खो आयस्मा महामोग्गल्लानो भिक्खू आमन्तेसि—"आवुसो भिक्खवे" ति। "आवुसो" ति खो ते भिक्खू आयस्मतो महामोग्गल्लानस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा महामोग्गल्लानो एतदवोच—"अवस्सुतपरियायं च वो, आवुसो, देसेस्सामि अनवस्सुतपरियायं च। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति। "एवमावुसो" ति खो ते भिक्खू आयस्मतो महामोग्गल्लानस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा महामोग्गल्लानो एतदवोच—

"कथं, आवुसो, **अवस्सुतो** होति? इधावुसो, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा पियरूपे रूपे अधिमुच्चति, अप्पियरूपे रूपे ब्यापज्जति, अनुपट्ठितकायस्सति विहरति परित्तचेतसो, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते [N.166]

बीत चुकी है, अत: तुम जैसा उचित समझो।" उन शाक्यों ने भगवान् का सङ्केत समझ कर आसन से उठ कर भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर अपने घरों के लिये प्रस्थान किया।

तब उन शाक्यों के चले जाने के कुछ समय बाद, भगवान् ने आयुष्मान् महामोग्गल्लान को यह आदेश दिया—"मोग्गल्लान! अभी भिक्षुसङ्घ आलस्यरहित है, अत: तुम इसे कुछ धार्मिक कथा सुनाओ। मेरी पीठ में कुछ वेदना हो रही है, अत: मैं विश्राम करूँगा।" "जैसी आज्ञा, भन्ते" कहते हुए आयुष्मान् महामोग्गल्लान ने भगवान् को अपनी स्वीकृति दी। तब भगवान् अपनी सङ्घाटि को चतुर्गुण कर, बिछा कर, उस पर सिंहशय्या से दक्षिणपार्श्व हो कर पैर पर पैर रख कर स्मृतियुक्त उत्थान संज्ञा को मन में कर सुखपूर्वक लेट गये। तब आयुष्मान् महामोग्गल्लान भिक्षुओं को सम्बोधित कर यों बोले—"भिक्षुओ! अब मैं आप लोगों को **अवश्रुत** (आसक्तियुक्त) एवं **अनवश्रुत** (अनासक्तियुक्त) धर्मों के विषय में बताऊँगा। उसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो।" भिक्षुसङ्घ ने स्वीकार किया। तब आयुष्मान् महामोग्गल्लान ने यों धर्मोपदेश प्रारम्भ किया—

"आयुष्मानो! यह **अवश्रुत** कैसे होता है? आयुष्मानो! साधक भिक्षु संसार में चक्षु से प्रिय रूपों को देख कर उन में राग (आसक्ति) करने लगता है, तथा अप्रिय विषयों को देख कर खिन्न होता है। वह कायस्मृति न रखते हुए चञ्चल चित्त से साधना में प्रवृत्त होता

उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति...पे०...जिव्हाय रसं सायित्वा [R.185]...पे०...मनसा धम्मं विञ्ञाय पियरूपे धम्मे अधिमुच्चति, अप्पियरूपे धम्मे ब्यापज्जति, अनुपट्ठितकायस्सति च विहरति परित्तचेतसो, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञा-विमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति। अयं वुच्चति, आवुसो, भिक्खु अवस्सुतो चक्खुविञ्ञेय्येसु रूपेसु...पे०... अवस्सुतो जिव्हाविञ्ञेय्येसु रसेसु...पे०...अवस्सुतो मनोविञ्ञेय्येसु धम्मेसु। एवं-विहारिं चावुसो, भिक्खुं चक्खुतो चे पि नं मारो उपसङ्कमति, लभेथेव मारो ओतारं, लभेथ मारो आरम्मणं...पे०...जिव्हातो चे पि नं मारो उपसङ्कमति, लभेथेव मारो [B.391] ओतारं, लभेथ मारो आरम्मणं...पे०...मनतो चे पि नं मारो उपसङ्कमति, लभेथेव मारो ओतारं, लभेथ मारो आरम्मणं।

"सेय्यथापि, आवुसो, नळागारं वा तिणागारं वा सुक्खं कोलापं तेरोवस्सिकं। पुरत्थिमाय चे पि नं दिसाय पुरिसो आदित्ताय तिणुक्काय उपसङ्कमेय्य, लभेथेव अग्गि ओतारं, लभेथ अग्गि आरम्मणं; पच्छिमाय चे पि नं दिसाय पुरिसो आदित्ताय तिणुक्काय उपसङ्कमेय्य...पे०...उत्तराय चे पि नं दिसाय...दक्खिणाय चे पि नं दिसाय...हेट्ठिमतो चे पि नं...उपरिमतो चे पि नं...यतो कुतोचि चे पि नं पुरिसो आदित्ताय तिणुक्काय उपसङ्कमेय्य, लभेथेव अग्गि ओतारं लभेथ अग्गि आरम्मणं। एवमेव खो, आवुसो, एवंविहारिं भिक्खुं चक्खुतो चे पि नं मारो उपसङ्कमति लभेथेव मारो ओतारं, लभेथ मारो आरम्मणं...पे०...जिव्हातो चे पि नं मारो उपसङ्कमति...पे०...मनतो चे पि नं मारो उपसङ्कमति, लभेथेव मारो ओतारं, लभेथ मारो आरम्मणं। एवंविहारिं चावुसो, भिक्खुं रूपा अधिभंसु, न भिक्खु रूपे अधिभोसि; सद्दा भिक्खुं अधिभंसु, न भिक्खु सद्दे

है, अतः वह चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को यथार्थतः नहीं जान पाता, जिस से उस के समस्त अकुशल पापमय धर्म पूर्णतः निरुद्ध नहीं हो पाते। ...पूर्ववत्...जिह्वा से प्रिय रस को चख कर...मन से प्रिय धर्मों को जान कर उन में राग करने लगता है...पूर्ववत्...। भिक्षुओ ! ऐसा साधक भिक्षु चक्षुर्विज्ञेय रूपों में अवश्रुत कहा जाता है...मनोविज्ञेय धर्मों में अवश्रुत कहा जाता है। इस तरह के साधक पर मार चक्षु की ओर से आक्रमण करे तो उस पर विजय प्राप्त कर लेता है...पूर्ववत्...मनोधर्मों की ओर से...विजय प्राप्त कर लेता है।

"आयुष्मानो ! जैसे कोई शर या तृण की बनी हुई कोई पुरानी कुटिया हो, या कोई सूखा वृक्ष हो, वहाँ पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण किसी भी दिशा से आ कर कोई पुरुष अग्नियुक्त शलाका उस से स्पर्श करा दे तो उस को तत्काल अग्नि पकड़ लेगी तथा उसे भस्म कर देगी; इसी तरह उस मिथ्यासाधक भिक्षु पर पापी मार चक्षु की ओर से आक्रमण

अधिभोसि; गन्धा भिक्खुं अधिभंसु, न भिक्खु गन्धे [R.186] अधिभोसि; रसा भिक्खुं अधिभंसु, न भिक्खु रसे अधिभोसि; फोट्ठब्बा भिक्खुं अधिभंसु, न भिक्खु फोट्ठब्बे अधिभोसि; धम्मा भिक्खुं अधिभंसु, न भिक्खु धम्मे अधिभोसि। अयं [N.167] वुच्चतावुसो, भिक्खु रूपाधिभूतो, सद्दाधिभूतो, गन्धाधिभूतो, रसाधिभूतो, फोट्ठब्बाधिभूतो, धम्माधिभूतो, अधिभूतो, अनधिभू, अधिभंसु नं पापका अकुसला धम्मा सङ्किलेसिका पोनोभविका सदरा दुक्खविपाका आयतिं जातिजरामरणिया।' एवं खो, आवुसो, अवस्सुतो होति॥

''कथं चावुसो, **अनवस्सुतो** होति? इधावुसो, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा पियरूपे रूपे नाधिमुच्चति, अप्पियरूपे रूपे न ब्यापज्जति, उपट्ठितकायस्सति च विहरति अप्पमाणचेतसो, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति...पे०...जिव्हाय रसं सायित्वा...पे०... मनसा धम्मं विञ्ञाय पयरूपे धम्मे नाधिमुच्चति, अप्पियरूपे धम्मे न [B.392] ब्यापज्जति, उपट्ठितकायस्सति च विहरति अप्पमाणचेतसो, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति। अयं वुच्चतावुसो, भिक्खु अनवस्सुतो चक्खुविञ्ञेय्येसु रूपेसु...पे०... अनवस्सुतो मनोविञ्ञेय्येसु धम्मेसु। एवंविहारिं चावुसो, भिक्खुं चक्खुतो चे पि नं मारो उपसङ्कमति, नेव लभेथ मारो ओतारं, न लभेथ मारो आरम्मणं...पे०...जिव्हातो चे पि नं

करे...पूर्ववत्...मनोधर्मों की ओर से आक्रमण करे तो उस पर विजय प्राप्त कर लेता है। ऐसा साधक रूप से विजित, शब्द से विजित, गन्ध से...रस से...स्प्रष्टव्य से...मनोधर्मों से विजित हो जाता है, उन पर वह विजय प्राप्त नहीं कर सकता। उस पर क्लेशदायक, पुनर्जन्म देनेवाले, भयोत्पादक, दुःखजनक, पापमय अकुशल धर्म विजय पा लेते हैं जो कि आगे चल कर जाति, जरा, मरण आदि के प्रदायक हैं। आयुष्मानो! ऐसे साधक को 'अवश्रुत' कहते हैं। (१)

''तथा, आयुष्मानो! **अनवश्रुत** कैसे होता है? आयुष्मानो! यहाँ कोई साधक भिक्षु चक्षु से रूप को देख कर प्रिय लगने वाले रूपों को भी स्वीकार नहीं करता, तथा अप्रिय रूपों को देख कर व्यग्र (खिन्न) नहीं होता। वह उपस्थित कायस्मृति के साथ अप्रमत्त चित्त से साधनारत रहता है। वह चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को यथार्थतः जानता है, तब उस के समस्त पापमय अकुशल धर्म सर्वथा निरुद्ध हो जाते हैं।

''श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...काय...मन से धर्म को जान कर...पूर्ववत्...।

''आयुष्मानो! यह भिक्षु चक्षुर्विज्ञेय रूपों में...मनोविज्ञेय धर्मों में अनवश्रुत कहा

मारो उपसङ्कमति...पे०...मनतो चे पि नं मारो उपसङ्कमति, नेव लभेथ मारो ओतारं, न लभेथ मारो आरम्मणं।

[R.187] "सेय्यथापि, आवुसो, कूटागारं वा साला वा बहलमत्तिका अद्दावलेपना। पुरत्थिमाय चे पि नं दिसाय पुरिसो आदित्ताय तिणुक्काय उपसङ्कमेय्य, नेव लभेथ अग्गि ओतारं, न लभेथ अग्गि आरम्मणं...पच्छिमाय चे पि नं...पे०...उत्तराय चे पि नं... दक्खिणाय चे पि नं...हेट्ठिमतो चे पि नं...उपरिमतो चे पि नं...यतो कुतो चि चे पि नं पुरिसो आदित्ताय तिणुक्काय उपसङ्कमेय्य, नेव लभेथ अग्गि ओतारं, न लभेथ अग्गि आरम्मणं। एवमेव खो, आवुसो, एवंविहारिं भिक्खुं चक्खुतो चे पि नं मारो [N.168] उपसङ्कमति, नेव लभेथ मारो ओतारं, न लभेथ मारो आरम्मणं...पे०...मनतो चे पि नं मारो उपसङ्कमति, नेव लभेथ मारो ओतारं, न लभेथ मारो आरम्मणं। एवंविहारी चावुसो, भिक्खु रूपे अधिभोसि, न रूपा भिक्खुं अधिभंसु; सद्दे भिक्खु अधिभोसि, न सद्दा भिक्खुं अधिभंसु; गन्धे भिक्खु अधिभोसि, न गन्धा भिक्खुं अधिभंसु; रसे भिक्खु अधिभोसि, न रसा भिक्खुं अधिभंसु; फोट्ठब्बे भिक्खु अधिभोसि, न फोट्ठब्बा भिक्खुं अधिभंसु; धम्मे भिक्खु अधिभोसि, न धम्मा भिक्खुं अधिभंसु। अयं वुच्चतावुसो, भिक्खु रूपाधिभू, सद्दाधिभू, गन्धाधिभू, रसाधिभू, फोट्ठब्बाधिभू, धम्माधिभू, अधिभू, अनधिभूतो, अधिभोसि ते पापके अकुसले धम्मे सङ्किलेसिके पोनोभविके सदरे दुक्खविपाके आयतिं जातिजरामरणिये। एवं खो, आवुसो, अनवस्सुतो होती" ति॥

जाता है। ऐसे साधक पर पापी मार चक्षु की ओर से भी...मन की ओर से भी विजय नहीं प्राप्त कर सकता।

"जैसे, आयुष्मानो! कोई भवन या तृणशाला अभी नयी बने हों, उन पर किया हुआ मिट्टी का लेप अभी आर्द्र ही हो। ऐसे भवन या तृणशाला को कोई न पूर्व, न पश्चिम या न उत्तर और दक्षिण—किसी भी दिशा से अग्निदग्ध नहीं कर सकता। इसी तरह, आयुष्मानो! वह पापी मार ऐसे अनवश्रुत साधक पर चक्षु की ओर से...मन की ओर से कैसा भी आक्रमण करे वह उस पर कथमपि विजय नहीं प्राप्त कर सकता। ऐसा सफल साधक रूपों पर विजय प्राप्त कर लेता है, रूप उस पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते। ...मन के धर्मों पर वह विजय पा लेता है, मन के धर्म उस पर विजय नहीं पा सकता। ऐसा साधक रूपविजयी, शब्दविजयी, गन्धविजयी, रसविजयी, स्प्रष्टव्यविजयी तथा मनोधर्म-विजयी होता है। पापमय अकुशल धर्म उस पर कथमपि विजय प्राप्त नहीं कर सकते। वे

अथ खो भगवा वुट्ठहित्वा आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं आमन्तेसि—[B.393] "साधु साधु, मोग्गल्लान! साधु खो त्वं, मोग्गल्लान, भिक्खूनं अवस्सुतपरियायं च अनवस्सुतपरियायं च अभासी" ति।

२४९. इदमवोच आयस्मा महामोग्गल्लानो। समनुञ्ञो सत्था अहोसि। [R.188] अत्तमना ते भिक्खू आयस्मतो महामोग्गल्लानस्स भासितं अभिनन्दुं ति॥ •

२४४. दुक्खधम्मसुत्तं

२५०. यतो खो, भिक्खवे, भिक्खु सब्बेसं येव दुक्खधम्मानं समुदयं च अत्थङ्गमं च यथाभूतं पजानाति। तथा खो पनस्स कामा दिट्ठा होन्ति, यथास्स कामे पस्सतो यो कामेसु कामच्छन्दो कामस्नेहो काममुच्छा कामपरिळाहो सो नानुसेति। तथा खो पनस्स चारो च विहारो च अनुबुद्धो होति, यथा चरन्तं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा नानुसेन्ति।

"कथं च, भिक्खवे, भिक्खु सब्बेसं येव दुक्खधम्मानं समुदयं च अत्थङ्गमं च यथाभूतं पजानाति? 'इति रूपं, इति रूपस्स समुदयो, इति रूपस्स अत्थङ्गमो'; इति वेदना...पे०...इति सञ्ञा...इति सङ्खारा...'इति विञ्ञाणं, इति विञ्ञाणस्स समुदयो,

---

धर्म क्लेशप्रद...एवं जाति, जरा, मरण के उत्पादक हैं। आयुष्मानो! ऐसा साधक ही अनवश्रुत कहलाता है।" (२)

तब भगवान् ने सिंहशय्या से उठ कर आयुष्मान् महामोग्गल्लान को साधुवाद देते हुए कहा—"साधु, साधु, मोग्गल्लान! तुम ने बहुत ही उचित रीति से इस 'अवश्रुत' एवं 'अनवश्रुत' का व्याख्यान किया है।"

२४९. आयुष्मान् महामोग्गल्लान ने यह धर्मव्याख्यान किया। शास्ता ने भी उस का अनुमोदन किया। इसे सुन कर सन्तुष्टचित्त भिक्षुओं ने आयुष्मान् महामोग्गल्लान के भाषण का अभिनन्दन किया॥ •

२४४. दुःखधर्मसूत्र : : संयम एवं असंयम

२५०. ..."भिक्षुओ! जब साधक भिक्षु सभी दुःखधर्मों के समुदय एवं अस्तगमन को यथार्थतः जान लेता है तो कामभोगों के प्रति उस की ऐसी दृष्टि हो जाती है कि उन को देखने से उस के चित्त में किसी भी प्रकार की आसक्ति, स्नेह, मूर्च्छा (उनके प्रति व्यामोह), एवं परिदाह (ईर्ष्या) नहीं होते। उस का ऐसा आचार विचार होता है जिससे लोभ एवं दौर्मनस्य जैसे पापमय अकुशल धर्म उस के समीप आने का साहस नहीं करते।

"भिक्षुओ! कैसे वह साधक इन दुःखधर्मों के समुदयादि को यथार्थतः जान लेता है? रूप ऐसा है, रूप का समुदय एवं अस्तगमन ऐसा है; वेदना ऐसी है...संज्ञा ऐसी

इति विञ्ञाणस्स अत्थङ्गमो' ति—एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु सब्बेसं येव दुक्खधम्मानं [N.169] समुदयं च अत्थङ्गमं च यथाभूतं पजानाति। (१)

"कथं च, भिक्खवे, भिक्खुनो कामा दिट्ठा होन्ति, यथास्स कामे पस्सतो यो कामेसु कामच्छन्दो कामस्नेहो काममुच्छा कामपरिळाहो सो नानुसेति?

"सेय्यथापि, भिक्खवे, अङ्गारकासु साधिकपोरिसा पुण्णा अङ्गारानं वीतच्चिकानं वीतधूमानं। अथ पुरिसो आगच्छेय्य जीवितुकामो अमरितुकामो सुखकामो दुक्खपटिकूलो। तमेनं द्वे बलवन्तो पुरिसा नानाबाहासु गहेत्वा तं अङ्गारकासुं उपकड्ढेय्युं। सो इतिचीतिचेव कायं सन्नामेय्य। तं किस्स हेतु? ञातं हि, भिक्खवे, तस्स [R.189] पुरिसस्स—'इमं चाहं अङ्गारकासुं पपतिस्सामि ततोनिदानं मरणं वा [B.394] निगच्छिस्सामि मरणमत्तं वा दुक्खं' ति। एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खुना अङ्गारकासूपमा कामा दिट्ठा होन्ति, यथास्स कामे पस्सतो यो कामेसु कामच्छन्दो कामस्नेहो काममुच्छा कामपरिळाहो सो नानुसेति। (२)

"कथं च, भिक्खवे, भिक्खुनो चारो च विहारो च अनुबुद्धो होति, यथा चरन्तं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा नानुस्सवन्ति?

है...संस्कार ऐसा है...विज्ञान ऐसा है, विज्ञान का समुदय एवं अस्तगमन ऐसा है'—यों, भिक्षुओ! वह साधक भिक्षु सभी दुःखधर्मों के समुदय एवं अस्तगमन को यथार्थतः जानता है।

"कैसे भिक्षुओ! उस साधक को इन कामगुणों के प्रति ऐसी दृष्टि होती है कि वह इन कामगुणों को देख कर भी इनके प्रति उस को छन्द, स्नेह, मूर्च्छा एवं परिदाह नहीं होते?"

"जैसे, भिक्षुओ! कहीं एक पुरुष लम्बाई से अधिक गहरी धधकती, लपलपाती अग्नि की राशि हो। वहाँ ऐसा कोई पुरुष आये जो जीना चाहता हो, उस की मरने की इच्छा न हो; जो सुख ही चाहता हो, दुःख नहीं। तब कोई दो बलवान् पुरुष वहाँ आ कर उस की दोनों बाहुओं को बलपूर्वक पकड़ कर उस को बार बार अग्निराशि पर ले जायँ। तब वह अपने शरीर के अङ्गों को सङ्कुचित करे। वह क्यों? वह इसलिये कि वह जानता है कि यदि मैं इस अग्निराशि में गिर गया तो मैं मर जाऊँगा, या मरण के समान दुःख पाऊँगा। इसी तरह इस साधक भिक्षु की उन कामगुणों के प्रति इस अग्निराशि के समान ही दृष्टि होती है कि यदि मैं इन कामगुणों में आसक्त हो गया तो मेरा मरण अवश्यम्भावी है। तब उस के उन कामों के प्रति छन्द, स्नेह, मूर्च्छा एवं परिदाह पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो बहुकण्टकं दायं पविसेय्य। तस्स पुरतो पि कण्टको, पच्छतो पि कण्टको, उत्तरतो पि कण्टको, दक्खिणतो पि कण्टको, हेट्ठतो पि कण्टको, उपरितो पि कण्टको। सो सतो व अभिक्कमेय्य, सतो व पटिक्कमेय्य—'मा मं कण्टको' ति। एवमेव खो, भिक्खवे, यं लोके पियरूपं सातरूपं, अयं वुच्चति अरियस्स विनये 'कण्टको' ति। इति विदित्वा संवरो च असंवरो च वेदितबब्बो। (३)

''कथं च, भिक्खवे, **असंवरो** होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा पियरूपे रूपे अधिमुच्चति, अप्पियरूपे रूपे ब्यापज्जति, अनुपट्ठितकायस्सति च विहरति परित्तचेतसो, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति...पे०...जिव्हाय रसं सायित्वा ...पे०...मनसा धम्मं विञ्ञाय पियरूपे धम्मे अधिमुच्चति, अप्पियरूपे धम्मे [N.170] ब्यापज्जति, अनुपट्ठितकायस्सति च विहरति परित्तचेतसो, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञा-विमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति। एवं खो, भिक्खवे, असंवरो होति।

''कथं च, भिक्खवे, संवरो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा

''फिर, भिक्षुओ! उस साधक का आचार विचार ऐसा कैसे हो जाता है कि उस को लोभ एवं दौर्मनस्य आदि पापमय अकुशल धर्म किसी भी प्रकार से कष्ट नहीं दे पाते?

''जैसे, भिक्षुओ! कोई पुरुष किसी कण्टकाकीर्ण झाड़ियों वाले अरण्य में प्रवेश कर जाय, जिसमें आगे भी, पीछे भी, उत्तर भी, दक्षिण भी, नीचे भी, ऊपर भी कण्टक ही कण्टक हों। वह वहाँ बहुत सावधान एवं स्मृतिपूर्वक चले कि मुझे कोई कण्टक व्यथित न कर दे। इसी तरह, भिक्षुओ! यहाँ जो प्रिय एवं मनोमोहक रूप हैं, वे हमारे इस आर्यविनय में 'कण्टक' कहे जाते हैं। इस बात को समझते हुए 'संवर' (संयम) एवं 'असंवर' (असंयम) पर विचार करना चाहिये।

''भिक्षुओ! यह **असंवर** कैसे होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु चक्षु से रूप को देख कर प्रिय एवं मनोमोहक रूपों में आसक्त होता है, अप्रिय एवं कष्टप्रद रूपों को देख कर व्यग्र एवं खिन्न होता है। वह कायस्मृति न रखते हुए चञ्चल चित्त से साधना में प्रवृत्त होता है, अत: वह चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को यथार्थत: नहीं जान पाता, जिन से उस के वे समस्त पापमय अकुशल धर्म निरुद्ध हो जाते, श्रोत्र से...घ्राण से...जिह्वा से...काय से...मन से प्रिय धर्मों को जान कर...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! इस तरह 'असंवर' होता है।

''भिक्षुओ! कैसे **संवर** होता है? यहाँ कोई भिक्षु चक्षु से रूप को देख कर प्रिय इष्ट

पियरूपे रूपे नाधिमुच्चति, अप्पियरूपे रूपे न ब्यापज्जति, उपट्ठितकायस्सति च विहरति अप्पमाणचेतसो, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना [R.190] पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति...पे०...जिव्हाय रसं सायित्वा ...पे०...मनसा धम्मं विञ्ञाय पियरूपे धम्मे नाधिमुच्चति, अप्पियरूपे धम्मे न ब्यापज्जति, उपट्ठितकायस्सति च विहरति अप्पमाणचेतसो, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञा- [B.395] विमुत्तिं यथाभूतं पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति। एवं खो, भिक्खवे, संवरो होति।

''तस्स चे, भिक्खवे, भिक्खुनो एवं चरतो एवं विहरतो कदाचि करहचि सतिसम्मोसा उप्पज्जन्ति पापका अकुसला धम्मा सरसङ्कप्पा संयोजनिया, दन्धो, भिक्खवे, सतुप्पादो। अथ खो नं खिप्पमेव पजहति विनोदेति ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो दिवसंसन्तत्ते अयोकटाहे द्वे वा तीणि वा उदक-फुसितानि निपातेय्य। दन्धो, भिक्खवे, उदकफुसितानं निपातो, अथ खो नं खिप्पमेव परिक्खयं परियादानं गच्छेय्य। एवमेव खो, भिक्खवे, तस्स चे भिक्खुनो एवं चरतो एवं विहरतो कदाचि करहचि सतिसम्मोसा उप्पज्जन्ति पापका अकुसला धम्मा सरसङ्कप्पा संयोजनिया, दन्धो, भिक्खवे, सतुप्पादो। अथ खो नं खिप्पमेव पजहति विनोदेति ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खुनो चारो च विहारो च अनुबुद्धो होति; यथा चरन्तं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा नानुस्सवन्ति।

एवं मनोमोहक रूपों में कोई आसक्ति नहीं करता, तथा अप्रिय रूपों से व्यग्र तथा उद्विग्न नहीं होता। वह स्मृति सम्प्रजन्य के साथ स्थिर चित्त से साधना में प्रवृत्त होता, अत: वह चेतोविमुक्ति को यथार्थत: जान पाता है, जिनसे वे समस्त पापमय अकुशल धर्म निरुद्ध हो जाते हैं। ...पूर्ववत्...जिह्वा से रस चख कर, ...मन से धर्मों को जान कर...निरुद्ध हो जाते हैं। भिक्षुओ! इस तरह 'संवर' होता है।

''भिक्षुओ! इस प्रकार रहते हुए साधक को कभी कहीं असावधानी से बन्धनों में डालने वाले, चञ्चल सङ्कल्प वाले पापमय अकुशल धर्म उर्त्पन्न भी हो जायँ तो वह उन्हें शीघ्र ही नष्ट कर डालता है, निरुद्ध कर डालता है।

''भिक्षुओ! जैसे कोई पुरुष दिन भर धूप में तपे लौह के कडाहे में जल की दो तीन बूँद डाले, वे बूँदें कडाहे में गिरते ही जल कर उड़ जायँ; भिक्षुओ! इसी तरह उस भिक्षु का आचार विचार ऐसा होता है कि उस को वे अकुशल धर्म उत्पन्न ही नहीं होते,

तं चे, भिक्खवे, भिक्खुं एवं चरन्तं एवं विहरन्तं राजानो वा राजमहामत्ता वा [N.171] मित्ता वा अमच्चा वा ञाती वा सालोहिता वा, भोगेहि अभिहट्ठुं पवारेय्युं—'एहि, भो पुरिस, किं ते इमे कासावा अनुदहन्ति, किं मुण्डो कपालमनुचरसि, एहि हीनायावत्तित्वा भोगे च भुञ्जस्सु, पुञ्ञानि च करोही' ति, सो वत, भिक्खवे, भिक्खु एवं चरन्तो एवं विहरन्तो सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तिस्सती ति नेतं ठानं विज्जति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, गङ्गा नदी पाचीननिन्ना पाचीनपोणा पाचीन-[R.191] पब्भारा। अथ महाजनकायो आगच्छेय्य कुद्दालपिटकं आदाय—'मयं इमं गङ्गं नदिं पच्छानिन्नं करिस्साम पच्छापोणं पच्छापब्भारं' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु खो सो महाजनकायो गङ्गं नदिं पच्छानिन्नं करेय्य पच्छापोणं पच्छापब्भारं" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तं किस्स हेतु"?

"गङ्गा, भन्ते, नदी पाचीननिन्ना पाचीनपोणा पाचीनपब्भारा; सा न सुकरा पच्छानिन्ना कातुं पच्छापोणा पच्छापब्भारा। यावदेव च पन सो महाजनकायो किलमथस्स विघातस्स भागी अस्सा" ति।

कभी कहीं असावधानी से बन्धनों में डालने वाले...अकुशल धर्म उत्पन्न हो भी जायँ तो उन्हें वह तत्काल निरुद्ध कर लेता है, नष्ट कर देता है।

"भिक्षुओ! यदि इस प्रकार के आचार विचार वाले साधक को कोई राजा, मन्त्री, मित्र, परामर्शदाता या सम्बन्धी सांसारिक प्रलोभन देकर बुलावे और कहे—'अरे! इन काषाय वस्त्रों में क्या रखा है! क्या शिर मुँडाये लोक में घूम रहे हो! आओ! पुनः गृहस्थ धर्म में लौट कर इन पाँचों कामगुणों का भोग करो! साथ ही साथ अपनी अर्जित सम्पत्ति से दान आदि द्वारा पुण्य भी करते रहो। तो, भिक्षुओ! वह साधक इन लोगों के परामर्श से इस धर्मशिक्षा का त्याग कर पुनः गृहस्थ में लौट जायगा—यह सम्भव नहीं है।

"जैसे, भिक्षुओ! गङ्गा नदी पूर्व दिशा की ओर बहती है, उस का प्रवाह उधर ही रहता है। परन्तु वहाँ कभी कोई बड़ा जनसमुदाय इस सङ्कल्प के साथ फावड़ा तथा छाबड़ी साथ ले कर आवे कि वह इस गङ्गा नदी का प्रवाह पश्चिम दिशा की ओर कर देगा। तो क्या, भिक्षुओ! वह जनसमुदाय ऐसा करने में समर्थ हो सकेगा?"

"नहीं, भन्ते!"

"ऐसा क्यों?"

"भन्ते! यह गङ्गा नदी बहुत काल से पूर्वाभिमुख ही बह रही है; अब इस का प्रवाह पश्चिम की तरफ मोड़ना सम्भव नहीं है, अपि तु ऐसा करता हुआ वह जनसमुदाय ही वृथा कष्ट तथा श्रम का भागी होगा।"

"एवमेव खो, भिक्खवे, तं चे भिक्खुं एवं चरन्तं एवं विहरन्तं राजानो वा [B.396] राजमहामत्ता वा मित्ता वा अमच्चा वा ञाती वा सालोहिता वा, भोगेहि अभिहट्ठुं पवारेय्युं—'एहि, भो पुरिस, किं ते इमे कासावा अनुदहन्ति, किं मुण्डो कपाल-मनुचरसि, एहि हीनायावत्तित्वा भोगे च भुञ्जस्सु, पुञ्ञानि च करोही' ति! सो वत, भिक्खवे, भिक्खु एवं चरन्तो एवं विहरन्तो सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तिस्सती ति नेतं ठानं विज्जति। तं किस्स हेतु? यं हि तं, भिक्खवे, चित्तं दीघरत्तं विवेकनिन्नं विवेकपोणं विवेकपब्भारं, तथा हीनायावत्तिस्सती ति नेतं ठानं विज्जती" ति॥ (४) •

२४५. किंसुकोपमसुत्तं

२५१. अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येनञ्ञतरो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं एतदवोच—"कित्तावत्ता नु खो, आवुसो, भिक्खुनो दस्सनं सुविसुद्धं होती" ति?

[N.172, R.192] "यतो खो, आवुसो, भिक्खु छन्नं फस्सायतनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च यथाभूतं पजानाति, एत्तावता खो, आवुसो, भिक्खुनो दस्सनं सुविसुद्धं होती" ति। (१)

अथ खो सो भिक्खु असन्तुट्ठो तस्स भिक्खुस्स पञ्हवेय्याकरणेन, येनञ्ञतरो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं एतदवोच—"कित्तावत्ता नु खो, आवुसो, भिक्खुनो दस्सनं सुविसुद्धं होती" ति?

"यतो खो, आवुसो, भिक्खु पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं समुदयं च अत्थङ्गमं च यथाभूतं पजानाति, एत्तावता खो, आवुसो, भिक्खुनो दस्सनं सुविसुद्धं होती" ति। (२)

"भिक्षुओ! ऐसे आचार विचार वाले साधक को यदि कोई राजा या उस का मन्त्री...पूर्ववत्...वह इस धर्मशिक्षा को छोड़ कर पुनः गृहस्थ धर्म में लौट जायगा—यह सम्भव नहीं है"॥ •

२४५. किंसुकोपमसूत्र : : दर्शनशुद्धि

२५१. ...तब कोई भिक्षु किसी दूसरे भिक्षु के पास गया...यों बोला--"भिक्षु! किसी साधक का दर्शन (परमार्थ ज्ञान) किस प्रकार शुद्ध होता है?"

"आयुष्मन्! जब वह (साधक) इन छह स्पर्शायतन का उत्पाद एवं विनाश यथार्थतः जान लेता है, भिक्षु! तब उस साधक का दर्शन-ज्ञान परिशुद्ध हो जायगा।"

परन्तु प्रथम भिक्षु उस के इस उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हुआ, तथा किसी तीसरे भिक्षु के पास गया तथा उस से भी अपनी उपर्युक्त जिज्ञासा प्रकट की। उस ने यह उत्तर दिया—

अथ खो सो भिक्खु असन्तुट्ठो तस्स भिक्खुस्स पञ्हवेय्याकरणेन, येनञ्ञतरो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं एतदवोच—''कित्तावत्ता नु खो, आवुसो, भिक्खुनो दस्सनं सुविसुद्धं होती'' ति?

''यतो खो, आवुसो, भिक्खु चतुन्नं महाभूतानं समुदयं च अत्थङ्गमं च यथाभूतं पजानाति, एत्तावता खो, आवुसो, भिक्खुनो दस्सनं सुविसुद्धं होती'' ति। (३)

अथ खो सो भिक्खु असन्तुट्ठो तस्स भिक्खुस्स पञ्हवेय्याकरणेन, येनञ्ञतरो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं एतदवोच—''कित्तावत्ता नु खो, आवुसो, भिक्खुनो दस्सनं सुविसुद्धं होती'' ति? [B.397]

''यतो खो, आवुसो, भिक्खु यं किञ्चि समुदयधम्मं, सब्बं तं निरोधधम्मं ति यथाभूतं पजानाति, एत्तावता, खो, आवुसो, भिक्खुनो दस्सनं सुविसुद्धं होती'' ति। (४)

अथ खो सो भिक्खु असन्तुट्ठो तस्स भिक्खुस्स पञ्हवेय्याकरणेन, येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—''इधाहं, भन्ते, येनञ्ञतरो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं एतदवोच—'कित्तावत्ता नु खो, आवुसो, भिक्खुनो दस्सनं सुविसुद्धं होती' ति? एवं वुत्ते, भन्ते, सो भिक्खु मं एतदवोच—'यतो खो, आवुसो, भिक्खु छन्नं फस्सायतनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च यथाभूतं पजानाति, एत्तावता खो, आवुसो, भिक्खुनो दस्सनं सुविसुद्धं होती' ति। अथ ख्वाहं, भन्ते, असन्तुट्ठो तस्स भिक्खुस्स पञ्हवेय्याकरणेन, येनञ्ञतरो भिक्खु तेनुपसङ्कमिं; [R.193]

''आयुष्मन्! जो साधक भिक्षु पाँचों उपादानस्कन्धों के उत्पाद-विनाश को यथार्थतः जान लेता है तब उस साधक का दर्शनज्ञान परिशुद्ध हो जाता है।''

परन्तु प्रथम भिक्षु उस के इस उत्तर से भी सन्तुष्ट नहीं हुआ, अतः वह किसी अन्य भिक्षु के पास गया, उस से भी यही प्रश्न किया, तब उस भिक्षु ने यह उत्तर दिया—

''आयुष्मन्! जब कोई साधक चार महाभूतों के समुदय एवं विनाश को यथार्थतः जान लेता है तो उस का दर्शनज्ञान विशुद्ध हो जाता है।''

परन्तु प्रथम भिक्षु इस उत्तर से भी सन्तुष्ट नहीं हुआ, तब वह किसी अन्य भिक्षु के पास गया, तथा उस से भी यही जिज्ञासा प्रकट की। उस अन्य भिक्षु ने यह उत्तर दिया—

''आयुष्मन्! जब साधक भिक्षु 'जिस का उत्पाद हुआ है उस का विनाश अवश्य होगा'—यह यथार्थतः जान लेता है, तब उसका दर्शनज्ञान सुविशुद्ध हो जाता है।''

तब वह भिक्षु, इन सभी उत्तरों से असन्तुष्ट होता हुआ भगवान् के सम्मुख गया...उन से यह निवेदन प्रकट किया—''भन्ते! आज मैं एक भिक्षु के पास गया

उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं एतदवोच—'कित्तावत्ता नु खो, आवुसो, भिक्खुनो दस्सनं [N.173] सुविसुद्धं होती' ति? एवं वुत्ते, भन्ते, सो भिक्खु मं एतदवोच—'यतो खो, आवुसो, भिक्खु पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं...पे०...चतुन्नं महाभूतानं समुदयं च अत्थङ्गमं च यथाभूतं पजानाति...पे०...यं किञ्चि समुदयधम्मं, सब्बं तं निरोधधम्मं ति यथाभूतं पजानाति, एत्तावता खो, आवुसो, भिक्खुनो दस्सनं सुविसुद्धं होती' ति। अथ ख्वाहं, भन्ते, असन्तुट्ठो तस्स भिक्खुस्स पञ्हवेय्याकरणेन, येन भगवा तेनुपसङ्कमिं। कित्तावत्ता नु खो, भन्ते, भिक्खुनो दस्सनं सुविसुद्धं होती'' ति?

''सेय्यथापि, भिक्खु, पुरिसस्स किंसुको अदिट्ठपुब्बो अस्स। सो येनञ्ञतरो पुरिसो किंसुकस्स दस्सावी तेनुपसङ्कमेय्य; उपसङ्कमित्वा तं पुरिसं एवं वदेय्य—'कीदिसो, भो पुरिस, किंसुको' ति? सो एवं वदेय्य—'काळको खो, अम्भो पुरिस, किंसुको—सेय्यथापि झामखाणू' ति। तेन खो पन, भिक्खु, समयेन तादिसोवस्स किंसुको यथापि तस्स पुरिसस्स दस्सनं।

''अथ खो, सो भिक्खु, पुरिसो असन्तुट्ठो तस्स पुरिसस्स पञ्हवेय्याकरणेन, येनञ्ञतरो पुरिसो किंसुकस्स दस्सावी तेनुपसङ्कमेय्य; उपसङ्कमित्वा तं पुरिसं एवं वदेय्य—'कीदिसो, पुरिस, किंसुको' ति? सो एवं वदेय्य—'लोहितको खो, अम्भो [B.398] पुरिस, किंसुको—सेय्यथापि मंसपेसी' ति। तेन खो पन, भिक्खु, समयेन तादिसोवस्स किंसुको यथापि तस्स पुरिसस्स दस्सनं।

''अथ खो सो भिक्खु पुरिसो असन्तुट्ठो तस्स पुरिसस्स पञ्हवेय्याकरणेन,

---

...पूर्ववत्...*(चारों प्रश्न-उत्तरों का विस्तार पुन: कर लें।)* इन के किसी भी उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हूँ। अत: अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिये आप की सेवा में आया हूँ। भन्ते! आप ही बतायें कि कैसे किसी साधक का दर्शनज्ञान सुविशुद्ध हो पाता है?

''जैसे, भिक्षु! किसी पुरुष ने किंशुक (ढाक) वृक्ष तथा उसका पुष्प न देखा हो, वह किसी अन्य पुरुष के पास जाय तथा किंशुक के विषय में अपनी जिज्ञासा प्रकट करे—'भो पुरुष! किंशुक कैसा होता है?'' वह उसे उत्तर दे—'किंशुक ऐसा काला होता है, जैसे कोई जला हुआ स्थाणु हो।' क्यों कि इस पुरुष ने किंशुक का ऐसा ही रूप देखा होगा, अत: उस ने अपने प्रथम दर्शन के आधार पर यह उत्तर दिया।

''परन्तु वह पुरुष इस उत्तर को उचित न मान कर इस से असन्तुष्ट होता हुआ किसी अन्य पुरुष के पास गया, उस से भी किंशुक के विषय में अपनी जिज्ञासा प्रकट की, तब इसने उत्तर दिया—'अरे भाई! वह तो लोहित वर्ण (लाल रंग) का होता है, जैसे—मांसपेशी!' उस ने किंशुक का वही रूप देखा होगा, अत: वैसा ही बता दिया।

येनञ्ञतरो पुरिसो किंसुकस्स दस्सावी तेनुपसङ्कमेय्य; उपसङ्कमित्वा तं पुरिसं एवं वदेय्य—'कीदिसो, भो पुरिस, किंसुको' ति? सो एवं वदेय्य—'ओचीरकजातो खो, अम्भो पुरिस, किंसुको आदिन्नसिपाटिको—सेय्यथापि सिरीसो' ति। तेन खो पन, भिक्खु, समयेन तादिसोवस्स किंसुको, यथापि तस्स पुरिसस्स दस्सनं। [R.194]

"अथ खो सो भिक्खु पुरिसो असन्तुट्ठो तस्स पुरिसस्स पञ्हवेय्याकरणेन, येनञ्ञतरो पुरिसो किंसुकस्स दस्सावी तेनुपसङ्कमेय्य; उपसङ्कमित्वा तं पुरिसं एवं वदेय्य—'कीदिसो, भो पुरिस, किंसुको' ति? सो एवं वदेय्य—'बहलपत्तपलासो सन्दच्छायो खो, अम्भो पुरिस, किंसुको—सेय्यथापि निग्रोधो' ति। तेन खो पन, भिक्खु, समयेन तादिसोवस्स किंसुको, यथापि तस्स पुरिसस्स दस्सनं। एवमेव [N.174] खो, भिक्खु, यथा यथा अधिमुत्तानं तेसं सप्पुरिसानं दस्सनं सुविसुद्धं होति, तथा तथा खो तेहि सप्पुरिसेहि ब्याकतं।

"सेय्यथापि, भिक्खु, रञ्ञो पच्चन्तिमं नगरं दळ्हुद्धापं दळ्हपाकारतोरणं छद्वारं। तत्रस्स दोवारिको पण्डितो ब्यत्तो मेधावी, अञ्ञातानं निवारेता, ञातानं पवेसेता। पुरत्थिमाय दिसाय आगन्त्वा सीघं दूतयुगं तं दोवारिकं एवं वदेय्य—'कहं, भो पुरिस, इमस्स नगरस्स नगरस्सामी' ति? सो एवं वदेय्य—'एसो, भन्ते, मज्झे सिङ्घाटके

"परन्तु वह पुरुष इस उत्तर से भी सन्तुष्ट न हुआ, अत: वह किसी अन्य पुरुष के पास गया, तथा उस से भी उसी विषय में अपनी जिज्ञासा प्रकट की, तब इसने उत्तर दिया—'अरे! वह तो पुष्प रूप में खिल कर नीचे लटका रहता है, जैसे—शिरीषपुष्प।' उस ने भी प्रथम दर्शन में जैसा देखा होगा, वैसा ही आज बता दिया।

"परन्तु वह पुरुष इस उत्तर से भी असन्तुष्ट रहता हुआ किसी अन्य पुरुष के पास गया...जिज्ञासा प्रकट की। तब इस अन्य पुरुष ने उत्तर दिया—'किंशुक वृक्ष की शाखाएँ तथा पत्र बहुत अधिक सघन (बहल) होते हैं, तथा इस की छाया भी घनी होती है। जैसे—वटवृक्ष।' भिक्षु! उस समय उस उत्तरदाता भिक्षु ने वैसा ही कोई वृक्ष देखा होगा, जैसा उस ने उस को बताया है। इसी तरह, जैसा जैसा उन पुरुषों का ज्ञान था वैसा वैसा उन्होंने तुम को बता दिया।

"जैसे, भिक्षु! किसी राजा के राज्य की सीमा पर उस का कोई दृढ़ प्राकारवाला, दृढ़ नींववाला तथा छह द्वार वाला कोई नगर हो। उस के प्रधान द्वार पर कोई चतुर, बुद्धिमान्, पण्डित द्वारपाल हो जो मूर्खों का उस नगर में प्रवेश रोक दे तथा बुद्धिमानों को ही उस में प्रविष्ट होने दे। उस समय कोई दो दूत शीघ्र पूर्व दिशा से आकर उस से पूछें—'द्वारपाल! इस नगर का स्वामी कहाँ है?' 'वे मध्य चौक में विराजमान हैं।' तब वे दोनों

निसिन्नो' ति। अथ खो तं सीघं दूतयुगं नगरस्सामिकस्स यथाभूतं वचनं निय्यातेत्वा यथागतमग्गं पटिपज्जेय्य। पच्छिमाय दिसाय आगन्त्वा सीघं दूतयुगं...पे०...उत्तराय दिसाय...दक्खिणाय दिसाय आगन्त्वा सीघं दूतयुगं तं दोवारिकं एवं वदेय्य—'कहं, भो पुरिस, इमस्स नगरस्सामी' ति? सो एवं वदेय्य—'एसो, भन्ते, मज्झे सिङ्घाटके निसिन्नो' ति। अथ खो तं सीघं दूतयुगं नगरस्सामिकस्स यथाभूतं वचनं निय्यातेत्वा यथागतमग्गं पटिपज्जेय्य।

[B.399] "उपमा खो म्यायं, भिक्खु, कता अत्थस्स विञ्ञापनाय। अयं चेत्थ अत्थो—

नगरं ति खो, भिक्खु, इमस्सेतं चातुम्महाभूतिकस्स कायस्स अधिवचनं मातापेत्तिकसम्भवस्स ओदनकुम्मासूपचयस्स अनिच्चुच्छादनपरिमद्दनभेदनविद्धंसनधम्मस्स।

छ द्वारा ति खो, भिक्खु, छन्नेतं अज्झत्तिकानं आयतनानं अधिवचनं।

दोवारिको ति खो, भिक्खु, सतिया एतं अधिवचनं।

सीघं दूतयुगं ति खो, भिक्खु, समथविपस्सनानेतं अधिवचनं।

नगरस्सामी ति खो, भिक्खु, विञ्ञाणस्सेतं अधिवचनं।

मज्झे सिङ्घाटको ति खो, भिक्खु, चतुन्नेतं महाभूतानं अधिवचनं—पठवीधातुया, आपोधातुया, तेजोधातुया, वायोधातुया।

दूत नगरस्वामी के विषय में यथार्थ (सत्य समाचार) जान कर पुनः जैसे आये थे वैसे ही लौट जायँ। इसी तरह पश्चिम दिशा...उत्तर दिशा...दक्षिण दिशा से...पूर्ववत्...पुनः लौट जायँ।

"भिक्षु! मैने तुम को अपनी बात समझाने के लिये यह दृष्टान्त दिया है। इस का स्पष्ट अर्थ यों समझो—

"भिक्षु! यहाँ **नगर** से तात्पर्य है—इस का यह चातुर्महाभूतिक काय। जो कि मातापिता के रजवीर्य से उत्पन्न हुआ है, दाल-भात खाने से वृद्धिङ्गत हुआ है, यह अनित्य है, जिसे स्नान, उबटन आदि से दर्शनीय बनाये रखा जाता है, तथा इस का नष्ट होना ही स्वभाव है।

"भिक्षु! **छह द्वार** से तात्पर्य है—छह आध्यात्मिक आयतन।

"भिक्षु! **दौवारिक** से तात्पर्य है—स्मृति।

"भिक्षु! **शीघ्र दूतयुग** से तात्पर्य है—शमथ एवं विपश्यना।

"भिक्षु! **नगरस्वामी** से तात्पर्य है—विज्ञान।

"भिक्षु! **मध्य चौक** से तात्पर्य है—चार महाभूत—पृथ्वी, अप्, तेज एवं वायुधातु।

यथाभूतं वचनं ति खो, भिक्खु, निब्बानस्सेतं अधिवचनं।

यथागतमग्गो ति खो, भिक्खु, अरियस्सेतं अट्ठङ्गिकस्स मग्गस्स अधिवचनं, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठिया...पे०...सम्मासमाधिस्सा'' ति॥

●

२४६. वीणोपमसुत्तं

२५२. ''यस्स कस्सचि, भिक्खवे, भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा चक्खुविञ्ञेय्येसु रूपेसु उप्पज्जेय्य छन्दो वा रागो वा दोसो वा मोहो वा पटिघं वा पि [N.175] चेतसो, ततो चित्तं निवारेय्य। सभयो चेसो मग्गो सप्पटिभयो च सकण्टको च सगहनो च उम्मग्गो च कुम्मग्गो च दुहितिको च। असप्पुरिससेवितो चेसो मग्गो, न चेसो मग्गो सप्पुरिसेहि सेवितो। न त्वं एतं अरहसी ति। ततो चित्तं निवारये। चक्खुविञ्ञेय्येहि रूपेहि...पे०...यस्स कस्सचि, भिक्खवे, भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा जिव्हाविञ्ञेय्येसु रसेसु...पे०...मनोविञ्ञेय्येसु धम्मेसु उप्पज्जेय्य छन्दो वा रागो वा दोसो वा मोहो वा पटिघं वा पि चेतसो ततो चित्तं निवारेय्य। सभयो चेसो मग्गो सप्पटिभयो च सकण्टको च सगहनो च उम्मग्गो च कुम्मग्गो च दुहितिको च। असप्पुरिससेवितो चेसो मग्गो, न चेसो मग्गो सप्पुरिसेहि सेवितो। न त्वं एतं अरहसी ति। ततो चित्तं निवारये मनोविञ्ञेय्येहि धम्मेहि।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, किट्ठं सम्पन्नं। किट्ठारक्खो च पमत्तो, गोणो च किट्ठादो अदुं किट्ठं ओतरित्वा यावदत्थं मदं आपज्जेय्य पमादं आपज्जेय्य; एवमेव खो, भिक्खवे,

---

''भिक्षु! **यथार्थ ज्ञान** से तात्पर्य है—निर्वाण।

''भिक्षु! **यथागत मार्ग** से तात्पर्य है—आर्यअष्टाङ्गिक मार्ग, सम्यग्दृष्टि... सम्यक्समाधि॥''

●

२४६. वीणोपमसूत्र : : रूप आदि की गवेषणा निष्प्रयोजन

२५२. ...''भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षु या भिक्षुणी के चित्त में चक्षुर्विज्ञेय रूपों के प्रति छन्द, राग, द्वेष, मोह, ईर्ष्या उत्पन्न होती हो, वहाँ से चित्त को रोकना चाहिये; क्यों कि यह मार्ग भयप्रद है, कण्टकाकीर्ण है, गहन है, ऊँचा नीचा है, कुमार्ग है, सङ्कट में डालने वाला है, इस पर दुष्ट लोग ही चलते हैं, सज्जन नहीं। तुम्हें इस मार्ग पर चलना उचित नहीं। अत: उन चक्षुर्विज्ञेय रूपों से अपने चित्त को हटाओ। ...जिस किसी भिक्षु या भिक्षुणी के चित्त में जिह्वाविज्ञेय रसों में...मनोविज्ञेय धर्मों के प्रति छन्द, राग, द्वेष, मोह एवं ईर्ष्या...पूर्ववत्...अपने चित्त को रोको।

''जैसे, भिक्षुओ! किसी किसान का बोया हुआ खेत शस्यसम्पन्न हो गया हो, परन्तु उस का रक्षक किसान आलसी हो, उस के बैल इस खेत से उस खेत में उगे हुए

[R.196] अस्सुतवा पुथुज्जनो छसु फस्सायतनेसु असंवुतकारी पञ्चसु कामगुणेसु [B.400] यावदत्थं मदं आपज्जति पमादं आपज्जति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, किट्ठं सम्पन्नं। किट्ठारक्खो च अप्पमत्तो, गोणो च किट्ठादो अदुं किट्ठं ओतरेय्य। तमेनं किट्ठारक्खो नासायं सुग्गहितं गण्हेय्य। नासायं सुग्गहितं गहेत्वा उपरिघटायं सुनिग्गहितं निग्गण्हेय्य। उपरिघटायं सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा दण्डेन सुताळितं ताळेय्य। दण्डेन सुताळितं ताळेत्वा ओसज्जेय्य। दुतियं पि खो, भिक्खवे...पे०...ततियं पि खो, भिक्खवे, गोणो किट्ठादो अदुं किट्ठं ओतरेय्य। तमेनं किट्ठारक्खो नासायं सुग्गहितं गण्हेय्य। नासायं सुग्गहितं गहेत्वा उपरिघटायं सुनिग्गहितं निग्गण्हेय्य। उपरिघटायं सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा दण्डेन सुताळितं ताळेय्य। दण्डेन सुताळितं ताळेत्वा ओसज्जेय्य। एवं हि सो भिक्खवे, गोणो किट्ठादो गामगतो वा [N.176] अरञ्ञगतो वा, ठानबहुलो वा अस्स निसज्जबहुलो वा न तं किट्ठं पुन ओतरेय्य—तमेव पुरिमं दण्डसम्फस्सं समनुस्सरन्तो। एवमेव खो, भिक्खवे, यतो खो भिक्खुनो छसु फस्सायतनेसु चित्तं उदुजितं होति सुदुजितं, अज्झत्तमेव सन्तिट्ठति, सन्निसीदति, एकोदि होति, समाधियति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, रञ्ञो वा राजमहामत्तस्स वा वीणाय सद्दो अस्सुतपुब्बो अस्स। सो वीणासद्दं सुणेय्य। सो एवं वदेय्य—'अम्भो, कस्स नु खो एसो सद्दो एवं

धान्य को खा जाते हों इस तरह वे यथेच्छ प्रमादकारी हों; भिक्षुओ! इसी प्रकार कोई अज्ञ पृथग्जन छह स्पर्शायतनों में असंयत व्यवहार करे तथा पाँचों कामगुणों में यथेच्छ प्रमत्त हो कर विचरण करे।

(इस के विपरीत) भिक्षुओ! जैसे किसी किसान का बोया हुआ खेत धान से लहलहा रहा हो, किसान भी अप्रमादी हो। उस के बैल यदि खेत में धान चरने के लिए सन्नद्ध हों तो वह उन की नाक की रस्सी (नाथ) पकड़ कर दूर हटा दे। तथा लाठी से पीट कर उन को खेत की मेंड़ से बाहर निकाल दे। यदि दोबारा या तिबारा भी वे बैल उस खेत को चरने का प्रयास करें तो वह उसी तरह पीट कर खेत से बाहर निकाल दे। अन्त में वे बैल ग्राम या जंगल में जा कर एक तरफ बैठें, परन्तु वे लाठी की मार के भय से उस खेत में प्रवेश का प्रयास न करें; क्यों कि उन्हें लाठी से पिटने का भय स्मरण रहता है।

"भिक्षुओ! इसी तरह जब भिक्षु का चित्त इन छह स्पर्शायतनों में सीधा (ऋजु) हो जाता है तो वह अध्यात्म में ही रहता या स्थिर रहता है। उस का चित्त एकाग्र समाधियोग्य हो जाता है।

वीणा की उपमा—"भिक्षुओ! जैसे किसी राजा या मन्त्री ने पहले कभी वीणा का

रजनीयो एवं कमनीयो एवं मदनीयो एवं मुच्छनीयो एवं बन्धनीयो' ति? तमेनं एवं वदेय्युं—'एसा, खो, भन्ते, वीणा नाम यस्सा एसो सद्दो एवं रजनीयो एवं [R.197] कमनीयो एवं मदनीयो एवं मुच्छनीयो एवं बन्धनीयो' ति। सो एवं वदेय्य—'गच्छथ मे, भो, तं वीणं आहरथा' ति। तस्स तं वीणं आहरेय्युं। तमेनं एवं वदेय्युं—'अयं खो सा, भन्ते, वीणा यस्सा एसो सद्दो एवं रजनीयो एवं कमनीयो एवं मदनीयो एवं मुच्छनीयो एवं बन्धनीयो' ति। सो एवं वदेय्य—'अलं मे, भो, ताय वीणाय, तमेव मे सद्दं आहरथा' ति। तमेनं एवं वदेय्युं—'अयं खो, भन्ते, वीणा नाम अनेक-[B.401] सम्भारा महासम्भारा। अनेकेहि सम्भारेहि समारद्धा वदति, सेय्यथीदं—दोणिं च पटिच्च चम्मं च पटिच्च दण्डं च पटिच्च उपधारणे च पटिच्च तन्तियो च पटिच्च कोणं च पटिच्च पुरिसस्स च तज्जं वायामं पटिच्च एवायं, भन्ते, वीणा नाम अनेकसम्भारा महासम्भारा। अनेकेहि सम्भारेहि समारद्धा वदती' ति। सो तं वीणं दसधा वा सतधा वा फालेय्य, दसधा वा सतधा वा तं फालेत्वा सकलिकं सकलिकं करेय्य, सकलिकं सकलिकं करित्वा अग्गिना डहेय्य, अग्गिना डहित्वा मसिं करेय्य, मसिं करित्वा महावाते वा ओफुनेय्य, नदिया वा सीघसोताय पवाहेय्य। सो एवं वदेय्य—'असती किरायं, भो, वीणा नाम, यथेवं यं किञ्चि वीणा नाम एत्थ च पनायं जनो अतिवेलं पमत्तो पलळितो' ति। एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु रूपं समन्वेसति यावता रूपस्स गति, वेदनं

वादन न सुना हो, वह वीणा की ध्वनि सुन कर यह पूछे—यह कैसी ध्वनि है, इतनी प्रिय, इतनी कर्णमधुर, इतनी मनोमोहक, इतनी उन्मादक, इतना चित्त को आकृष्ट करने वाली!

"तब उस के अधीनस्थजन उस को बतावें—'श्रीमन्! यह वीणा की ध्वनि है...जो चित्त को इतना आकृष्ट करने वाली है।' तब राजा उन्हें आदेश दे—'जाओ! उसे ले आओ!' तब वे कर्मचारी उस को वह वीणा ला कर देवें जिस की ध्वनि...।

"तब राजा यह आग्रह करे—'मुझे इस वीणा की आवश्यकता नहीं, मुझे तो वह सुमधुर ध्वनि चाहिये।' यह सुन कर अधीनस्थ कर्मचारी उस को बतावें—'श्रीमन्! वीणा के अनेक सम्भार (सामग्री) वाली होती है। इन अनेक सम्भारों के एकत्र होने पर वह इस वीणा से मधुर ध्वनि निकलती है। जैसे—द्रोणी, चर्मदण्ड, उपधारण, तन्त्री (तार) तथा वादक का व्यायाम (उद्योग)—इन सब के प्रत्यय से वीणा की वह मधुर ध्वनि निकलती है।'

"तब वह राजा उस वीणा को फोड़ दे, उस को दश या सौ भागों में विभक्त कर दे, उन भागों को भी खण्ड खण्ड कर अग्नि से जला दे, अग्नि से जला कर उस की राख (भस्म) बना दे। इस तरह भस्म बना कर उसे या तो हवा में उड़ा दे, या फिर क़िसी

[N.177] समन्वेसति यावता वेदनाय गति, सञ्ञं समन्वेसति यावता सञ्ञाय गति, सङ्खारे समन्वेसति यावता सङ्खारानं गति, विञ्ञाणं समन्वेसति यावता विञ्ञाणस्स गति। तस्स रूपं समन्वेसतो यावता रूपस्स गति, वेदनं समन्वेसतो...पे०...सञ्ञं... सङ्खारे...विञ्ञाणं समन्वेसतो यावता विञ्ञाणस्स गति। यं पिस्स तं होति अहं ति वा ममं ति वा अस्मी ति वा तं पि तस्स न होती'' ति॥ •

२४७. छप्पाणकोपमसुत्तं

२५३. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो अरुगत्तो पक्कगत्तो सरवनं पविसेय्य। तस्स कुसकण्टका चेव पादे विज्झेय्युं, सरपत्तानि च गत्तानि विलेखेय्युं। एवं हि सो, भिक्खवे, पुरिसो भिय्योसोमत्ताय ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदियेथ। एवमेव खो, भिक्खवे, इधेकच्चो भिक्खु गामगतो वा अरञ्ञगतो वा लभति वत्तारं—'अयं च सो आयस्मा एवंकारी एवंसमाचारो असुचिगामकण्टको' ति। तं 'कण्टको' ति इति विदित्वा संवरो च असंवरो च वेदितब्बो।

[B.402] ''कथं च, भिक्खवे, असंवरो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा पियरूपे रूपे अधिमुच्चति, अप्पियरूपे रूपे ब्यापज्जति, अनुपट्ठितकायस्सति च

प्रवाहवाली नदी में बहा दे। तथा यह कहे—'अरे! यह वीणा तो व्यर्थ वस्तु है, लोग अकारण ही इस के पीछे इतने अधिक मुग्ध हैं'।

''इसी तरह, भिक्षुओ! भिक्षु रूप को खोजता है, जब तक रूप की गति है। वेदना को खोजता है, जब तक वेदना की गति है। संज्ञा को...संस्कारों को...विज्ञान को खोजता है, जब तक विज्ञान की गति है। इस प्रकार उस के अहङ्कार, ममत्व, अस्मिता आदि विगलित (नष्ट) हो जाते हैं॥'' •

२४७. षट्प्राणकोपमसूत्र : : छह प्राणियों की उपमा से संयम का वर्णन

२५३. ...''भिक्षुओ! जैसे कोई व्रणों से युक्त शरीरवाला पुरुष किसी कुश काश के वन में प्रविष्ट हो जाय, वहाँ उस के व्रणों पर उन कुश काशों के अग्रभाग का स्पर्श होने पर उस को अत्यधिक कष्ट हो। इसी तरह, भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु किसी ग्राम या अरण्य में जाय, वहाँ लोग इस के विषय मे यों कहने लगें—'इस आयुष्मान् ने ऐसा किया है, इस का ऐसा आचार विचार है, यह नीच वृत्तिवाला इस ग्राम का 'कण्टक' है।' इसे सुन कर, उसे अपने विषय में सूक्ष्म गवेषणा कर अपना संयम (संवर) तथा असंयम (असंवर) ज्ञात करना चाहिये।

''भिक्षुओ!' असंवर' कैसे होता है? कोई भिक्षु चक्षु से रूपों को देख कर प्रिय

विहरति परित्तचेतसो, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति। सोतेन सद्दं सुत्वा...घानेन गन्धं घायित्वा...जिव्हाय रसं सायित्वा...कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा...मनसा धम्मं विञ्ञाय पियरूपे धम्मे अधिमुच्चति, अप्पियरूपे धम्मे ब्यापज्जति, अनुपट्ठितकायस्सति च विहरति परित्तचेतसो, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो छप्पाणके गहेत्वा नानाविसये नानागोचरे दळ्हाय रज्जुया बन्धेय्य। **अहिं** गहेत्वा दळ्हाय रज्जुया बन्धेय्य। **सुंसुमारं** गहेत्वा दळ्हाय रज्जुया बन्धेय्य। **पक्खिं** गहेत्वा दळ्हाय रज्जुया बन्धेय्य। **कुक्कुरं** गहेत्वा [N.178, R.199] दळ्हाय रज्जुया बन्धेय्य। **सिङ्गालं** गहेत्वा दळ्हाय रज्जुया बन्धेय्य। **मक्कटं** गहेत्वा दळ्हाय रज्जुया बन्धेय्य। दळ्हाय रज्जुया बन्धित्वा मज्झे गण्ठिं करित्वा ओस्सज्जेय्य। अथ खो, ते, भिक्खवे, छप्पाणका नानाविसया नानागोचरा सकं सकं गोचरविसयं आविञ्छेय्युं—अहि आविञ्छेय्य 'वम्मिकं पवेक्खामी' ति, सुंसुमारो आविञ्छेय्य 'उदकं पवेक्खामी' ति, पक्खी आविञ्छेय्य 'आकासं डेस्सामी' ति, कुक्कुरो आविञ्छेय्य 'गामं पवेक्खामी' ति, सिङ्गालो आविञ्छेय्य 'सीवथिकं पवेक्खामी' ति, मक्कटो आविञ्छेय्य 'वनं पवेक्खामी' ति। यदा खो ते, भिक्खवे, छप्पाणका झत्ता अस्सु किलन्ता, अथ खो यो नेसं पाणकानं बलवतरो अस्स तस्स ते अनुवत्तेय्युं, अनुविधायेय्युं वसं गच्छेय्युं। एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि भिक्खुनो कायगता सति अभाविता अबहुलीकता तं चक्खु आविञ्छति मनापियेसु रूपेसु, अमनापिया रूपा

रूपों के प्रति आसक्त हो जाता है...पूर्ववत्...*(द्र०—इसी वर्ग में दु:खधर्मसूत्र)* जिस से उत्पन्न पापमय अकुशल धर्म सर्वथा निरुद्ध हो जाते हैं।

"भिक्षुओ! जैसे कोई पुरुष छह प्राणियों को ले कर भिन्न भिन्न स्थानों पर रस्सी से दृढ़ता के साथ बाँधे। कौन से छह प्राणी? १. साँप को..., २. मकर को..., ३. किसी पक्षी को..., ४. कुत्ते को..., ५. शृगाल को... एवं ६. वानर को। यों, उन को रस्सी से बाँध कर बीच में रस्सियों की गाँठ लगा कर बाँध दे। तब उन में से सर्प बिल में तथा मकर जल में प्रविष्ट होना चाहे, पक्षी आकाश में उड़ना चाहे, कुत्ता ग्राम में प्रविष्ट होना चाहे, शृगाल श्मशान की ओर जाना चाहे तथा वानर वन में प्रवेश करना चाहे। जब वे इस तरह के श्रम तथा भूख प्यास से व्याकुल एवं श्रान्त हो जायँ तब शेष उसी का अनुसरण करने लगें जो सभी में बलशाली हो।

"इसी तरह, भिक्षुओ! जिस की कायगत स्मृति सुभावित, भलीभाँति अभ्यस्त नहीं

पटिकूला होन्ति...पे०...मनो आविञ्छति मनापियेसु धम्मेसु, अमनापिया धम्मा पटिकूला होन्ति। एवं खो, भिक्खवे, असंवरो होति।

"कथं च, भिक्खवे, संवरो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा पियरूपे रूपे नाधिमुच्चति, अप्पियरूपे रूपे न ब्यापज्जति, उपट्ठितकायस्सति च विहरति [B.403] अप्पमाणचेतसो, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति...पे०...जिव्हाय रसं सायित्वा ...पे०...मनसा धम्मं विञ्ञाय पियरूपे धम्मे नाधिमुच्चति, अप्पियरूपे धम्मे न [R.200] ब्यापज्जति, उपट्ठितकायस्सति च विहरति अप्पमाणचेतसो, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो छप्पाणके गहेत्वा नानाविसये नानागोचरे दळ्हाय रज्जुया बन्धेय्य। अहिं गहेत्वा दळ्हाय रज्जुया बन्धेय्य। सुंसुमारं गहेत्वा दळ्हाय रज्जुया बन्धेय्य। पक्खिं गहेत्वा...पे०...कुक्कुरं गहेत्वा...सिङ्गालं गहेत्वा...मक्कटं गहेत्वा दळ्हाय [N.179] रज्जुया बन्धेय्य। दळ्हाय रज्जुया बन्धित्वा दळ्हे खीले वा थम्भे वा उपनिबन्धेय्य। अथ खो, ते, भिक्खवे, छप्पाणका नानाविसया नानागोचरा सकं सकं गोचरविसयं आविञ्छेय्युं—अहि आविञ्छेय्य 'वम्मिकं पवेक्खामी' ति, सुंसुमारो आविञ्छेय्य 'उदकं पवेक्खामी' ति, पक्खी आविञ्छेय्य 'आकासं डेस्सामी' ति, कुक्कुरो आविञ्छेय्य 'गामं पवेक्खामी' ति, सिङ्गालो आविञ्छेय्य 'सीवथिकं पवेक्खामी' ति, मक्कटो आविञ्छेय्य 'वनं पवेक्खामी' ति। यदा खो ते, भिक्खवे, छप्पाणका झत्ता अस्सु किलन्ता, अथ तमेव खीलं वा थम्भं वा उपतिट्ठेय्युं, उपनिसीदेय्युं, उपनिपज्जेय्युं। एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि भिक्खुनो कायगता सति भाविता बहुलीकता तं चक्खु नाविञ्छति मनापियेसु रूपेसु, अमनापिया रूपा

होती है तो उस को चक्षु प्रिय रूपों की ओर ले जाता है तथा अप्रिय रूपों से दूर रखता है ...पूर्ववत्...मन प्रिय धर्मों की ओर ले जाता है, तथा अप्रिय रूपों से दूर रखता है ...पूर्ववत्...मन प्रिय धर्मों की ओर ले जाता है, तथा अप्रिय धर्मों से हटाता है। भिक्षुओ! यह 'असंवर' होता है।

"भिक्षुओ! 'संवर' कैसे होता है? भिक्षुओ! भिक्षु चक्षु से प्रिय रूपों को देख कर भी उन के प्रति आसक्त नहीं होता...पूर्ववत्... *(द्र०— दु:खधर्मसूत्र, इसी वर्ग का २४ सूत्र)* अकुशल पापमय धर्म सर्वथा निरुद्ध हो जाते हैं।

नप्पटिकूला होन्ति...पे०...जिव्हा नाविञ्छति मनापियेसु रसेसु...पे०...मनो नाविञ्छति मनापियेसु धम्मेसु, अमनापिया धम्मा नप्पटिकूला होन्ति। एवं खो, भिक्खवे, संवरो होति।

"'दळ्हे खीले वा थम्भे वा' ति खो, भिक्खवे, कायगताय सतिया एतं अधिवचनं। तस्मातिह वो, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'कायगता नो सति भाविता भविस्सति बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा' ति। एवं हि खो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं''' ति॥ ●

२४८. यवकलापिसुत्तं

२५४. "सेय्यथापि, भिक्खवे, यवकलापी चातुम्महापथे [B.404, R.201] निक्खित्ता अस्स। अथ छ पुरिसा आगच्छेय्युं ब्याभङ्गिहत्था। ते यवकलापिं छहि ब्याभङ्गीहि हनेय्युं। एवं हि सा, भिक्खवे, यवकलापी सुहता अस्स छहि ब्याभङ्गीहि हञ्ञमाना। अथ सत्तमो पुरिसो आगच्छेय्य ब्याभङ्गिहत्थो। सो तं यवकलापिं सत्तमाय ब्याभङ्गिया हनेय्य। एवं हि सा भिक्खवे, यवकलापी सुहततरा अस्स सत्तमाय ब्याभङ्गिया हञ्ञमाना। एवमेव खो, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो चक्खुस्मिं हञ्ञति मनापामनापेहि रूपेहि...पे०...जिव्हाय हञ्ञति मनापामनापेहि रसेहि...पे०...[N.180] मनस्मिं हञ्ञति मनापामनापेहि धम्मेहि। सचे खो, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो आयतिं पुनब्भवाय चेतेति, एवं हि सो, भिक्खवे, मोघपुरिसो सुहततरो होति, सेय्यथापि सा यवकलापी सत्तमाय ब्याभङ्गिया हञ्ञमाना।

"भिक्षुओ! जैसे कोई पुरुष छह प्राणियों को...उपरिवत्...(इसी सूत्र में)। जिह्वा से...मन से...। इस तरह, भिक्षुओ! 'संवर' होता है।

"**दृढ कील या स्तम्भ** से तात्पर्य है—कायगत स्मृति। अत:, भिक्षुओ! तुम्हें यह सीखना चाहिये—'कायगता स्मृति की भावना करूँगा, उस का अभ्यास करूँगा, उस का अनुष्ठान करूँगा। उस से परिचय (ज्ञान) करूँगा।' भिक्षुओ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये"॥ ●

२४८. यवकलापिसूत्र : : मूर्ख को जौ के समान पीटना

२५४. ..."जैसे, भिक्षुओ! किसी चौराहे पर जौ की राशि पड़ी हो। तब छह पुरुष बहँगी की लाठी हाथ में लिये हुए वहाँ आवे, और वे लाठियों से उस यवराशि को पीटने लगें। इस तरह वह यवराशि अच्छी तरह कुट पिट जाती है। उसी समय एक सातवाँ पुरुष वहाँ आवे, वह उस यवराशि को सातवीं लाठी से पीटे। यों वह यवराशि उस सातवीं लाठी से पूर्णत: पिट जाय। इसी तरह, भिक्षुओ! कोई अज्ञ पृथग्जन चक्षु के माध्यम से प्रिय एवं अप्रिय रूपों द्वारा पीटा जाता है। ...पूर्ववत्...जिह्वा के माध्यम से प्रिय अप्रिय

"भूतपुब्बं, भिक्खवे, देवासुरसङ्गामो समुपब्यूळ्हो अहोसि। अथ खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो असुरे आमन्तेसि—'सचे, मारिसा, देवासुरसङ्गामे समुपब्यूळ्हे असुरा जिनेय्युं देवा पराजिनेय्युं, येन नं सक्कं देवानमिन्दं कण्ठपञ्चमेहि बन्धनेहि बन्धित्वा मम सन्तिके आनेय्याथ असुरपुरं' ति। सक्को पि खो, भिक्खवे, देवानमिन्दो देवे तावतिंसे आमन्तेसि—'सचे, मारिसा, देवासुरसङ्गामे समुपब्यूळ्हे देवा जिनेय्युं असुरा पराजिनेय्युं, येन नं वेपचित्तिं असुरिन्दं कण्ठपञ्चमेहि बन्धनेहि बन्धित्वा [R.202] मम सन्तिके आनेय्याथ सुधम्मं देवसभं' ति। तस्मिं खो पन, भिक्खवे, सङ्गामे देवा जिनिंसु, असुरा पराजिनिंसु। अथ खो, भिक्खवे, देवा तावतिंसा वेपचित्तिं असुरिन्दं कण्ठपञ्चमेहि बन्धनेहि बन्धित्वा सक्कस्स देवानमिन्दस्स सन्तिके आनेसुं सुधम्मं देवसभं। तत्र सुदं, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो कण्ठपञ्चमेहि बन्धनेहि बद्धो होति। यदा खो, भिक्खवे, वेपचित्तिस्स असुरिन्दस्स एवं होति—'धम्मिका खो देवा, अधम्मिका असुरा, इधेव दानाहं देवपुरं गच्छामी' ति, अथ कण्ठपञ्चमेहि बन्धनेहि मुत्तं अत्तानं समनुपस्सति, दिब्बेहि च पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारेति। [B.405] यदा च खो, भिक्खवे, वेपचित्तिस्स असुरिन्दस्स एवं होति—'धम्मिका खो

रसों द्वारा...मन के माध्यम से प्रिय एवं अप्रिय धर्मों द्वारा पीटा जाता है। भिक्षुओ! इतने पर भी वह अज्ञ पृथग्जन भविष्य में बने रहने की इच्छा करे तो वह मूर्ख उक्त इन्द्रियों के माध्यम से उस यवकलापी की तरह पीटा जाता है।

प्राचीन कथा—"भिक्षुओ! पूर्वकाल में देवासुर संग्राम हो रहा था। तब वेपचित्ति असुरेन्द्र ने असुरों को बुलाया और कहा—'हे असुरो! यदि इस संग्राम में देवगण की पराजय हो तथा असुरों की विजय हो, तो तुम में से जिस से भी सम्भव हो, वह देवराज के गले में रस्सी बाँध कर इस असुरपुर में ले आवे।' उधर देवराज शक्र ने भी अपने देवसमूह को बुला कर कहा—'देवगण! यदि इस संग्राम में असुर पराजित हों तथा देवगण विजयी हों तो तुम में से जिस से भी बन सके वह असुरेन्द्र वेपचित्ति को उस के शरीर को गले सहित पाँच स्थानों में रस्सी से बाँध कर इस सुधर्मा देवसभा में मेरे सम्मुख ले आवे'। अन्त में, उस संग्राम में देवताओं की विजय हुई, तथा असुरों की पराजय। तब, भिक्षुओ! वे देवता असुरेन्द्र वेपचित्ति के शरीर को कण्ठ सहित दो हाथ, दो पैर—इन पाँच स्थानों में रस्सी बाँध कर सुधर्मा देवसभा में देवराज इन्द्र के सम्मुख ले आये। तब वह असुरेन्द्र वेपचित्ति उस देवसभा में रस्सियों से बन्धा हुआ खड़ा रहा। उस समय उस के मन में जब यह विचार आवे—'ये देवता धर्माचारी हैं तथा असुर अधर्माचारी हैं, अतः क्यों न मैं भी देवपुर में ही रहूँ'। तब उस का शरीर उस को पाँचों बन्धनों से मुक्त हो कर

असुरा, अधम्मिका देवा, तत्थेव दानाहं असुरपुरं गमिस्सामी.' ति, अथ कण्ठपञ्चमेहि बन्धनेहि बद्धं अत्तानं समनुपस्सति। दिब्बेहि च पञ्चहि कामगुणेहि परिहायति। एवं सुखुमं खो, भिक्खवे, वेपचित्तिबन्धनं। ततो सुखुमतरं मारबन्धनं। मञ्ञमानो खो, भिक्खवे, बद्धो मारस्स, अमञ्ञमानो मुत्तो पापिमतो।

"'अस्मी' ति, भिक्खवे, मञ्ञितमेतं, 'अयमहमस्मी' ति मञ्ञितमेतं, 'भविस्सं' ति मञ्ञितमेतं, 'न भविस्सं' ति मञ्ञितमेतं, 'रूपी भविस्सं' ति मञ्ञितमेतं, 'अरूपी भविस्सं' ति मञ्ञितमेतं, 'सञ्ञी भविस्सं' ति मञ्ञितमेतं, 'असञ्ञी भविस्सं' ति मञ्ञितमेतं, 'नेवसञ्ञीनासञ्ञी भविस्सं' ति मञ्ञितमेतं। [N.181] मञ्ञितं, भिक्खवे, रोगो, मञ्ञितं गण्डो, मञ्ञितं सल्लं। तस्मातिह, भिक्खवे, 'अमञ्ञमानेन चेतसा विहरिस्सामा' ति—एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं।

"'अस्मी' ति, भिक्खवे, इञ्जितमेतं, 'अयमहमस्मी' ति इञ्जितमेतं, 'भविस्सं' ति इञ्जितमेतं, 'न भविस्सं' ति इञ्जितमेतं, 'रूपी भविस्सं' ति इञ्जितमेतं, 'अरूपी भविस्सं' ति इञ्जितमेतं, 'सञ्ञी भविस्सं' ति इञ्जितमेतं, 'असञ्ञी भविस्सं' ति इञ्जितमेतं, 'नेवसञ्ञीनासञ्ञी भविस्सं' ति इञ्जितमेतं। इञ्जितं, भिक्खवे, रोगो, इञ्जितं

पञ्च कामगुणों से युक्त हुआ दिखायी देता था। तथा जब उस के मन में यह विचार होता था—'ये असुर ही धर्माचारी हैं, देवता तो अधर्मशील हैं, तो क्यों न मैं असुरपुर में ही रहूँ।' तब उस को उस का अपना शरीर पाँचों बन्धनों से बद्ध दीखता था। ऐसा था उस वेपचित्ति का सूक्ष्म बन्धन।

भिक्षुओ! मार का बन्धन इस से भी सूक्ष्म होता है। केवल कुछ मान लेने से वह अज्ञ पृथग्जन मार के बन्धन में आबद्ध हो जाता है तथा न मानने से बन्धनमुक्त हो जाता है।

"भिक्षुओ! 'मैं हूँ'—ऐसा मान लेने से, 'यह मैं हूँ'—ऐसा मान लेने से, 'मैं ऐसा होऊँगा'—ऐसा मान लेने से, 'नहीं होऊँगा'—ऐसा मान लेने से; 'रूपी होऊँगा'—ऐसा मान लेने से, 'अरूपी होऊँगा'—ऐसा मान लेने से, 'संज्ञावान् होऊँगा'—ऐसा मान लेने से, 'संज्ञारहित होऊँगा'—ऐसा मान लेने से, 'न संज्ञा न असंज्ञा वाला होऊँगा'—ऐसा मान लेने से वह सूक्ष्म बन्धन में बँधता जाता है। भिक्षुओ! यह मानना ही उस के लिये रोग है, गण्ड (व्रण) है, शल्य (काँटा) है। अत: भिक्षुओ! तुम्हें 'मैं न कुछ मानते हुए चित्त से ही विचरण करूँगा'—ऐसा सीखना चाहिये।

"भिक्षुओ! 'मैं हूँ'—यह चित्त की चञ्चलतामात्र है, 'यह मैं हूँ'—यह भी

[R.203] गण्डो, इञ्जितं सल्लं। तस्मातिह, भिक्खवे, 'अनिञ्जमानेन चेतसा विहरिस्सामा' ति—एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं।

"'अस्मी' ति, भिक्खवे, फन्दितमेतं, 'अयमहमस्मी' ति फन्दितमेतं, 'भविस्सं' ति...पे०...'न भविस्सं' ति...'रूपी भविस्सं' ति...'अरूपी भविस्सं' ति...'सञ्ञी भविस्सं' ति...'असञ्ञी भविस्सं' ति...'नेवसञ्ञीनासञ्ञी भविस्सं' ति फन्दितमेतं। फन्दितं, भिक्खवे, रोगो, फन्दितं गण्डो, फन्दितं सल्लं। तस्मातिह, भिक्खवे, 'अफन्दमानेन चेतसा विहरिस्सामा' ति—एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं।

"'अस्मी' ति, भिक्खवे, पपञ्चितमेतं, 'अयमहमस्मी' ति पपञ्चितमेतं, 'भविस्सं' ति...पे०...'न भविस्सं' ति...'रूपी भविस्सं' ति...'अरूपी भविस्सं' ति... 'सञ्ञी भविस्सं' ति...'असञ्ञी भविस्सं' ति...'नेवसञ्ञीनासञ्ञी भविस्सं' ति [B.406] पपञ्चितमेतं। पपञ्चितं, भिक्खवे, रोगो, पपञ्चितं गण्डो, पपञ्चितं सल्लं। तस्मातिह, भिक्खवे, 'निप्पपञ्चेन चेतसा विहरिस्सामा' ति—एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं।

"'अस्मी' ति, भिक्खवे, मानगतमेतं, 'अयमहमस्मी' ति मानगतमेतं, 'भविस्सं' ति मानगतमेतं, 'न भविस्सं' ति मानगतमेतं, 'रूपी भविस्सं' ति मानगतमेतं, 'अरूपी भविस्सं' ति मानगतमेतं, 'सञ्ञी भविस्सं' ति मानगतमेतं, 'असञ्ञी भविस्सं' ति मानगतमेतं, 'नेवसञ्ञीनासञ्ञी भविस्सं' ति मानगतमेतं। मानगतं, भिक्खवे, रोगो, मानगतं गण्डो, मानगतं सल्लं। तस्मातिह, भिक्खवे, 'निहतमानेन चेतसा विहरिस्सामा' [N.182] ति—एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं" ति॥ ●

आसीविसवग्गो चतुत्थो॥

चञ्चलतामात्र है, ...पूर्ववत्...। अतः भिक्षुओ! तुम्हें—'मैं स्थिर चित्त से विचरण करूँगा'—ऐसा सीखना चाहिये।

"भिक्षुओ! 'मैं हूँ'—यह चित्त का स्पन्दनमात्र है...पूर्ववत्...। अतः भिक्षुओ! तुम्हें 'मैं स्पन्दनरहित चित्त से विचरण करूँगा'—ऐसा सीखना चाहिये।

"भिक्षुओ! 'मैं हूँ'—यह मन का प्रपञ्चमात्र है...पूर्ववत्...। अतः भिक्षुओ! तुम्हें 'मैं प्रपञ्चरहित चित्त से विचरण करूँगा'—ऐसा सीखना चाहिये।

"भिक्षुओ! 'मैं हूँ'—यह चित्त का अभिमानमात्र है। ...पूर्ववत्...। अतः भिक्षुओ! तुम्हें 'मैं अभिमानरहित चित्त से विचरण करूँगा'—ऐसा सीखना चाहिये"॥ ●

आशीविषवर्ग चतुर्थ समाप्त॥

तस्सुद्दानं

आसीविसो रथो कुम्मो, द्वे दारुक्खन्धा अवस्सुतो। [R.204]
दुक्खधम्मा किंसुका वीणा, छप्पाणा यवकलापी ति॥ •

सळायतनवग्गे चतुत्थपण्णासको समत्तो॥

तस्स वग्गुद्दानं

नन्दिक्खयो सट्ठिनयो, समुद्दो उरगेन च।
चतुपण्णासका एते, निपातेसु पकासिता ति॥ •

सळायतनसंयुत्तं समत्तं॥

इस आशीविषवर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. आशीविषोपमसूत्र, २. रथोपमसूत्र, ३. कूर्मोपमसूत्र, ४. प्रथम दारुस्कन्धोपमसूत्र, ५. द्वितीय दारुस्कन्धोपमसूत्र, ६. अवश्रुतपर्यायसूत्र, ७. दुःखधर्मसूत्र, ८. किंसुकोपमसूत्र, ९. वीणोपमसूत्र, १०. षट्प्राणकोपमसूत्र, ११. यवकलापिसूत्र॥ •

षडायतनवर्ग में चतुर्थ पञ्चाशत्क समाप्त॥

इस षडायतनसंयुक्त के चतुर्थ पञ्चाशत्क के वर्गों की सूची—१. नन्दिक्षयवर्ग, २. षष्टि-पेय्याल, ३. समुद्रवर्ग एवं ४. आशीविषवर्ग॥ •

षडायतनसंयुक्त समाप्त॥

३६. वेदनासंयुत्तं

१. सगाथवग्गो पठमो

१. समाधिसुत्तं

[N.183, B.407] १. "तिस्सो इमा, भिक्खवे, वेदना। कतमा तिस्सो? सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना—इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो वेदना ति।

"समाहितो सम्पजानो, सतो बुद्धस्स सावको।
वेदना च पजानाति, वेदनानं च सम्भवं॥
"यत्थ चेता निरुज्झन्ति, मग्गं च खयगामिनं।
वेदनानं खया भिक्खु, निच्छातो परिनिब्बुतो" ति॥ •

२. सुखसुत्तं

२. "तिस्सो इमा, भिक्खवे, वेदना। कतमा तिस्सो? सुखा वेदना, दुक्खा वेदना अदुक्खमसुखा वेदना—इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो वेदना ति।

[R.205] "सुखं वा यदि वा दुक्खं, अदुक्खमसुखं सह।
अज्झत्तं च बहिद्धा च, यं किञ्चि अत्थि वेदितं॥

---

३६. वेदनासंयुक्त

१. सगाथवर्ग प्रथम

१. समाधिसूत्र : : **त्रिविध वेदना**

१. "भिक्षुओ! वेदना तीन हैं। कौन सी तीन? १. सुखद वेदना, २. दुःखद वेदना, ३. अदुःख-असुखद वेदना—भिक्षुओ! यों ये तीन वेदनाएँ कहलाती हैं।

"समाहित, स्मृतिवान्, सम्प्रज्ञ बुद्ध का शिष्य वेदनाओं को भी जानता है, इन वेदनाओं के उत्पत्तिस्थान को भी जानता है।

"तथा ये जहाँ जा कर निरुद्ध होती हैं एवं इन के निरोधक उपाय (मार्ग) को भी, जिन के साधन से इन वेदनाओं का क्षय होता है उन को भी जानता है। वेदनाओ के क्षीण होने से वह साधक संसार के प्रति वितृष्ण हो कर निर्वाण प्राप्त कर लेता है॥ •

२. सुखसूत्र : : **त्रिविध वेदनानुभव (सुख)**

२. "भिक्षुओ! ये वेदना-(=सुखा-)नुभव भी तीन होते हैं। ...पूर्ववत्...तीन वेदनाएं (सुखानुभव) होती हैं।

"लोक में जो भी सुख, दुःख या अदुःख असुख वेदनाएँ हैं, फिर भले ही वे अध्यात्म हों या बाह्य, ऐसी जो भी वेदनाएँ हैं॥

"एतं दुक्खं ति ञत्वान, मोसधम्मं पलोकिनं।
फुस्स फुस्स वयं पस्सं, एवं तत्थ विरज्जती" ति॥ •

३. पहानसुत्तं

३. "तिस्सो इमा, भिक्खवे, वेदना। कतमा तिस्सो? सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना। सुखाय, भिक्खवे, वेदनाय रागानुसयो पहातब्बो, दुक्खाय वेदनाय पटिघानुसयो पहातब्बो, अदुक्खमसुखाय वेदनाय अविज्जानुसयो पहातब्बो। यतो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो सुखाय वेदनाय रागानुसयो पहीनो होति, दुक्खाय वेदनाय पटिघानुसयो पहीनो होति, अदुक्खमसुखाय वेदनाय अविज्जानुसयो पहीनो [B.408] होति, अयं वुच्चति, भिक्खवे, 'भिक्खु निरनुसयो सम्मद्दसो अच्छेच्छि तण्हं, [N.184] विवत्तयि संयोजनं, सम्मा मानाभिसमया अन्तमकासि दुक्खस्सा' ति।

"सुखं वेदयमानस्स, वेदनं अप्पजानतो।
सो रागानुसयो होति, अनिस्सरणदस्सिनो॥
"दुक्खं वेदयमानस्स, वेदनं अप्पजानतो।
पटिघानुसयो होति, अनिस्सरणदस्सिनो॥

"इन सब को दुःखमय जान कर विनाशधर्मा एवं लुप्त हो जाने वाली जान कर, इन्हें पुनः पुनः अनुभव (स्पर्श) करता हुआ उनका विनाश जानकर अन्त में वह उन के प्रति विरक्त हो जाता है॥" •

३. प्रहाणसूत्र : : त्रिविधि वेदनाओं का परिणाम

३. "भिक्षुओ! वेदनाएँ तीन प्रकार की होती हैं। ...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! सुखदा वेदना के राग का प्रहाण करना चाहिये, दुःखदा वेदना से उद्भूत प्रतिघ (खिन्नता) का प्रहाण करना चाहिये तथा अदुःखा असुखा वेदना से उत्पन्न अविद्या का प्रहाण करना चाहिये। भिक्षुओ! जब वह साधक भिक्षु...पूर्ववत्...प्रहाण कर लेता है तब वह भिक्षु, प्रहीण अनुशय (चित्तप्रवृत्ति) वाला, सम्यग्दृष्टि, तृष्णा का विच्छेद कर देने वाला, बन्धनों को काट देने वाला, मान को यथार्थतः पहचान कर उस का अन्त करने वाला होता है।

"सुखा वेदना का अनुभव करने वाले को, उस वेदना को यथार्थतः न जानने वाले को तथा मोक्ष के विषय में अनभिज्ञ को वह रागानुशय होता है॥

"दुःखा वेदना का अनुभव करने वाले की, उस वेदना को यथार्थतः न जानने वाले की तथा मोक्ष के विषय में अनभिज्ञ साधक के चित्त की प्रतिघ (द्वेष=खिन्नता) की ओर प्रवृत्ति होती है॥

"अदुक्खमसुखं सन्तं, भूरिपञ्ञेन देसितं।
तं चा पि अभिनन्दति, नेव दुक्खा पमुच्चति॥

[R.206] "यतो च भिक्खु आतापी, सम्पजञ्ञं न रिञ्चति।
ततो सो वेदना सब्बा, परिजानाति पण्डितो॥

"सो वेदना परिञ्ञाय, दिट्ठे धम्मे अनासवो।
कायस्स भेदा धम्मट्ठो, सङ्ख्यं नोपेति वेदगू"॥ ति॥ •

४. पातालसुत्तं

४. "अस्सुतवा, भिक्खवे, पुथुज्जनो यं वाचं भासति—'अत्थि महासमुद्दे पातालो' ति, तं खो पनेदं, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो असन्तं अविज्जमानं एवं वाचं भासति—'अत्थि महासमुद्दे पातालो' ति। सारीरिकानं खो एतं, भिक्खवे, दुक्खानं वेदनानं अधिवचनं यदिदं 'पातालो' ति। अस्सुतवा, भिक्खवे, पुथुज्जनो सारीरिकाय दुक्खाय वेदनाय फुट्ठो समानो सोचति किलमति परिदेवति उरत्ताळिं कन्दति सम्मोहं आपज्जति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, 'अस्सुतवा पुथुज्जनो पाताले न पच्चुट्ठासि, गाधं च नाज्झगा'। सुतवा च खो, भिक्खवे, अरियसावको सारीरिकाय दुक्खाय वेदनाय फुट्ठो

"अदुःखा असुखा वेदना, जिस का भगवान् बुद्ध ने भी उपदेश किया है, का अभिनन्दन करने वाले साधक की भी दुःख से मुक्ति नहीं होती॥

"जब कोई बुद्धिमान् भिक्षु, क्लेशों के सन्तापक सम्प्रज्ञभाव (ज्ञान) को नहीं छोड़ता, तब वह इन (त्रिविध) वेदनाओं की वास्तविकता जान जाता है॥

"जब इन वेदनाओं के विषय में भली भाँति जान कर इसी जन्म में निर्विकारचित्त हो कर उस का देहपात होता है तब ऐसा धर्मात्मा एवं शास्त्रज्ञ साधक पुनः इन राग, द्वेष एवं मोह के जाल में नहीं फँसता"॥ •

४. पातालसूत्र : : 'पाताल' क्या है?

४. "भिक्षुओ! जब कोई अज्ञ पृथग्जन यह कहता है—'महासमुद्र में पाताल है', तो उस का यह कथन असत्, अविद्यमान तथा मिथ्या ही समझना चाहिये। (क्यों कि समुद्र में पाताल जैसी कोई चीज नहीं है।) भिक्षुओ! शारीरिक दुःखा वेदनाओं को ही 'पाताल' कहा जाता है। जब कि वह अज्ञ पृथग्जन ऐसी शारीरिक दुःखा वेदनाओं का स्पर्श (अनुभव) करते हुए उन के कारण शोक, परिदेव एवं सम्मोह को प्राप्त होता है। भिक्षुओ! इसी को कहते हैं—'अज्ञ पाताल तक नहीं पहुँच पाया, उस को गहराई का ज्ञान न हो सका।' (इसके विपरीत) ज्ञानी आर्यश्रावक शारीरिक दुःखा वेदनाओं का स्पर्श

समानो नेव सोचति न किलमति न परिदेवति न उरत्ताळिं कन्दति न सम्मोहं आपज्जति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, 'सुतवा अरियसावको पाताले पच्चुट्ठासि, गाधं च अज्झगा' ति।

''यो एता नाधिवासेति, उप्पन्ना वेदना दुखा। [B.409]
सारीरिका पाणहरा, याहि फुट्ठो पवेधति॥
''अक्कन्दति परोदति, दुब्बलो अप्पथामको। [N.185]
न सो पाताले पच्चुट्ठासि, अथो गाधं पि नाज्झगा॥
''यो चेता अधिवासेति, उप्पन्ना वेदना दुखा। [R.207]
सारीरिका पाणहरा, याहि फुट्ठो न वेधति।
स वे पाताले पच्चुट्ठासि, अथो गाधं पि अज्झगा'' ति॥

५. दट्ठब्बसुत्तं

५. ''तिस्सो इमा, भिक्खवे, वेदना। कतमा तिस्सो? सुखा वेदना, दुक्खा वेदना अदुक्खमसुखा वेदना। सुखा, भिक्खवे, वेदना दुक्खतो दट्ठब्बा, दुक्खा वेदना सल्लतो दट्ठब्बा, अदुक्खमसुखा वेदना अनिच्चतो दट्ठब्बा। यतो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो सुखा वेदना दुक्खतो दिट्ठा होति, दुक्खा वेदना सल्लतो दिट्ठा होति, अदुक्खमसुखा वेदना अनिच्चतो दिट्ठा होति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, 'भिक्खु सम्मद्दसो अच्छेच्छि तण्हं, विवत्तयि संयोजनं, सम्मा मानाभिसमया अन्तमकासि दुक्खस्सा' ति।

करते हुए भी उन के कारण शोक, परिदेव, क्रन्दन एवं सम्मोह को प्राप्त नहीं होता। इस को कहते हैं—'विद्वान् आर्यश्रावक पाताल तक पहुँच गया, उस की गहराई तक पहुँच गया।

''जो इन शारीरिक, मर्मान्तक कष्ट पहुँचाने वाली दुःखा वेदनाओं को सहन नहीं कर पाता, इन से पीड़ित हो कर भयभीत हो कर काँपता रहता है, अधीर एवं असहाय हो कर रुदन करता है वह पाताल में लग कर भी उस की गहराई तक नहीं पहुँच पाता॥

''परन्तु जो इन प्राणान्तक कष्टदायक दुःखा वेदनाओं को सह लेता हैं, इन से भयभीत हो कर काँपता नहीं है, वह 'पाताल तक पहुँच गया, उस की गहराई को भी जान गया'—ऐसा कहलाता है॥''

५. द्रष्टव्यसूत्र : : त्रिविध वेदना

५. ''भिक्षुओ! वेदनाएँ तीन प्रकार की होती हैं। ...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! सुखा वेदना का अनुभव करते समय उस को यथार्थतः 'दुःख' ही समझना चाहिये। दुःखा वेदना का अनुभव करते समय उस को यथार्थतः 'व्रण' के रूप में समझना चाहिये। तथा अदुःखा असुखा वेदना को अनुभव करते समय उसे 'अनित्य' समझना चाहिये। ऐसे

"यो सुखं दुक्खतो अद्द, दुक्खमद्दक्खि सल्लतो।
अदुक्खमसुखं सन्तं, अद्दक्खि नं अनिच्चतो॥
"स वे सम्मद्दसो भिक्खु, परिजानाति वेदना।
सो वेदना परिञ्ञाय, दिट्ठे धम्मे अनासवो।
कायस्स भेदा धम्मट्ठो, सङ्ख्यं नोपेति वेदगू" ति॥

६. सल्लसुत्तं

६. "अस्सुतवा, भिक्खवे, पुथुज्जनो सुखं पि वेदनं वेदयति, दुक्खं पि वेदनं वेदयति, अदुक्खमसुखं पि वेदनं वेदयति। सुतवा, भिक्खवे, अरियसावको सुखं पि [B.410, R.208] वेदनं वेदयति, दुक्खं पि वेदनं वेदयति, अदुक्खमसुखं पि वेदनं वेदयति। तत्र, भिक्खवे, को विसेसो को अधिप्पयासो किं नानाकरणं सुतवतो अरियसावकस्स अस्सुतवता पुथुज्जनेना" ति? भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...। [N.186] "अस्सुतवा, भिक्खवे, पुथुज्जनो दुक्खाय वेदनाय फुट्ठो समानो सोचति किलमति परिदेवति उरत्ताळिं कन्दति सम्मोहं आपज्जति। सो द्वे वेदना वेदयति—

समझने वाला साधक सम्यग्दृष्टि, प्रहीणानुशय, तृष्णा का विच्छेदक, बन्धनों को काट देने वाला, मान को यथार्थतः पहचान कर उस का अन्त कर देने वाला होता है॥

"जिस ने सुख को दुःख करके जाना, दुःख को शल्य (व्रण) रूप में जाना, शान्त अदुःख असुख वेदना को अनित्य रूप में जाना, वही साधक भिक्षु सम्यग्दृष्टि, वेदनाओं को पहचानने वाला कहा जाता है॥

"वह इन वेदनाओं को यथार्थतः पहचान कर इसी जन्म में निर्विकारचित्त हो कर, ज्ञानी धर्मात्मा होता हुआ इस देहपात के बाद धर्मात्मा एवं शास्त्रज्ञ होने के कारण पुनः इन राग, द्वेष एवं मोह के जाल में नहीं फँसता॥

६. शल्यसूत्र : : पण्डित एवं मूर्ख में भेद

६. "भिक्षुओ! अज्ञ पृथग्जन सुखा वेदना, दुःखा वेदना एवं अदुःखा असुखा वेदना—इन तीनों ही वेदनाओं का अनुभव करता है। इसी प्रकार विद्वान् आर्यश्रावक भी इन तीनों वेदनाओं का अनुभव करता है। बताओ, भिक्षुओ! इस अज्ञ पृथग्जन एवं विद्वान् आर्यश्रावक—इन दोनों में क्या भेद है? क्या विशेषता है?"

(भिक्षुगण—) "भन्ते! धर्म के विषय में तो हम आप को ही प्रमाण मानते हैं...आप जैसा कहेंगे वैसा ही हम शिरोधार्य करेंगे।"

(भगवान्—) "भिक्षुओ! वह अज्ञ पृथग्जन दुःखा वेदना का अनुभव करने के साथ ही शोक, परिदेव, रुदन (छाती पीटना) तथा सम्मोह को प्राप्त होता है। उस समय

कायिकं च चेतसिकं च। सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसं सल्लेन विज्झेय्य। तमेनं दुतियेन सल्लेन अनुवेधं विज्झेय्य। एवं हि सो, भिक्खवे, पुरिसो द्विसल्लेन वेदनं वेदयति। एवमेव खो, भिक्खवे,-अस्सुतवा पुथुज्जनो दुक्खाय वेदनाय फुट्ठो समानो सोचति किलमति परिदेवति उरत्ताळिं कन्दति सम्मोहं आपज्जति। सो द्वे वेदना वेदयति—कायिकं च चेतसिकं च। तस्सा येव खो पन दुक्खाय वेदनाय फुट्ठो समानो पटिघवा होति। तमेनं दुक्खाय वेदनाय पटिघवन्तं यो दुक्खाय वेदनाय पटिघानुसयो सो अनुसेति। सो दुक्खाय वेदनाय फुट्ठो समानो कामसुखं अभिनन्दति। तं किस्स हेतु? न हि सो, भिक्खवे, पजानाति अस्सुतवा पुथुज्जनो अञ्ञत्र कामसुखा दुक्खाय वेदनाय निस्सरणं। तस्स कामसुखं च अभिनन्दतो यो सुखाय वेदनाय रागानुसयो सो अनुसेति। सो तासं वेदनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। तस्स तासं वेदनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं अप्पजानतो यो अदुक्खमसुखाय वेदनाय अविज्जानुसयो सो अनुसेति। सो सुखं चे वेदनं वेदयति, सञ्ञुत्तो नं वेदयति। दुक्खं चे वेदनं [R.209] वेदयति, सञ्ञुत्तो नं वेदयति। अदुक्खमसुखं चे वेदनं वेदयति, सञ्ञुत्तो नं वेदयति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, 'अस्सुतवा पुथुज्जनो सञ्ञुत्तो जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, सञ्ञुत्तो दुक्खस्मा' ति वदामि॥(१)

उस को दो तरह की वेदनाओं का अनुभव होता है—१. कायिक तथा २. मानसिक। जैसे, भिक्षुओ! किसी पुरुष को भाले से आघात लगे, उसी समय उस को कोई दूसरा भाला भी मार दे। इस तरह वह (आहत) दो दुःखा वेदनाओं का अनुभव करता है। भिक्षुओ! वैसे ही वह अज्ञ पृथग्जन दुःखा वेदना से पीड़ित हो कर शोक करता है...पूर्ववत्...सम्मोह को प्राप्त होता है। इस तरह वह शारीरिक एवं मानसिक—इन द्विविध वेदनाओं का अनुभव करता है। इन वेदनाओं से पीड़ित हो कर खिन्न होता है। वह दुःखा वेदना से पीड़ित हो कर कामसुख प्राप्त करना चाहता है; क्यों कि वह अज्ञजन इस वेदना से मुक्त होने का कामसुख को ही एकमात्र उपाय जानता है, अतः कामसुख चाहते हुए उस को सुखा वेदना में राग उत्पन्न हो जाता है। वह उन वेदनाओं के उत्पाद, विनाश, दोष एवं मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता। इस तरह उस को अदुःख असुखजन्य अविद्या प्रादुर्भूत होती है और वह दुःख, सुख एवं अदुःखअसुख वेदना के अनुभव में आसक्त हो जाता है। भिक्षुओ! इसी को कहते हैं—'अज्ञ पृथग्जन उस अविद्या से संयुक्त हो कर जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं उपायास से संयुक्त हो कर चिर काल के लिये दुःखसम्पृक्त हो जाता है। (१)

"सुतवा च खो, भिक्खवे, अरियसावको दुक्खाय वेदनाय फुट्ठो समानो न [B.411] सोचति न किलमति न परिदेवति न उरत्ताळिं कन्दति न सम्मोहं आपज्जति। सो एकं वेदनं वेदयति—कायिकं, न चेतसिकं।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसं सल्लेन विज्झेय्य। तमेनं दुतियेन सल्लेन अनुवेधं न विज्झेय्य। एवं हि सो, भिक्खवे, पुरिसो एकसल्लेन वेदनं वेदयति। एवमेव खो, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको दुक्खाय वेदनाय फुट्ठो समानो न सोचति न किलमति न [N.187] परिदेवति न उरत्ताळिं कन्दति न सम्मोहं आपज्जति। सो एकं वेदनं वेदयति—कायिकं, न चेतसिकं। तस्सा येव खो पन दुक्खाय वेदनाय फुट्ठो समानो पटिघवा न होति। तमेनं दुक्खाय वेदनाय अप्पटिघवन्तं यो दुक्खाय वेदनाय पटिघानुसयो सो नानुसेति। सो दुक्खाय वेदनाय फुट्ठो समानो कामसुखं नाभिनन्दति। तं किस्स हेतु? पजानाति हि सो, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको अञ्ञत्र कामसुखा दुक्खाय वेदनाय निस्सरणं। तस्स कामसुखं नाभिनन्दतो यो सुखाय वेदनाय रागानुसयो, सो नानुसेति। सो तासं वेदनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति। तस्स तासं वेदनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानतो यो अदुक्खमसुखाय वेदनाय अविज्जानुसयो, सो नानुसेति। सो सुखं चे वेदनं वेदयति, विसञ्ञुत्तो नं वेदयति। दुक्खं चे वेदनं वेदयति, विसञ्ञुत्तो नं [R.210] वेदयति। अदुक्खमसुखं चे वेदनं वेदयति, विसञ्ञुत्तो नं वेदयति। अयं

"परन्तु विद्वान् आर्यश्रावक दुःखा वेदना से संस्पृष्ट होता हुआ भी, उन से पीड़ित हो कर न उन के लिये शोक करता है, न खिन्न होता है, न उन के लिये छाती पीट कर रोता है, न उन के प्रति सम्मुग्ध होता है; क्यों कि उसे उस समय केवल कायिक वेदना का ही अनुभव होता है, मानसिक वेदना का नहीं।

"जैसे भिक्षुओ! कोई पुरुष भाले से आहत हो जाय, परन्तु उसे कोई दूसरा भाला न मारे, इस तरह वह (एक भाले के आघात की) वेदना का ही अनुभव करता है। इसी तरह वह विद्वान् आर्यश्रावक दुःखा वेदना से संस्पृष्ट होता हुआ भी...पूर्ववत्...सम्मुग्ध नहीं होता। यों वह उस समय एक (कायिक) वेदना का ही अनुभव करता है, दूसरी (मानसिक) वेदना का नहीं। अतः उस को उस दुःखा वेदना के अनुभव से खेद नहीं होता। न वह दुःखवेदना से पीड़ित हो कर कामसुख ही चाहने लगता है; क्यों कि वह उस दुःखा वेदना से मुक्ति के लिये कामसुख के अतिरिक्त भी उपाय जानता है। अतः उसे, कामसुख न चाहने के कारण, सुखा वेदना में राग नहीं होता। वह उन वेदनाओं के उत्पाद, विनाश, आस्वाद, दोष एवं मोक्ष को यथार्थतः जानता है। इस प्रकार उसे अदुःख सुख से

वुच्चति, भिक्खवे, 'सुतवा अरियसावको विसञ्ञुत्तो जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, विसञ्ञुत्तो दुक्खस्मा' ति वदामि।

"अयं खो, भिक्खवे, विसेसो, अयं अधिप्पयासो, इदं नानाकरणं सुतवतो अरियसावकस्स अस्सुतवता पुथुज्जनेना ति।"(२)

"न वेदनं वेदयति सपञ्ञो, सुखं पि दुक्खं पि बहुस्सुतो पि।
अयं च धीरस्स पुथुज्जनेन, महा विसेसो कुसलस्स होति॥
"सङ्खातधम्मस्स बहुस्सुतस्स, विपस्सतो लोकमिमं परं च। [B.412]
इट्ठस्स धम्मा न मथेन्ति चित्तं, अनिट्ठतो नो पटिघातमेति॥
"तस्सानुरोधा अथवा विरोधा, विधूपिता अत्थगता न सन्ति।
पदं च ञत्वा विरजं असोकं, सम्मा पजानाति भवस्स पारगू" ति॥ •

७. पठमगेलञ्ञसुत्तं

७. एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। अथ [N.188]

जन्य अविद्या भी उद्भूत नहीं होती। वह दुःखा वेदना, सुखा वेदना, एवं अदुःखा असुखा वेदना—इन तीनों ही वेदनाओं का अनासक्त हो कर अनुभव करता है। भिक्षुओ! इसी को कहते हैं 'विद्वान् आर्यश्रावक जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं उपायासों से असंसक्त हो कर रहता है। अतः वह दुःख से मुक्त रहता है—ऐसा मैं कहता हूँ। (२)

"भिक्षुओ! श्रुतवान् आर्यश्रावक तथा अज्ञ पृथग्जन में यही भेद हैं, यही इन में विशेषता है।

"बुद्धिमान् आर्यश्रावक भी सुखा वेदना तथा दुःखा वेदना का अनुभव तो अवश्य करता है, परन्तु उस धीर और कुशल में तथा अज्ञ पृथग्जन में यही भेद है कि—

"पण्डित, जिस ने धर्म का साक्षात्कार कर लिया है, लोक तथा उस के पार की वास्तविकता को जान लिया है, अभीष्ट धर्म उस के चित्त को विचलित नहीं करते, तथा अनिष्ट धर्मों का अनुभव करने पर वह खिन्न नहीं होता।

"उस के अनुरोध (अनुकूलता) या विरोध (प्रतिकूलता) से उस के परमार्थ नष्ट नहीं हुए हैं। अतः वह निर्मल (निर्विकार) रहता हुआ शोकरहित पद (निर्वाण) को जान कर संसार के पार (अन्त) को यथार्थतः जान लेता है"॥ •

७. प्रथम ग्लानसूत्र : : समय की प्रतीक्षा अपेक्षित

७. एक समय भगवान् (बुद्ध) **वैशाली** के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु

खो भगवा सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन गिलानसाला तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—[R.211]

"सतो, भिक्खवे, भिक्खु सम्पजानो कालं आगमेय्य। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी।

"कथं च, भिक्खवे, भिक्खु सतो होति ? इध, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं; वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति...पे०...चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति...धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु सतो होति।

"कथं च, भिक्खवे, भिक्खु सम्पजानो होति ? इध, भिक्खवे, भिक्खु अभिक्कन्ते पटिक्कन्ते सम्पजानकारी होति, आलोकिते विलोकिते सम्पजानकारी होति, सम्मिञ्जिते पसारिते सम्पजानकारी होति, सङ्घाटिपत्तचीवरधारणे सम्पजानकारी होति, असिते पीते खायिते सायिते सम्पजानकारी होति, उच्चारपस्सावकम्मे सम्पजानकारी होति, गते ठिते निसिन्ने सुत्ते जागरिते भासिते तुण्हीभावे सम्पजानकारी होति। एवं खो, [B.413] भिक्खवे, भिक्खु सम्पजानकारी होति। सतो, भिक्खवे, भिक्खु सम्पजानो कालं आगमेय्य। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी।

विराजमान थे। तब भगवान् (किसी दिन) सायङ्काल समाधिभावना से उठ कर वहाँ की ग्लानशाला (आतुरालय) में पधारे। तथा वहाँ प्रज्ञप्त आसन पर विराजमान हो कर उन्होंने भिक्षुओं को देशनाहेतु आमन्त्रित किया—

"भिक्षुओ! स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ भिक्षु अपने समय की प्रतीक्षा करे।

"भिक्षुओ! कैसे कोई भिक्षु 'स्मृतिमान्' होता है ? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु काया में कायानुपश्यी हो कर स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ रहता हुआ सांसारिक लोभ एवं दौर्मनस्य को दबा कर अपने क्लेशों को तपाता (दग्ध करता) रहता है; वेदना में वेदनानुपश्यी...पूर्ववत्...चित्त में चित्तानुपश्यी...धर्म में धर्मानुपश्यी हो कर...अपने क्लेशों को तपाता रहता है। यों, भिक्षुओ! वह साधक भिक्षु 'स्मृतिमान्' कहलाता है।

"और, भिक्षुओ! कोई भिक्षु 'सम्प्रज्ञ' कैसे कहलाता है ? भिक्षुओ! जो भिक्षु अपनी आने जाने की क्रियाओं में सचेत (सावधान) रहता है, देखने भालने में सचेत रहता है, हाथ पैर आदि में सङ्कोच एवं विकास में सावधान रहता है, अपने वस्त्र-सङ्घाटि एवं चीवर धारण करने में सावधान रहता है। अपनी खाने, पीने, शौच एवं मूत्रोत्सर्ग आदि क्रियाओं में सावधान रहता है; जाते, ठहरते (खड़े होते), बैठते, उठते, सोते, जागते,

"तस्स चे, भिक्खवे, भिक्खुनो एवं सतस्स सम्पजानस्स अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो उप्पज्जति सुखा वेदना, सो एवं पजानाति—'उप्पन्ना खो म्यायं सुखा वेदना; सा च खो पटिच्च, नो अप्पटिच्च। किं पटिच्च? इममेव कायं पटिच्च। अयं खो पन कायो अनिच्चो सङ्खतो पटिच्चसमुप्पन्नो। अनिच्चं खो पन सङ्खतं पटिच्चसमुप्पन्नं कायं पटिच्च उप्पन्ना सुखा वेदना कुतो निच्चा भविस्सती' ति! सो काये च सुखाय च वेदनाय अनिच्चानुपस्सी विहरति, वयानुपस्सी विहरति, विरागानुपस्सी विहरति, निरोधानुपस्सी विहरति, पटिनिस्सग्गानुपस्सी विहरति। तस्स काये च सुखाय च वेदनाय अनिच्चानुपस्सिनो विहरतो, वयानुपस्सिनो विहरतो, विरागानुपस्सिनो [N.189] विहरतो, निरोधानुपस्सिनो विहरतो, पटिनिस्सग्गानुपस्सिनो विहरतो यो काये [R.212] च सुखाय च वेदनाय रागानुसयो, सो पहीयति।

"तस्स चे, भिक्खवे, भिक्खुनो एवं सतस्स सम्पजानस्स अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो उप्पज्जति दुक्खा वेदना, सो एवं पजानाति—'उप्पन्ना खो म्यायं दुक्खा वेदना। सा च खो पटिच्च, नो अप्पटिच्च। किं पटिच्च? इममेव कायं पटिच्च। अयं खो पन कायो अनिच्चो सङ्खतो पटिच्चसमुप्पन्नो। अनिच्चं खो पन सङ्खतं पटिच्चसमुप्पन्नं कायं पटिच्च उप्पन्ना दुक्खा वेदना कुतो निच्चा भविस्सती' ति! सो काये च दुक्खाय च वेदनाय अनिच्चानुपस्सी विहरति, वयानुपस्सी विहरति, विरागानुपस्सी विहरति, निरोधानुपस्सी विहरति, पटिनिस्सग्गानुपस्सी विहरति। तस्स काये च सुखाय

बोलते चुप रहते समय इन क्रियाओं के प्रति सावधान रहता है, भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु 'सम्प्रज्ञ' कहलाता है। ऐसे स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ साधक भिक्षु को समय की प्रतीक्षा करनी चाहिये। यही हमारा तुम लोगों को अनुशासन (आदेश) है।

"भिक्षुओ! इस प्रकार सावधान हो कर साधना करने वाले भिक्षु को जब कभी सुखा वेदना उत्पन्न होती है तो वह जानता है कि मुझ को यह जो सुखा वेदना उत्पन्न हुई है, वह किसी न किसी प्रत्यय (हेतु) से ही उत्पन्न हुई है, प्रत्यय के विना नहीं। किस के प्रत्यय से? इसी काय के प्रत्यय से। यह काय किसी अनित्य, संस्कृत (निर्मित=कृत्रिम) प्रत्यय से ही उत्पन्न हुआ है। अनित्य एवं संस्कृत काय से उत्पन्न हुई यह सुखा वेदना फिर कैसे नित्य होगी! अत: वह (आर्यश्रावक) काय तथा उस से उत्पन्न सुखवेदना में अनित्य बुद्धि रखता है, 'वे विनाशशील हैं'—ऐसा समझता है। इस प्रकार, साधना करने से उस का काय एवं सुखा वेदना में उत्पन्न राग प्रहीण हो जाता है।

"भिक्षुओ! इस प्रकार सावधान साधक भिक्षु को जब कभी दु:खा वेदना उत्पन्न

च वेदनाय अनिच्चानुपस्सिनो विहरतो...पे०...पटिनिस्सग्गानुपस्सिनो विहरतो यो काये च दुक्खाय च वेदनाय पटिघानुसयो, सो पहीयति।

"तस्स चे, भिक्खवे, भिक्खुनो एवं सतस्स सम्पजानस्स अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो उप्पज्जति अदुक्खमसुखा वेदना, सो एवं पजानाति—'उप्पन्ना खो म्यायं अदुक्खमसुखा वेदना। सा च खो पटिच्च, नो अप्पटिच्च। किं पटिच्च? इममेव कायं पटिच्च। अयं खो पन कायो अनिच्चो सङ्खतो पटिच्चसमुप्पन्नो। अनिच्चं खो पन [B.414] सङ्खतं पटिच्चसमुप्पन्नं कायं पटिच्च उप्पन्ना अदुक्खमसुखा वेदना कुतो निच्चा भविस्सती' ति! सो काये च अदुक्खमसुखाय च वेदनाय अनिच्चानुपस्सी विहरति, वयानुपस्सी विहरति, विरागानुपस्सी विहरति, निरोधानुपस्सी विहरति, पटिनिस्सग्गानुपस्सी विहरति। तस्स काये च अदुक्खमसुखाय च वेदनाय अनिच्चानुपस्सिनो विहरतो...पे०...पटिनिस्सग्गानुपस्सिनो विहरतो यो काये च अदुक्खमसुखाय च वेदनाय अविज्जानुसयो, सो पहीयति।

[R.213] "सो सुखं चे वेदनं वेदयति, सा अनिच्चा ति पजानाति, अनज्झोसिता ति पजानाति, अनभिनन्दिता ति पजानाति; दुक्खं चे वेदनं वेदयति...पे०...अदुक्खमसुखं चे वेदनं वेदयति, सा अनिच्चा ति पजानाति, अनज्झोसिता ति पजानाति, अनभिनन्दिता ति [N.190] पजानाति। सो सुखं चे वेदनं वेदयति, विसञ्ञुत्तो नं वेदयति; दुक्खं चे वेदनं वेदयति, विसञ्ञुत्तो नं वेदयति; अदुक्खमसुखं चे वेदनं वेदयति, विसञ्ञुत्तो नं

होती है तो वह जानता है...पूर्ववत्...काय तथा उस से उत्पन्न दु:खा वेदना में अनित्य बुद्धि रखता है, 'वे विनाशशील हैं'—ऐसा समझता है। इस प्रकार, साधना करने से उस का काय एवं दु:खा वेदनाओं में जो द्वेष (खेद) है वह प्रहीण हो जाता है।

"भिक्षुओ! इस प्रकार सावधान साधक भिक्षु को जब कभी अदु:खा असुखा वेदना उत्पन्न होती है तो वह जानता है...पूर्ववत्...काय तथा उस से उत्पन्न अदु:खा असुखा वेदना में अनित्य बुद्धि रखता है, 'वे विनाशशील हैं'—ऐसा समझता है। इस प्रकार, साधना करने से उस की काय एवं अदु:खा असुखा वेदना में जो अविद्या है उस का प्रहाण हो जाता है।

"यदि वह सुखा वेदना का अनुभव करता है तो वह जानता हैं कि वह अनित्य है। तथा वह यह भी जानता है कि इस में किसी प्रकार का अभिनिवेश या अभिनन्दन नहीं करना चाहिये।

"यदि वह दु:खा वेदना का अनुभव करता है..पूर्ववत्...अभिनन्दन नहीं करना चाहिये।

वेदयति। सो कायपरियन्तिकं वेदनं वेदयमानो 'कायपरियन्तिकं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति, जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदयमानो 'जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति। 'कायस्स भेदा उद्धं जीवितपरियादाना इधेव सब्बवेदयितानि अनभि-नन्दितानि सीतीभविस्सन्ती' ति पजानाति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, तेलं च पटिच्च वट्टिं च पटिच्च तेलप्पदीपो झायेय्य, तस्सेव तेलस्स च वट्टिया च परियादाना अनाहारो निब्बायेय्य; एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु कायपरियन्तिकं वेदनं वेदयमानो 'कायपरियन्तिकं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति। जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदयमानो 'जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति। 'कायस्स भेदा उद्धं जीवितपरियादाना इधेव सब्बवेदयितानि अनभि-नन्दितानि सीतीभविस्सन्ती' ति पजानाती" ति॥ •

८. दुतियगेलञ्ञसुत्तं

८. एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। अथ खो भगवा सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन गिलानसाला तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—

"यदि वह अदु:खा असुखा वेदना का अनुभव करता है...पूर्ववत्...अभिनन्दन नहीं करना चाहिये।

"यदि वह सुखा वेदना का...दु:खा वेदना का...या अदु:खा असुखा वेदना का अनुभव करता है तो उस में अनासक्त रह कर ही उसका अनुभव करता है।

"वह शरीर के किसी भी अङ्ग में वेदना का अनुभव करने पर जानता है कि वह अमुक अङ्ग में वेदना का अनुभव कर रहा है। जीवनपर्यन्त किसी वेदना का अनुभव करते हुए भी जानता है कि वह जीवनपर्यन्त से इस वेदना का अनुभव कर रहा है। देहपात के बाद ये सभी वेदनाएँ स्वत: ही शान्त हो जायँगीं।

"भिक्षुओ! जैसे तैल एवं बत्ती के सहारे से तैल का दीपक जलता है तथा तैल एवं बत्ती का सहारा न मिलने पर वह दीपक स्वयं ही बुझ जाता है। भिक्षुओ! वैसे ही वह साधक भिक्षु शरीरमात्र की वेदना का अनुभव करता हुआ जानता है कि मैं समस्त शरीर की वेदना का अनुभव कर रहा हूँ...। 'इस देहपात के बाद ये समस्त वेदनाएँ इन का अभिनन्दन न करने से स्वत: ही शान्त हो जायँगीं'—यह भी वह जानता है"॥ •

८. द्वितीय ग्लानसूत्र : : समय की प्रतीक्षा आवश्यक

८. एक समय भगवान् (बुद्ध) **वैशाली** के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। ...पूर्ववत्...।

"सतो, भिक्खवे, भिक्खु सम्पजानो कालं आगमेय्य। अयं वो अम्हाकं [B.415] अनुसासनी।

"कथं च, भिक्खवे, भिक्खु सतो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं; वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति...पे०...चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति...धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु सतो होति।

"कथं च, भिक्खवे, भिक्खु सम्पजानो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु अभिक्कन्ते [R.214] पटिक्कन्ते सम्पजानकारी होति...पे०...भासिते तुण्हीभावे सम्पजानकारी होति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु सम्पजानो होति। सतो, भिक्खवे, भिक्खु सम्पजानो कालं [N.191] आगमेय्य। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी।

"तस्स चे, भिक्खवे, भिक्खुनो एवं सतस्स सम्पजानस्स अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो उप्पज्जति सुखा वेदना, सो एवं पजानाति—'उप्पन्ना खो म्यायं सुखा वेदना; सा च खो पटिच्च, नो अप्पटिच्च। किं पटिच्च? इममेव फस्सं पटिच्च। अयं खो पन फस्सो अनिच्चो सङ्खतो पटिच्चसमुप्पन्नो। अनिच्चं खो पन सङ्खतं पटिच्चसमुप्पन्नं फस्सं पटिच्च उप्पन्ना सुखा वेदना कुतो निच्चा भविस्सती' ति! सो फस्से च सुखाय च वेदनाय अनिच्चानुपस्सी विहरति, वयानुपस्सी विहरति, विरागानुपस्सी विहरति, निरोधानुपस्सी विहरति, पटिनिस्सग्गानुपस्सी विहरति। तस्स फस्से च सुखाय च वेदनाय अनिच्चानुपस्सिनो विहरतो, वयानुपस्सिनो विहरतो, विरागानुपस्सिनो विहरतो, निरोधानुपस्सिनो विहरतो, पटिनिस्सग्गानुपस्सिनो विहरतो यो फस्से च सुखाय च वेदनाय रागानुसयो, सो पहीयति।

"तस्स चे, भिक्खवे, भिक्खुनो एवं सतस्स...पे०...विहरतो उप्पज्जति दुक्खा वेदना...पे०...उप्पज्जति अदुक्खमसुखा वेदना, सो एवं पजानाति—'उप्पन्ना खो म्यायं अदुक्खमसुखा वेदना; सा च खो पटिच्च, नो अप्पटिच्च। किं पटिच्च? इममेव फस्सं [B.416] पटिच्च...कायस्स भेदा उद्धं जीवितपरियादाना इधेव सब्बवेदयितानि अनभिनन्दितानि सीतीभविस्सन्ती' ति पजानाति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, तेलं च पटिच्च वट्टिं च पटिच्च तेलप्पदीपो झायेय्य,

---

(प्रथम ग्लानसूत्र की तरह ही समग्र पाठ का विस्तार कर लें। केवल पिछले पाठ में आगत 'काया' शब्द के स्थान पर 'स्पर्श' शब्द परिवर्तित कर लें।) •

तस्सेव तेलस्स च वट्टिया च परियादाना अनाहारो निब्बायेय्य; एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु कायपरियन्तिकं वेदनं वेदयमानो 'कायपरियन्तिकं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति। जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदयमानो 'जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति। 'कायस्स भेदा उद्धं जीवितपरियादाना इधेव सब्बवेदयितानि अनभिनन्दितानि सीतीभविस्सन्ती' ति पजानाती'' ति॥ •

९. अनिच्चसुत्तं

९. ''तिस्सो इमा, भिक्खवे, वेदना अनिच्चा सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना खयधम्मा वयधम्मा विरागधम्मा निरोधधम्मा। कतमा तिस्सो? सुखा वेदना, दुक्खा [N.192] वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना—इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो वेदना अनिच्चा सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना खयधम्मा वयधम्मा विरागधम्मा निरोधधम्मा'' ति॥ •

१०. फस्समूलकसुत्तं

१०. ''तिस्सो इमा, भिक्खवे, वेदना फस्सजा फस्समूलका फस्स-[R.215] निदाना फस्सपच्चया। कतमा तिस्सो? सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना। सुखवेदनियं, भिक्खवे, फस्सं पटिच्च उप्पज्जति सुखा वेदना। तस्सेव सुखवेदनियस्स फस्सस्स निरोधा यं तज्जं वेदयितं सुखवेदनियं फस्सं पटिच्च उप्पन्ना सुखा वेदना, सा निरुज्झति, सा वूपसम्मति। दुक्खवेदनियं, भिक्खवे, फस्सं पटिच्च उप्पज्जति दुक्खा वेदना। तस्सेव दुक्खवेदनियस्स फस्सस्स निरोधा यं तज्जं वेदयितं दुक्खवेदनियं फस्सं पटिच्च उप्पन्ना दुक्खा वेदना, सा निरुज्झति, सा वूपसम्मति। अदुक्खमसुखवेदनियं, भिक्खवे, फस्सं पटिच्च उप्पज्जति अदुक्खमसुखा वेदना। तस्सेव अदुक्खम-

---

९. अनित्यसूत्र : : त्रिविध वेदना

९. ''भिक्षुओ! ये त्रिविध वेदनाएँ अनित्य हैं, संस्कृत हैं, प्रतीत्यसमुत्पन्न (हेतुसापेक्ष), क्षीण होने वाली, विनष्ट होने वाली, वैराग्योत्पादक एवं निरोधधर्म से युक्त हैं। कौन सी तीन? सुखा वेदना, दुःखा वेदना एवं अदुःखा असुखा वेदना। भिक्षुओ! ये तीनों वेदनाएँ अनित्य ...पूर्ववत्...निरोधधर्म से युक्त हैं''॥ •

१०. स्पर्शमूलकसूत्र : : स्पर्श से उत्पन्न वेदना

१०. ''भिक्षुओ! ये उपर्युक्त तीनों ही वेदनाएँ स्पर्शजन्य हैं, स्पर्शमूलक स्पर्श ही इन का निदान (प्रत्यय=हेतु) है। कौन सी तीन? ...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! इन में सुखानुभव वाले स्पर्श की अपेक्षा कर उत्पन्न होने वाली सुखा वेदना है। तथा वह उसी सुखानुभव देने वाले स्पर्श के निरोध से निरुद्ध हो जाती है। शान्त हो जाती है। तथा, भिक्षुओ! दुःखानुभव देने वाले स्पर्श से उत्पन्न होने वाली दुःखा वेदना है। वह भी उसी दुःखानुभव देने वाले

सुखवेदनियस्स फस्सस्स निरोधा यं तज्जं वेदयितं अदुक्खमसुखवेदनियं फस्सं पटिच्च उप्पन्ना अदुक्खमसुखा वेदना, सा निरुज्झति, सा वूपसम्मति। [B.417]

"सेय्यथापि, भिक्खवे, द्विन्नं कट्ठानं सङ्घट्टनसमोधाना उस्मा जायति, तेजो अभिनिब्बत्तति। तेसं येव कट्ठानं नानाभावा विनिक्खेपा या तज्जा उस्मा, सा निरुज्झति, सा वूपसम्मति। एवमेव खो, भिक्खवे, इमा तिस्सो वेदना फस्सजा फस्समूलका फस्सनिदाना फस्सपच्चया। तज्जं फस्सं पटिच्च तज्जा वेदना उप्पज्जन्ति। तज्जस्स फस्सस्स निरोधा तज्जा वेदना निरुज्झन्ती" ति॥ •

वेदनासंयुत्तस्स सगाथवग्गो पठमो॥

तस्सुद्दानं

समाधि सुखं पहानेन, पातालं दट्ठब्बेन च। [R.216]
सल्लेन चेव गेलञ्ञा, अनिच्च फस्समूलका ति॥ •

स्पर्श के निरोध से निरुद्ध हो जाती है, शान्त हो जाती है, एवं वही जब अदुःख असुख वेदना स्पर्शजन्य होती है तो वह अदुःख असुख वेदना भी स्पर्श के निरुद्ध होने से निरुद्ध हो जाती है, शान्त हो जाती है।

भिक्षुओ! जैसे दो काष्ठों के सङ्घट्टन एवं समवधान से अग्नि जल उठती है, उस का प्रकाश चारों ओर फैल जाता है, परन्तु उन दोनों काष्ठों के दूर फेंक दिये जाने पर, उन का सङ्घट्टन न होने पर, वह अग्नि बुझ जाती है; उसी तरह भिक्षुओ! ये वेदनाएँ भी उन उन स्पर्शों से जन्य हैं, तन्मूलक हैं, तद्धेतुक हैं, तत्प्रत्ययाधीन हैं। उस उस स्पर्श के निरोध से तज्जन्य वेदना भी निरुद्ध हो जाती है॥ •

वेदनासंयुक्त का सगाथवर्ग प्रथम॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. समाधिसूत्र, २. सुखसूत्र, ३. प्रहाणसूत्र, ४. पातालसूत्र, ५. द्रष्टव्यसूत्र, ६. शल्यसूत्र, ७. प्रथम ग्लानिसूत्र, ८. द्वितीय ग्लानिसूत्र, ९. अनित्यसूत्र एवं १०. स्पर्शमूलकसूत्र॥ •

२. रहोगतवग्गो दुतियो

११. रहोगतसुत्तं

११. अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा [N.193] भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"इध मय्हं, भन्ते, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—'तिस्सो वेदना वुत्ता भगवता। सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना—इमा तिस्सो वेदना वुत्ता भगवता। वुत्तं खो पनेतं भगवता—'यं किञ्चि वेदयितं तं दुक्खस्मिं' ति। किं नु खो एतं भगवता सन्धाय भासितं—'यं किञ्चि वेदयितं तं दुक्खस्मिं''' ति?

"साधु साधु, भिक्खु! तिस्सो इमा, भिक्खु, वेदना वुत्ता मया। सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना—इमा तिस्सो वेदना वुत्ता मया। वुत्तं खो पनेतं, भिक्खु, मया—'यं किञ्चि वेदयितं तं दुक्खस्मिं' ति। तं खो पनेतं, भिक्खु, मया सङ्खारानं येव अनिच्चतं सन्धाय भासितं—'यं किञ्चि वेदयितं तं दुक्खस्मिं' ति। तं खो पनेतं, भिक्खु, मया सङ्खारानं येव खयधम्मतं...पे०...वयधम्मतं...पे०...[B.418] विरागधम्मतं...पे०...निरोधधम्मतं...पे०...विपरिणामधम्मतं सन्धाय भासितं—'यं किञ्चि वेदयितं तं दुक्खस्मिं' ति।

अथ खो पन, भिक्खु, मया अनुपुब्बसङ्खारानं निरोधो अक्खातो। पठमं [R.217]

---

२. रहोगतवर्ग द्वितीय

११. रहोगतसूत्र : : संस्कारों का क्रमशः निरोध

११. ...तब किसी भिक्षु ने भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ कर उन से यों जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! आज मुझे एकान्त में साधना करते समय, यह विचार हुआ—'भगवान् ने तीन वेदनाओं की देशना की है', दूसरी तरफ भगवान् ने यह भी उपदेश किया है—'सभी वेदनाओं को दुःख ही समझना चाहिये'। भगवान् का ऐसा कहने में क्या अभिप्राय है?"

"साधु, भिक्षु! साधु! मैने तीन ही वेदनाएँ बतायी हैं। वे हैं—सुखा वेदना, दुःखा वेदना, एवं अदुःखा असुखा वेदना। तथा यह भी कहा है—'जितनी भी वेदनाएँ हैं, उन सभी को दुःख ही समझना चाहिये।' ऐसा मैने संस्कारों की अनित्यता को लक्ष्य कर के ही कहा है। इसे यों समझो कि यह सब मैने संस्कारों की क्षयधर्मता, विनाशधर्मता, विरागधर्मता, निरोधधर्मता एवं विपरिणामधर्मता को लक्ष्य कर के कहा है। भिक्षु! मैने

झानं समापन्नस्स वाचा निरुद्धा होति। दुतियं झानं समापन्नस्स वितक्कविचारा निरुद्धा होन्ति। ततियं झानं समापन्नस्स पीति निरुद्धा होति। चतुत्थं झानं समापन्नस्स अस्सास-पस्सासा निरुद्धा होति। विञ्ञाणञ्चायतनं समापन्नस्स आकासानञ्चायतनसञ्ञा निरुद्धा होति। आकिञ्चञ्ञायतनं समापन्नस्स विञ्ञाणञ्चायतनसञ्ञा निरुद्धा होति। नेवसञ्ञा-नासञ्ञायतनं समापन्नस्स आकिञ्चायतनसञ्ञा निरुद्धा होति। सञ्ञावेदयितनिरोधं समापन्नस्स सञ्ञा च वेदना च निरुद्धा होन्ति। खीणासवस्स भिक्खुनो रागो निरुद्धो होति, दोसो निरुद्धो होति, मोहो निरुद्धो होति।

अथ खो, भिक्खु, मया अनुपुब्बसङ्खारानं वूपसमो अक्खातो। पठमं झानं समापन्नस्स वाचा वूपसन्ता होति। दुतियं झानं समापन्नस्स वितक्कविचारा वूपसन्ता होन्ति ...पे०...सञ्ञावेदयितनिरोधं समापन्नस्स सञ्ञा च वेदना च वूपसन्ता होन्ति। खीणा-[N.194] सवस्स भिक्खुनो रागो वूपसन्तो होति, दोसो वूपसन्तो होति, मोहो वूपसन्तो होति।

छयिमा, भिक्खु, पस्सद्धियो। पठमं झानं समापन्नस्स वाचा पटिप्पस्सद्धा होति। दुतियं झानं समापन्नस्स वितक्कविचारा पटिप्पस्सद्धा होन्ति। ततियं झानं समापन्नस्स पीति पटिप्पस्सद्धा होति। चतुत्थं झानं समापन्नस्स अस्सासपस्सासा पटिप्पस्सद्धा होति। सञ्ञावेदयितनिरोधं समापन्नस्स सञ्ञा च वेदना च पटिप्पस्सद्धा होन्ति। [R.218] खीणासवस्स भिक्खुनो रागो पटिप्पस्सद्धो होति, दोसो पटिप्पस्सद्धो होति, मोहो पटिप्पस्सद्धो होती'' ति॥ ●

क्रमशः सभी संस्कारों के निरोध की देशना की है। जैसे—प्रथमध्यानयुक्त साधक की वाणी संयत हो जाती है, द्वितीयध्यानसंयुक्त के वितर्क विचार संयत (निरुद्ध) हो जाते हैं, तृतीयध्यानी की प्रीति संयत हो जाती है, चतुर्थध्यानसंयुक्त के श्वास प्रश्वास संयत हो जाते हैं, आकाशानन्त्यायतनसंयुक्त की रूपसंज्ञा निरुद्ध हो जाती है, विज्ञानानन्त्यायतनसंयुक्त की आकाशानन्त्यायतनसंज्ञा संयत हो जाती है, आकिञ्चन्यायतनसंयुक्त की विज्ञाना-नन्त्यायतनसंज्ञा संयत हो जाती है, नैवसंज्ञानासंज्ञायतनसंयुक्त की आकिञ्चन्यायतनसंज्ञा संयत हो जाती है, तथा संज्ञावेदयितनिरोधसमापन्न साधक की यह नैवसंज्ञानासंज्ञायतनसंज्ञा वेदना भी संयत (निरुद्ध) हो जाती है। क्षीणाश्रव भिक्षु के राग, द्वेष एवं मोह निरुद्ध हो जाते हैं। यों, भिक्षु! मैने इन सभी संस्कारों का क्रमशः निरोध बताया है।

''भिक्षु! इस के बाद मैने क्रमशः संस्कारों का व्युपशमन (=शान्ति) भी बताया है। वह इस प्रकार है—प्रथमध्यानयुक्त साधक की वाणी शान्त हो जाती है, ...पूर्ववत्... क्षीणास्त्रव भिक्षु के राग, द्वेष एवं मोह शान्त हो जाते हैं।

''भिक्षु! यों यह प्रश्रब्धि (स्थिरता) छह प्रकार की है। प्रथमध्यानसम्पन्न साधक

१२. पठमआकाससुत्तं

१२. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, आकासे विविधा वाता वायन्ति। पुरत्थिमा पि वाता वायन्ति, पच्छिमा पि वाता वायन्ति, उत्तरा पि वाता वायन्ति, दक्खिणा पि वाता वायन्ति, सरजा पि वाता वायन्ति, अरजा पि वाता वायन्ति, सीता पि वाता वायन्ति, उण्हा पि वाता वायन्ति, परित्ता पि वाता वायन्ति, अधिमत्ता पि वाता वायन्ति। एवमेव खो, भिक्खवे, इमस्मिं कायस्मिं विविधा वेदना उप्पज्जन्ति, सुखा पि वेदना उप्पज्जन्ति, दुक्खा [B.419] पि वेदना उप्पज्जन्ति, अदुक्खमसुखा पि वेदना उप्पज्जन्ती ति।

''यथा पि वाता आकासे, वायन्ति विविधा पुथू।
पुरत्थिमा पच्छिमा चा पि, उत्तरा अथ दक्खिणा॥
''सरजा अरजा च पि, सीता उण्हा च एकदा।
अधिमत्ता परित्ता च, पुथू वायन्ति मालुता॥
''तथेविमस्मिं कायस्मिं, समुप्पज्जन्ति वेदना।
सुखदुक्खसमुप्पत्ति, अदुक्खमसुखा च या॥
''यतो च भिक्खु आतापी, सम्पजञ्ञं न रिञ्चति।
ततो सो वेदना सब्बा, परिजानाति पण्डितो॥

की वाणी प्रश्रब्ध (शान्त=चञ्चलतारहित) हो जाती है, ...पूर्ववत्...क्षीणास्रव भिक्षु के राग, द्वेष, मोह प्रश्रब्ध हो जाते हैं॥ •

१२. प्रथम आकाशसूत्र : : विविध वायु के तुल्य वेदनाएँ

१२. ''जैसे, भिक्षुओ! आकाश में नाना प्रकार की हवाएँ बहती रहती हैं। ये हवाएँ पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण—सभी तरफ से बहती हैं ये हवाएँ धूल मिली (आँधी) भी होती हैं, धूल से रहित भी, शीत (ठण्ढी) भी, उष्ण (गरम) भी, साधारण भी तथा तेज (तूफान) भी होती हैं। इसी तरह इस शरीर में भी नाना प्रकार की वेदनाएँ उद्भूत होती रहती हैं, उन में सुखा वेदना भी है, दु:खा वेदना भी है, तथा अदु:खा असुखा वेदना भी।

''जैसे आकाश में पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण—सभी तरफ से हवाएँ बहती रहती हैं॥

''वे धूलभरी भी होती हैं, विना धूल के भी, कभी शीत, कभी उष्ण, कभी साधारण, कभी तेज (तूफान) तथा कभी कम या कभी अधिक होती हैं॥

''इसी तरह, इस शरीर में भी विविध वेदनाएँ (अनुभूतियाँ) उत्पन्न होती रहती हैं; कभी वे सुखमय होती हैं, कभी दु:खमय या कभी अदु:खअसुखमय॥

"सो वेदना परिञ्ञाय, दिट्ठे धम्मे अनासवो।
कायस्स भेदा धम्मट्ठो, सङ्ख्यं नोपेति वेदगू"॥ ति॥ •

१३. दुतियआकाससुत्तं

[N.195, R.219] १३. "सेय्यथापि, भिक्खवे, आकासे विविधा वाता वायन्ति। पुरत्थिमा पि वाता वायन्ति...पे०...अधिमत्ता पि वाता वायन्ति। एवमेव खो, भिक्खवे, इमस्मिं कायस्मिं विविधा वेदना उप्पज्जन्ति, सुखा पि वेदना उप्पज्जन्ति, दुक्खा पि वेदना उप्पज्जन्ति, अदुक्खमसुखा पि वेदना उप्पज्जन्ती" ति॥ •

१४. अगारसुत्तं

१४. "सेय्यथापि, भिक्खवे, आगन्तुकागारं। तत्थ पुरत्थिमाय पि दिसाय आगन्त्वा वासं कप्पेन्ति, पच्छिमाय पि दिसाय आगन्त्वा वासं कप्पेन्ति, उत्तराय पि दिसाय आगन्त्वा वासं कप्पेन्ति, दक्खिणाय पि दिसाय आगन्त्वा वासं कप्पेन्ति। खत्तिया पि आगन्त्वा वासं कप्पेन्ति, ब्राह्मणा पि आगन्त्वा वासं कप्पेन्ति, वेस्सा पि [B.420] आगन्त्वा वासं कप्पेन्ति, सुद्दा पि आगन्त्वा वासं कप्पेन्ति। एवमेव खो, भिक्खवे, इमस्मिं कायस्मिं विविधा वेदना उप्पज्जन्ति। सुखा पि वेदना उप्पज्जति, दुक्खा पि वेदना उप्पज्जति, अदुक्खमसुखा पि वेदना उप्पज्जति। सामिसा पि सुखा वेदना उप्पज्जति, सामिसा पि दुक्खा वेदना उप्पज्जति, सामिसा पि अदुक्खमसुखा वेदना

"जब क्लेशों को दूर करने में लगा हुआ साधक भिक्षु स्मृति एवं सम्प्रजन्य से रिक्त (खाली) नहीं होता, तब वह उन सभी वेदनाओं की वास्तविकता जान लेता है॥

यों, वह वेदनाओं की वास्तविकता जान कर इसी जन्म में निर्विकारचित्त एवं धर्मनिष्ठ हो कर, इस देहपात के बाद, पुनः रागादि के अधीन नहीं होता"॥ •

१३. द्वितीय आकाशसूत्र : : वायुतुल्य विविध वेदनाएँ

१३. "जैसे, भिक्षुओ! आकाश में नाना प्रकार की हवाएँ चलती रहती हैं—पूर्व से भी, पश्चिम से भी, उत्तर से भी, दक्षिण से भी, हल्की भी, अधिक भी; इसी तरह, भिक्षुओ! इस शरीर में विविध वेदनाएँ उद्भूत होती रहती हैं—सुखमय भी, दुःखमय भी, अदुःखअसुखमय भी"॥ •

१४. आगारसूत्र : : विविध वेदनाएँ

१४. "भिक्षुओ! जैसे कोई धर्मशाला (निःशुल्क यात्रिनिवास) हो, उस में पूर्व दिशा से आने वाले यात्री भी ठहरते हैं, पश्चिम दिशा से, उत्तर दिशा से तथा दक्षिण दिशा से आने वाले यात्री भी ठहरते हैं; उसी तरह क्षत्रिय भी आ कर ठहरते हैं, ब्राह्मण भी...वैश्य भी...शूद्र भी आ कर ठहरते हैं; इसी तरह, भिक्षुओ! इस शरीर में विविध

उप्पज्जति। निरामिसा पि सुखा वेदना उप्पज्जति, निरामिसा पि दुक्खा वेदना उप्पज्जति, निरामिसा पि अदुक्खमसुखा वेदना उप्पज्जती'' ति॥ •

१५. पठमआनन्दसुत्तं

१५. अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—''कतमा नु खो, भन्ते, वेदना, कतमो वेदनासमुदयो, कतमो वेदनानिरोधो, कतमा वेदनानिरोधगामिनी [R.220] पटिपदा? को वेदनाय अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं ति? तिस्सो इमा, आनन्द, वेदना—सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना—इमा वुच्चन्ति, आनन्द, वेदना। फस्ससमुदया वेदनासमुदयो; फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो। अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो वेदनानिरोधगामिनी पटिपदा, सेय्यथीदं—[N.196] सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि। यं वेदनं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, अयं वेदनाय अस्सादो। या वेदना अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा, अयं वेदनाय आदीनवो।

वेदनाएँ उद्भूत होती रहती हैं—सुखमय वेदना भी, दुःखमय वेदना भी, अदुःख- असुखमय वेदना भी उद्भूत होती रहती हैं।

अभीष्ट (=सामिस) सुखा वेदनाएँ भी उद्भूत होती रहती हैं, अभीष्ट दुःखा वेदनाएँ भी होती रहती हैं तथा अभीष्ट अदुःख असुख वेदनाएँ भी। इसी तरह अनभीष्ट सुखा वेदनाएँ, अनभीष्ट दुःखा वेदनाएँ तथा अनभीष्ट अदुःख असुखमय वेदनाएँ भी उद्भूत होती रहती हैं॥'' •

१५. प्रथम आनन्दसूत्र : : संस्कारों का क्रमशः निरोध

१५. ...तब आयुष्मान् आनन्द भगवान् के सम्मुख जा कर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठते हुए यों बोले—''भन्ते! वेदना कितनी हैं? वेदना की उत्पत्ति कैसे होती है? वेदना का निरोध कैसे होता है? तथा वेदनानिरोधगामिनी प्रतिपदा क्या है? एवं वेदना का आस्वाद क्या है? वेदना का दोष क्या है? तथा उस का निःस्सरण (त्याग) कैसे होता है?''

''आनन्द! वेदनाएँ तीन होती हैं। सुखा वेदना, दुःखा वेदना तथा अदुःखा असुखा वेदना—आनन्द! ये तीन वेदनाएँ कहलाती हैं। वेदना की उत्पत्ति (समुदय) स्पर्श के उत्पाद से होती है, तथा स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध होता है। तथा यह शास्त्र में बहुधा कथित आर्यअष्टाङ्गिक मार्ग वेदनानिरोध का एकमात्र मार्ग (उपाय) है। जैसे—सम्यग्दृष्टि...पूर्ववत्... सम्यक्समाधि। इन वेदनाओं के कारण जो कुछ भी सुख एवं सौमनस्य उद्भूत होता है यही वेदनाओं का आस्वाद कहलाता है। ये वेदनाएँ अनित्य हैं,

यो वेदनाय छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं, इदं वेदनाय निस्सरणं। अथ खो पन, आनन्द, मया अनुपुब्बसङ्खारानं निरोधो अक्खातो। पठमं झानं समापन्नस्स वाचा निरुद्धा होति...पे०...सञ्ञावेदयितनिरोधं समापन्नस्स सञ्ञा च वेदना च निरुद्धा होन्ति। खीणासवस्स भिक्खुनो रागो निरुद्धो होति, दोसो निरुद्धो होति, मोहो निरुद्धो होति। अथ खो पन, आनन्द, मया अनुपुब्बसङ्खारानं वूपसमो अक्खातो। पठमं झानं समापन्नस्स वाचा वूपसन्ता होति...पे०...सञ्ञावेदयितनिरोधं समापन्नस्स सञ्ञा च वेदना च वूपसन्ता होन्ति। खीणासवस्स भिक्खुनो रागो वूपसन्तो होति, दोसो वूपसन्तो होति, मोहो वूपसन्तो होति। अथ खो पन, आनन्द, मया अनुपुब्बसङ्खारानं पटिप्पस्सद्धि अक्खाता। पठमं झानं समापन्नस्स वाचा पटिप्पस्सद्धा होति...पे०...आकासानञ्चायतनं समापन्नस्स रूपसञ्ञा पटिप्पस्सद्धा होति। विञ्ञाणञ्चायतनं समापन्नस्स आकासा-[B.421] नञ्चायतनसञ्ञा पटिप्पस्सद्धा होति। आकिञ्चञ्ञायतनं समापन्नस्स विञ्ञा-णञ्चायतनसञ्ञा पटिप्पस्सद्धा होति। नेवसञ्ञानासञ्ञायतन समापन्नस्स आकिञ्चञ्ञा-यतनसञ्ञा पटिप्पस्सद्धा होति। सञ्ञावेदयितनिरोधं समापन्नस्स सञ्ञा च वेदना च [R.221] पटिप्पस्सद्धा होन्ति। खीणासवस्स भिक्खुनो रागो पटिप्पस्सद्धो होति, दोसो पटिप्पस्सद्धो होति, मोहो पटिप्पस्सद्धो होती'' ति॥ ●

१६. दुतियआनन्दसुत्तं

१६. अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं आनन्दं भगवा एतदवोच—''कतमा नु खो, आनन्द, वेदना, कतमो वेदनासमुदयो, कतमो वेदना-निरोधो, कतमा वेदनानिरोधगामिनी पटिपदा? को वेदनाय अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं'' ति?

दुःखमय हैं, तथा विनाश स्वभाववाली हैं—यही इन का आदीनव है। इन वेदनाओं में आसक्ति का दबाना या उन का प्रहाण ही उन का निःसरण (मोक्ष=त्याग) है।

''आनन्द! मैने पहले इन संस्कारों का क्रमपूर्वक निरोध बता दिया है। ...पूर्ववत्...। *(द्र०— इसी वर्ग का प्रथम सूत्र-रहोगत सूत्र)* क्षीणाश्रव भिक्षु का राग प्रश्रब्ध होता है, द्वेष प्रश्रब्ध होता है तथा मोह प्रश्रब्ध होता है''॥ ●

१६. द्वितीय आनन्दसूत्र : : संस्कारों का क्रमशः निरोध

१६. ...आयुष्मान् आनन्द...पूर्वसूत्रवत्...एक ओर बैठे आनन्द से भगवान् ने यों प्रश्न किया—''वेदनाएँ कितनी होती हैं? ...पूर्ववत्...वेदनाओं का निःसरण क्या है?''

'भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा भगवन्नेत्तिका भगवम्पटिसरणा। साधु, भन्ते, भगवन्तञ्ञेव पटिभातु एतस्स भासितस्स अत्थो। भगवतो सुत्वा भिक्खू [N.197] धारेस्सन्ती'' ति।

''तेन हि, आनन्द, सुणोहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी'' ति।

''एवं, भन्ते'' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—''तिस्सो इमा, आनन्द, वेदना—सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खम-सुखा वेदना—इमा वुच्चन्ति, आनन्द, वेदना...पे०...फस्ससमुदया...पे०...खीणासवस्स भिक्खुनो रागो पटिप्पस्सद्धो होति, दोसो पटिप्पस्सद्धो होति, मोहो पटिप्पस्सद्धो होती'' ति॥

१७. पठमसम्बहुलसुत्तं

१७. अथ खो सम्बहुला भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोच— ''कतमा नु खो, भन्ते, वेदना, कतमो वेदनासमुदयो, कतमो वेदनानिरोधो, कतमा वेदनानिरोधगामिनी पटिपदा? को वेदनाय अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं'' ति?

'तिस्सो इमा, भिक्खवे, वेदना—सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना—इमा वुच्चन्ति, भिक्खवे, वेदना। फस्ससमुदया वेदनासमुदयो; [R.222]

(आनन्द—) ''भन्ते! हम लोग धर्मव्याख्यान के विषय में आप भगवान् को ही सर्वोच्च प्रमाण मानते हैं, आप जैसा उपदेश करेंगे उसे हम भिक्षुजन शिरोधार्य करेंगे।''

''तो सुनो, आनन्द! सुनो! मैं बताता हूँ। उसे तुम अपने मन में भलीभाँति बैठा लो।''

''अच्छा, भन्ते!''

तब भगवान् ने यों उपदेश किया—''आनन्द! वेदनाएँ त्रिविध होती हैं...पूर्वसूत्रवत्...। क्षीणाश्रव भिक्षु का राग प्रतिप्रश्रब्ध हो जाता है, द्वेष एवं मोह भी प्रतिप्रश्रब्ध (शान्त) हो जाता है''॥

१७. प्रथम सम्बहुलसूत्र : : संस्कारों का क्रमशः निरोध

१७. ...तब बहुत से भिक्षु भगवान् के सम्मुख गये। वहाँ जाकर उन को प्रणाम कर वे एक तरफ बैठ कर भगवान् से अपनी जिज्ञासा यों प्रकट करने लगे—''वेदना कितनी होती हैं? ...पूर्ववत्...इन का निःसरण क्या हैं?''

[B.422] फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो। अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो वेदनानिरोधगामिनी पटिपदा, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि। यं वेदनं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, अयं वेदनाय अस्सादो। या वेदना अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा, अयं वेदनाय आदीनवो। यो वेदनाय छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं, इदं वेदनाय निस्सरणं।

"अथ खो पन, भिक्खवे, मया अनुपुब्बसङ्खारानं निरोधो अक्खातो। पठमं झानं समापन्नस्स वाचा निरुद्धा होति...पे०...खीणासवस्स भिक्खुनो रागो निरुद्धो होति, दोसो निरुद्धो होति, मोहो निरुद्धो होति। अथ खो पन, भिक्खवे, मया अनुपुब्बसङ्खारानं [N.198] वूपसमो अक्खातो। पठमं झानं समापन्नस्स वाचा वूपसन्ता होति...पे०... खीणासवस्स भिक्खुनो रागो वूपसन्तो होति, दोसो वूपसन्तो होति, मोहो वूपसन्तो होति। छयिमा, भिक्खवे, पस्सद्धियो। पठमं झानं समापन्नस्स वाचा पटिप्पस्सद्धा होति। दुतियं झानं समापन्नस्स वितक्कविचारा पटिप्पस्सद्धा होति। ततियं झानं समापन्नस्स पीति पटिप्पस्सद्धा होति। चतुत्थं झानं समापन्नस्स अस्सासपस्सासा पटिप्पस्सद्धा होन्ति। सञ्ञावेदयितनिरोधं समापन्नस्स सञ्ञा च वेदना च पटिप्पस्सद्धा होन्ति। खीणासवस्स भिक्खुनो रागो पटिप्पस्सद्धो होति, दोसो पटिप्पस्सद्धो होति, मोहो पटिप्पस्सद्धो होती" ति॥ ●

१८. दुतियसम्बहुलसुत्तं

१८. अथ खो सम्बहुला भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु...पे०...एकमन्तं [R.223] निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवा एतदवोच—"कतमा नु खो, भिक्खवे, वेदना, कतमो वेदनासमुदयो, कतमो वेदनानिरोधो, कतमा वेदनानिरोधगामिनी पटिपदा? को वेदनाय अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं" ति?

भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"भिक्षुओ! ये वेदनाएँ तीन होती हैं—...पूर्ववत्...। *(द्र० रहोगतसूत्र,)* क्षीणास्रव भिक्षु का राग प्रश्रब्ध हो जाता है, द्वेष प्रश्रब्ध हो जाता है, मोह प्रश्रब्ध हो जाता है"॥ ●

१८. द्वितीय सम्बहुलसूत्र : : संस्कारों का क्रमशः निरोध

१८. ...तब बहुत से भिक्षु भगवान् के दर्शनहेतु आये। वहाँ वे भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओं से भगवान् ने प्रश्न किया—"भिक्षुओ! वेदनाएँ कितनी होती हैं? ...पूर्ववत्...उन वेदनाओं का निःसरण क्या है?"

"तिस्सो इमा, भिक्खवे, वेदना—सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना—इमा वुच्चन्ति, भिक्खवे, वेदना। फस्ससमुदया...पे०..."॥ ●

१९. पञ्चकङ्गसुत्तं[1]

१९. अथ खो पञ्चकङ्गो थपति येनायस्मा उदायी तेनुपसङ्कमि; उप-[B.423] सङ्कमित्वा आयस्मन्तं उदायिं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो पञ्चकङ्गो थपति आयस्मन्तं उदायिं एतदवोच—"कति नु खो, भन्ते, उदायि, वेदना वुत्ता भगवता" ति?

"तिस्सो खो, थपति, वेदना वुत्ता भगवता—सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना—इमा खो, थपति, तिस्सो वेदना वुत्ता भगवता" ति।

एवं वुत्ते, पञ्चकङ्गो थपति आयस्मन्तं उदायिं एतदवोच—"न खो, [N.199] भन्ते, उदायि, तिस्सो वेदना वुत्ता भगवता। द्वे वेदना वुत्ता भगवता—सुखा वेदना, दुक्खा वेदना। यायं, भन्ते, अदुक्खमसुखा वेदना, सन्तस्मिं एसा पणीते सुखे वुत्ता भगवता" ति।

दुतियं पि खो आयस्मा उदायी पञ्चकङ्गं थपतिं एतदवोच—"न खो, थपति, द्वे

"भन्ते! धर्म के विषय में तो आप भगवान् ही...हम शिरोधार्य कर लेंगे। ...पूर्ववत्...। वेदनाएँ तीन होती हैं—सुखा वेदना...पूर्ववत्...। स्पर्श की उत्पत्ति से...पूर्ववत्...॥ ●

१९. पञ्चकाङ्गसूत्र[1] : : त्रिविध वेदनाएँ

१९. ...उस समय पञ्चकाङ्ग नामक स्थपति (प्रधान या शिल्पकार) जहाँ आयुष्मान् उदायी थे, वहाँ पहुँचा, पहुँच कर आयुष्मान् उदायी को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठा वह स्थपति आयुष्मान् उदायी से यों बोला—"भन्ते उदायि! भगवान् ने वेदनाएँ कितनी बतायी हैं?"

"स्थपति! भगवान् ने तीन वेदनाएँ बतायी हैं—१. सुखा वेदना, २. दुःखा वेदना तथा ३. अदुःखा असुखा वेदना। स्थपति! भगवान् ने ये तीन वेदनाएँ बतायी हैं।"

ऐसा कहे जाने पर पञ्चकाङ्ग स्थपति ने आयुष्मान् उदायी से फिर पूछा—"भन्ते उदायि! भगवान् ने तीन वेदनाएं नहीं, दो ही वेदनाएँ बतायी हैं—१. सुखा वेदना एवं २. दुःखा वेदना। भन्ते! यह जो अदुःखा असुखा वेदना है इसे भगवान् ने शान्त एवं प्रणीततर सुख के विषय में कहा है।" दूसरी बार भी आयुष्मान् उदायी ने पञ्चकाङ्ग स्थपति से

---

१. यह सूत्र **मज्झिमनिकाय** के मज्झिमपण्णासक में **बहुवेदनियसुत्त** नाम से अविकल रूप से उद्धृत है, अतः इस को वहाँ भी (पृ० ५८९, बौ० भा० सं०) देख लेना चाहिये। —**अ०**।

वेदना वुत्ता भगवता। तिस्सो वेदना वुत्ता भगवता। सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, [R.224] अदुक्खमसुखा वेदना—इमा तिस्सो वेदना वुत्ता भगवता'' ति। दुतियं पि खो पञ्चकङ्गो थपति आयस्मन्तं उदायिं एतदवोच—''न खो, भन्ते, उदायि, तिस्सो वेदना वुत्ता भगवता। द्वे वेदना वुत्ता भगवता—सुखा वेदना, दुक्खा वेदना। यायं, भन्ते, अदुक्खमसुखा वेदना, सन्तस्मिं एसा पणीते सुखे वुत्ता भगवता'' ति।

ततियं पि खो आयस्मा उदायी पञ्चकङ्गं थपतिं एतदवोच—''न खो, थपति, द्वे वेदना वुत्ता भगवता। तिस्सो वेदना वुत्ता भगवता। सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना—इमा तिस्सो वेदना वुत्ता भगवता'' ति। ततियं पि खो पञ्चकङ्गो थपति आयस्मन्तं उदायिं एतदवोच—''न खो, भन्ते, उदायि, तिस्सो वेदना वुत्ता भगवता। द्वे वेदना वुत्ता भगवता—सुखा वेदना, दुक्खा वेदना। यायं, भन्ते, अदुक्खम-सुखा वेदना, सन्तस्मिं एसा पणीते सुखे वुत्ता भगवता'' ति।

नेव सक्खि आयस्मा उदायी पञ्चकङ्गं थपतिं सञ्ञापेतुं, न पनासक्खि पञ्चकङ्गो थपति आयस्मन्तं उदायिं सञ्ञापेतुं। अस्सोसि खो आयस्मा आनन्दो आयस्मतो उदायिस्स पञ्चकङ्गेन थपतिना सद्धिं इमं कथासल्लापं।

अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो यावतको आयस्मतो उदायिस्स [B.424] पञ्चकङ्गेन थपतिना सद्धिं अहोसि कथासल्लापो तं सब्बं भगवतो आरोचेसि।

कहा—''स्थपति! भगवान् ने दो वेदनाएँ नहीं, अपि तु तीन ही बतायी हैं—सुखा, दुःखा एवं अदुःखा असुखा। फिर स्थपति ने भी आयुष्मान् उदायी से कहा—...पूर्ववत्...कहा है। तीसरी बार आयुष्मान् उदायी ने पुनः कहा—''नहीं, स्थपति! भगवान् ने दो नहीं तीन वेदनाएँ ही बतायी हैं।'' परन्तु स्थपति ने तीसरी बार भी अपने उत्तर में दो वेदनाओं वाला अपना आग्रह दोहराया।

इस प्रकार, न तो आयुष्मान् उदायी अपनी बात पञ्चकाङ्ग स्थपति से स्वीकृत करा सके तथा न पञ्चकाङ्ग स्थपति ही आयुष्मान् उदायी से अपनी बात का समर्थन करा सका।

(समीप में ही उपस्थित) आयुष्मान् आनन्द ने इन दोनों सज्जनों में हो रहे इस वेदनाविषयक संवाद को सुन लिया। सुन कर आयुष्मान् आनन्द भगवान् की सेवा में पहुँचे। पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ कर आयुष्मान् उदायी एवं पञ्चकाङ्ग स्थपति के मध्य हुए उस वेदनाविषयक कथासंवाद की भगवान् से चर्चा करते हुए उन दोनों का समग्र अविकल संवाद सुना दिया। यह सुन कर भगवान् ने कहा—

"सन्तमेव, आनन्द, परियायं पञ्चकङ्गो थपति उदायिस्स भिक्खुनो नाब्भनुमोदि; सन्तं च पनानन्द, परियायं उदायी भिक्खु पञ्चकङ्गस्स थपतिनो नाब्भनुमोदि। द्वे पि मया, आनन्द, वेदना वुत्ता परियायेन। तिस्सो पि मया वेदना वुत्ता परियायेन। पञ्च पि मया वेदना वुत्ता परियायेन। छ पि मया वेदना वुत्ता परियायेन। अट्ठारसा पि मया वेदना वुत्ता परियायेन। छत्तिंसा पि मया वेदना वुत्ता परियायेन। अट्ठसतं पि मया वेदना [N.200] वुत्ता परियायेन। एवं परियायदेसितो खो, आनन्द, मया धम्मो। एवं [R.225] परियायदेसिते खो, आनन्द, मया धम्मे ये अञ्ञमञ्ञस्स सुभासितं सुलपितं न समनुमञ्ञिस्सन्ति न समनुजानिस्सन्ति न समनुमोदिस्सन्ति, तेसं एतं पाटिकङ्खं—भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञं मुखसत्तीहि वितुदन्ता विहरिस्सन्ती ति। एवं परियायदेसितो खो, आनन्द, मया धम्मो। एवं परियायदेसिते खो, आनन्द, मया धम्मे ये अञ्ञमञ्ञस्स सुभासितं सुलपितं समनुमञ्ञिस्सन्ति समनुजानिस्सन्ति समनुमोदिस्सन्ति, तेसं एतं पाटिकङ्खं—समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना खीरोदकीभूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरिस्सन्ती ति।

प्रसङ्गानुसार वेदनाओं की देशना—"आनन्द! किसी एक प्रसङ्ग का आश्रय ले कर पञ्चकाङ्ग स्थपति ने उदायी की बात का समर्थन नहीं किया, तथा किसी अन्य प्रसङ्ग का सहारा ले कर उदायी ने स्थपति के कथन को स्वीकार नहीं किया। मैंने इन दोनों ही सिद्धान्तों की, समय समय पर, देशना की है। आनन्द! मैंने प्रसङ्गानुसार, इन देशनाओं को कभी तीन, कभी पाँच, कभी छह, कभी अट्ठारह, कभी छत्तीस एवं कभी कभी तो प्रसङ्गानुसार एक सौ आठ वेदनाओं का भी उपदेश किया है। इस प्रकार, आनन्द! मैने अपने धर्म का, जहाँ जैसा प्रसङ्ग देखा, वहाँ वैसा ही उपदेश किया है। आनन्द! यों मेरे द्वारा प्रसङ्गानुसार उपदिष्ट धर्म को किसी के द्वारा सुभाषित एवं सुलपित किये जाने पर दूसरे लोग यदि उस का समर्थन, अनुमोदन या स्वीकार नहीं करते तो मैं उन के विषय में यही कहूँगा कि वे धर्मचर्चा के व्याज से बैठ कर सङ्घ में कलह या विवाद कराना चाहते हैं, फूट डालना चाहते हैं और यों वे परस्पर अपशब्दों से एक दूसरे को आहत करते हैं। आनन्द! मैंने तो अपने इस धर्म का प्रसङ्गानुसार ही वर्णन किया है। आनन्द! जो मेरे द्वारा इस प्रसङ्गानुसार उपदिष्ट धर्म का किसी के द्वारा सुभाषित एवं सुलपित किये जाने पर, दूसरे लोग यदि उस का समर्थन, अनुमोदन एवं स्वीकरण करते हैं तो मैं उन के विषय में यही कहूँगा कि वे एकत्र हुए, प्रसन्नतायुक्त हुए तथा दूध-जल की तरह सम्पृक्त हो कर सौहार्दपूर्वक एक दूसरे को स्नेहभरी आँखों से देखते हुए, धर्मवृद्धि में ही सहयोग करते हैं।

"पञ्चिमे, आनन्द, कामगुणा। कतमे पञ्च? चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया...पे०...कायविञ्ञेय्या फोट्ठब्बा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। इमे खो, आनन्द, पञ्च कामगुणा। यं खो, आनन्द, इमे पञ्च कामगुणे पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं—इदं वुच्चति कामसुखं। ये खो, आनन्द, एवं वदेय्युं—'एतंपरमं सन्तं सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदेन्ती' ति—इदं नेसाहं नानुजानामि। तं किस्स हेतु? अत्थानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

"कतमं चानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च? इधानन्द, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं खो, आनन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। ये खो, आनन्द, एवं वदेय्युं—'एतंपरमं सन्तं [B.425, R.226] सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदेन्ती' ति—इदं नेसाहं नानुजानामि। तं किस्स हेतु? अत्थानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

"कतमं चानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च? [N.201] इधानन्द, भिक्खु, वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो

अच्छे से अच्छे उत्कृष्ट सुख—"आनन्द! कामभोग पाँच प्रकार के होते हैं। कौन से पाँच? (१) आँखों से दिखायी देने वाले (चक्षुर्विज्ञेय) इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोहर, सुरम्य, कामभोगोपयोगी एवं रागोत्पादक रूप; (२) कानों से सुनायी पड़ने वाले (श्रोत्रविज्ञेय) ...शब्द; (३) नाक से सूँघे जाने वाले (घ्राणविज्ञेय) ...गन्ध; (४) जिह्वा से चखे जाने वाले (जिह्वाविज्ञेय) ...रस; (५) शरीर से स्पर्श किये जाने वाले (कायविज्ञेय) ...स्पर्शयोग्यधर्म—आनन्द! ये पञ्चविध कामभोग हैं। आनन्द! इन पञ्चविध कामभोगों के आलम्बन से उत्पन्न तथा मन को प्रसन्नता देने वाला सुख ही 'कामभोग' कहलाता है।

"आनन्द! यहाँ यदि कोई यह कहे—'इन से बढ़ कर कोई सुख नहीं है', तो मैं उस के कथन को स्वीकार नहीं करता। वह क्यों? वह इसलिये कि आनन्द! इन सुख से बढ़ कर भी एक अन्य सुख है जो इस से अच्छा एवं उत्कृष्टतर है। आनन्द! इस सुख से बढ़ कर वह कौन सा एक अन्य सुख है जो इस से भी अच्छा एवं उत्कृष्टतर है? आनन्द! यहाँ कोई भिक्षु कामभोग एवं अकुशल धर्मों से दूर रहता हुआ वितर्क विचारों के उपशमानन्तर प्रीतिसुखमय प्रथम ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है, आनन्द! यह (प्रथमध्यान की साधना का) सुख उस लौकिक सुख से अच्छा एवं उत्कृष्टतर है। (१)

"आनन्द! यहाँ यदि कोई यह कहे.. पूर्ववत्...अच्छा एवं उत्कृष्टतर है? आनन्द!

एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं खो, आनन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। ये खो, आनन्द, एवं वदेय्युं—'एतंपरमं सन्तं सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदेन्ती' ति—इदं नेसाहं नानुजानामि। तं किस्स हेतु? अत्थानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

"कतमं, चानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च? इधानन्द, भिक्खु पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो, सुखं च कायेन पटिसंवेदेति, यं तं अरिया आचिक्खन्ति—'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं खो, आनन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। ये खो, आनन्द, एवं वदेय्युं—'एतंपरमं सन्तं सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदेन्ती' ति—इदं नेसाहं नानुजानामि। तं किस्स हेतु? अत्थानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

"कतमं, चानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च? इधानन्द, भिक्खु सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं खो, आनन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। ये खो, आनन्द,

---

यहाँ कोई भिक्षु उन वितर्क विचारों के उपशमानन्तर आध्यात्मिक सम्प्रसाद एवं चित्त की एकाग्रता उत्पन्न करने वाले, वितर्क विचाररहित समाधिजन्य प्रीतिसुखमय द्वितीयध्यान को प्राप्त कर साधना करता है, आनन्द! यह (द्वितीयध्यान की साधना का) सुख उस प्रथमध्यान के सुख से भी अच्छा एवं उत्कृष्टतर है। (२)

"आनन्द! यदि कोई यह कहे—...पूर्ववत्...अच्छा एवं उत्कृष्टतर है? आनन्द! यहाँ कोई भिक्षु प्रीतिसुख से भी विरक्त हो, सांसारिक व्यवहारों में उपेक्षाभाव रखता हुआ स्मृतिसम्प्रजन्यपूर्वक कायसुख का अनुभव करता है, प्रामाणिक लोग जिसे देख कर कहने लगते हैं—'वह साधक स्मृतिसम्प्रजन्यपूर्वक तथा लौकिक व्यवहार की उपेक्षा करता हुआ साधना कर रहा है', ऐसे तृतीयध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। आनन्द! यह (तृतीयध्यान की साधना का) सुख उस (द्वितीयध्यान की साधना के) सुख से भी अच्छा एवं उत्कृष्टतर है। (३)

"आनन्द! यहाँ कोई यह कहे—...पूर्ववत्...अच्छा एवं उत्कृष्टतर है? आनन्द! यहाँ कोई भिक्षु सुख एवं दुःख के प्रहाण के कारण मानसिक उल्लास एवं सन्ताप के पहले ही नष्ट हो जाने से सुखदुःखरहित, जिस में उपेक्षाभावनामय परिशुद्ध स्मृति बनी रहती है,

[R.227] एवं वदेय्युं—'एतंपरमं सन्तं सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदेन्ती' ति—इदं नेसाहं नानुजानामि। तं किस्स हेतु? अत्थानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

"कतमं चानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च? इधानन्द, भिक्खु सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा, पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा, नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा, 'अनन्तो आकासो' ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज [B.426] विहरति। इदं खो, आनन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। ये खो, आनन्द, एवं वदेय्युं—'एतंपरमं सन्तं सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदेन्ती' ति—इदं नेसाहं नानुजानामि। तं किस्स हेतु? अत्थानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

[N.202] "कतमं चानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च? इधानन्द, भिक्खु सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म, 'अनन्तं विञ्ञाणं' ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। इदं खो, आनन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। ये खो, आनन्द, एवं वदेय्युं—'एतंपरमं सन्तं सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदेन्ती' ति—इदं नेसाहं नानुजानामि। तं किस्स हेतु? अत्थानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

"कतमं चानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च?

चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। आनन्द! यह चतुर्थ ध्यान की साधना का सुख उस (तृतीयध्यान की साधना—) सुख से भी अच्छा एवं उत्कृष्टतर है। (४)

"आनन्द! यहाँ कोई यह कहे—...पूर्ववत्...अच्छा एवं उत्कृष्टतर है? आनन्द! यहाँ कोई भिक्षु रूपसंज्ञाओं को सर्वथा अतिक्रमण कर, प्रतिघ संज्ञाओं के अस्त हो जाने से, विविध संज्ञाओं के मन में न धारण करने से 'यह आकाश अनन्त है'—ऐसी भावना करता हुआ आकाशानन्त्यायतन की साधना करता है। आनन्द! यह (आकाशानन्त्यायतन साधना का) सुख उस (चतुर्थ ध्यान की साधना के) सुख से भी अच्छा एवं उत्कृष्टतर है। (५)

"आनन्द! यहाँ कोई यह कहे—...पूर्ववत्...अच्छा एवं उत्कृष्टतर है? आनन्द! यहाँ कोई भिक्षु आकाशानन्त्यायतन का सर्वथा अतिक्रमण कर विज्ञानानन्त्यायतन की साधना करता है। आनन्द! यहाँ (विज्ञानानन्त्यायतन की साधना का) सुख उस (आकाशानन्त्यायतन की साधना के) सुख से भी अच्छा एवं उत्कृष्टतर है। (६)

"आनन्द! यहाँ कोई यह कहे—...पूर्ववत्...अच्छा एवं उत्कृष्टतर है? आनन्द!

इधानन्द, भिक्खु सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म, 'नत्थि किञ्ची' ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति। इदं खो, आनन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। ये खो, आनन्द, एवं वदेय्युं—'एतंपरमं सन्तं सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदेन्ती' ति—इदं नेसाहं नानुजानामि। तं किस्स हेतु? अत्थानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

"कतमं चानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च? इधानन्द, भिक्खु सब्बसो आकिञ्चञ्ञायतनं समतिक्कम्म नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति। इदं खो, आनन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च [R.228] पणीततरं च। ये खो, आनन्द, एवं वदेय्युं—'एतंपरमं सन्तं सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदेन्ती' ति—इदं नेसाहं नानुजानामि। तं किस्स हेतु? अत्थानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

"कतमं चानन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च? इधानन्द, भिक्खु सब्बसो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समतिक्कम्म सञ्ञावेदयितनिरोधं उपसम्पज्ज विहरति। इदं खो, आनन्द, एतम्हा सुखा अञ्ञं सुखं अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।

"ठानं खो पनेतं, आनन्द, विज्जति यं अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एवं वदेय्युं—'सञ्ञावेदयितनिरोधं समणो गोतमो आह, तं च सुखस्मिं पञ्ञापेति। तयिदं किंसु,

---

यहाँ कोई भिक्षु इस विज्ञानानन्त्यायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर 'कुछ भी नहीं है'—ऐसी भावना करता हुआ आकिञ्चन्यायतन की साधना करता है। आनन्द! यह (आकिञ्चन्यायतन की साधना का) सुख उस (विज्ञानानन्त्यायतन की साधना के) सुख से भी अच्छा एवं उत्कृष्टतर है। (७)

"आनन्द! यहाँ कोई यह कहे—...पूर्ववत्...अच्छा एवं उत्कृष्टतर है? आनन्द! यहाँ कोई भिक्षु इस आकिञ्चन्यायतन का सर्वथा अतिक्रमण कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन भावना की साधना करता है। आनन्द! यह (नैवसंज्ञानासंज्ञायतन की साधना का) सुख उस (आकिञ्चन्यायतन की साधना के) सुख से भी अच्छा एवं उत्कृष्टतर है। (८)

"आनन्द! यहाँ कोई कहे—...पूर्ववत्...अच्छा एवं उत्कृष्टतर है? आनन्द! यहाँ कोई भिक्षु नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का भी अतिक्रमण कर संज्ञावेदितनिरोध की भावना की साधना करता है। आनन्द! उस नैवसंज्ञानासंज्ञायतन के साधनासुख की अपेक्षा यह संज्ञावेदितनिरोध-साधनासुख अधिक अच्छा एवं उत्कृष्टतर है। (९)

"आनन्द! बहुत सम्भव है कि इस प्रसङ्ग में दूसरे सम्प्रदायों वाले परिव्राजक तुम

[B.427] तयिदं कथंसू' ति ? एवंवादिनो, आनन्द, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एवमस्सु वचनीया—'न खो, आवुसो, भगवा सुखञ्ञेव वेदनं सन्धाय सुखस्मिं पञ्ञापेति। [N.203] यत्थ, आवुसो, सुखं उपलब्भति, यहिं यहिं, तं तं तथागतो सुखस्मिं पञ्ञापेती'' ति॥ •

२०. भिक्खुसुत्तं

२०. ''द्वे पि मया, भिक्खवे, वेदना वुत्ता परियायेन, तिस्सो पि मया वेदना वुत्ता परियायेन, पञ्च पि मया वेदना वुत्ता परियायेन, छ पि मया वेदना वुत्ता परियायेन, अट्ठारसा पि मया वेदना वुत्ता परियायेन, छत्तिंसा पि मया वेदना वुत्ता परियायेन, अट्ठसतं पि मया वेदना वुत्ता परियायेन। एवं परियायदेसितो, भिक्खवे, मया धम्मो। एवं परियायदेसिते खो, भिक्खवे, मया धम्मे ये अञ्ञमञ्ञस्स सुभासितं सुलपितं न समनुमञ्ञिस्सन्ति न समनुजानिस्सन्ति न समनुमोदिस्सन्ति, तेसं एतं पाटिकङ्खं— [R.229] भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञे मुखसत्तीहि वितुदन्ता विहरिस्सन्ती ति। एवं परियायदेसितो, भिक्खवे, मया धम्मो। एवं परियायदेसिते खो, भिक्खवे, मया धम्मे ये अञ्ञमञ्ञस्स सुभासितं सुलपितं समनुमञ्ञिस्सन्ति समनुजानिस्सन्ति समनुमोदिस्सन्ति, तेसं एतं पाटिकङ्खं—समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना खीरोदकीभूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरिस्सन्ती ति।

''पञ्चिमे, भिक्खवे, कामगुणा...पे०...ठानं खो पनेतं, भिक्खवे, विज्जति यं अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एवं वदेय्युं—'सञ्ञावेदयितनिरोधं समणो गोतमो आह, तं च सुखस्मिं पञ्ञापेति। तयिदं किंसु, तयिदं कथंसू' ति? एवंवादिनो, भिक्खवे,

---

से यह पूछें—'श्रमण गौतम संज्ञावेदितनिरोध की देशना करते हैं तथा उस को 'सुख' भी बताते हैं, वह 'सुख' क्या है ? तथा कैसे अनुभूत होता है ?' ऐसा पूछे जाने पर तुम को उन्हें यह बताना चाहिये—'आयुष्मानो ! भगवान् ने 'सुख वेदना' के विचार से उसे 'सुख' रूप से निर्दिष्ट नहीं किया है, अपि तु आयुष्मानो ! जब जब जिस जिस में वह सुख अनुभूत हो सकता है उसे ही भगवान् सुख मानते हैं"॥ •

२०. भिक्षुसूत्र : : विभिन्न मतों से वेदनाओं की देशना

२०. ...''भिक्षुओ ! प्रसङ्ग पड़ने पर मैंने दो वेदनाओं की भी देशना की है, तीन वेदनाओं की भी, पाँच वेदनाओं की भी, छह वेदनाओं की भी, अट्ठारह वेदनाओं की भी, छत्तीस वेदनाओं की भी, एक सौ आठ वेदनाओं की भी देशना की है। यों, भिक्षुओ ! मैंने धर्म का प्रसङ्ग के अनुसार व्याख्यान किया है।

अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एवमस्सु वचनीया—'न खो, आवुसो, भगवा सुखञ्ञेव वेदनं सन्धाय सुखस्मिं पञ्ञापेति। यत्थ यत्थ, आवुसो, सुखं उपलब्भति, यहिं यहिं, तं तं तथागतो सुखस्मिं पञ्ञापेती'' ति॥ ●

रहोगतवग्गो दुतियो॥

तस्सुद्दानं

रहोगतं द्वे आकासं, अगारं द्वे च आनन्दा। [B.428]
सम्बहुला दुवे वुत्ता, पञ्चकङ्गो च भिक्खुना ति॥ ●

भिक्षुओ! यों मेरे द्वारा प्रसङ्गानुसारी व्याख्यात इस धर्म में...पूर्वसूत्रवत्...आयुष्मानो! जब जब जिस में वह सुख अनुभूत हो सकता है, उसी को तथागत 'सुख' बताते हैं॥●

रहोगतवर्ग द्वितीय सम्पन्न॥

इस रहोगतवर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. रहोगतसूत्र, २. प्रथम आकाशसूत्र, ३. द्वितीय आकाशसूत्र, ४. आगारसूत्र, ५. प्रथम आनन्दसूत्र, ६. द्वितीय आनन्दसूत्र, ७. प्रथम सम्बहुलसूत्र, ८. द्वितीय सम्बहुलसूत्र, ९. पञ्चकाङ्गसूत्र, एवं १०. भिक्षुसूत्र॥

३. अट्ठसतपरियायवग्गो ततियो

२१. सीवकसुत्तं

[N.204, R.230] २१. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो मोळियसीवको परिब्बाजको येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो मोळियसीवको परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"सन्ति, भो गोतम, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'यं किञ्चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं पुब्बेकतहेतू' ति। इध पन भव गोतमो किमाहा" ति?

"पित्तसमुट्ठानानि पि खो, सीवक, इधेकच्चानि वेदयितानि उप्पज्जन्ति। सामं पि खो एतं, सीवक, वेदितब्बं यथा पित्तसमुट्ठानानि पि इधेकच्चानि वेदयितानि उप्पज्जन्ति; लोकस्स पि खो एतं, सीवक, सच्चसम्मतं यथा पित्तसमुट्ठानानि पि इधेकच्चानि वेदयितानि उप्पज्जन्ति। तत्र, सीवक, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'यं किञ्चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं पुब्बेकतहेतू' ति। यं च सामं ञातं तं च अतिधावन्ति, यं च लोके सच्चसम्मतं तं च अतिधावन्ति। तस्मा तेसं समणब्राह्मणानं मिच्छा ति वदामि।

---

३. अष्टशतपर्यायवर्ग तृतीय

२१. सीवकसूत्र : : एक सौ आठ वेदनाएँ

२१. एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। तब मोलिय सीवक नामक परिव्राजक भगवान् के सम्मुख आया। आ कर, कुशलमङ्गल प्रश्नानन्तर भगवान् से यों जिज्ञासा प्रकट करने लगा—"भो गौतम! कुछ श्रमण ब्राह्मण ऐसा कहते देखे जाते हैं—'पुरुष जो कुछ भी सुख, दुःख या अदुःख असुख वेदना का अनुभव करता है, सभी स्वकृत कर्म के कारण ही'। उन के इस विचार पर आप गौतम का क्या कथन है?"

"सीवक! यहाँ पित्त के प्रकोप से भी कुछ वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं, सीवक! यह तुम भी जान सकते हो, समस्त संसार भी जानता है कि पित्त के प्रकोप से भी कुछ वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं। तब सीवक! उन लोगों का यह कथन कैसे मान्य हो सकता है कि सभी मान्य वेदनाएँ स्वकृत कर्मविपाक से ही उत्पन्न होती हैं। उन का ऐसा मानना उन के स्वकीय अनुभव के भी विपरीत है, तथा व्यावहारिक मान्यता के भी विरुद्ध है। अतः मेरी दृष्टि में उन लोगों का यह विचार मिथ्या है। (१)

"सेम्हसमुट्ठानानि पि खो, सीवक...पे०...वातसमुट्ठानानि पि खो, सीवक ...पे०...सन्निपातिकानि पि खो, सीवक...पे०...उतुपरिणामजानि पि खो, सीवक ...पे०...विसमपरिहारजानि पि खो, सीवक...पे०...ओपक्कमिकानि पि खो, [R.231] सीवक...पे०...कम्मविपाकजानि पि खो, सीवक, इधेकच्चानि वेदयितानि उप्पज्जन्ति। सामं पि खो एतं, सीवक, वेदितब्बं। यथा कम्मविपाकजानि पि इधेकच्चानि वेदयितानि उप्पज्जन्ति; लोकस्स पि खो एतं, सीवक, सच्चसम्मतं। यथा कम्मविपाकजानि [B.429] पि इधेकच्चानि वेदयितानि उप्पज्जन्ति; तत्र, सीवक, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'यं किञ्चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं पुब्बेकतहेतू' ति। यं च सामं ञातं तं च अतिधावन्ति यं च लोके सच्चसम्मतं तं च अतिधावन्ति। तस्मा तेसं समणब्राह्मणानं मिच्छा ति वदामि। [N.205]

एवं वुत्ते, मोळियसीवको परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०...उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं ति।

"सीवक! यहाँ कफ के प्रकोप से भी कुछ वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं...पूर्ववत्...। (२)

"सीवक! यहाँ वायु के प्रकोप से भी कुछ वेदनाएँ उद्भूत होती हैं...पूर्ववत्...। (३)

"सीवक! यहाँ कुछ वेदनाएँ वातपित्तकफज—सन्निपातज—भी होती हैं...पूर्ववत्...। (४)

"सीवक! कुछ वेदनाएँ ऋतुविपर्यय से भी उद्भूत होती हैं...पूर्ववत्...। (५)

"सीवक! कुछ वेदनाएँ विषम आहार से भी उत्पन्न होती हैं...पूर्ववत्...। (६)

"सीवक! कुछ वेदनाएँ उपक्रम (उपायविशेष) से भी उत्पन्न होती हैं...पूर्ववत्...। (७)

"सीवक! कुछ वेदनाएँ अवश्य कर्मविपाक से भी उद्भूत होती हैं...पूर्ववत्...। (८)

"अत: सीवक! उन श्रमण ब्राह्मणों की यह मान्यता मिथ्या ही है कि सभी वेदनाएँ केवल स्वकृतकर्मविपाकज ही हैं। ऐसा मैं कहता हूँ।

भगवान् का यह वचन सुन कर सीवक भावविभोर होता हुआ यों निवेदन करने लगा—"भो गोतम!...आज से जीवनपर्यन्त मुझे अपनी शरण में आया उपासक स्वीकार करें।

"पित्तं सेम्हं च वातो च, सन्निपाता उतूनि च।
विसमं ओपक्कमिकं च, कम्मविपाकेन अट्ठमी"॥ ति॥ •

२२. अट्ठसतसुत्तं

२२. "अट्ठसतपरियायं वो, भिक्खवे, धम्मपरियायं देसेस्सामि। तं सुणाथ। कतमो च, भिक्खवे, अट्ठसतपरियायो धम्मपरियायो? द्वे पि मया, भिक्खवे, वेदना वुत्ता परियायेन; तिस्सो पि मया वेदना वुत्ता परिययेन; पञ्च पि मया वेदना वुत्ता परियायेन; छ पि मया वेदना वुत्ता परियायेन; अट्ठारसा पि मया वेदना वुत्ता परियायेन; छत्तिंसा पि मया वेदना वुत्ता परियायेन; अट्ठसतं पि मया वेदना वुत्ता परियायेन।

"कतमा च, भिक्खवे, द्वे वेदना? कायिका च चेतसिका च—इमा वुच्चन्ति, भिक्खवे, द्वे वेदना।

"कतमा च, भिक्खवे, तिस्सो वेदना? सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खम-[R.232] सुखा वेदना—इमा वुच्चन्ति, भिक्खवे, तिस्सो वेदना।

"कतमा च, भिक्खवे, पञ्च वेदना? सुखिन्द्रियं, दुक्खिन्द्रियं, सोमनस्सिन्द्रियं, दोमनस्सिन्द्रियं, उपेक्खिन्द्रियं—इमा वुच्चन्ति, भिक्खवे, पञ्च वेदना।

"कतमा च, भिक्खवे, छ वेदना? चक्खुसम्फस्सजा वेदना...पे०...मनो-सम्फस्सजा वेदना—इमा वुच्चन्ति, भिक्खवे, छ वेदना।

---

१. "पित्त, २. कफ, ३. वात, ४. सन्निपात, ५. ऋतुविपर्यय, ६. विषम आहार, ७. उपक्रमविशेष तथा ८. स्वकर्मविपाक से भी ये विविध वेदनाएँ उद्भूत होती हैं"॥ •

२२. अष्टशतसूत्र : : एक सौ आठ वेदनाएँ

२२. "भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें एक सौ आठ धर्मों का उपदेश करूँगा। उसे सुनो। भिक्षुओ! ये एक सौ आठ धर्म कौन से हैं? भिक्षुओ! मैंने प्रसङ्ग आने पर दो वेदनाओं का भी उपदेश किया है, तीन वेदनाओं का भी उपदेश किया है, पाँच का भी...छह का भी...अट्ठारह का भी...छत्तीस का भी...एक सौ आठ वेदनाओं का भी, प्रसङ्ग आने पर उपदेश किया है।

"भिक्षुओ! उन में **दो वेदनाएँ** कौन सी होती हैं? १. कायिक एवं २. चैतसिक—ये दो वेदनाएँ कहलाती हैं।

"भिक्षुओ! उन में **तीन वेदनाएँ** कौन सी होती हैं? १. सुखा वेदना, २. दुःखा वेदना, एवं ३. अदुःखा असुखा वेदना। ये तीन वेदनाएँ कहलाती हैं।

"भिक्षुओ! **पाँच वेदनाएँ** कौन सी होती हैं?—१. सुखेन्द्रिय, २. दुःखेन्द्रिय, ३. सौमनस्येन्द्रिय, ४. दौर्मनस्येन्द्रिय एवं ५. उपेक्षेन्द्रिय। ये पाँच वेदनाएँ कहलाती हैं।

''कतमा च, भिक्खवे, अट्ठारस वेदना? छ सोमनस्सूपविचारा, छ दोमनस्सूपविचारा, छ उपेक्खूपविचारा—इमा वुच्चन्ति, भिक्खवे, अट्ठारस वेदना।

''कतमा च, भिक्खवे, छत्तिंस वेदना? छ गेहसितानि सोमनस्सानि, छ नेक्खम्मसितानि सोमनस्सानि, छ गेहसितानि दोमनस्सानि, छ नेक्खम्मसितानि दोमनस्सानि, छ गेहसिता उपेक्खा, छ नेक्खम्मसिता उपेक्खा—इमा वुच्चन्ति, [B.430] भिक्खवे, छत्तिंस वेदना।

''कतमं च, भिक्खवे, अट्ठसतं वेदना? अतीता छत्तिंस वेदना, अनागता छत्तिंस वेदना, पच्चुप्पन्ना छत्तिंस वेदना—इमा वुच्चन्ति, भिक्खवे, अट्ठसतं वेदना। अयं, भिक्खवे, अट्ठसतपरियायो धम्मपरियायो'' ति॥ [N.206] ●

२३. अञ्ञतरभिक्खुसुत्तं

२३. अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''कतमा नु खो, भन्ते, वेदना, कतमो वेदनासमुदयो, कतमा वेदनासमुदयगामिनी

''भिक्षुओ! **छह वेदनाएँ** कौन सी होती हैं?—१. चक्षु:संस्पर्शजा वेदना, २. श्रोत्र-संस्पर्शजा वेदना, ३. घ्राणसंस्पर्शजा वेदना, ४. जिह्वासंस्पर्शजा वेदना, ५. कायसंस्पर्शजा वेदना, एवं ६. मन:संस्पर्शजा वेदना। ये छह वेदनाएँ कहलाती हैं।

''भिक्षुओ! **अट्ठारह वेदनाएँ** कौन सी होती हैं?—छह सौमनस्य के विचार से, छह दौर्मनस्य के विचार से तथा छह उपेक्षा के विचार से, इस तरह ६ × ३ = १८ अट्ठारह वेदनाएँ होती हैं।

''भिक्षुओ! **छत्तीस वेदनाएँ** कौन सी होती हैं?—छह गृहसम्बन्धी सौमनस्य, छह नैष्कर्म्य (त्याग) सम्बन्धी सौमनस्य; छह गृहसम्बन्धी दौर्मनस्य, छह नैष्कर्म्यसम्बन्धी दौर्मनस्य; छह गृहसम्बन्धी उपेक्षा, छह नैष्कर्म्यसम्बन्धी उपेक्षा ६ × ६ = ३६। भिक्षुओ! ये ही छत्तीस वेदनाएँ कहलाती हैं।

''भिक्षुओ! **एक सौ आठ वेदनाएँ** कौन सी हैं?—छत्तीस अतीत वेदना, छत्तीस अनागत वेदना तथा छत्तीस प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) वेदना। भिक्षुओ! ये ही एक सौ आठ वेदनाएँ कहलाती हैं। (३६ × ३ = १०८)

''भिक्षुओ! यही है एक सौ आठ बातों का धर्मोपदेश''॥ ●

२३. अन्यतरभिक्षुसूत्र : : तीन वेदनाएँ

२३. तब कोई भिक्षु भगवान् के सम्मुख आया, तथा उन को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उसने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—''भन्ते! यह वेदना

पटिपदा? कतमो वेदनानिरोधो, कतमा वेदनानिरोधगामिनी पटिपदा? को वेदनाय [R.233] अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं'' ति?

''तिस्सो इमा, भिक्खु, वेदना—सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना। इमा वुच्चन्ति, भिक्खु, वेदना। फस्ससमुदया वेदनासमुदयो। तण्हा वेदना-समुदयगामिनी पटिपदा। फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो। अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो वेदनानिरोधगामिनी पटिपदा, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि। यं वेदनं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, अयं वेदनाय अस्सादो; या वेदना अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा, अयं वेदनाय आदीनवो; यो वेदनाय छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं, इदं वेदनाय निस्सरणं'' ति॥ •

२४. पुब्बसुत्तं

२४. ''पुब्बेव मे, भिक्खवे, सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो एतदहोसि—'कतमा नु खो, वेदना, कतमो वेदनासमुदयो, कतमा वेदनासमुदयगामिनी पटिपदा, कतमो वेदनानिरोधो, कतमा वेदनानिरोधगामिनी पटिपदा? को वेदनाय अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं'' ति? तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—

क्या होती है? यह वेदनासमुदय...यह वेदनासमुदयगामी मार्ग...यह वेदनानिरोध...यह वेदनानिरोधगामी मार्ग...वेदनाओं का आस्वाद...वेदनाओं का आदीनव...एवं वेदनाओं का निःसरण क्या है?''

''भिक्षु! वेदना तीन होती हैं। १. सुखा वेदना, २. दुःखा वेदना एवं ३. अदुःखा असुखा वेदना—भिक्षु! ये तीन वेदना कहलाती हैं। स्पर्श की उत्पत्ति से वेदना की उत्पत्ति होती है। तृष्णा ही वेदना के उत्पाद की ओर ले जाने वाला मार्ग है। इसी तरह, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध होता है तथा यह आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग ही वेदनानिरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है। जैसे—सम्यग्दृष्टि...सम्यक्समाधि। जिस वेदना के प्रत्यय से जो सुख सौमनस्य आविर्भूत होता है, यही वेदना का आस्वाद है। यह वेदना अनित्य, दुःखमय एवं विनाशस्वभाव वाली है—यही वेदना का दोष है। तथा जो वेदना में राग-आसक्ति का प्रहाण है, यही वेदना का मोक्ष है॥'' •

२४. पूर्वसूत्र : : वेदना की उत्पत्ति तथा निरोध

२४. ...''भिक्षुओ! बोधिप्राप्ति से पूर्व, जब कि मैं अभी बोधिसत्त्वावस्था में ही था, मुझे यह विचार हुआ—'वेदना क्या है? वेदनासमुदय क्या है? वेदनासमुदयगामी मार्ग क्या है? वेदनानिरोध क्या है? वेदनानिरोधगामी मार्ग क्या है? तथा वेदना के आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण क्या हैं?' तब मुझे इन प्रश्नों का उत्तर यह समझ में

'तिस्सो इमा वेदना—सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना। इमा वुच्चन्ति वेदना। फस्ससमुदया वेदनासमुदयो। तण्हा वेदनासमुदयगामिनी पटिपदा...पे०...यो वेदनाय छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं, इदं वेदनाय निस्सरणं'' ति॥ ●

२५. ञाणसुत्तं

२५. '''इमा वेदना' ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु [N.207, B.401] चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि। 'अयं वेदना-समुदयो' ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि...पे०...आलोको उदपादि। 'अयं वेदनासमुदयगामिनी पटिपदा' ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि...पे०...। 'अयं वेदनानिरोधो' ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि...पे०...। 'अयं [R.234] वेदनानिरोधगामिनी पटिपदा' ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि...पे०...। 'अयं वेदनाय अस्सादो' ति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु...पे०...। 'अयं वेदनाय आदीनवो' ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु...पे०...।'इदं खो निस्सरणं' ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादी'' ति॥ ●

आया—'सुखा वेदना, दु:खा वेदना एवं अदु:खा असुखा वेदना—ये तीन वेदनाएँ होती हैं। स्पर्श की उत्पत्ति से वेदना की उत्पत्ति एवं तृष्णा ही इस वेदना की उत्पत्ति की ओर ले जाने वाला मार्ग है। इसी तरह स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध हो जाता है...पूर्ववत्...वेदना में राग आसक्ति का प्रहाण ही वेदना का मोक्ष है'॥'' ●

२५. ज्ञानसूत्र : : वेदना की उत्पत्ति एवं निरोध

२५. ''भिक्षुओ!'यह वेदना है'—ऐसा पहले कभी न सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हुआ (ऐसे धर्मों की ओर मेरी दृष्टि गयी), ज्ञान उत्पन्न हुआ (उस पर विचार करने का ध्यान आया), प्रज्ञा उत्पन्न हुई (उन धर्मों को यथार्थतः समझा), विद्या उत्पन्न हुई, आलोक (प्रकाश) उत्पन्न हुआ।

...'यह वेदना का उत्पाद है'—ऐसा पहले कभी न सुने गये धर्मों में...पूर्ववत्...।

...'यह वेदना के उत्पाद का मार्ग है'—ऐसा पहले कभी न सुने गये...पूर्ववत्...।

...'यह वेदना का निरोध है'—ऐसा पहले कभी न सुने गये...पूर्ववत्...।

...'यह वेदना के निरोध का मार्ग है'—ऐसा पहले कभी न सुने गये...पूर्ववत्...।

...'यह वेदना का आस्वाद है'—ऐसा पहले कभी न सुने गये...पूर्ववत्...।

...'यह वेदना का आदीनव है'—ऐसा पहले कभी न सुने गये...पूर्ववत्...।

२६. सम्बहुलभिक्खुसुत्तं

२६. अथ खो सम्बहुला भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा ...पे०...एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—''कतमा नु खो, भन्ते, वेदना, कतमो वेदनासमुदयो, कतमा वेदनासमुदयगामिनी पटिपदा? कतमो वेदना-निरोधो, कतमा वेदनानिरोधगामिनी पटिपदा? को वेदनाय अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं'' ति?

''तिस्सो इमा, भिक्खवे, वेदना—सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना। इमा वुच्चन्ति, भिक्खवे, वेदना। फस्ससमुदया वेदनासमुदयो। तण्हा वेदना-समुदयगामिनी पटिपदा। फस्सनिरोधा...पे०...यो वेदनाय छन्दरागविनयो छन्द-रागप्पहानं। इदं वेदनाय निस्सरणं'' ति॥ •

२७. पठमसमणब्राह्मणसुत्तं

२७. ''तिस्सो इमा, भिक्खवे, वेदना। कतमा तिस्सो? सुखा वेदना, दुक्खा [N.208, B.432] वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना। ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा इमासं तिस्सन्नं वेदनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानन्ति। न मे ते, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु वा समणसम्मता ब्राह्मणेसु वा ब्राह्मणसम्मता, न च पन ते आयस्मन्तो सामञ्ञत्थं वा

...'यह वेदना का निस्सरण है'—ऐसा पहले कभी न सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हुआ, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ''॥ •

२६. सम्बहुलभिक्षुसूत्र : : त्रिविध वेदनाएँ

२६. ...तब कुछ भिक्षु भगवान् के सम्मुख पहुँचे। वहाँ पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे वे भिक्षु भगवान् से यों निवेदन करने लगे—''भन्ते! वेदना क्या है? वेदनासमुदय क्या है? वेदनासमुदयगामी मार्ग क्या है? वेदनानिरोध एवं वेदनानिरोधगामी मार्ग क्या है? वेदना के आस्वाद, आदीनव एवं निस्सरण क्या हैं?''

''भिक्षुओ! ये वेदनाएँ तीन हैं। सुखा वेदना, दुःखा वेदना एवं अदुःखा असुखा वेदना—भिक्षुओ! ये वेदनाएँ कहलाती हैं। स्पर्श की उत्पत्ति से वेदना की उत्पत्ति होती है। तृष्णा ही वेदना की ओर ले जाने वाला मार्ग है। स्पर्श के निरोध से...पूर्ववत्...वेदना के छन्दराग का प्रहाण ही वेदना का मोक्ष है॥'' •

२७. प्रथम श्रमणब्राह्मणसूत्र : : वेदना ज्ञान से ही श्रामण्य एवं ब्राह्मण्य

२७. ...''भिक्षुओ! वेदनाएँ तीन हैं...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! जो भी श्रमण ब्राह्मण इन तीनों वेदनाओं के उत्पाद, विनाश, आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण को यथार्थतः नहीं

ब्रह्मञ्ञत्थं वा दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ति। ये च खो केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा इमासं तिस्सन्नं वेदनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानन्ति। ते खो मे, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु चेव समणसम्मता ब्राह्मणेसु च ब्राह्मणसम्मता। ते च पनायस्मन्तो सामञ्ञत्थं च ब्रह्मञ्ञत्थं च, दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती'' ति॥

●

२८. दुतियसमणब्राह्मणसुत्तं

२८. ''तिस्सो इमा, भिक्खवे, वेदना। कतमा तिस्सो? सुखा वेदना, [R.235] दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना। ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा इमासं तिस्सन्नं वेदनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानन्ति... पे०...पजानन्ति...पे०...सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती'' ति॥

●

२९. ततियसमणब्राह्मणसुत्तं

२९. ''ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा वेदनं नप्पजानन्ति, वेदनासमुदयं नप्पजानन्ति, वेदनानिरोधं नप्पजानन्ति, वेदनानिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानन्ति...पे०...पजानन्ति...पे०...सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती'' ति॥

●

जानते वे श्रमण ब्राह्मण अपने समाज में 'श्रमण' या 'ब्राह्मण' कहलाने के अधिकारी नहीं हैं, न वे श्रामण्य एवं ब्राह्मण्य धर्मों का इस जन्म में ज्ञान तथा साक्षात्कार कर उचित साधना ही कर पाते हैं। परन्तु जो श्रमण ब्राह्मण इन वेदनाओं के विषय में सब कुछ यथार्थतः जानते हैं वे ही अपने समाज में 'श्रमण' तथा 'ब्राह्मण' कहलाने योग्य हैं। वे ही श्रामण्य एवं ब्राह्मण्य धर्मों का इसी जन्म में ज्ञान तथा साक्षात्कार कर उचित साधना कर पाते हैं''॥

●

२८. द्वितीय श्रमणब्राह्मणसूत्र : : वेदना ज्ञान से ही श्रामण्य एवं ब्राह्मण्य

२८. ...''भिक्षुओ! ये वेदनाएँ तीन हैं। कौन सी तीन? ...पूर्वसूत्रवत्...। जो इन वेदनाओं के विषय में यथार्थतः जानते हैं...पूर्वसूत्रवत्...''॥

●

२९. तृतीय श्रमणब्राह्मणसूत्र : : वेदना ज्ञान के विना श्रामण्य एवं ब्राह्मण्य असम्भव

२९. ...''भिक्षुओ! ...पूर्ववत्...जिन श्रमणों एवं ब्राह्मणों को इन वेदनाओं के विषय में यथार्थतः ज्ञान नहीं है, उन के लिये यह सम्भव नहीं है कि वे इस जन्म में ज्ञान या साक्षात्कार कर साधना कर सकें।

●

३०. सुद्धिकसुत्तं

३०. ''तिस्सो इमा, भिक्खवे, वेदना। कतमा तिस्सो? सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना। इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो वेदना'' ति॥ •

३१. निरामिससुत्तं

३१. ''अत्थि, भिक्खवे, सामिसा पीति, अत्थि निरामिसा पीति, अत्थि [N.209, B.433] निरामिसा निरामिसतरा पीति; अत्थि सामिसं सुखं, अत्थि निरामिसं सुखं, अत्थि निरामिसा निरामिसतरं सुखं; अत्थि सामिसा उपेक्खा, अत्थि निरामिसा उपेक्खा, अत्थि निरामिसा निरामिसतरा उपेक्खा; अत्थि सामिसो विमोक्खो, अत्थि निरामिसो विमोक्खो, अत्थि निरामिसा निरामिसतरो विमोक्खो। कतमा च, भिक्खवे, सामिसा पीति? पञ्चिमे, भिक्खवे, कामगुणा। कतमे पञ्च? चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया...पे०...कायविञ्ञेय्या फोट्ठब्बा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च कामगुणा। या खो, भिक्खवे, इमे पञ्च कामगुणे पटिच्च उप्पज्जति पीति, अयं वुच्चति, भिक्खवे, सामिसा पीति।

---

३०. शुद्धिकसूत्र : : त्रिविध वेदनाएँ

३०. ...''भिक्षुओ! वेदनाएँ तीन होती हैं। कौन सी तीन? सुखा वेदना, दु:खा वेदना एवं अदु:खा असुखा वेदना। भिक्षुओ! इस प्रकार ये तीन वेदनाएं होती हैं''॥ •

३१. निरामिषसूत्र : : त्रिविध वेदनाएँ

३१. ...''भिक्षुओ! प्रीति दो प्रकार की होती है—१. सामिष (सकाम) भी तथा निरामिष (निष्काम) भी। एक प्रीति इस की अपेक्षा से अधिक निरामिष होती है। सुख भी दो प्रकार का होता है—१. सामिष (सकाम) भी, तथा निरामिष (निष्काम) भी। एक सुख इस की अपेक्षा से भी अधिक निरामिष होता है। उपेक्षा भी दो प्रकार की होती है—१. सामिष तथा २. निरामिष। एक उपेक्षा इस से भी अधिक निरामिष होती है। इसी तरह विमोक्ष भी द्विविध होता है—१. सामिष तथा २. निरामिष। एक विमोक्ष इस की भी अपेक्षा अधिक निरामिष होता है।

''भिक्षुओ! सामिष प्रीति क्या होती है? शास्त्र में, भिक्षुओ! पाँच कामभोग बताये हैं—१. इष्ट, कान्त, मनाप चक्षुर्विज्ञेय रूप, २. ...श्रोत्रविज्ञेय शब्द, ३. ...घ्राणविज्ञेय गन्ध, ४. ...जिह्वाविज्ञेय रस, एवं ५. ...कामविज्ञेय स्प्रष्टव्य। भिक्षुओ! ये पाँच कामभोग होते हैं। भिक्षुओ! इन पाँच कामभोगों की अपेक्षा कर उत्पन्न होने वाली प्रीति ही 'सामिष (सकाम) प्रीति' कहलाती है।

"कतमा च, भिक्खवे, निरामिसा पीति? इध, भिक्खवे, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं [R.236] पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, निरामिसा पीति।

"कतमा च, भिक्खवे, निरामिसा निरामिसतरा पीति? या खो, भिक्खवे, खीणासवस्स भिक्खुनो रागा चित्तं विमुत्तं पच्चवेक्खतो, दोसा चित्तं विमुत्तं पच्च-वेक्खतो, मोहा चित्तं विमुत्तं पच्चवेक्खतो उप्पज्जति पीति, अयं वुच्चति निरामिसा निरामिसतरा पीति।

"कतमं च, भिक्खवे, सामिसं सुखं? पञ्चिमे, भिक्खवे, कामगुणा। कतमे पञ्च? चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया...पे०... कायविञ्ञेय्या फोट्ठब्बा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च कामगुणा। यं खो, भिक्खवे, इमे पञ्च कामगुणे पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, इदं वुच्चति, भिक्खवे, सामिसं सुखं।

"कतमा च, भिक्खवे, निरामिसं सुखं? इध, भिक्खवे, भिक्खु [N.210, B.434] विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। पीतिया च

"भिक्षुओ! 'निरामिषा (निष्काम) प्रीति' क्या होती है? भिक्षुओ! साधक भिक्षु कामभोग एवं अकुशल धर्मों से रहित हो कर विवेक से उत्पन्न प्रीति सुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। भिक्षुओ! कोई भिक्षु वितर्क विचारों का शमन होने से उत्पन्न होने से एकाग्रचित्त में उत्पन्न अवितर्क अविचारयुक्त समाधिजन्य प्रीतिसुख वाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। भिक्षुओ! यही 'निरामिष प्रीति' कहलाती है।

"भिक्षुओ! इस निरामिष प्रीति की अपेक्षा भी अधिक निरामिष प्रीति क्या होती है? क्षीणाश्रव भिक्षु का जो चित्त आत्मचिन्तन करता हुआ राग से विमुक्त हो चुका है, द्वेष एवं मोह से विमुक्त हो चुका है उसे जो प्रीति उत्पन्न होती है वही 'निरामिषतर प्रीति' कहलाती है॥ (१)

"भिक्षुओ! सामिष (सकाम) सुख क्या कहलाता है? उपर्युक्त चक्षुर्विज्ञेय रूप आदि पाँच कामभोगों से उत्पन्न होने वाला सौमनस्य सुख 'सामिष सुख' कहलाता है।

"भिक्षुओ! 'निरामिष सुख' क्या कहलाता है? विवेक से उत्पन्न होने वाले प्रथम

विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो सुखं च कायेन पटिसंवेदेति, यं तं अरिया आचिक्खन्ति--'उपेक्खको सतिमा सुखाविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, निरामिसं सुखं।

''कतमं च, भिक्खवे, निरामिसा निरामिसतरं सुखं? यं खो, भिक्खवे, [R.237] खीणासवस्स भिक्खुनो रागा चित्तं विमुत्तं पच्चवेक्खतो, दोसा चित्तं विमुत्तं पच्चवेक्खतो, मोहा चित्तं विमुत्तं पच्चवेक्खतो उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, इदं वुच्चति, भिक्खवे, निरामिसा निरामिसतरं सुखं।

''कतमा च, भिक्खवे, सामिसा उपेक्खा? पञ्चिमे, भिक्खवे, कामगुणा। कतमे पञ्च? चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया...पे०... कायविञ्ञेय्या फोट्ठब्बा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च कामगुणा। या खो, भिक्खवे, इमे पञ्च कामगुणे पटिच्च उप्पज्जति उपेक्खा, अयं वुच्चति, भिक्खवे, सामिसा उपेक्खा।

''कतमा च, भिक्खवे, निरामिसा उपेक्खा? इध, भिक्खवे, भिक्खु सुखस्स च पहाना, दुक्खस्स च पहाना, पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा, अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, निरामिसा उपेक्खा।

''कतमा च, भिक्खवे, निरामिसा निरामिसतरा उपेक्खा? या खो, भिक्खवे, खीणासवस्स भिक्खुनो रागा चित्तं विमुत्तं पच्चवेक्खतो, दोसा चित्तं विमुत्तं पच्च-

---

ध्यान की, समाधि से उत्पन्न होने वाले द्वितीय ध्यान की, तथा उपेक्षा से उत्पन्न होने वाले तृतीय ध्यान की साधना से उत्पन्न प्रीतिसुख को 'निरामिष सुख' कहते हैं।

''भिक्षुओ! इस निरामिष की अपेक्षा भी 'निरामिषतर सुख' क्या है? क्षीणाश्रव भिक्षु का चित्त आत्मचिन्तन कर राग, द्वेष एवं मोह से विमुक्त हो जाता है, तब जो सुख सौमनस्य उत्पन्न होता है यही 'निरामिषतर सुख' कहलाता है॥ (२)

''भिक्षुओ! यह 'सामिष उपेक्षा' क्या होती है? उपर्युक्त चक्षुर्विज्ञेय रूप आदि पाँचों कामभोगों से उत्पन्न होने वाली उपेक्षा ही 'सामिष उपेक्षा' कहलाती है।

''भिक्षुओ! यह 'निरामिष उपेक्षा' क्या है? भिक्षु...पूर्ववत्...उपेक्षा एवं स्मृति की परिशुद्धि वाले चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर साधना करना ही 'निरामिष उपेक्षा' कहलाती है।

''फिर, भिक्षुओ! यह 'निरामिष से निरामिषतर उपेक्षा' क्या है? भिक्षुओ! जिस क्षीणाश्रव भिक्षु का चित्त आत्मचिन्तन कर राग, द्वेष एवं मोह से विमुक्त हो गया है, उसे

वेक्खतो, मोहा चित्तं विमुत्तं पच्चवेक्खतो उप्पज्जति उपेक्खा, अयं वुच्चति, भिक्खवे, निरामिसा निरामिसतरा उपेक्खा।

''कतमो च, भिक्खवे, सामिसो विमोक्खो? रूपप्पटिसंयुत्तो विमोक्खो सामिसो विमोक्खो।

''कतमो च, भिक्खवे, निरामिसो विमोक्खो? अरूपप्पटि-[N.211, B.435] संयुत्तो विमोक्खो निरामिसो विमोक्खो।

''कतमा च, भिक्खवे, निरामिसा निरामिसतरो विमोक्खो? यो खो, भिक्खवे, खीणासवस्स भिक्खुनो रागा चित्तं विमुत्तं पच्चवेक्खतो, दोसा चित्तं विमुत्तं पच्च-वेक्खतो, मोहा चित्तं विमुत्तं पच्चवेक्खतो उप्पज्जति विमोक्खो, अयं वुच्चति, भिक्खवे, निरामिसा निरामिसतरो विमोक्खो'' ति॥ •

अट्ठसतपरियायवग्गो ततियो॥

तस्सुद्दानं

सीवकअट्ठसतं भिक्खु, पुब्बे ञाणं च भिक्खुना। [R.238]
समणब्राह्मणा तीणि, सुद्धिकं च निरामिसं ति॥ •

वेदनासंयुत्तं समत्तं॥

जो उस समय सुख सौमनस्य उत्पन्न होता है, वही 'निरामिष से निरामिषतर उपेक्षा' है॥ (३)

''फिर, भिक्षुओ! यह 'सामिष विमोक्ष' क्या है? रूप से सम्पृक्त (प्रतिसंयुक्त) विमोक्ष ही 'सामिष विमोक्ष' कहलाता है।

''भिक्षुओ! यह 'निरामिष विमोक्ष' क्या है? अरूप से सम्पृक्त विमोक्ष ही 'निरामिष विमोक्ष' कहलाता है।

''भिक्षुओ! यह 'निरामिष से निरामिषतर विमोक्ष' क्या है? भिक्षुओ! जिस क्षीणाश्रव भिक्षु का चित्त आत्मचिन्तन करते हुए राग, द्वेष एवं मोह से विमुक्त हो गया है, उसे जो विमोक्ष उत्पन्न होता है वही 'निरामिष से निरामिषतर विमोक्ष' कहलाता है''॥ •

अष्टशतपर्यायवर्ग तृतीय सम्पन्न॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. सीवकसूत्र, २. अष्टशतसूत्र, ३. अन्यतर-भिक्षुसूत्र, ४. पूर्वसूत्र, ५. ज्ञानसूत्र, ६. सम्बहुलसूत्र, ७. प्रथम श्रमणब्राह्मणसूत्र, ८. द्वितीय श्रमणब्राह्मणसूत्र, ९. तृतीय श्रमणब्राह्मणसूत्र, १०. शुद्धिकसूत्र, एवं ११. निरामिषसूत्र॥ •

वेदनासंयुक्त समाप्त॥

३७. मातुगामसंयुत्तं

१. पठमपेय्यालवग्गो

१. मातुगामसुत्तं

[N.212, B.436] १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो मातुगामो एकन्तअमनापो होति पुरिसस्स। कतमेहि पञ्चहि? न च रूपवा होति, न च भोगवा होति, न च सीलवा होति, अलसो च होति, पजञ्चस्स न लभति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि अङ्गेहि समन्नागतो मातुगामो एकन्तअमनापो होति पुरिसस्स। पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो मातुगामो एकन्तमनापो होति पुरिसस्स। कतमेहि पञ्चहि? रूपवा च होति, भोगवा च होति, सीलवा च होति, दक्खो च होति अनलसो, पजञ्चस्स लभति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि अङ्गेहि समन्नागतो मातुगामो एकन्तमनापो होति पुरिसस्सा'' ति॥

२. पुरिससुत्तं

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो पुरिसो एकन्तअमनापो होति मातुगामस्स। कतमेहि पञ्चहि? न च रूपवा होति, न च भोगवा होति, न च सीलवा

---

३७. मातृग्रामसंयुक्त

१. पेय्यालवर्ग

१. मातृग्रामसूत्र : : पुरुष को मुग्ध करने वाली नारी

१. ...''भिक्षुओ! इन पाँच दुर्गुणों से युक्त कोई भी नारी पुरुष के लिये अयोग्य होती है। वह किसी भी पुरुष का मन नहीं लुभा सकती। किन पाँच दुर्गुणों से? 'जो न रूपवती (सुन्दर) हो, न धनवाली हो, न सदाचारिणी हो तथा (गृहकार्य में) आलसी भी हो, जिस को पुत्र न होते हो (बन्ध्या हो)'—इन पाँच दुर्गुणों से युक्त नारी पुरुष को लुभाने के लिये सर्वथा अयोग्य होती है।

''फिर, भिक्षुओ! इन पाँच गुणों से युक्त नारी किसी भी मनुष्य को मुग्ध कर सकती है। किन पाँच गुणों से? (१) जो रूपवती (सुन्दरी) हो, (२) भोग तथा ऐश्वर्य से सम्पन्न हो, (३) शीलवती (सदाचारिणी) हो, (४) गृहकार्य में आलसी न हो, चतुर हो, तथा (५) सन्तान पैदा करने वाली हो। भिक्षुओ! ऐसे पाँच गुणोंवाली स्त्री किसी भी पुरुष को अपने पर सर्वथा मुग्ध कर सकती है, वह उस की एकान्ततः प्रिय हो सकती है॥''

•

२. पुरुषसूत्र : : नारी को मुग्ध करने वाला पुरुष

२. ...''भिक्षुओ! इन पाँच दुर्गुणों से युक्त पुरुष किसी स्त्री को अपनी ओर आकृष्ट

होति, अलसो च होति, पजञ्चस्स न लभति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि [R.239] अङ्गेहि समन्नागतो पुरिसो एकन्तअमनापो होति मातुगामस्स।

पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो पुरिसो एकन्तमनापो होति मातुगामस्स। कतमेहि पञ्चहि? रूपवा च होति, भोगवा च होति, सीलवा च होति, दक्खो च होति अनलसो, पजञ्चस्स लभति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि अङ्गेहि समन्नागतो पुरिसो एकन्तमनापो होति मातुगामस्सा'' ति॥

३. आवेणिकदुक्खसुत्तं

३. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, मातुगामस्स आवेणिकानि दुक्खानि, यानि मातुगामो पच्चनुभोति, अञ्ञत्रेव पुरिसेहि। कतमानि पञ्च? इध, भिक्खवे, मातुगामो दहरो व समानो पतिकुलं गच्छति, ञातकेहि विना होति। इदं, भिक्खवे, मातुगामस्स [B.437] पठमं आवेणिकं दुक्खं, यं मातुगामो पच्चनुभोति, अञ्ञत्रेव पुरिसेहि। पुन च परं, भिक्खवे, मातुगामो उतुनी होति। इदं, भिक्खवे, मातुगामस्स दुतियं आवेणिकं [N.213] दुक्खं, यं मातुगामो पच्चनुभोति, अञ्ञत्रेव पुरिसेहि। पुन च परं, भिक्खवे, मातुगामो गब्भिनी होति। इदं, भिक्खवे, मातुगामस्स ततियं आवेणिकं दुक्खं, यं मातुगामो

नहीं कर सकता। कौन से पाँच? (१) वह रूपवान् (सुन्दर) न हो, (२) सर्वथा निर्धन हो, (३) दुराचारी हो, (४) आलसी हो तथा (५) सन्तान के उत्पादन में अयोग्य (नपुंसक) हो। भिक्षुओ! इन पाँच दुर्गुणों से युक्त पुरुष किसी भी नारी को अपने प्रति लुभाने में सर्वथा असमर्थ होता है।

''फिर, भिक्षुओ! इन पाँच गुणों से युक्त पुरुष किसी भी स्त्री को अपने प्रति आकृष्ट (मुग्ध) कर सकता है। किन पाँच गुणों से? (१) वह रूपवान् हो, (२) भोग एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न (धनवान्) हो, (३) शीलवान् हो, (४) सभी कार्यों में कुशल हो, आलसी न हो, (५) सन्तान उत्पादन में समर्थ हो। भिक्षुओ! इन पाँच गुणों (अङ्गों) से युक्त पुरुष ही किसी भी स्त्री को अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है''॥

३. आवेणिकसूत्र : : स्त्रियों के अपने पाँच दुःख

३. ...''भिक्षुओ! स्त्रियों के ये पाँच आवेणिक (विशेष=असाधारण) दुःख हैं, जिन्हें स्त्रियाँ स्वयं ही अनुभव करती हैं, पुरुष इस विषय में उन की कुछ भी सहायता नहीं कर सकता। कौन से पाँच? (१) स्त्रियों को अकेले ही पतिगृह जाना पड़ता है, बचपन के बन्धुओं को पितृगृह में ही छोड़ देना पड़ता है—भिक्षुओ! स्त्री का यह पहला दुःख है जो उसे एकाकी भोगना पड़ता है। (२) फिर, भिक्षुओ! वहाँ स्त्री ऋतुमती (रजस्वला) होती है। स्त्री का यह दूसरा दुःख है जो उसे एकाकी ही भोगना पडता है। (३) फिर वहाँ

पच्चनुभोति, अञ्ञत्रेव पुरिसेहि। पुन च परं, भिक्खवे, मातुगामो विजायति। इदं, भिक्खवे, मातुगामस्स चतुत्थं आवेणिकं दुक्खं, यं मातुगामो पच्चनुभोति, अञ्ञत्रेव पुरिसेहि। पुन च परं, भिक्खवे, मातुगामो पुरिसस्स पारिचरियं उपेति। इदं खो, भिक्खवे, मातुगामस्स पञ्चमं आवेणिकं दुक्खं, यं मातुगामो पच्चनुभोति, अञ्ञत्रेव पुरिसेहि। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च मातुगामस्स आवेणिकानि दुक्खानि, यानि मातुगामो पच्चनुभोति, अञ्ञत्रेव पुरिसेही'' ति॥ •

४. तीहिधम्मेहिसुत्तं

[R.240] ४. ''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो येभुय्येन कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। कतमेहि तीहि? इध, भिक्खवे, मातुगामो पुब्बण्हसमयं मच्छेरमलपरियुट्ठितेन चेतसा अगारं अज्झावसति। मज्झन्हिकसमयं इस्सापरियुट्ठितेन चेतसा अगारं अज्झावसति। सायन्हसमयं कामरागपरियुट्ठितेन चेतसा अगारं अज्झावसति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो येभुय्येन कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जती'' ति॥ •

५. कोधनसुत्तं

५. अथ खो आयस्मा अनुरुद्धो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा अनुरुद्धो भगवन्तं एतदवोच—''इधाहं, भन्ते,

---

स्त्री गर्भ धारण करती है—यह तीसरा दुःख भी उसे अकेले ही भोगना पड़ता है। (४) फिर, भिक्षुओ! स्त्री बच्चा पैदा करती है—यह दुःख भी उसे अकेले ही सहन करना पड़ता है। और (५) फिर उस को जीवनपर्यन्त श्वसुर कुल में पति एवं सास ससुर आदि की दिनरात परिचर्या (सेवा-सुश्रूषा) करनी पड़ती है—यह पाँचवा दुःख भी स्त्रियों को अकेले ही भोगना पड़ता है, उस में कोई पुरुप उस को सहयोग नहीं कर सकता। भिक्षुओ! स्त्री के ये पाँच दुःख हैं जिन्हें स्त्री ही अकेली भोगती है, पुरुष नहीं''॥ •

४. धर्मत्रयसूत्र : : स्त्रियों की दुर्गति में तीन कारण

४. ...''भिक्षुओ! यदि कोई स्त्री—(१) प्रातःकाल किसी भी कारण मन मैला कर घर के कार्य में व्याप्त होती है, (२) मध्याह्न में किसी के प्रति ईर्ष्यालु हो कर घर में बैठी रहती है, या फिर (३) सायङ्काल कामराग से युक्त चित्त वाली हो कर घर के कार्य करती है—भिक्षुओ! यदि कोई स्त्री इन तीनों कार्यों को (प्रतिदिन) करने का अपना स्वभाव बना लेती है, तो वह इस देहपात के बाद अवश्य ही नरक में जा कर दुर्गति को प्राप्त होगी''॥

५. क्रोधनसूत्र : : पाँच बातों से स्त्रियों की दुर्गति

५. ...तब आयुष्मान् अनुरुद्ध भगवान् के सम्मुख जा कर उन्हें प्रणाम कर एक

मातुगामं पस्सामि दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्तं। कतीहि नु खो, भन्ते, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं [B.438] उपपज्जती'' ति?

''पञ्चहि खो, अनुरुद्ध, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं [N.214] मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। कतमेहि पञ्चहि? अस्सद्धो च होति, अहिरिको च होति, अनोत्तप्पी च होति, कोधनो च होति, दुप्पञ्ञो च होति—इमेहि खो, अनुरुद्ध, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा [R.241] अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जती'' ति॥ •

६. उपनाहीसुत्तं

६. ''पञ्चहि, अनुरुद्ध, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। कतमेहि पञ्चहि? अस्सद्धो च होति, अहिरिको च होति, अनोत्तप्पी च होति, उपनाही च होति, दुप्पञ्ञो च होति—इमेहि खो, अनुरुद्ध, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जती'' ति॥ •

ओर बैठ कर भगवान् से यों बोले—''भन्ते! मैने अपने दिव्य, विशुद्ध अमानुषिक चक्षु से स्त्रियों को, देहपात के बाद नरकयोनि में गिर कर दुर्गति भोगते देखा है। भन्ते! किन पापमय धर्मों से वे स्त्रियाँ, मरणोत्तर, नरक में गिर कर दुर्गति भोगती हैं?''

''अनुरुद्ध! पाँच कारणों से वैसी स्त्रियाँ मरणानन्तर नरक में गिर दुर्गति प्राप्त करती है। कौन से पाँच कारणों से? (१) वह अश्रद्धालु हो, (२) निर्लज्ज हो, (३) पाप करने से भय नहीं मानती हो, (४) क्रोधी हो, तथा (५) अज्ञ (मूर्ख) हो। अनुरुद्ध! इन पाँच कारणों से वैसी स्त्रियाँ, मरणोत्तर, नरक में गिर कर दुर्गति प्राप्त करती हैं''॥ •

६. उपनाहीसूत्र : : दुर्गति में पाँच कारण

६. ...''अनुरुद्ध! इन पाँच कारणों से युक्त स्त्रियों का, इस देहपात के बाद, दुरवस्था एवं दुर्गति के आश्रय नरक में पतन होता है। कौन से पाँच कारण? वे (१) श्रद्धारहित होती हैं, (२) निर्लज्ज होती हैं, (३) पाप करने में भय नहीं खाती, (४) किसी के गुण देख कर उस से वैर (उपनाह) बाँधने में विलम्ब नहीं करती, एवं (५) वे मूर्ख होती हैं। इन पाँच कारणों से ऐसी स्त्रियाँ, मरणानन्तर, नरकयोनि में गिर कर दुःख भोगती हैं''॥ •

७. इस्सुकीसुत्तं

७. ''पञ्चहि, अनुरुद्ध, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। कतमेहि पञ्चहि? अस्सद्धो च होति, अहिरिको च होति, अनोत्तप्पी च होति, इस्सुकी च होति, दुप्पञ्ञो च होति—इमेहि खो, अनुरुद्ध, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जती'' ति॥ ●

८. मच्छरीसुत्तं

८. ''पञ्चहि, अनुरुद्ध, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। कतमेहि पञ्चहि? अस्सद्धो च होति, अहिरिको च होति, अनोत्तप्पी च होति, मच्छरी च होति, दुप्पञ्ञो च होति—इमेहि [B.439] खो, अनुरुद्ध, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो...पे०...अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जती'' ति॥ ●

९. अतिचारीसुत्तं

९. ''पञ्चहि, अनुरुद्ध, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो...पे०...अपायं दुग्गतिं [N.215, R.242] विनिपातं निरयं उपपज्जति। कतमेहि पञ्चहि? अस्सद्धो च होति, अहिरिको च होति, अनोत्तप्पी च होति, अतिचारी च होति, दुप्पञ्ञो च होति—इमेहि खो, अनुरुद्ध, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो...पे०...उपपज्जती'' ति॥ ●

१०. दुस्सीलसुत्तं

१०. ''पञ्चहि, अनुरुद्ध, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो...पे०...निरयं उपपज्जति।

---

७. ईर्ष्यकसूत्र : : ईर्ष्या करना

७. ...''अनुरुद्ध! इन पाँच कारणों से...पूर्ववत्...अश्रद्धालु, निर्लज्ज, पाप करने में निर्भय, ईर्ष्यालु एवं मूर्ख होती हैं, अतः नरकयोनि में गिर कर दुःख भोगती हैं''॥ ●

८. मत्सरीसूत्र : : कृपणता

८. ...''अनुरुद्ध! इन पाँच कारणों से...पूर्ववत्...अश्रद्धालु, निर्लज्ज, पाप करने में निर्भय, कृपण (दान आदि में कंजूस) एवं दुष्प्रज्ञ (कुबुद्धि) होती हैं, अतः उन का नरकपात होता है''॥ ●

९. अतिचारीसूत्र : : व्यभिचारिणी (कुलटा) स्त्री

९. ...''अनुरुद्ध! इन पाँच कारणों से...पूर्ववत्...अश्रद्धालु, निर्लज्ज, पाप करने में निर्भय, अतिशय व्यभिचारिणी, एवं कुबुद्धि होती हैं, अतः उन का नरकपात अवश्यम्भावी है''॥ ●

कतमेहि पञ्चहि? अस्सद्धो च होति, अहिरिको च होति, अनोत्तप्पी च होति, दुस्सीलो च होति, दुप्पञ्ञो च होति—इमेहि खो, अनुरुद्ध, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो ...पे०... निरयं उपपज्जती'' ति॥

११. अप्पस्सुतसुत्तं

११. ''पञ्चहि, अनुरुद्ध, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो...पे०...निरयं उपपज्जति। कतमेहि पञ्चहि? अस्सद्धो च होति, अहिरिको च होति, अनोत्तप्पी च होति, अप्पस्सुतो च होति, दुप्पञ्ञो च होति—इमेहि खो, अनुरुद्ध, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो...पे०... निरयं उपपज्जती'' ति॥

१२. कुसीतसुत्तं

१२. ''पञ्चहि, अनुरुद्ध, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो...पे०...निरयं उपपज्जति। कतमेहि पञ्चहि? अस्सद्धो च होति, अहिरिको च होति, अनोत्तप्पी च होति, कुसीतो च होति, दुप्पञ्ञो च होति—इमेहि खो, अनुरुद्ध, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो ...पे०...अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जती'' ति॥

१३. मुट्ठस्सतिसुत्तं

१३. ''पञ्चहि, अनुरुद्ध, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो...पे०...निरयं [B.440] उपपज्जति। कतमेहि पञ्चहि? अस्सद्धो च होति, अहिरिको च होति, अनोत्तप्पी च

---

१०. दुःशीलसूत्र : : दुराचारिणी

१०. ...''अनुरुद्ध! इन पाँच कारणों से...पूर्ववत्...अश्रद्धालु, निर्लज्ज, पाप करने में निर्भय, दुराचारिणी एवं कुबुद्धि होती हैं, अतः वे मरणानन्तर नरक में गिर कर अतिशय कष्ट प्राप्त करती हैं''॥

११. अल्पश्रुतसूत्र : : अल्पश्रुत (कम पढ़ी लिखी) स्त्री

११. ...''अनुरुद्ध! इन पाँच कारणों से...पूर्ववत्...अश्रद्धालु, निर्लज्ज, पाप करने में निर्भय, कम पढ़ी लिखी, एवं कुबुद्धि स्त्रियों का नरकपात मरणानन्तर अवश्यम्भावी है''॥

१२. कुसीदसूत्र : : आलसी स्त्री

१२. ...''पाँच कारणों से, अनुरुद्ध!...पूर्ववत्...अश्रद्धालु, निर्लज्ज, पापाचार में निर्भय, धर्मकर्म तथा गृहकार्य में आलसी एवं कुबुद्धि स्त्रियाँ मरणानन्तर नरक में गिर कर कष्ट भोगती हैं''॥

१३. मृष्टस्मृतिसूत्र : : स्मृतिभ्रष्ट (मूढस्मृति) स्त्री

१३. ...''अनुरुद्ध! इन पाँच कारणों से...पूर्ववत्...अश्रद्धालु, निर्लज्ज, पापाचार में

[R.243] होति, मुट्ठस्सति च होति, दुप्पञ्ञो च होति—इमेहि खो, अनुरुद्ध, पञ्चहि धम्मेहि [N.216] समन्नागतो मातुगामो...पे०...निरयं उपपज्जती'' ति॥ ●

१४. पञ्चवेरसुत्तं

१४. ''पञ्चहि, अनुरुद्ध, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो...पे०...निरयं उपपज्जति। कतमेहि पञ्चहि? पाणातिपाती च होति, अदिन्नादायी च होति, कामेसुमिच्छाचारी च होति, मुसावादी च होति, सुरामेरयमज्जप्पमादट्ठायी च होति—इमेहि खो, अनुरुद्ध, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जती'' ति॥ ●

पठमपेय्यालवग्गो॥

तस्सुद्दानं

मातुगामो पुरिसो च, आवेणिका तिधम्मो च।
कोधनो उपनाही च, इस्सुकी मच्छरेन च॥
अतिचारी च दुस्सीलो, अप्पस्सुतो च कुसीतो।
मुट्ठस्सति पञ्चवेरं, कण्हपक्खे पकासितो॥ ●

निर्भय, स्मृतिभ्रष्ट (भुलक्कड़, धर्मकर्म एवं गृहकर्म को भूल जाने वाली) एवं मन्दबुद्धि स्त्री का नरकपात अवश्यम्भावी है''॥ ●

१४. पञ्चवैरसूत्र : : पाँच पापों से युक्त स्त्री

१४. ...''अनुरुद्ध! पाँच कारणों से...पूर्ववत्...हिंसक (हत्यारी), चौर, व्यभिचारिणी, असत्यभाषिणी, एवं मद्यप स्त्री इस देहपात के बाद अवश्य नरकगामिनी होती है''॥●

प्रथम पेय्यालवर्ग सम्पन्न॥

इस प्रथम पेय्यालवर्ग में इन चौदह सूत्रों का व्याख्यान हुआ है—१. मातृग्रामसूत्र, २. पुरुषसूत्र, ३. आवेणिकसूत्र, ४. धर्मत्रय (तीहिधम्मेहि) सूत्र, ५. क्रोधनसूत्र, ६. उपनाहीसूत्र, ७. ईर्ष्यकसूत्र, ८. मत्सरीसूत्र, ९. अतिचारीसूत्र, १०. दुःशीलसूत्र, ११. अल्पश्रुतसूत्र, १२. कुशीदसूत्र, १३. मृष्टस्मृतिसूत्र, एवं १४. पञ्चवैरसूत्र। इस वर्ग में नारियों का अधर्म (पाप) पक्ष वर्णित हुआ है॥ ●

२. दुतियपेय्यालवग्गो

१५. अक्कोधनसुत्तं

१५. अथ खो आयस्मा अनुरुद्धो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा...पे०... एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा अनुरुद्धो भगवन्तं एतदवोच—"इधाहं, भन्ते, [B.441] मातुगामं पस्सामि दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्तं। कतीहि नु खो, भन्ते, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जती" ति?

"पञ्चहि खो, अनुरुद्ध, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। कतमेहि पञ्चहि? सद्धो च होति, हिरिमा च [R.244] होति, ओत्तप्पी च होति, अक्कोधनो च होति, पञ्ञवा च होति—इमेहि खो, अनुरुद्ध, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जती" ति॥ •

१६. अनुपनाहीसुत्तं

१६. "पञ्चहि, अनुरुद्ध, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं [N.217]

---

२. द्वितीय पेय्यालवर्ग

१५. अक्रोधनसूत्र : : पाँच धर्मों से स्त्रियों की सुगति

१५. ...तब आयुष्मान् अनुरुद्ध भगवान् के सम्मुख पहुँचे। पहुँच कर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठते हुए आयुष्मान् अनुरुद्ध ने भगवान् से यह पूछा—"भन्ते! मैंने अपने दिव्य, विशुद्ध, अमानुषिक चक्षु से बहुत सी स्त्रियों को इस देहपात के बाद सुगतिमय स्वर्ग लोक में उत्पन्न होते हुए देखा है। भन्ते! किन धर्मों से युक्त हो कर ये स्त्रियाँ, मरणानन्तर, सुगतिमय स्वर्ग लोक में उत्पन्न होती हैं?"

"अनुरुद्ध! पाँच धर्मों से युक्त हो कर ये स्त्रियाँ उस सुगतिमय स्वर्ग लोक में उत्पन्न होती हैं। कौन से पाँच? (१) वे (धर्म के प्रति) श्रद्धालु होती हैं, (२) लज्जास्वभाव वाली होती हैं, (३) पापकर्मों से भय मानती हैं, (४) जब तब अकारण क्रोध नहीं करतीं। तथा (५) प्रज्ञासम्पन्न होती हैं। अनुरुद्ध! इन पाँच धर्मों से युक्त स्त्रियाँ मरणानन्तर स्वर्ग में ही उत्पन्न होती हैं"॥ •

१६. अनुपनाहीसूत्र : : किसी के गुण देख कर उस से डाह न करना

१६. ...पाँच धर्मों से युक्त...पूर्ववत्...श्रद्धा, ह्री (लज्जा) पापकर्मों से भय, किसी

मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। कतमेहि पञ्चहि? सद्धो च होति, हिरिमा च होति, ओत्तप्पी च होति, अनुपनाही च होति, पञ्ञवा च होति—इमेहि खो, अनुरुद्ध, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जती'' ति॥ ●

१७. अनिस्सुकीसुत्तं

१७. पञ्चहि, अनुरुद्ध, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। कतमेहि पञ्चहि? सद्धो च होति, हिरिमा च होति, ओत्तप्पी च होति, अनिस्सुकी च होति, पञ्ञवा च होति...पे०...॥ ●

१८. अमच्छरीसुत्तं

१८. ...अमच्छरी च होति, पञ्ञवा च होति...पे०...॥ ●

१९. अनतिचारीसुत्तं

१९. ...अनतिचारी च होति, पञ्ञवा च होति...पे०...॥ ●

२०. सुसीलसुत्तं

२०. ...सीलवा च होति, पञ्ञवा च होति...पे०...॥ ●

२१. बहुस्सुतसुत्तं

[B.442]२१. ...बहुस्सुतो च होति, पञ्ञवा च होति...पे०...॥ ●

की उन्नति देख कर उस से डाह न करना, तथा प्रज्ञावान् होना—अनुरुद्ध! इन धर्मों से युक्त स्त्रियाँ मरणानन्तर स्वर्ग में ही उत्पन्न होती हैं॥'' ●

१७. अनीर्ष्यकसूत्र : : ईर्ष्या न करना

१७. ...पाँच धर्मों से युक्त स्त्रियाँ...पूर्ववत्...श्रद्धा, ह्री, पापकर्मों से भय, ईर्ष्या न करना, तथा प्रज्ञावती...स्वर्ग में ही उत्पन्न होती हैं॥'' ●

१८. अमत्सरीसूत्र : : कृपणता न करना

१८. ...पाँच धर्मों से...पूर्ववत्...दान धर्म में कृपणता न करना तथा प्रज्ञावती होना...॥ ●

१९. अनतिचारीसूत्र : : व्यभिचारिणी न होना

१९. ...पाँच धर्मों से युक्त...पूर्ववत्...अनतिचारिणी (व्यभिचारिणी न) होना, तथा प्रज्ञावान् होना...॥ ●

२०. सुशीलसूत्र : : शीलवती होना

२०. ...पाँच धर्मों से युक्त...पूर्ववत्.. शीलवती (सदाचारिणी) होना तथा प्रज्ञावती होना ॥ ●

२२. आरद्धविरियसुत्तं

२२. ...आरद्धविरियो च होति, पञ्ञवा च होति...पे०... ॥ •

२३. उपट्ठितस्सतिसुत्तं

२३. उपट्ठितस्सति च होति, पञ्ञवा च होति...पे०...इमेहि खो, [N.218, R.245] अनुरुद्ध, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जती'' ति॥ •

२४. पञ्चसीलसुत्तं

२४. ''पञ्चहि, अनुरुद्ध, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। कतमेहि पञ्चहि? पाणातिपाता पटिविरतो च होति, अदिन्नादाना पटिविरतो च होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो च होति, मुसावादा पटिविरतो च होति, सुरामेरयमज्जप्पमादट्ठाना पटिविरतो च होति—इमेहि खो, अनुरुद्ध, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जती'' ति॥ •

दुतियपेय्यालवग्गो॥

---

२१. बहुश्रुतसूत्र : : विदुषी होना

२१. ...पाँच धर्मों से युक्त...पूर्ववत्...बहुश्रुत (विदुषी) होना तथा प्रज्ञासम्पन्न होना... ॥ •

२२. आरब्धवीर्यसूत्र : : परिश्रमी होना

२२. ...पाँच धर्मों से युक्त...पूर्ववत्...धर्मकर्म में श्रम करना (आरब्धवीर्य होना) तथा प्रज्ञासम्पन्न होना... ॥ •

२३. उपस्थितस्मृतिसूत्र : : तीव्रबुद्धि होना

२३. ...पाँच धर्मों से युक्त...पूर्ववत्...स्मृतिमती (समझने में तीव्र) होना तथा प्रज्ञासम्पन्न होना... ॥ •

२४. पञ्चशीलसूत्र : : पञ्चशीलयुक्त होना

२४. ...''अनुरुद्ध! समझबूझ वाली नारियाँ इन पाँच धर्मों से यदि युक्त रहती हैं तो वे इस देहपात के बाद निश्चय ही सुगतिमय स्वर्ग लोक में ही उत्पन्न होंगी। कौन से पाँच धर्म? (१) किसी की हिंसा न करना, (२) चौरी न करना, (३) व्यभिचार से विरत रहना, (४) असत्यभाषण से सर्वथा दूर रहना तथा (५) मद्यपान से सदा विरत रहना। अनुरुद्ध! यही वे पाँच धर्म हैं जिन का पालन करती हुई कोई भी स्त्री मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्ग लोक में ही उत्पन्न होगी॥'' •

तस्सुद्दानं

दुतिये च अक्कोधनो, अनुपनाही अनिस्सुकी।
अमच्छरी अनतिचारी, सीलवा च बहुस्सुतो।
विरियं सति सीलं च, सुक्कपक्खे पकासितो॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. अक्रोधनसूत्र, २. अनुपनाहीसूत्र, ३. अनीर्ष्यकसूत्र, ४. अमत्सरीसूत्र, ५. अनतिचारीसूत्र, ६. सुशीलसूत्र, ७. बहुश्रुतसूत्र, ८. आरब्धवीर्यसूत्र, ९. उपस्थितस्मृतिसूत्र, १०. पञ्चशीलसूत्र। इस वर्ग में स्त्रियों के शुक्लपक्षीय (धार्मिक) गुणों का वर्णन किया गया है॥

द्वितीय पेय्यालवर्ग समाप्त॥

३. बलवग्गो ततियो

२५. विसारदसुत्तं

२५. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, मातुगामस्स बलानि। कतमानि [B.443, R.246] पञ्च? रूपबलं, भोगबलं, ञातिबलं, पुत्तबलं, सीलबलं—इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च मातुगामस्स बलानि। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि बलेहि समन्नागतो मातुगामो विसारदो अगारं अज्झावसती'' ति॥ •

२६. पसय्हसुत्तं

२६. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, मातुगामस्स बलानि। कतमानि पञ्च? रूपबलं, भोगबलं, ञातिबलं, पुत्तबलं, सीलबलं—इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च [N.219] मातुगामस्स बलानि। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि बलेहि समन्नागतो मातुगामो सामिकं पसय्ह अज्झावसती'' ति॥ •

२७. अभिभुय्यसुत्तं

२७. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, मातुगामस्स बलानि। कतमानि पञ्च? रूपबलं, भोगबलं, ञातिबलं, पुत्तबलं, सीलबलं—इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च मातुगामस्स बलानि। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि बलेहि समन्नागतो मातुगामो सामिकं अभिभुय्य वत्तती'' ति॥ •

२८. एकसुत्तं

२८. ''एकेन च खो, भिक्खवे, बलेन समन्नागतो पुरिसो मातुगामं अभिभुय्य

---

३. बलवर्ग तृतीय

२५. विशारदसूत्र : : स्त्रियों के पाँच बल

२५. ...''भिक्षुओ! स्त्रियों के पाँच बल होते हैं। कौन से पाँच? रूपबल, धनबल, ज्ञाति (परिवार) बल, पुत्रबल एवं शीलबल। भिक्षुओ! इन पाँच बलों से युक्त स्त्रियाँ बुद्धिमत्ता के साथ घर चला ले जाती हैं''॥ •

२६. प्रसह्यसूत्र : : पति को वश में रखना

२६. ...''स्त्रियों के ये पाँच बल होते हैं—१. रूपबल, २. धनबल, ३. ज्ञातिबल, ४. पुत्रबल एवं ५. शीलबल। भिक्षुओ! इन पाँचों बलों से युक्त स्त्री अपने स्वामी (पति) को वश में रखती हुई घर में सुखपूर्वक वास करती है''॥ •

२७. अभिभूयसूत्र : : पति को दबा कर रखना

२७. ...पूर्ववत्...भिक्षुओ! इन पाँच बलों से युक्त स्त्री अपने पति को भी अपने शासन में रखती हुई घर में वास करती है''॥ •

वत्तति। कतमेन एकेन बलेन? इस्सरियबलेन अभिभूतं मातुगामं नेव रूपबलं तायति, न भोगबलं तायति, न ञातिबलं तायति, न पुत्तबलं तायति, न सीलबलं तायती'' ति॥●

२९. अङ्गसुत्तं

[R.247] २९. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, मातुगामस्स बलानि। कतमानि पञ्च? रूपबलं, भोगबलं, ञातिबलं, पुत्तबलं, सीलबलं। रूपबलेन च, भिक्खवे, मातुगामो समन्नागतो होति, न च भोगबलेन—एवं सो तेनङ्गेन अपरिपूरो होति। यतो च खो, भिक्खवे, मातुगामो रूपबलेन च समन्नागतो होति, भोगबलेन च—एवं सो तेनङ्गेन परिपूरो होति। [B.444] ''रूपबलेन च, भिक्खवे, मातुगामो समन्नागतो होति, भोगबलेन च, न च ञातिबलेन—एवं सो तेनङ्गेन अपरिपूरो होति। यतो च खो, भिक्खवे, मातुगामो रूपबलेन च समन्नागतो होति, भोगबलेन च, ञातिबलेन च—एवं सो तेनङ्गेन परिपूरो होति। रूपबलेन च, भिक्खवे, मातुगामो समन्नागतो होति, भोगबलेन च, ञातिबलेन [N.220] च, न च पुत्तबलेन—एवं सो तेनङ्गेन अपरिपूरो होति। यतो च खो, भिक्खवे, मातुगामो रूपबलेन च समन्नागतो होति, भोगबलेन च, ञातिबलेन च, पुत्तबलेन च—एवं सो तेनङ्गेन परिपूरो होति। रूपबलेन च, भिक्खवे, मातुगामो समन्नागतो होति,

---

२८. एकसूत्र : : एक बल से युक्त पुरुष का स्त्री को वश में रखना

२८. ...''भिक्षुओ! एक बल से युक्त पुरुष अपनी स्त्री को अपने वश में रखता है। कौन सा एक बल? ऐश्वर्य (धन) बल। भिक्षुओ! इस एक ऐश्वर्यबल से ही पति जीवनपर्यन्त स्त्री को अपने वश में रखने में समर्थ है''॥ ●

२९. अङ्गसूत्र : : स्त्री के पाँच बल

२९. ...''भिक्षुओ! स्त्री के पाँच बल होते हैं। कौन से पाँच बल? रूपबल, धनबल, ज्ञातिबल, पुत्रबल एवं शीलबल। भिक्षुओ! यदि किसी के पास केवल रूपबल हो, धनबल नहीं, तो वह उस अङ्ग से पूर्ण नहीं कहला सकती। वह तो तभी पूर्ण कहलाती है जब उस के पास रूपबल भी हो, तथा धनबल भी।

''इसी तरह, भिक्षुओ! यदि कोई स्त्री रूपबल तथा धनबल—दोनों बलों से सम्पन्न हो; परन्तु उस के पास ज्ञातिबल न हो तो भी वह पूर्ण बलसम्पन्न स्त्री नहीं कहलाती, उस के पास उस एक (ज्ञातिबल) की कमी ही रह जाती है। उस के पास जब रूपबल, धनबल एवं ज्ञातिबल—तीनों बल होंगे, तभी वह 'पूर्ण बलसम्पन्न स्त्री' कहलायगी।

''इसी तरह, भिक्षुओ! जिस स्त्री के पास रूपबल भी हो, धनबल भी हो तथा ज्ञातिबल भी हो, परन्तु पुत्रबल न हो तो भी वह स्त्री 'पूर्ण बलसम्पन्न' नहीं कहला

भोगबलेन च, ञातिबलेन च, पुत्तबलेन च, न च सीलबलेन—एवं सो तेनङ्गेन अपरिपूरो होति। यतो च खो, भिक्खवे, मातुगामो रूपबलेन च समन्नागतो होति, भोगबलेन च, ञातिबलेन च, पुत्तबलेन च, सीलबलेन च—एवं सो तेनङ्गेन परिपूरो होति। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च मातुगामस्स बलानी'' ति॥ •

३०. नासेन्तिसुत्तं

३०. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, मातुगामस्स बलानि। कतमानि पञ्च? रूपबलं, भोगबलं, ञातिबलं, पुत्तबलं, सीलबलं। रूपबलेन च, भिक्खवे, मातुगामो [R.248] समन्नागतो होति, न च सीलबलेन, नासेन्तेव नं, कुले न वासेन्ति। रूपबलेन च, भिक्खवे, मातुगामो समन्नागतो होति, भोगबलेन च, न च सीलबलेन, नासेन्तेव नं, कुले न वासेन्ति। रूपबलेन च, भिक्खवे, मातुगामो समन्नागतो होति, भोगबलेन च, ञातिबलेन च, न च सीलबलेन, नासेन्तेव नं, कुले न वासेन्ति। रूपबलेन च, भिक्खवे, मातुगामो समन्नागतो होति, भोगबलेन च, ञातिबलेन च, पुत्तबलेन च, न च सीलबलेन, नासेन्तेव नं, कुले न वासेन्ति।

सकती। वह तो पूर्ण बलसम्पन्न तभी कहलायगी जब उस के पास रूपबल भी हो, धनबल भी हो, ज्ञातिबल भी हो और पुत्रबल भी हो।

''इसी तरह, भिक्षुओ! जिस स्त्री के पास रूपबल भी हो, धनबल भी हो, ज्ञातिबल भी हो, पुत्रबल भी हो; परन्तु शीलबल न हो तो भी वह 'पूर्ण बलसम्पन्न' कहलाने योग्य नहीं है। वह तो तभी 'पूर्ण बलसम्पन्न' कहलायगी जब उस के पास उपर्युक्त पाँचों बल हों।

''भिक्षुओ! स्त्री के ये ही पाँच बल हैं''॥ •

३०. 'नाशयन्ति' सूत्र : : स्त्री को कुल से निकाल देना

३०. ...''भिक्षुओ! स्त्री के ये पाँच बल होते हैं—१. रूपबल, २. धनबल, ३. ज्ञातिबल, ४. पुत्रबल एवं ५. शीलबल। भिक्षुओ! कोई स्त्री केवल रूपबल से सम्पन्न हो तथा उस में शीलबल न हो तो परिवार तथा कुल के लोग उसे परिवार तथा कुल से निकाल देते हैं, पुनः उस को परिवार तथा कुल में नहीं आने देते।

''इसी तरह, भिक्षुओ! किसी स्त्री के पास रूपबल तथा धनबल हो; परन्तु शीलबल न हो तो भी परिवार तथा कुल के लोग...पूर्ववत्...कुल में नहीं आने देते।

''इसी तरह, भिक्षुओ! जिस स्त्री के पास रूपबल, धनबल तथा ज्ञातिबल ही हो; परन्तु शीलबल न हो तो भी परिवार...पूर्ववत्...कुल में नहीं आने देते।

''इसी तरह, भिक्षुओ! जिस स्त्री के पास रूपबल, धनबल, ज्ञातिबल तथा पुत्रबल तो हो; परन्तु शीलबल न हो तो भी परिवार...पूर्ववत्...नहीं आने देते।

"सीलबलेन च, भिक्खवे, मातुगामो समन्नागतो होति, न च रूपबलेन, वासेन्तेव नं, कुले न नासेन्ति। सीलबलेन च, भिक्खवे, मातुगामो समन्नागतो होति, न च भोग-बलेन, वासेन्तेव नं, कुले न नासेन्ति। सीलबलेन च, भिक्खवे, मातुगामो समन्नागतो होति, न च ञातिबलेन, वासेन्तेव नं, कुले न नासेन्ति। सीलबलेन च, भिक्खवे, मातु-गामो समन्नागतो होति, न च पुत्तबलेन, वासेन्तेव नं, कुले न नासेन्ति। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च मातुगामस्स बलानी" ति॥ •

३१. हेतुसुत्तं

३१. "पञ्चिमानि, भिक्खवे, मातुगामस्स बलानि। कतमानि पञ्च? रूपबलं, [B.445] भोगबलं, ञातिबलं, पुत्तबलं, सीलबलं। न भिक्खवे, मातुगामो रूपबलहेतु वा भोगबलहेतु वा ञातिबलहेतु वा पुत्तबलहेतु वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं [N.221] लोकं उपपज्जति। सीलबलहेतु खो, भिक्खवे, मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च मातुगामस्स बलानी" ति॥

"परन्तु यदि कोई स्त्री शीलबल से सम्पन्न हो, फिर भले ही उस के पास रूपबल न भी हो तो भी लोग उसे अपने परिवार में अपने कुल में ससम्मान रखते हैं, बाहर नहीं निकालते।

"इसी तरह जो स्त्री शीलसम्पन्न है, परन्तु रूपबल तथा भोगबल से सम्पन्न नहीं है तो भी लोग...पूर्ववत्...बाहर नहीं निकालते।

"इसी तरह जो स्त्री शीलसम्पन्न है, फिर भले ही उसके पास न रूपबल हो, न भोगबल, न ज्ञातिबल हो तो भी लोग उसे...पूर्ववत्...बाहर नहीं निकालते।

"इसी तरह जो स्त्री शीलसम्पन्न है, परन्तु रूप, भोग, ज्ञाति तथा पुत्रबलों से सम्पन्न नहीं है तो भी परिवार तथा कुल के लोग उस स्त्री को अपने परिवार में, कुल में रखते ही हैं, उसे बाहर नहीं निकालते। भिक्षुओ! स्त्री के ये पाँच बल हैं॥" •

३१. हेतुसूत्र : : शीलबल से स्वर्गप्राप्ति

३१. ..."भिक्षुओ! स्त्री के ये पाँच बल होते हैं। ...१. रूपबल, २. धनबल, ३. ज्ञातिबल, ४. पुत्रबल एवं ५. शीलबल। परन्तु भिक्षुओ! कोई भी स्त्री अपने रूप, धन, परिवार या पुत्र के बल पर, इस देहपात के बाद, मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्ग लोक को नहीं प्राप्त कर सकती। हाँ, उस कार्य के लिये शीलबल ही एक ऐसा बल है जिस के सहारे से कोई भी स्त्री, इस देहपात के बाद, मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्ग लोक को प्राप्त कर सकती है। भिक्षुओ! स्त्रियों के ये पाँच बल होते हैं"॥ •

३२. ठानसुत्तं

३२. "पञ्चिमानि, भिक्खवे, ठानानि दुल्लभानि अकतपुञ्ञेन मातुगामेन। [R.249] कतमानि पञ्च? पतिरूपे कुले जायेय्यं ति—इदं, भिक्खवे, पठमं ठानं दुल्लभं अकतपुञ्ञेन मातुगामेन। पतिरूपे कुले जायित्वा पतिरूपं कुलं गच्छेय्यं ति—इदं, भिक्खवे, दुतियं ठानं दुल्लभं अकतपुञ्ञेन मातुगामेन। पतिरूपे कुले जायित्वा, पतिरूपं कुलं गन्त्वा, असपत्ति अगारं अज्झावसेय्यं ति—इदं. भिक्खवे, ततियं ठानं दुल्लभं अकतपुञ्ञेन मातुगामेन। पतिरूपे कुले जायित्वा, पतिरूपं कुलं गन्त्वा, असपत्ति अगारं अज्झावसन्ती पुत्तवती अस्सं ति—इदं, भिक्खवे, चतुत्थं ठानं दुल्लभं अकतपुञ्ञेन मातुगामेन। पतिरूपे कुले जायित्वा, पतिरूपं कुलं गन्त्वा, असपत्ति अगारं अज्झावसन्ती पुत्तवती समाना सामिकं अभिभुय्य वत्तेय्यं ति—इदं, भिक्खवे, पञ्चमं ठानं दुल्लभं अकतपुञ्ञेन मातुगामेन। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च ठानानि दुल्लभानि अकतपुञ्ञेन मातुगामेना ति।

"पञ्चिमानि, भिक्खवे, ठानानि सुलभानि कतपुञ्ञेन मातुगामेन। कतमानि पञ्च? पतिरूपे कुले जायेय्यं ति—इदं, भिक्खवे, पठमं ठानं सुलभं कतपुञ्ञेन

---

३२. स्थानसूत्र : : नारी की पाँच दुर्लभ बातें

३२. ..."भिक्षुओ! अकृतपुण्य नारी के लिये ये पाँच दुर्लभ स्थान कहे गये हैं। कौन से पाँच? (१) अच्छे कुल में उत्पत्ति—यह पहला स्थान है जो अकृतपुण्य (जिस ने पुण्य न किया हो, ऐसी) नारी के लिये दुर्लभ है।

(२) "अच्छे कुल में जन्म लेने के बाद अच्छे ही कुल में विवाह भी हो—यह दूसरा स्थान है अकृतपुण्य नारी के लिये दुर्लभ है।

(३) "अच्छे कुल में जन्म ले कर, अच्छे कुल में विवाह होने के बाद, सौत (सपत्नी) रहित घर में रहने को मिले—यह तीसरा स्थान है जो अकृतपुण्य नारी के लिये दुर्लभ है।

(४) "अच्छे कुल में जन्म ले कर, अच्छे कुल में विवाह होने के बाद, सौत रहित घर में रह कर, पुत्रवती हो—यह चतुर्थ स्थान है जो अकृतपुण्य नारी के लिये दुर्लभ है।

(५) "अच्छे कुल में जन्म ले कर, अच्छे कुल में विवाह होने के बाद, सौत (सपत्नी) रहित घर में वास कर, पुत्रवती हो कर, स्वामी को निरन्तर अपने वश में रखे—यह पञ्चम स्थान है जो अकृतपुण्य नारी के लिये दुर्लभ है॥ (१)

"भिक्षुओ! ये पाँच स्थान पुण्यात्मा नारी के लिये अतिसुलभ होते हैं। कौन से

मातुगामेन। पतिरूपे कुले जायित्वा पतिरूपं कुलं गच्छेय्यं ति—इदं, भिक्खवे, दुतियं ठानं सुलभं कतपुञ्ञेन मातुगामेन। पतिरूपे कुले जायित्वा पतिरूपं कुलं गन्त्वा असपत्ति अगारं अज्झावसेय्यं ति—इदं, भिक्खवे, ततियं ठानं सुलभं कतपुञ्ञेन मातुगामेन। पतिरूपे कुले जायित्वा पतिरूपं कुलं गन्त्वा असपत्ति अगारं अज्झावसन्ती पुत्तवती अस्सं ति—इदं, भिक्खवे, चतुत्थं ठानं सुलभं कतपुञ्ञेन मातुगामेन। पतिरूपे [R.250] कुले जायित्वा पतिरूपं कुलं गन्त्वा असपत्ति अगारं अज्झावसन्ती पुत्तवती [B.446] समाना सामिकं अभिभुय्य वत्तेय्यं ति—इदं, भिक्खवे, पञ्चमं ठानं सुलभं कतपुञ्ञेन मातुगामेन। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च ठानानि सुलभानि कतपुञ्ञेन मातुगामेना'' ति॥ •

३३. पञ्चसीलविसारदसुत्तं

३३. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो विसारदो अगारं [N.222] अज्झावसति। कतमेहि पञ्चहि? पाणातिपाता पटिविरतो च होति, अदिन्नादाना

पाँच? (१) अच्छे कुल में जन्म लेना—यह पहला स्थान है जो कृतपुण्य नारी के लिये प्राप्त करना बहुत सरल है।

(२) ''अच्छे कुल में जन्म ले कर अच्छे कुल में विवाह होना—यह द्वितीय सुलभ स्थान है जो कृतपुण्य नारी द्वारा प्राप्त करना बहुत सरल है।

(३) ''अच्छे कुल में जन्म ले कर, अच्छे कुल में विवाह होने के बाद, सौत (सपत्नी) रहित घर में वास मिलना—यह तीसरा सुलभ स्थान है जो कृतपुण्य नारी द्वारा प्राप्त करना बहुत सरल है।

(४) ''अच्छे कुल में जन्म ले कर, अच्छे कुल में विवाह होने के बाद, सौत (सपत्नी) रहित घर में रहते हुए पुत्रवती होना—यह चतुर्थ सुलभ स्थान है जो कृतपुण्य नारी द्वारा प्राप्त करना बहुत सरल है।

(५) ''अच्छे कुल में जन्म ले कर, अच्छे कुल में विवाह होने के बाद, सौत रहित घर में वास करते हुए, पुत्रवती हो कर, स्वामी को निरन्तर अपने अनुकूल रखना—यह पञ्चम सुलभ स्थान है जो कृतपुण्य नारी द्वारा प्राप्त करना बहुत सरल है। भिक्षुओ! ये पाँच स्थान कृतपुण्य नारी द्वारा प्राप्त करना बहुत सरल हैं॥'' (२) •

३३. पञ्चशीलविशारदसूत्र : : चतुर स्त्री

३३. ...''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त नारियाँ अपने घर में दक्षता के साथ

पटिविरतो च होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो च होति, मुसावादा पटिविरतो च होति, सुरामेरयमज्जप्पमादट्ठाना पटिविरतो च होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो विसारदो अगारं अज्झावसती" ति॥ •

३४. वड्ढीसुत्तं

३४. "पञ्चहि, भिक्खवे, वड्ढीहि वड्ढमाना अरियसाविका अरियाय वड्ढिया वड्ढति सारादायिनी च होति वरादायिनी च कायस्स। कतमेहि पञ्चहि? सद्धाय वड्ढति, सीलेन वड्ढति, सुतेन वड्ढति, चागेन वड्ढति, पञ्ञाय वड्ढति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि वड्ढीहि वड्ढमाना अरियसाविका अरियाय वड्ढिया वड्ढति, सारादायिनी च होति, वरादायिनी च कायस्सा ति।

"सद्धाय सीलेन च याध वड्ढति, पञ्ञाय चागेन सुतेन चूभयं।
सा तादिसी सीलवती उपासिका, आदीयति सारमिधेव अत्तनो" ति॥

बलवग्गो ततियो॥

रहती हैं। कौन से पाँच धर्म? (१) हिंसा से विरत रहना, (२) चौरी से विरत रहना, (३) व्यभिचार से विरत रहना, (४) असत्यभाषण से विरत रहना, (५) मद्यपान से विरत रहना। भिक्षुओ! नारी इन पाँच दुर्गुणों से विरत रह कर ही घर में दक्षतापूर्वक रह पाती है॥" •

३४. वृद्धिसूत्र : : पाँच गुणों से नारी की उन्नति

३४. ..."भिक्षुओ! इन पाँच गुणों से किसी भी आर्यश्राविका की आर्यधर्मोक्त वृद्धि हो सकती है, वह अपने शरीर से प्रसन्न तथा स्वस्थ रह सकती है। वे पाँच गुण कौन से हैं? (१) उस की धर्म के प्रति श्रद्धा से वृद्धि होती है, (२) सदाचार (शील) पालन से वृद्धि होती है, (३) धर्मश्रवण से वृद्धि होती है, (४) (अधर्म या धन के) त्याग से वृद्धि होती है, (५) प्रज्ञा से वृद्धि होती है। भिक्षुओ! नारी द्वारा इन पाँच धर्मों के पालन से उस की अभिवृद्धि होती है। तथा वह अपने शरीर को स्वस्थ तथा प्रसन्न रख सकती है।

"ऐसी सदाचारसम्पन्न आर्यश्राविका ही अपने शरीर को स्वस्थ तथा प्रसन्न रख सकती है जो श्रद्धा, शील, त्याग, धर्मश्रवण एवं प्रज्ञा में निरन्तर दत्तचित्त रहती है।

"भिक्षुओ! कोई भी आर्यश्राविका अपने इन पाँच गुणों की अभिवृद्धि से ही अपनी उन्नति कर सकती है तथा अपने शरीर को स्वस्थ तथा प्रसन्न रख सकती है॥" •

बलवर्ग तृतीय समाप्त॥

तस्सुद्दानं

[R.251] विसारदा पसय्ह अभिभुय्य, एकं अङ्गेन पञ्चमं।
नासेन्ति हेतु ठानं च, विसारदो वड्ढिना दसा ति॥ •

मातुगामसंयुत्तं समत्तं॥

—— ※ ——

इस तृतीय बलवर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. विशारदसूत्र, २. प्रसह्यसूत्र, ३. अभिभूयसूत्र, ४. एकसूत्र, ५. अङ्गसूत्र, ६. 'नाशयन्ति'सूत्र, ७. हेतुसूत्र, ८. स्थानसूत्र, ९. पञ्चशीलविशारदसूत्र एवं १०. वृद्धिसूत्र॥ •

मातृग्रामसंयुक्त सम्पन्न॥

—— ※ ——

३८. जम्बुखादकसंयुत्तं

१. निब्बानपञ्हासुत्तं

१. एकं समयं आयस्मा सारिपुत्तो मगधेसु विहरति नालक-[N.223, B.447] गामके। अथ खो जम्बुखादको परिब्बाजको येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सारिपुत्तेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो जम्बुखादको परिब्बाजको आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—

"'निब्बानं, निब्बानं' ति आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कतमं नु खो, आवुसो, निब्बानं" ति?

"यो खो, आवुसो, रागक्खयो दोसक्खयो मोहक्खयो—इदं वुच्चति निब्बानं" ति।

"अत्थि पनावुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतस्स निब्बानस्स सच्छिकिरियाया" ति?

"अत्थि खो, आवुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतस्स निब्बानस्स सच्छिकिरियाया" ति।

---

३८. जम्बूखादकसंयुक्त

१. निर्वाणप्रश्नसूत्र : : निर्वाण क्या है?

१. एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र मगध प्रदेश के **नालकग्राम** में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उस समय जम्बूखादक नाम का परिव्राजक आयुष्मान् सारिपुत्र के पास आया तथा उन से कुशलमङ्गल पूछने के बाद, एक ओर बैठ कर उस ने आयुष्मान् सारिपुत्र से यह जिज्ञासा प्रकट की—

"आयुष्मन् सारिपुत्र! लोग 'निर्वाण, निर्वाण'—ऐसा कहते रहते हैं, यह 'निर्वाण' क्या है?"

"आयुष्मन्! राग, द्वेष एवं मोह को स्वचित्त से दूर हटा देना (नाश कर देना) ही 'निर्वाण' कहलाता है।"

"आयुष्मन्! इस निर्वाण के अधिगम का, साक्षात्कार का कोई उपाय (मार्ग) है?"

"हाँ, आयुष्मन्! इस निर्वाण के अधिगम तथा साक्षात्कार का उपाय है।"

[R.252] "कतमो पनावुसो, मग्गो कतमा पटिपदा एतस्स निब्बानस्स सच्छिकिरियाया" ति?

"अयमेव खो, आवुसो, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो एतस्स निब्बानस्स सच्छिकिरियाय; सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि। अयं खो, आवुसो, मग्गो, अयं पटिपदा एतस्स निब्बानस्स सच्छिकिरियाया" ति।

"भद्दको, आवुसो, मग्गो, भद्दिका पटिपदा एतस्स निब्बानस्स सच्छिकिरियाय। अलं च पनावुसो सारिपुत्त, अप्पमादाया" ति॥ ●

२. अरहत्तपञ्हासुत्तं

२. "'अरहत्तं, अरहत्तं' ति, आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कतमं नु खो, आवुसो, अरहत्तं" ति?

[N.224] "यो खो, आवुसो, रागक्खयो दोसक्खयो मोहक्खयो—इदं वुच्चति अरहत्तं" ति।

"अत्थि पनावुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतस्स अरहत्तस्स सच्छिकिरियाया" ति?

"अत्थि खो, आवुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतस्स अरहत्तस्स सच्छिकिरियाया" ति।

"कतमो पनावुसो, मग्गो कतमा पटिपदा एतस्स अरहत्तस्स सच्छि-
[B.448] किरियाया" ति?

"अयमेव खो, आवुसो, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो एतस्स अरहत्तस्स सच्छि-

---

"आयुष्मन्! वह मार्ग या उपाय क्या है?"

"आयुष्मन्! यह आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग ही इस निर्वाण की प्राप्ति एवं साक्षात्कार का उमाय है। जैसे—सम्यग्दृष्टि...पूर्ववत्...सम्यक्समाधि। आयुष्मन्! यही उपाय एवं मार्ग है इस निर्वाण की प्राप्ति का।"

"आयुष्मन्! निर्वाण के साक्षात्कार का यही एकमात्र भद्र मार्ग है। अत: इस की प्राप्ति में साधक को कोई प्रमाद नहीं करना चाहिये॥" ●

२. अर्हत्त्वप्रश्नसूत्र : : अर्हत्त्व क्या है?

२. ..."आयुष्मन् सारिपुत्र! लोग 'अर्हत्त्व, अर्हत्त्व'—ऐसा कहते रहते हैं, यह 'अर्हत्त्व क्या है?" ...पूर्ववत्...॥

किरियाय, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि। अयं खो, आवुसो, मग्गो, अयं पटिपदा एतस्स अरहत्तस्स सच्छिकिरियाया'' ति।

''भद्दको, आवुसो, मग्गो भद्दिका पटिपदा एतस्स अरहत्तस्स सच्छिकिरियाय। अलं च पनावुसो सारिपुत्त, अप्पमादाया'' ति॥ •

३. धम्मवादीपञ्हासुत्तं

३. ''के नु खो, आवुसो सारिपुत्त, लोके धम्मवादिनो, के लोके सुप्पटिपन्ना, के लोके सुगता'' ति?

''ये खो, आवुसो, रागप्पहानाय धम्मं देसेन्ति, दोसप्पहानाय धम्मं देसेन्ति, मोहप्पहानाय धम्मं देसेन्ति, ते लोके धम्मवादिनो। ये खो, आवुसो, रागस्स [R.253] पहानाय पटिपन्ना, दोसस्स पहानाय पटिपन्ना, मोहस्स पहानाय पटिपन्ना, ते लोके सुप्पटिप्पन्ना। येसं खो, आवुसो रागो पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो, दोसो पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो, मोहो पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो, ते लोके सुगता'' ति।

''अत्थि पनावुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतस्स रागस्स दोसस्स मोहस्स पहानाया'' ति?

''अत्थि खो, आवुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतस्स रागस्स दोसस्स मोहस्स पहानाया'' ति।

(उपरिवर्णित 'निर्वाणप्रश्नसूत्र' की तरह इस सूत्र का विस्तार कर लेना चाहिये।) •

३. धर्मवादिप्रश्नसूत्र : : धर्मवादी कौन है?

३. ...''आयुष्मन् सारिपुत्र! लोक में 'धर्मवादी' कौन है? लोक में सन्मार्ग पर चलने वाला कौन है? लोक में सद्गति कौन प्राप्त करते हैं?''

''आयुष्मन्! जो उपदेशक राग, द्वेष एवं मोह के प्रहाणहेतु धर्मोपदेश करते हैं, वे ही 'धर्मवादी' कहलाते हैं। जो साधक राग, द्वेष एवं मोह के प्रहाण में लगे हुए हैं वे ही 'सन्मार्ग पर चलने वाले' कहलाते हैं तथा जिन के राग, द्वेष एवं मोह प्रहीण हो चुके हैं, सर्वथा नष्ट हो चुके हैं, मूलत: उच्छिन्न हो चुके हैं, जिन का अभाव हो गया है, भविष्य में जिन का उत्पाद सम्भव नहीं है; वे ही लोग सद्गति प्राप्त कर सकते हैं।''

''क्या, आयुष्मन्! इन राग, द्वेष एवं मोह के प्रहाण का कोई उपाय है?''

''हाँ, आयुष्मन्! इन दोषों के प्रहाण का भी उपाय (मार्ग) है।''

"कतमो, पनावुसो, मग्गो कतमा पटिपदा एतस्स रागस्स दोसस्स मोहस्स [N.225] पहानाया" ति?

"अयमेव खो, आवुसो, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो एतस्स रागस्स दोसस्स मोहस्स पहानाय, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि। अयं खो, आवुसो, मग्गो अयं पटिपदा एतस्स रागस्स दोसस्स मोहस्स पहानाया" ति।

"भद्दको, आवुसो, मग्गो भद्दिका पटिपदा एतस्स रागस्स दोसस्स मोहस्स पहानाय। अलं च पनावुसो सारिपुत्त, अप्पमादाया" ति॥ ●

४. किमत्थियसुत्तं

[B.449] ४. "किमत्थियं, आवुसो सारिपुत्त, समणे गोतमे ब्रह्मचरियं वुस्सती" ति?

"दुक्खस्स खो, आवुसो, परिञ्ञत्थं भगवति ब्रह्मचरियं वुस्सती" ति।

"अत्थि पनावुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतस्स दुक्खस्स परिञ्ञाया" ति?

"अत्थि खो, आवुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतस्स दुक्खस्स परिञ्ञाया" ति।

"कतमो, पनावुसो, मग्गो कतमा पटिपदा एतस्स दुक्खस्स परिञ्ञाया" ति?

[R.254] "अयमेव खो, आवुसो, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो एतस्स दुक्खस्स परिञ्ञाय, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि। अयं खो, आवुसो, मग्गो अयं पटिपदा एतस्स दुक्खस्स परिञ्ञाया" ति।

"इन के प्रहाण का क्या उपाय है?"

"आयुष्मन्! वही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग, जैसे—सम्यग्दृष्टि...सम्यक्सङ्कल्प का आचरण ही इन के प्रहाण का एकमात्र उपाय है।"

"आयुष्मन्! यह उपाय तो बहुत अच्छा (भद्रक) है, इस की प्राप्ति में साधक को कोई प्रमाद नहीं करना चाहिये॥" ●

४. किमर्थीयप्रश्नसूत्र : : धर्मसाधना किसलिये की जाती है?

४. ..."आयुष्मन् सारिपुत्र! आप लोग श्रमण गौतम के निर्देशन में किस हेतु धर्मसाधना करते हैं?

"आयुष्मन्! हम लोग दुःख के वास्तविक ज्ञान (परिज्ञा) के लिये भगवान् के निर्देशन में धर्मसाधना करते हैं।"

"आयुष्मन्! इस दुःख की परिज्ञा का कोई उपाय है?"

"हाँ, आयुष्मन्! वह आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग ही उस दुःख की परिज्ञा का एकमात्र उपाय है। ...पूर्ववत्...।"

"भद्दको, आवुसो, मग्गो भद्दिका पटिपदा एतस्स दुक्खस्स परिञ्ञाय। अलं च पनावुसो सारिपुत्त, अप्पमादाया" ति॥ •

५. अस्सासप्पत्तसुत्तं

५. "'अस्सासप्पत्तो, अस्सासप्पत्तो' ति, आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कित्तावता नु खो, आवुसो, अस्सासप्पत्तो होती" ति?

"यतो खो, आवुसो, भिक्खु छन्नं फस्सायतनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च [N.226] अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति, एत्तावता नु खो, आवुसो, अस्सासप्पत्तो होती" ति।

"अत्थि पनावुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतस्स अस्सासस्स सच्छिकिरियाया" ति?

"अत्थि खो, आवुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतस्स अस्सासस्स सच्छि-किरियाया" ति।

"कतमो, पनावुसो, मग्गो कतमा पटिपदा एतस्स अस्सासस्स सच्छि-किरियाया" ति?

"अयमेव खो, आवुसो, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो एतस्स अस्सासस्स सच्छि-किरियाय, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि। अयं खो, आवुसो, मग्गो अयं पटिपदा एतस्स अस्सासस्स सच्छिकिरियाया" ति।

"भद्दको, आवुसो, मग्गो भद्दिका पटिपदा एतस्स अस्सासस्स सच्छिकिरियाय। अलं च पनावुसो सारिपुत्त, अप्पमादाया" ति॥ •

"आयुष्मन्! यह उपाय तो बहुत अच्छा है। इस की प्राप्ति में कोई प्रमाद नहीं करना चाहिये॥" •

५. आश्वासप्राप्तसूत्र : : आश्वासनप्राप्ति का उपाय

५. ..."आयुष्मन् सारिपुत्र! लोग 'आश्वासन(=सान्त्वना) प्राप्त, आश्वासनप्राप्त' कहते रहते हैं। यह 'आश्वासनप्राप्त' कैसे होता है?"

"आयुष्मन्! जो साधक भिक्षु छह स्पर्शायतनों के उत्पाद, नाश, आस्वाद, दोष एवं निःसरण को यथार्थतः जान लेता है वही 'आश्वासनप्राप्त' कहलाता है।"

"आयुष्मन्! इस आश्वासन की प्राप्ति का क्या उपाय है?"

"आयुष्मन्! इस आश्वासनप्राप्ति का एकमात्र उपाय वही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग है। इसी की उचित साधना से उक्त आश्वासनप्राप्ति सम्भव है।"

६. परमस्सासप्पत्तसुत्तं

६. "'परमस्सासप्पत्तो, परमस्सासप्पत्तो' ति, आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कित्तावता नु खो, आवुसो, परमस्सासप्पत्तो होती" ति?

[B.450, R.255] "यतो खो, आवुसो, भिक्खु छन्नं फस्सायतनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा अनुपादाविमुत्तो होति, एत्तावता नु खो, आवुसो, परमस्सासप्पत्तो होती" ति।

"अत्थि पनावुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतस्स परमस्सासस्स सच्छिकिरियाया" ति?

"अत्थि खो, आवुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतस्स परमस्सासस्स सच्छिकिरियाया" ति।

"कतमो पन, आवुसो, मग्गो कतमा पटिपदा एतस्स परमस्सासस्स सच्छिकिरियाया" ति?

"अयमेव खो, आवुसो, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो एतस्स परमस्सासस्स [N.227] सच्छिकिरियाय, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि। अयं खो, आवुसो, मग्गो अयं पटिपदा एतस्स परमस्सासस्स सच्छिकिरियाया" ति।

"भद्दको, आवुसो, मग्गो भद्दिका पटिपदा एतस्स परमस्सासस्स सच्छिकिरियाय। अलं च पनावुसो सारिपुत्त, अप्पमादाया" ति॥ ●

७. वेदनापञ्हासुत्तं

७. "'वेदना, वेदना' ति, आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कतमा नु खो, आवुसो, वेदना" ति?

"आयुष्मन्! यह मार्ग तो बहुत सुखमय है, इस की प्राप्ति में साधक को कोई प्रमाद नहीं करना चाहिये॥" ●

६. परमाश्वासप्राप्तसूत्र : : परम आश्वासनप्राप्ति का उपाय

६. ..."आयुष्मन् सारिपुत्र! लोग 'परम आश्वासनप्राप्त, परम आश्वासनप्राप्त' ऐसा कहते रहते हैं..पूर्ववत्... । कोई प्रमाद नहीं करना चाहिये॥ ●

(इस सूत्र का, पिछले सूत्र की तरह ही विस्तार कर लेना चाहिये; केवल 'आश्वासन' के स्थान पर 'परम आश्वासन' शब्द परिवर्तित कर लें।)

७. वेदनाप्रश्नसूत्र : : वेदना क्या है?

७. ..."आयुष्मन् सारिपुत्र! लोग धार्मिक या लौकिक चर्चा में 'वेदना, वेदना' कहते रहते हैं, यह 'वेदना' क्या है?"

"तिस्सो इमावुसो, वेदना। कतमा तिस्सो? सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना—इमा खो, आवुसो, तिस्सो वेदना" ति।

"अत्थि पनावुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतासं तिस्सन्नं वेदनानं परिञ्ञाया" ति?

"अत्थि खो, आवुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतासं तिस्सन्नं वेदनानं परिञ्ञाया" ति।

"कतमो पनावुसो, मग्गो कतमा पटिपदा एतासं तिस्सन्नं वेदनानं परिञ्ञाया" ति?

"अयमेव खो, आवुसो, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो एतासं तिस्सन्नं वेदनानं परिञ्ञाय, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि। अयं खो, आवुसो, मग्गो अयं पटिपदा एतासं तिस्सन्नं वेदनानं परिञ्ञाया" ति।

"भद्दको, आवुसो, मग्गो भद्दिका पटिपदा एतासं तिस्सन्नं वेदनानं परिञ्ञाय। अलं च पनावुसो सारिपुत्त, अप्पमादाया" ति॥

८. आसवपञ्हासुत्तं

८. "'आसवो, आसवो' ति, आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कतमो नु खो, [R.256] आवुसो, आसवो" ति?

"तयोमे, आवुसो, आसवा। कामासवो, भवासवो, अविज्जा-[N.228, B.451] सवो—इमे खो, आवुसो, तयो आसवा" ति।

"अत्थि पनावुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतेसं आसवानं पहानाया" ति?

"आयुष्मन्! वेदनाएँ तीन हैं—१. सुखा, २. दुःखा एवं ३. अदुःखासुखा।"

"आयुष्मन्! इन वेदनाओं के परिज्ञान का कोई उपाय है?"

"हाँ, आयुष्मन्! इस वेदना के परिज्ञान (पहचान) का आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग की साधना ही एकमात्र उपाय है। ....।"

"आयुष्मन्! यह उपाय तो बहुत अच्छा है। इस की प्राप्ति में साधक को कोई प्रमाद नहीं करना चाहिये॥"

८. आश्रवप्रश्नसूत्र : : आश्रव क्या हैं?

८. ..."आयुष्मन् सारिपुत्र! लोग 'आश्रव, आश्रव' कहते रहते हैं। आयुष्मन्! यह 'आश्रव' क्या है?"

"आयुष्मन्! आश्रव तीन होते हैं—१. कामाश्रव, २. भवाश्रव, ३. अविद्याश्रव। आयुष्मन्! ये तीन आश्रव कहलाते हैं।"

"अत्थि खो, आवुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतेसं आसवानं पहानाया" ति।

"कतमो, आवुसो, मग्गो कतमा पटिपदा एतेसं आसवानं पहानाया" ति?

"अयमेव खो, आवुसो, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो एतेसं आसवानं पहानाय, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि। अयं खो, आवुसो, मग्गो अयं पटिपदा एतेसं आसवानं पहानाया" ति।

"भद्दको, आवुसो, मग्गो भद्दिका पटिपदा एतेसं आसवानं पहानाय। अलं च पनावुसो सारिपुत्त, अप्पमादाया" ति॥ •

९. अविज्जापञ्हासुत्तं

९. "'अविज्जा, अविज्जा' ति, आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कतमा नु खो, आवुसो, अविज्जा" ति?

"यं खो, आवुसो, दुक्खे अञ्ञाणं, दुक्खसमुदये अञ्ञाणं, दुक्खनिरोधे अञ्ञाणं, दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय अञ्ञाणं—अयं वुच्चतावुसो, अविज्जा" ति।

"अत्थि पनावुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतिस्सा अविज्जाय पहानाया" ति?

"अत्थि खो, आवुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतिस्सा अविज्जाय पहानाया" ति।

"कतमो पनावुसो, मग्गो कतमा पटिपदा एतिस्सा अविज्जाय पहानाया" ति।

"अयमेव खो, आवुसो, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो एतिस्सा अविज्जाय पहानाय, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि। अयं खो, आवुसो, मग्गो अयं पटिपदा एतिस्सा अविज्जाय पहानाया" ति।

"आयुष्मन्! क्या इन तीनों आश्रवों के प्रहाण का कोई उपाय है?"

"हाँ, आयुष्मन्! इन के प्रहाण का भी उपाय है।"

"वह क्या?"

"यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग...सम्यग्दृष्टि...सम्यक्समाधि। ...पूर्ववत्... ॥ •

९. अविद्याप्रश्नसूत्र : : **अविद्या क्या है?**

९. ..."आयुष्मन् सारिपुत्र! लोग 'अविद्या, अविद्या'—ऐसा कहते हैं। यह 'अविद्या' क्या है?

"आयुष्मन्! यह दुःख...दुःखसमुदय...दुःखनिरोध...एवं दुःखनिरोध के मार्ग का अज्ञान ही 'अविद्या' है।

"आयुष्मन्! इस अविद्या के निरोध का कोई उपाय है?"

"भद्दको, आवुसो, मग्गो भद्दिका पटिपदा एतिस्सा अविज्जाय पहानाय। [R.257] अलं च पनावुसो सारिपुत्त, अप्पमादाया" ति॥ ●

१०. तण्हापञ्हासुत्तं

१०. "'तण्हा, तण्हा' ति, आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कतमा नु खो, [N.229] आवुसो, तण्हा" ति?

"तिस्सो इमा, आवुसो, तण्हा। कामतण्हा, भवतण्हा, विभवतण्हा—इमा खो, आवुसो, तिस्सो तण्हा" ति।

"अत्थि पनावुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतासं तण्हानं पहानाया" ति?

"अत्थि खो, आवुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतासं तण्हानं पहानाया" ति।

"कतमो पनावुसो, मग्गो कतमा पटिपदा एतासं तण्हानं पहानाया" ति?[B.452]

"अयमेव खो, आवुसो, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो एतासं तण्हानं पहानाय, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि। अयं खो आवुसो, मग्गो अयं पटिपदा एतासं तण्हानं पहानाया" ति।

"भद्दको, आवुसो, मग्गो भद्दिका पटिपदा एतासं तण्हानं पहानाय। अलं च पनावुसो सारिपुत्त, अप्पमादाया" ति॥ ●

११. ओघपञ्हासुत्तं

११. "'ओघो, ओघो' ति, आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कतमो नु खो, आवुसो, ओघो" ति?

"चत्तारोमे, आवुसो, ओघा। कामोघो, भवोघो, दिट्ठोघो, अविज्जोघो—इमे खो, आवुसो, चत्तारो ओघा" ति।

"हाँ, आयुष्मन्! इस के निरोध का एकमात्र उपाय उस आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का अवलम्बन ही है। ...पूर्ववत्... ॥ ●

१०. तृष्णाप्रश्नसूत्र : : तृष्णा क्या है?

१०. ..."आयुष्मन् सारिपुत्र! लोग 'तृष्णा, तृष्णा' कहते रहते हैं, यह 'तृष्णा' क्या है?"

"आयुष्मन्! इस तृष्णा के तीन भेद हैं—१. कामतृष्णा, २. भवतृष्णा, एवं ३. विभवतृष्णा।"

"आयुष्मन्! इन तृष्णाओं के निरोध का कोई उपाय है?"

"हाँ, आयुष्मन्! है, वही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग...सम्यग्दृष्टि...सम्यक्समाधि। ...पूर्ववत्... ॥ ●

"अत्थि पनावुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतेसं ओघानं पहानाया" ति?

"अत्थि खो, आवुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतेसं ओघानं पहानाया" ति।

"कतमो पनावुसो, मग्गो कतमा पटिपदा एतेसं ओघानं पहानाया" ति?

"अयमेव खो, आवुसो, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो एतेसं ओघानं पहानाय, [R.258] सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि। अयं खो आवुसो, मग्गो अयं पटिपदा एतेसं ओघानं पहानाया" ति।

"भद्दको, आवुसो, मग्गो भद्दिका पटिपदा एतेसं ओघानं पहानाय। अलं च [N.230] पनावुसो सारिपुत्त, अप्पमादाया" ति॥ ●

१२. उपादानपञ्हासुत्तं

१२. "'उपादानं, उपादानं' ति, आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कतमं नु खो, आवुसो, उपादानं" ति?

"चत्तारिमानि, आवुसो, उपादानानि। कामुपादानं, दिट्ठुपादानं, सीलब्बतुपादानं, अत्तवादुपादानं—इमानि खो, आवुसो, चत्तारि उपादानानी" ति।

"अत्थि पनावुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतेसं उपादानानं पहानाया" ति?

"अत्थि खो, आवुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतेसं उपादानानं पहानाया" ति।

---

११. औघप्रश्नसूत्र : : औघ (बाढ़=जलप्लावन) क्या है?

११. ..."आयुष्मन् सारिपुत्र! लोग 'औघ, औघ' बोलते रहते हैं, यह 'औघ' क्या है?"

"आयुष्मन्! (हमारे आर्यविनय में) औघ (बढ़ना) चतुर्विध होते हैं—१. कामौघ, २. भवौघ, ३. दृष्ट्यौघ एवं ४. अविद्यौघ। ...।"

"आयुष्मन्! इन औघों की परिहाणि का कोई उपाय है?"

"आयुष्मन्! इन औघों की मूलतः परिहाणि का एकमात्र उपाय वह आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग ही है; जैसे—१. सम्यग्दृष्टि...पूर्ववत्..., ८. सम्यक्समाधि।" ...॥ ●

१२. उपादानप्रश्नसूत्र : : उपादान (ग्रहण) क्या है?

१२. ..."आयुष्मन् सारिपुत्र! लोग 'उपादान, उपादान' कहते रहते हैं, यह 'उपादान' क्या है?"

"आयुष्मन्! उपादान (मिथ्यादृष्टि द्वारा ग्रहण) चतुर्विध होते हैं; जैसे—१. कामोपादान, २. दृष्ट्युपादान, ३. शीलव्रतोपादान एवं ४. आत्मवादोपादान। ...ये चार उपादान होते हैं।"

"आयुष्मन्! इन उपादानों के यथार्थ ज्ञान का उपाय क्या है?"

"कतमो पनावुसो, मग्गो कतमा पटिपदा एतेसं उपादानानं पहानाया" ति?

"अयमेव खो, आवुसो, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो एतेसं उपादानानं पहानाय, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि। अयं खो आवुसो, मग्गो अयं पटिपदा एतेसं उपादानानं पहानाया" ति। [B.453]

"भद्दको, आवुसो, मग्गो भद्दिका पटिपदा एतेसं उपादानानं पहानाय। अलं च पनावुसो सारिपुत्त, अप्पमादाया" ति॥ ●

१३. भवपञ्हासुत्तं

१३. "'भवो, भवो' ति, आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कतमो नु खो, आवुसो, भवो" ति?

"तयोमे, आवुसो, भवा। कामभवो, रूपभवो, अरूपभवो—इमे खो, आवुसो, तयो भवा" ति।

"अत्थि पनावुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतेसं भवानं परिञ्ञाया" ति?

"अत्थि खो, आवुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतेसं भवानं परिञ्ञाया" ति।

"कतमो पनावुसो, मग्गो कतमा पटिपदा एतेसं भवानं परिञ्ञाया" ति? [N.231]

"अयमेव खो, आवुसो, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो एतेसं भवानं परिञ्ञाय, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि। अयं खो आवुसो, मग्गो अयं [R.259] पटिपदा एतेसं भवानं परिञ्ञाया" ति।

"भद्दको, आवुसो, मग्गो भद्दिका पटिपदा एतेसं भवानं परिञ्ञाय। अलं च पनावुसो सारिपुत्त, अप्पमादाया" ति॥ ●

"आयुष्मन्!...वही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग...सम्यग्दृष्टि...सम्यक्समाधि।...पूर्ववत्...॥

१३. भवप्रश्नसूत्र : : भव क्या है?

१३. ..."आयुष्मन् सारिपुत्र! लोक में 'भव, भव'—ऐसा कहा जाता है, आयुष्मन्! यह 'भव' क्या है?"

"आयुष्मन्! यहाँ तीन प्रकार के भव कहलाते हैं; जैसे—१. कामभव, २. रूपभव, ३. अरूपभव। ये तीन 'भव' कहलाते हैं।

"आयुष्मन्! इस भव के यथार्थ ज्ञान का कोई उपाय है?"

"हाँ, है, आयुष्मन्! उस आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का आलम्बन ही इस के ज्ञान का एकमात्र उपाय है। ...पूर्ववत्...॥ ●

१४. दुक्खपञ्हासुत्तं

१४. "'दुक्खं, दुक्खं' ति, आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कतमं नु खो, आवुसो, दुक्खं" ति?

"तिस्सो इमा, आवुसो, दुक्खता। दुक्खदुक्खता, सङ्खारदुक्खता, विपरिणाम-दुक्खता—इमा खो, आवुसो, तिस्सो दुक्खता" ति।

"अत्थि पनावुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतासं दुक्खतानं परिञ्ञाया" ति?

"अत्थि खो, आवुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतासं दुक्खतानं परिञ्ञाया" ति।

"कतमो पनावुसो, मग्गो कतमा पटिपदा एतासं दुक्खतानं परिञ्ञाया" ति?

"अयमेव खो, आवुसो, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो एतासं दुक्खतानं परिञ्ञाय, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि। अयं खो आवुसो, मग्गो अयं पटिपदा एतासं दुक्खतानं परिञ्ञाया" ति।

"भद्दको, आवुसो, मग्गो भद्दिका पटिपदा एतासं दुक्खतानं परिञ्ञाय। अलं च पनावुसो सारिपुत्त, अप्पमादाया" ति॥ ●

१५. सक्कायपञ्हासुत्तं

[B.454] १५. "'सक्कायो, सक्कायो' ति, आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कतमो नु खो, आवुसो, सक्कायो" ति?

"पञ्चिमे, आवुसो, उपादानक्खन्धा सक्कायो वुत्तो भगवता, सेय्यथीदं—रूपु-

---

१४. दुःखप्रश्नसूत्र : : दुःखता क्या है?

१४. ..."आयुष्मन् सारिपुत्र! लोग 'दुःख, दुःख'—ऐसा कहते रहते हैं? आयुष्मन्! यह 'दुःख' या 'दुःखता' क्या है?"

"आयुष्मन्! हमारे यहाँ दुःखता तीन प्रकार की बतायी गयी है; जैसे—१. दुःखदुःखता, २. संस्कारदुःखता, एवं ३. विपरिणामदुःखता। आयुष्मन्! ये तीन दुःखताएँ होती हैं।"

"आयुष्मन्! इन दुःखताओं के विषय में यथार्थ ज्ञान का कोई उपाय है?"

"आयुष्मन्! इन दुःखताओं के यथार्थ परिज्ञान के लिये आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का आलम्बन ही एकमात्र उपाय है। ...पूर्ववत्...॥ ●

१५. सत्कायप्रश्नसूत्र : : यह सत्कायदृष्टि क्या है?

१५. ..."आयुष्मन् सारिपुत्र! लोग 'सत्काय, सत्काय'—ऐसा कहते रहते हैं। यह 'सत्काय' क्या है?"

"आयुष्मन्! इन पाँच उपादानस्कन्धों को भगवान् ने 'सत्काय' कहा है। कौन से

पादानक्खन्धो, वेदनुपादानक्खन्धो, सञ्ञुपादानक्खन्धो, सङ्खारुपा-[N.232, R.260] दानक्खन्धो, विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। इमे खो, आवुसो, पञ्चुपादानक्खन्धा सक्कायो वुत्तो भगवता'' ति।

''अत्थि पनावुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतस्स सक्कायस्स परिञ्ञाया'' ति?

''अत्थि खो, आवुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतस्स सक्कायस्स परिञ्ञाया'' ति।

''कतमो पनावुसो, मग्गो कतमा पटिपदा एतस्स सक्कायस्स परिञ्ञाया'' ति?

''अयमेव खो, आवुसो, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो एतस्स सक्कायस्स परिञ्ञाय, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि। अयं खो आवुसो, मग्गो अयं पटिपदा एतस्स सक्कायस्स परिञ्ञाया'' ति।

''भद्दको, आवुसो, मग्गो भद्दिका पटिपदा एतस्स सक्कायस्स परिञ्ञाय। अलं च पनावुसो सारिपुत्त, अप्पमादाया'' ति॥ •

१६. दुक्करपञ्हासुत्तं

१६. ''किं नु खो, आवुसो सारिपुत्त, इमस्मिं धम्मविनये दुक्करं'' ति?

''पब्बज्जा खो, आवुसो, इमस्मिं धम्मविनये दुक्करा'' ति?

''पब्बजितेन पनावुसो, किं दुक्करं'' ति?

''पब्बजितेन खो, आवुसो, अभिरति दुक्करा'' ति।

''अभिरतेन पनावुसो, किं दुक्करं'' ति?

पाँच? १. रूपोपादानस्कन्ध, २. वेदनोपादानस्कन्ध, ३. संज्ञोपादानस्कन्ध, ४. संस्कारोपादानस्कन्ध एवं ५. विज्ञानोपादानस्कन्ध। आयुष्मन्! ये पाँच उपादानस्कन्ध ही 'सत्काय' कहलाते हैं।''

''आयुष्मन्! इस 'सत्काय' के परिज्ञान का कोई उपाय है?''

''हाँ, आयुष्मन्! उस आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग की साधना से ही इस सत्काय का परिज्ञान हो सकता है।'' ...पूर्ववत्... ॥ •

१६. दुष्करप्रश्नसूत्र : :बौद्ध धर्म में क्या दुष्कर (कठिन) है?

१६. ...''आयुष्मन् सारिपुत्र! आप के इस धर्मविनय (बौद्ध धर्म) में क्या दुष्कर है?''

''आयुष्मन्! हमारे इस धर्मविनय में 'प्रव्रज्या' लेना दुष्कर है।''

''पुनः आयुष्मन्! इस धर्मविनय में प्रव्रजित के लिये क्या दुष्कर है?''

''आयुष्मन्! इस धर्मविनय में प्रव्रजित की इस धर्म में निरन्तर अभिरति (आसक्ति) बने रहना दुष्कर है।''

"अभिरतेन खो, आवुसो, धम्मानुधम्मप्पटिपत्ति दुक्करा" ति।

"कीवचिरं पनावुसो, धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो भिक्खु अरहं अस्सा" ति?

"नचिरं, आवुसो" ति॥ ●

जम्बुखादकसंयुत्तं समत्तं॥

तस्सुद्दानं

[R.261] निब्बान अरहत्तं च, धम्मवादी किमत्थियं।
अस्सासो परमस्सासो, वेदना आसवाविज्जा॥
तण्हा ओघा उपादानं, भवो दुक्खं च सक्कायो।
इमस्मिं धम्मविनये दुक्करं ति॥ ●

"फिर आयुष्मन्! इस धर्म में ऐसे अभिरत के लिये क्या दुष्कर है?"

"आयुष्मन्! ऐसे अभिरत द्वारा निरन्तर धर्मानुसार आचरण करना दुष्कर है।"

"आयुष्मन्! इस धर्म के अनुसार आचरण करने वाला कितने समय में अर्हत् हो सकता है?"

"आयुष्मन्! धर्मानुसारी साधक के 'अर्हत्' होने में अधिक समय नहीं लगता"॥ ●

जम्बूखादकसंयुक्त सम्पन्न॥

इस ३८वें जम्बूखादकसंयुक्त में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. निर्वाणप्रश्नसूत्र, २. अर्हत्त्वप्रश्नसूत्र, ३. धर्मवादिप्रश्नसूत्र, ४. किमर्थीयसूत्र, ५. आश्वासप्राप्तसूत्र, ६. परमाश्वासप्राप्तसूत्र, ७. वेदनाप्रश्नसूत्र, ८. आश्रवप्रश्नसूत्र, ९. अविद्याप्रश्नसूत्र, १०. तृष्णाप्रश्नसूत्र, ११. औघप्रश्नसूत्र, १२. उपादानप्रश्नसूत्र, १३. भवप्रश्नसूत्र, १४. दुःखप्रश्नसूत्र, १५. सत्कायप्रश्नसूत्र एवं १६. दुष्करप्रश्नसूत्र॥ ●

३९. सामण्डकसंयुत्तं

१. सामण्डकसुत्तं

१. एकं समयं आयस्मा सारिपुत्तो वज्जीसु विहरति उक्कचेलायं [N.233, B.455] गङ्गाय नदिया तीरे। अथ खो सामण्डको परिब्बाजको येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सारिपुत्तेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सामण्डको परिब्बाजको आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—

"'निब्बानं, निब्बानं' ति आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कतमं नु खो, आवुसो, निब्बानं" ति?

"यो खो, आवुसो, रागक्खयो दोसक्खयो मोहक्खयो—इदं वुच्चति निब्बानं" ति।

"अत्थि पनावुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतस्स निब्बानस्स सच्छिकिरियाया" ति?

"अत्थि खो, आवुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतस्स निब्बानस्स सच्छि-किरियाया" ति।

"कतमो पनावुसो, मग्गो कतमा पटिपदा एतस्स निब्बानस्स सच्छिकिरियाया" ति? [R.262]

---

३९. सामण्डकसंयुक्त

१. सामण्डकवर्ग

१. निर्वाणसूत्र : : **निर्वाण क्या है?**

१. एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र वज्जीप्रदेश के **उक्कचेलाग्राम** में गङ्गा नदी के तट पर साधनाहेतु विचरण कर रहे थे। उसी समय कोई सामण्डक नाम का परिव्राजक आयुष्मान् सारिपुत्र के पास आया, तथा उन से कुशलक्षेम पूछ कर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे हुए उसने आयुष्मान् सारिपुत्र से यों पूछा—

"आयुष्मन् सारिपुत्र! लोग 'निर्वाण, निर्वाण' ऐसा कहते रहते हैं। आयुष्मन्! यह 'निर्वाण' क्या है?"

"आयुष्मन्! राग, द्वेष एवं मोह के सर्वथा क्षय को 'निर्वाण' कहते हैं।"

"आयुष्मन्! इस निर्वाण की प्राप्ति एवं साक्षात्कार का कोई उपाय है?"

"हाँ, आयुष्मन्! इस की प्राप्ति का उपाय भी है।"

"अयमेव खो, आवुसो, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो एतस्स निब्बानस्स सच्छिकिरियाय, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...सम्मासमाधि। अयं खो, आवुसो, मग्गो, अयं पटिपदा एतस्स निब्बानस्स सच्छिकिरियाया" ति।

"भद्दको, आवुसो, मग्गो भद्दिका पटिपदा एतस्स निब्बानस्स सच्छिकिरियाय। अलं च पनावुसो सारिपुत्त, अप्पमादाया" ति॥ •

२-१५. *(यथा जम्बुखादकसंयुत्तं तथा वित्थारेतब्बं।)*

१६. दुक्करसुत्त

[B.456]१६. "किं नु खो, आवुसो सारिपुत्त, इमस्मिं धम्मविनये दुक्करं" ति?

[N.234]"पब्बज्जा खो, आवुसो, इमस्मिं धम्मविनये दुक्करा" ति।

"पब्बजितेन पनावुसो, किं दुक्करं" ति?

"पब्बजितेन खो, आवुसो, अभिरति दुक्करा" ति।

"अभिरतेन पनावुसो, किं दुक्करं" ति?

"अभिरतेन खो, आवुसो, धम्मानुधम्मप्पटिपत्ति दुक्करा" ति।

"कीवचिरं पनावुसो, धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो भिक्खु अरहं अस्सा" ति?

"वह क्या है?"

"यह आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग ही इस निर्वाण की प्राप्ति का उपाय है। जैसे—सम्यग्दृष्टि... सम्यक्समाधि।"

"आयुष्मन्! यह मार्ग तो बहुत मङ्गलमय है। इस की प्राप्ति में साधक को कोई प्रमाद नहीं करना चाहिये॥" •

२. अर्हत्त्वसूत्र से १५ सत्कायप्रश्नसूत्र

(जम्बूखादकसंयुक्त में व्याख्यात इन सूत्रों की तरह ही यहाँ भी व्याख्यान कर लें।)

१६. दुष्करप्रश्नसूत्र : : बौद्ध धर्म में दुष्कर क्रिया क्या है?

१६. ..."आयुष्मन् सारिपुत्र! आप के इस धर्मविनय में दुष्कर क्रिया क्या है?"

"आयुष्मन्! इस धर्मविनय में प्रव्रज्या सब से दुष्कर है।"

"फिर, आयुष्मन्! प्रव्रजित के लिये क्या दुष्कर है?"

"आयुष्मन्! प्रव्रजित को निरन्तर धर्म में रति रखना दुष्कर है।"

"आयुष्मन्! धर्म में रति रखने वाले के लिये क्या दुष्कर है?"

"आयुष्मन्! धर्म में रति रखने वाले को निरन्तर धर्मानुसार आचरण-करना दुष्कर है।"

"नचिरं, आवुसो" ति॥ ●

(पुरिमसदिसं उद्दानं)

सामण्डकसंयुत्तं समत्तं॥

—— ⁜ ——

"आयुष्मन्! धर्मानुसार साधनाकर्ता कितने समय में अर्हत्त्व प्राप्त कर सकता है?"

"आयुष्मन्! धर्मानुसार साधनाकर्ता को बहुत शीघ्र ही अर्हत्त्व प्राप्त हो जाता है"॥ ●

सामण्डकसंयुक्त समाप्त॥

इस सामण्डकसंयुक्त में भी पूर्व जम्बूखादकसंयुक्त के समान ही १६ सूत्रों (निर्वाणसूत्र से दुष्करप्रश्नसूत्र तक) का पूर्ववत् व्याख्यान हुआ है अत: वही सूत्रसूची समझें॥ ●

—— ⁜ ——

४०. मोग्गल्लानसंयुत्तं

१. पठमझानपञ्हासुत्तं

[N.235, B.457] १. एकं समयं आयस्मा महामोग्गल्लानो सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो आयस्मा महामोग्गल्लानो भिक्खू आमन्तेसि— "आवुसो भिक्खवे" ति। "आवुसो" ति खो ते भिक्खू आयस्मतो महामोग्गल्लानस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा महामोग्गल्लानो एतदवोच—

"इध मय्हं, आवुसो, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—'पठमं झानं, पठमं झानं' ति वुच्चति। कतमं नु खो पठमं झानं ति? तस्स मय्हं, आवुसो, एतदहोसि—'इध भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं वुच्चति 'पठमं झानं' ति। सो ख्वाहं, आवुसो, विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। तस्स मय्हं, आवुसो, इमिना विहारेन विहरतो कामसहगता सञ्ञामनसिकारा समुदाचरन्ति।

"अथ खो मं, आवुसो, भगवा इद्धिया उपसङ्कमित्वा एतदवोच—'मोग्गल्लान, मोग्गल्लान! मा, ब्राह्मण, पठमं झानं पमादो, पठमे झाने चित्तं सण्ठपेहि, पठमे झाने चित्तं

---

४०. मोग्गल्लानसंयुक्त

१. प्रथम ध्यानप्रश्नसूत्र : : प्रथमं ध्यान

१. एक समय आयुष्मान् महामोग्गल्लान **श्रावस्ती** के जेतवन में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब किसी दिन आयुष्मान् महामोग्गल्लान ने भिक्षुओं को अपने पास बुलाया तथा उन को प्रथम ध्यान की साधना के विषय में अपने अनुभव यों सुनाये—

"आयुष्मानो! एकान्त में ध्यानभावना करते समय मेरे मन में यह विचार हुआ— 'प्रथम ध्यान प्रथम ध्यान'—ऐसी चर्चा लोग करते रहते हैं, यह प्रथम ध्यान क्या है?' तब मुझ को यही समझ में आया—'यहाँ कोई साधक भिक्षु कामभोगों एवं अकुशल धर्मों से दूर रहता हुआ वितर्क विचार सहित विवेकजन्य प्रीतिसुखमय प्रथम ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। यही प्रथम ध्यान कहलाता है।' आयुष्मानो! तब मैं...पूर्ववत्...प्रथम ध्यान की साधना करने लगा। उस समय मेरे मन में कामसहगत संज्ञाएँ उठने लगीं।

"तब, भगवान् ने अपने अलौकिक ऋद्धिप्रभाव से मेरे सम्मुख प्रकट हो कर मुझ को यह चेतावनी दी—'मोग्गल्लान! ब्राह्मण! प्रथम ध्यान की साधना में प्रमाद न कर

एकोदिं करोहि, पठमे झाने चित्तं समादहा' ति। सो ख्वाहं, आवुसो, अपरेन समयेन विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहासि। यं हि तं, आवुसो, सम्मा वदमानो वदेय्य—'सत्थारानुग्गहितो सावको महाभिञ्ञतं पत्तो' ति, ममं तं सम्मा वदमानो वदेय्य—'सत्थारानुग्गहितो सावको महाभिञ्ञतं पत्तो''' ति॥

२. दुतियझानपञ्हासुत्तं

२. '''दुतियं झानं, दुतियं झानं' ति वुच्चति। कतमं नु खो दुतियं झानं [B.458] ति? तस्स मय्हं, आवुसो, एतदहोसि—'इध भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा [R.264] अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं [N.236] दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं वुच्चति 'दुतियं झानं' ति। सो ख्वाहं, आवुसो, वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। तस्स मय्हं, आवुसो, इमिना विहारेन विहरतो वितक्कसहगता सञ्ञामनसिकारा समुदाचरन्ति।

''अथ खो मं, आवुसो, भगवा इद्धिया उपसङ्कमित्वा एतदवोच—'मोग्गल्लान,

---

बैठना। इस ध्यान में अपना चित्त एकाग्र कर, प्रथम ध्यान में अपना चित्त समाहित कर!' भगवान् के इस आदेश से, मैं आगे चल कर, कामभोगों एवं अकुशल धर्मों से दूर रहते हुए वितर्क विचार सहित विवेकजन्य प्रीतिसुखमय प्रथम ध्यान की साधना पूर्ण सावधानी से करने लगा। अत: आयुष्मानो! यदि कोई किसी के लिये यह कहना चाहे—'शास्ता द्वारा अनुगृहीत शिष्य ठीक से अभिज्ञा प्राप्त हो चुका है', तो वह मेरे लिये ही ऐसा कह सकता है॥''

२. द्वितीय ध्यानप्रश्नसूत्र : : द्वितीय ध्यान

२. ...'''द्वितीय ध्यान, द्वितीय ध्यान' ऐसा लोग कहते रहते हैं। यह 'द्वितीय ध्यान' क्या है?

''आयुष्मानो! तब मुझ को विचार हुआ—'यहाँ कोई साधक भिक्षु वितर्क एवं विचारों के शान्त हो जाने पर, आध्यात्मिक प्रसाद से सम्पृक्त हो कर, चित्त को एकाग्र कर द्वितीय ध्यान की साधना में लगता है। यही द्वितीय ध्यान कहलाता है।' तब मैं वितर्क विचारों के व्युपशम के बाद आध्यात्मिक प्रसाद के साथ चित्त को एकाग्र कर, वितर्करहित समाधिजन्य प्रीतिसुखमय द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर साधना करने लगा। आयुष्मानो! उस समय यह साधना करते हुए मुझ को वितर्कसहगत संज्ञाओं का ध्यान आने लगा।

''तब मेरे सम्मुख भगवान् ने, साक्षात् प्रकट हो कर, यह आदेश दिया—'मोग्गल्लान,

मोग्गल्लान! मा, ब्राह्मण, दुतियं झानं पमादो, दुतिये झाने चित्तं सण्ठपेहि, दुतिये झाने चित्तं एकोदिं करोहि, दुतिये झाने चित्तं समादहा' ति। सो ख्वाहं, आवुसो, अपरेन समयेन वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहासिं। यं हि तं, आवुसो, सम्मा वदमानो वदेय्य—'सत्थारानुग्गहितो सावको महाभिञ्ञतं पत्तो' ति, ममं तं सम्मा वदमानो वदेय्य—'सत्थारानुग्गहितो सावको महाभिञ्ञतं पत्तो''' ति॥ •

३. ततियझानपञ्हासुत्तं

३. '''ततियं झानं, ततियं झानं' ति वुच्चति। कतमं नु खो ततियं झानं ति? तस्स मय्हं, आवुसो, एतदहोसि—'इध भिक्खु पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो सुखं च कायेन पटिसंवेदेति, यं तं अरिया आचिक्खन्ति—'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं वुच्चति ततियं झानं ति। सो ख्वाहं, आवुसो, पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरामि सतो च सम्पजानो सुखं च कायेन पटिसंवेदेमि। यं तं अरिया आचिक्खन्ति—'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। तस्स मय्हं, आवुसो, इमिना विहारेन विहरतो पीतिसहगता सञ्ञामनसिकारा समुदाचरन्ति।

[B.459, R.265] ''अथ खो मं, आवुसो, भगवा इद्धिया उपसङ्कमित्वा एतदवोच—'मोग्गल्लान, मोग्गल्लान! मा, ब्राह्मण, ततियं झानं पमादो, ततिये झाने चित्तं सण्ठपेहि,

---

ब्राह्मण! द्वितीय ध्यान की साधना में प्रमाद न करना।' तब मैं भगवान् के इस आदेश से...पूर्ववत्...वह मेरे लिये ही हो सकता है''॥ •

३. तृतीय ध्यानप्रश्नसूत्र : : तृतीय ध्यान

३. ...'''तृतीय ध्यान, तृतीय ध्यान'—ऐसा कहा जाता है। यह 'तृतीय ध्यान' क्या होता है?

''आयुष्मानो! तब मुझ को विचार हुआ—'यहाँ कोई साधक भिक्षु प्रीति से विरक्त हो कर उपेक्षापूर्वक साधना करता है, स्मृतिमान् तथा सम्प्रज्ञ हो कर शरीरसुख का अनुभव करता है, जिस के विषय में पण्डितजन यह कहते हैं—'यह स्मृतिमान् हो कर उपेक्षापूर्वक साधना कर रहा है'। ऐसे तृतीय ध्यान की साधना की तरफ बढ़ता है। इसे ही 'तृतीय ध्यान' कहा जाता है। तब मैं प्रीति से विरक्त हो कर उपेक्षापूर्वक...पूर्ववत्...साधना करने लगा। आयुष्मानो! मुझ को उस समय मेरे मन में प्रीतिसहगत संज्ञाओं का ध्यान आने लगा।

''तब, भगवान् ने, मेरे सम्मुख प्रकट हो कर, मुझ को सावधान किया—'बाहितपाप

ततिये झाने चित्तं एकोदिं करोहि, ततिये झाने चित्तं समादहा' ति। सो ख्वाहं, आवुसो, अपरेन समयेन पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरामि सतो च सम्पजानो [N.237] सुखं च कायेन पटिसंवेदेमि। यं तं अरिया आचिक्खन्ति—'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहासिं। यं हि तं, आवुसो, सम्मा वदमानो वदेय्य...पे०...महाभिञ्ञतं पत्तो'' ति॥ •

४. चतुत्थझानपञ्हासुत्तं

४. '''चतुत्थं झानं, चतुत्थं झानं' ति वुच्चति। कतमं नु खो चतुत्थं झानं ति? तस्स मय्हं, आवुसो, एतदहोसि—'इध भिक्खु सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं वुच्चति चतुत्थं झानं ति। सो ख्वाहं, आवुसो, सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। तस्स मय्हं, आवुसो, इमिना विहारेन विहरतो सुखसहगता सञ्ञामनसिकारा समुदाचरन्ति।

''अथ खो मं, आवुसो, भगवा इद्धिया उपसङ्कमित्वा एतदवोच—'मोग्गल्लान, मोग्गल्लान! मा, ब्राह्मण, चतुत्थं झानं पमादो, चतुत्थे झाने चित्तं सण्ठपेहि, चतुत्थे झाने

मोग्गल्लान! तृतीय ध्यान की साधना में प्रमाद न कर बैठना। अपने चित्त को समाहित कर।' मैं भगवान् के इस आदेश को शिरोधार्य कर सावधानीपूर्वक...पूर्ववत्...वह मेरे लिये ही हो सकता है''॥ •

४. चतुर्थ ध्यानप्रश्नसूत्र : : चतुर्थ ध्यान

४. ...'''चतुर्थ ध्यान, चतुर्थ ध्यान'—ऐसा लोग कहते रहते हैं। यह 'चतुर्थ ध्यान' क्या है?

''तब मुझ को ध्यान आया—'यहाँ कोई साधक भिक्षु सुख दुःख के प्रहाण से पूर्व ही सौमनस्य एवं दौर्मनस्य के अस्त हो जाने के कारण अदुःख-असुखमय उपेक्षा एवं स्मृतिपरिशुद्धि के साथ चतुर्थ ध्यान की साधना करता है।

"इसी को 'चतुर्थ ध्यान' कहते हैं। तब मैं, आयुष्मानो! सुख दुःख के प्रहाण से, तथा पूर्व ही सौमनस्य दौर्मनस्य के अस्त हो जाने के कारण अदुःख असुखमय उपेक्षा-स्मृतिपरिशुद्धियुक्त चतुर्थ ध्यान की साधना करने लगा। उस समय, आयुष्मानो! मुझ को सुखसहगत संज्ञाओं का ध्यान आने लगा।

''तब भगवान् ने, स्वकीय ऋद्धिप्रभाव से मेरे सम्मुख प्रकट हो कर मुझ को सावधान किया—'वाहितपाप, मोग्गल्लान! चतुर्थ ध्यान की साधना में प्रमाद न कर बैठना।

चित्तं एकोदिं करोहि, चतुत्थे झाने चित्तं समादहा' ति। सो ख्वाहं, आवुसो, अपरेन समयेन सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा [R.266] अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहासिं। यं हि तं, आवुसो, सम्मा वदमानो वदेय्य...पे०...महाभिञ्ञतं पत्तो'' ति॥ •

५. आकासानञ्चायतनपञ्हासुत्तं

५. '''आकासानञ्चायतनं, आकासानञ्चायतनं' ति वुच्चति। कतमं नु खो आकासानञ्चायतनं ति? तस्स मय्हं, आवुसो, एतदहोसि—'इध भिक्खु सब्बसो [B.460] रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा [N.238] अनन्तो आकासो ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। इदं वुच्चति आकासानञ्चायतनं' ति। सो ख्वाहं, आवुसो, सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा अनन्तो आकासो ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरामि। तस्स मय्हं, आवुसो, इमिना विहारेन विहरतो रूपसहगता सञ्ञामनसिकारा समुदाचरन्ति।

''अथ खो मं, आवुसो, भगवा इद्धिया उपसङ्कमित्वा एतदवोच—'मोग्गल्लान, मोग्गल्लान! मा, ब्राह्मण, आकासानञ्चायतनं पमादो, आकासानञ्चायतने चित्तं सण्ठपेहि, आकासानञ्चायतने चित्तं एकोदिं करोहि, आकासानञ्चायतने चित्तं समादहा' ति। सो ख्वाहं, आवुसो, अपरेन समयेन सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा अनन्तो आकासो ति आकासानञ्चायतनं

चतुर्थ ध्यान में स्वचित्त को एकाग्र कर।' मैं भगवान् के इस आदेश को शिरोधार्य कर सावधानी के साथ...पूर्ववत्...वह मेरे लिये ही हो सकता है''॥ •

५. आकाशानन्त्यायतनप्रश्नसूत्र : : आकाशानन्त्यायतन क्या है?

५. ''...यह 'आकाशानन्त्यायतन' क्या है?

''तब, आयुष्मानो! मुझ को यह समझ में आया—'यहाँ कोई साधक भिक्षु रूपसंज्ञाओं का सर्वथा अतिक्रमण कर, प्रतिघसंज्ञाओं के विनष्ट हो जाने से नानात्मसंज्ञाओं का मन में ध्यान न करने से 'आकाश अनन्त है'—ऐसा ध्यान करता हुआ आकाशानन्त्यायतन की साधना करता है। यह 'आकाशानन्त्यायतन' कहलाता है। तब, मैं, आयुष्मानो! रूपसंज्ञाओं के समतिक्रमण से, प्रतिघसंज्ञाओं के अस्त हो जाने से, नानात्म संज्ञाओं का मन में ध्यान न कर 'आकाश अनन्त है'—यह ध्यान में रखता हुआ 'आकाशानन्त्यायतन' की साधना करने लगा। उस समय मेरे मन में रूपसहगत संज्ञाओं का उद्भव होने लगा।

उपसम्पज्ज विहासिं। यं हि तं, आवुसो, सम्मा वदमानो वदेय्य...पे०...महाभिञ्ञतं पत्तो'' ति॥

६. विञ्ञाणञ्चायतनपञ्हासुत्तं

६. '''विञ्ञाणञ्चायतनं, विञ्ञाणञ्चायतनं' ति वुच्चति। कतमं नु खो [R.267] विञ्ञाणञ्चायतनं ति? तस्स मय्हं, आवुसो, एतदहोसि—'इध भिक्खु सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म अनन्तं विञ्ञाणं ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। इदं वुच्चति विञ्ञाणञ्चायतनं' ति। सो ख्वाहं, आवुसो, सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म अनन्तं विञ्ञाणं ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरामि। तस्स मय्हं, आवुसो, इमिना विहारेन विहरतो आकासानञ्चायतनसहगता सञ्ञामनसिकारा समुदाचरन्ति।

''अथ खो मं, आवुसो, भगवा इद्धिया उपसङ्कमित्वा एतदवोच—'मोग्गल्लान, मोग्गल्लान! मा, ब्राह्मण, विञ्ञाणञ्चायतनं पमादो, विञ्ञाणञ्चायतने चित्तं सण्ठपेहि, विञ्ञाणञ्चायतने चित्तं एकोदिं करोहि, विञ्ञाणञ्चायतने चित्तं समादहा' ति। [B.461] सो ख्वाहं, आवुसो, अपरेन समयेन सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म अनन्तं विञ्ञाणं ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहासिं। यं हि तं, आवुसो, सम्मा वदमानो वदेय्य...पे०...महाभिञ्ञतं पत्तो'' ति॥

७. आकिञ्चञ्ञायतनपञ्हासुत्तं

७. '''आकिञ्चञ्ञायतनं, आकिञ्चञ्ञायतनं' ति वुच्चति। कतमं नु खो [N.239] आकिञ्चञ्ञायतनं ति? तस्स मय्हं, आवुसो, एतदहोसि—'इध भिक्खु सब्बसो

''तब भगवान् ने...पूर्ववत्...वह मेरे लिये ही हो सकता है॥''

६. विज्ञानानन्त्यायतनप्रश्नसूत्र : : विज्ञानानन्त्यायतन क्या है?

६. ''...'विज्ञानानन्त्यायतन' क्या है? तब, आयुष्मानो! मुझ को यह ध्यान आया—'यहाँ कोई साधक भिक्षु आकाशानन्त्यायतन का समतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है'—इस तरह ध्यान में रखता हुआ विज्ञानानन्त्यायतन की साधना करने लगा। इस साधना के समय, आ ुष्मानो! मुझ को आकाशानन्त्यायतन सहगत संज्ञाओं का मन में ध्यान आने लगा।

''तब भगवान् ने...पूर्ववत्...वह मेरे लिये ही हो सकता है॥''

७. आकिञ्चन्यायतनप्रश्नसूत्र : : आकिञ्चन्यायतन क्या है?

७. ...पूर्ववत्...यह आकिञ्चन्यायतन क्या है? तब मुझ को ध्यान आया—''यहाँ,

विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म नत्थि किञ्ची ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति। इदं वुच्चति आकिञ्चञ्ञायतनं' ति। सो ख्वाहं, आवुसो, सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म नत्थि किञ्ची ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरामि। तस्स मय्हं, आवुसो, इमिना विहारेन विहरतो विञ्ञाणञ्चायतनसहगता सञ्ञामनसिकारा समुदाचरन्ति।

"अथ खो मं, आवुसो, भगवा इद्धिया उपसङ्कमित्वा एतदवोच—'मोग्गल्लान, मोग्गल्लान! मा, ब्राह्मण, आकिञ्चञ्ञायतन पमादो, आकिञ्चञ्ञायतने चित्तं सण्ठपेहि, [R.268] आकिञ्चञ्ञायतने चित्तं एकोदिं करोहि, आकिञ्चञ्ञायतने चित्तं समादहा' ति। सो ख्वाहं, आवुसो, अपरेन समयेन सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म नत्थि किञ्ची ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहासिं। यं हि तं, आवुसो, सम्मा वदमानो वदेय्य ...पे०...महाभिञ्ञतं पत्तो" ति॥ •

८. नेवसञ्ञानासञ्ञायतनपञ्हासुत्तं

८. "'नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं, नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं' ति वुच्चति। कतमं नु खो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं ति? तस्स मय्हं, आवुसो, एतदहोसि—'इध भिक्खु सब्बसो आकिञ्चञ्ञायतनं समतिक्कम्म नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति। इदं वुच्चति नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं' ति। सो ख्वाहं, आवुसो, सब्बसो आकिञ्चञ्ञायतनं

भिक्षुओ! विज्ञानानन्त्यायतन का सर्वथा समतिक्रमण कर 'कुछ भी नहीं है'—ऐसी भावना करते हुए आकिञ्चन्यायतन की साधना करनी चाहिये। यही 'आकिञ्चन्यायतन' कहलाता है"। यही सोच कर, आयुष्मानो! मैं विज्ञानानन्त्यायतन की साधना से आगे बढ़ता हुआ आकिञ्चन्यायतन की साधना में लग गया। उस समय, आयुष्मानो! इस साधना के बीच बीच में मुझ को विज्ञानानन्त्यायतन की संज्ञाओं का ध्यान आने लगा।

"तब, आयुष्मानो! भगवान् ने मेरे सम्मुख प्रकट हो कर यह निर्देश दिया—'बाहितपाप, मोग्गल्लान! इस साधना में प्रमाद न कर बैठना। इस (आकिञ्चन्यायतन) की साधना में ही अपने चित्त को स्थिर कर।' तब, आयुष्मानो! मैंने विज्ञानानन्त्यायतन की ओर से अपना चित्त सर्वथा हटा कर 'कुछ भी नहीं है'—इस आकार वाली 'आकिञ्चन्यायतन' की साधना में ध्यान लगाया। अतः ...पूर्ववत्...महाभिज्ञता को प्राप्त है—ऐसा कह सकता है॥" •

८. नैवसंज्ञानासंज्ञायतनप्रश्नसूत्र : : नैवसंज्ञानासंज्ञायतन क्या है?

८. ...पूर्ववत्...यह नैवसंज्ञानासंज्ञायतन क्या है? तब मुझ को यह ध्यान आया—

समतिक्कम्म नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरामि। तस्स मय्हं, आवुसो, इमिना विहारेन विहरतो आकिञ्चञ्ञायतनसहगता सञ्ञामनसिकारा समुदाचरन्ति।

''अथ खो मं, आवुसो, भगवा इद्धिया उपसङ्कमित्वा एतदवोच—'मोग्गल्लान, मोग्गल्लान! मा, ब्राह्मण, नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं पमादो, नेवसञ्ञानासञ्ञाय-[B.462] तने चित्तं सण्ठपेहि, नेवसञ्ञानासञ्ञायतने चित्तं एकोदिं करोहि, नेवसञ्ञानासञ्ञाय-तने चित्तं समादहा' ति। सो ख्वाहं, आवुसो, अपरेन समयेन सब्बसो आकिञ्चञ्ञायतनं समतिक्कम्म नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहासिं। यं हि तं, आवुसो, [N.240] सम्मा वदमानो वदेय्य...पे०...महाभिञ्ञतं पत्तो'' ति॥ ●

९. अनिमित्तपञ्हासुत्तं

९. '''अनिमित्तो चेतोसमाधि, अनिमित्तो चेतोसमाधी' ति वुच्चति। कतमो नु खो अनिमित्तो चेतोसमाधी ति? तस्स मय्हं, आवुसो, एतदहोसि—'इध भिक्खु सब्बनिमित्तानं अमनसिकारा अनिमित्तं चेतोसमाधिं उपसम्पज्ज विहरति। अयं [R.269] वुच्चति अनिमित्तो चेतोसमाधी' ति। सो ख्वाहं, आवुसो, सब्बनिमित्तानं अमनसिकारा अनिमित्तं चेतोसमाधिं उपसम्पज्ज विहरामि। तस्स मय्हं, आवुसो, इमिना विहारेन विहरतो निमित्तानुसारि विञ्ञाणं होति।

''अथ खो मं, आवुसो, भगवा इद्धिया उपसङ्कमित्वा एतदवोच—'मोग्गल्लान, मोग्गल्लान! मा, ब्राह्मण, अनिमित्तं चेतोसमाधिं पमादो, अनिमित्ते चेतोसमाधिस्मिं चित्तं सण्ठपेहि, अनिमित्ते चेतोसमाधिस्मिं चित्तं एकोदिं करोहि, अनिमित्ते चेतोसमाधिस्मिं चित्तं समादहा' ति। सो ख्वाहं, आवुसो, अपरेन समयेन सब्बनिमित्तानं अमनसिकारा अनिमित्तं चेतोसमाधिं उपसम्पज्ज विहासिं। यं हि तं, आवुसो, सम्मा वदमानो वदेय्य—

...आकिञ्चन्यायतन से सर्वथा ध्यान हटा कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन की साधना करने लगा। तब इस साधना के बीच में मुझ को आकिञ्चन्यायतन की संज्ञाओं का ध्यान आने लगा।

''तब, आयुष्मानो! भगवान् ने...पूर्ववत्...ऐसा कह सकता है॥'' ●

९. अनिमित्तप्रश्नसूत्र : : यह अनिमित्त चित्तसमाधि क्या है?

९. ...पूर्ववत्...यह अनिमित्त चित्तसमाधि क्या है? तब, आयुष्मानो! मुझ को यह ध्यान आया—''यहाँ, भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु सभी निमित्तों से अपने चित्त को दूर हटा कर, अनिमित्त चित्तसमाधि का ध्यान करता है। इसी को 'अनिमित्त चेत:समाधि' कहते हैं। आयुष्मानो! तब मैं सभी निमित्तों से अपने चित्त को दूर हटा कर, अनिमित्त चित्तसमाधि की भावना करने लगा। परन्तु उस साधना के बीच में मुझ को निमित्त संज्ञाओं का ध्यान आने लगा।

'सत्थारानुग्गहितो सावको महाभिञ्ञतं पत्तो' ति, ममं तं सम्मा वदमानो वदेय्य— 'सत्थारानुग्गहितो सावको महाभिञ्ञतं पत्तो'" ति॥

१०. सक्कसुत्तं

१०. अथ खो आयस्मा महामोग्गल्लानो—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य; एवमेव—जेतवने अन्तरहितो देवेसु तावतिंसेसु पातुरहोसि। अथ खो सक्को देवानमिन्दो [B.463;R.270] पञ्चहि देवतासतेहि सद्धिं येनायस्मा महामोग्गल्लानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो सक्कं देवानमिन्दं आयस्मा महामोग्गल्लानो एतदवोच—

"साधु खो, देवानमिन्द, बुद्धसरणगमनं होति। बुद्धसरणगमनहेतु खो, [N.241] देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। साधु खो, देवानमिन्द, धम्मसरणगमनं होति। धम्मसरणगमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। साधु खो, देवानमिन्द, सङ्घसरणगमनं होति। सङ्घसरणगमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ती" ति।

"साधु खो, मारिस, बुद्धसरणगमनं होति। बुद्धसरणगमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति।

"तब भगवान् ने मेरे सम्मुख प्रकट हो कर यह निर्देश दिया...पूर्ववत्...। ...मेरे लिये ही कह सकता है"॥

१०. शक्रसूत्र : : रत्नत्रय में दृढ़ श्रद्धा से सुगति

१०. ...तब आयुष्मान् महामोग्गल्लान, जैसे कोई बलवान् पुरुष संकुचित बाहु को पसार लेता है या पसारी हुई बाहु को संकुचित कर लेता है वैसे ही जेतवन में अन्तर्हित हो कर त्रायस्त्रिंश देवलोक में प्रकट हुए। तब वहाँ देवराज शक्र पाँच सौ देवताओं के साथ आयुष्मान् महामोग्गल्लान के पास आये। आ कर, उन्हें प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े हुए देवराज से उन्होंने यों कहा—

"देवेन्द्र! बुद्ध की शरण में जाना सभी प्राणियों के लिये हितकर होता है। इस तरह बुद्ध की शरण में गये हुए कुछ प्राणी, इस देहपात के बाद, मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्ग लोग में उत्पन्न होते हैं। इसी तरह, देवेन्द्र! धर्म की शरण में जाना भी...पूर्ववत्...सङ्घ की शरण में जाना ...पूर्ववत्...स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं।"

(देवराज—) "हाँ, मार्ष! बुद्ध की शरण में जाना... धर्म की शरण में जाना...सङ्घ

साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, धम्मसरणगमनं होति। धम्मसरणगमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, सङ्घ...पे०...सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ती'' ति।

अथ खो सक्को देवानमिन्दो छहि देवतासतेहि सद्धिं...पे०...अथ खो सक्को देवानमिन्दो सत्तहि देवतासतेहि सद्धिं...पे०...। अथ खो सक्को देवानमिन्दो अट्ठहि देवतासतेहि सद्धिं...पे०...। अथ खो सक्को देवानमिन्दो असीतिया देवतासहस्सेहि सद्धिं येनायस्मा महामोग्गल्लानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो सक्कं देवानमिन्दं आयस्मा [R.271] महामोग्गल्लानो एतदवोच—

''साधु खो, देवानमिन्द, बुद्धसरणगमनं होति। बुद्धसरणगमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। साधु खो, देवानमिन्द, धम्मसरणगमनं होति। धम्मसरणगमनहेतु खो, [B.464] देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। साधु खो, देवानमिन्द, सङ्घसरणगमनं होति। सङ्घसरणगमनहेतु खो, देवानमिनन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ती'' ति।

''साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, बुद्धसरणगमनं होति। बुद्धसरणगमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, धम्मसरणगमनं होति...पे०...साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, सङ्घसरणगमनं होति। सङ्घसरणगमनहेतु खो, मारिस [N.242] मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ती'' ति।

की शरण में जाना, सभी प्राणियों के लिये हितकर होता है। ...पूर्ववत्...स्वर्ग लोक में उत्पन्न होते हैं॥''

तब भी देवेन्द्र शक्र छह सौ देवताओं के साथ...पूर्ववत्...।

सात सौ देवताओं के साथ...।

आठ सौ देवताओं के साथ...।

अस्सी हजार देवताओं के साथ आयुष्मान् महामोग्गल्लान के पास आये, उन्हें प्रणाम कर एक ओर खड़े हुए, उन को आयुष्मान् महामोग्गल्लान ने यह कहा—

''देवेन्द्र! बुद्ध की शरण में जाना सभी के लिये शुभ होता है। ...धर्म की...सङ्घ की शरण में जाना...पूर्ववत्...स्वर्ग लोक में उत्पन्न होते हैं।

अथ खो सक्को देवानमिन्दो पञ्चहि देवतासतेहि सद्धिं येनायस्मा महामोग्गल्लानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो सक्कं देवानमिन्दं आयस्मा महामोग्गल्लानो एतदवोच--

''साधु खो, देवानमिन्द, बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति--'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति।

''साधु खो, देवानमिन्द, धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति--'स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो [R.272] विञ्ञूही' ति। धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति।

[B.465] ''साधु खो, देवानमिन्द, सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति--'सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, उजुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, ञायप्पटिपन्नो भगवतो

''हाँ, मार्ष! बुद्ध की शरण में...धर्म की शरण में...सङ्घ की शरण में जाना...स्वर्ग लोक में उत्पन्न होते हैं॥

तब देवेन्द्र शक्र पाँच सौ देवताओं के साथ आयुष्मान् महामोग्गल्लान के पास आये...आयुष्मान् महामोग्गल्लान ने यह कहा--

''देवेन्द्र शक्र! भगवान् बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ श्रद्धा रखना सभी प्राणियों के लिये मङ्गलमय होता है--'ऐसे वे भगवान् अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध, विद्याचरणसम्पन्न, सुगतिप्राप्त, लोकविद्, अद्वितीय, पुरुषों का अनुशासन करने में कुशल सारथि के समान, देवता एवं मनुष्यों के शास्ता (गुरु) बुद्ध भगवान्'।

''देवेन्द्र! इसी प्रकार धर्म में यों दृढ श्रद्धा रखना भी सभी के लिये मङ्गलमय होता है--'भगवान् ने इस धर्म का व्याख्यान बहुत अच्छी तरह किया है, जिस का फल साधना करने पर इसी जन्म में मिल सकता है, जो अविलम्ब सफल होने की सामर्थ्य रखता है, जो साधक को निर्वाण की ओर प्रवृत्त कराने वाला होता है। जिस का परिणाम लोगों को प्रत्यक्ष दिखाया जा सकता है, जिस को बुद्धिमान् साधक साधना द्वारा अपने ही अन्दर जान सकते हैं।' देवेन्द्र! धर्म में ऐसी दृढ श्रद्धा रखने से कितने ही साधक देहपात के बाद, मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं।

''देवेन्द्र! इसी प्रकार सङ्घ में दृढ श्रद्धा रखना भी सभी के लिये हितकर होता है--'भगवान् का श्रावकसङ्घ सन्मार्गारूढ है, सरलमार्गारूढ है, ज्ञानमार्गारूढ है, कुशलमार्गारूढ

सावकसङ्घो, सामीचिप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, यदिदं चत्तारि पुरिसयुगानि अट्ठ पुरिसपुग्गला एस भगवतो सावकसङ्घो आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा' ति। सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति।

"साधु खो, देवानमिन्द, अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागमनं होति अखण्डेहि अच्छिद्देहि असबलेहि अकम्मासेहि भुजिस्सेहि विञ्ञुप्पसत्थेहि अपरामट्ठेहि समाधिसंवत्तनिकेहि। अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ती" ति। [N.243]

"साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति—'इति पि सो...पे०...सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति।

"साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति—'स्वाक्खातो भगवता धम्मो...पे०...पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही' ति। धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति।

है। जिस में पुरुषों के चार युगल अर्थात् आठ पुरुष हैं। यही भगवान् का श्रावकसङ्घ है। यह आह्वान करने योग्य है, अतिशय सत्कार के योग्य है, दान-दक्षिणा देने योग्य है, शिर से प्रणाम करने योग्य है, हाथ जोड़ने योग्य है, ये संसार के अलौकिक पुण्यक्षेत्र हैं'। देवेन्द्र! सङ्घ में इस प्रकार दृढ श्रद्धा रखने से कितने ही लोग मरणानन्तर स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं।

"देवेन्द्र! आर्यजनों को प्रिय शीलों (सदाचारों) में दृढ श्रद्धा रखना भी प्राणियों के लिये हितकर है। जो कि अखण्ड, छिद्ररहित, शुद्ध, निर्मल, निष्कल्मष, आचरणयोग्य, पण्डितजनों द्वारा प्रशंसनीय, अनिन्दित एवं समाधि (साधना) को पूर्णता तक पहुँचाने वाला है। देवेन्द्र! इस श्रेष्ठ शील से युक्त होने के कारण कितने ही लोग मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्ग लोग को प्राप्त होते हैं।"

"हाँ, मार्ष मोग्गल्लान! बुद्ध भगवान् में दृढ श्रद्धा रखना...उन के द्वारा व्याख्यात धर्म में दृढ श्रद्धा रखना...उन के द्वारा अनुशासित सङ्घ में दृढ श्रद्धा रखना...उन के द्वारा प्रतिपादित शील में श्रद्धा रखना...स्वर्ग लोक में उत्पन्न होते हैं॥"

"साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति— 'सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो...पे०...अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा' ति। सङ्घे [R.273] अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति।

"साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागमनं होति अखण्डेहि...पे०...समाधिसंवत्तनिकेहि। अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ती" ति॥

अथ खो सक्को देवानमिन्दो छहि देवतासतेहि सद्धिं...पे०...अथ खो सक्को [B.466] देवानमिन्दो सत्तहि देवतासतेहि सद्धिं...पे०...अथ खो सक्को देवानमिन्दो अट्ठहि देवतासतेहि सद्धिं...पे०...अथ खो सक्को देवानमिन्दो असीतिया देवतासहस्सेहि सद्धिं येनायस्मा महामोग्गल्लानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो सक्कं देवानमिन्दं आयस्मा महामोग्गल्लानो एतदवोच—

"साधु खो, देवानमिन्द, बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति—'इति पि सो भगवा...पे०...सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगति सग्गं लोकं उपपज्जन्ति।

[N.244] "साधु खो, देवानमिन्द, धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति— 'स्वाक्खातो भगवता धम्मो...पे०...पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही' ति। धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति।

"साधु खो, देवानमिन्द, सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति—'सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो...पे०...अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा' ति। सङ्घे अवेच्चप्पसादेन [R.274] समन्नागमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति।

तब देवेन्द्र शक्र छह सौ देवताओं के साथ...पूर्ववत्...सात सौ देवताओं के साथ ...पूर्ववत्... आठ सौ देवताओं के साथ...पूर्ववत्...अस्सी हजार देवताओं के साथ ...पूर्ववत्...।

"साधु खो, देवानमिन्द, अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागमनं होति अखण्डेहि ...पे०... समाधिसंवत्तनिकेहि। अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ती" ति।

"साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति—'इति पि सो भगवा...पे०...सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति।

"साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं [B.467] होति—'स्वाक्खातो भगवता धम्मो...पे०...पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही' ति। धम्मे अवेच्चप्प-सादेन समन्नागमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति।

"साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति—'सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो...पे०...अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा' ति। सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति।

"साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागमनं होति अखण्डेहि...पे०...समाधिसंवत्तनिकेहि। अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ती" ति।

अथ खो सक्को देवानमिन्दो पञ्चहि देवतासतेहि सद्धिं येनायस्मा महा-[N.245] मोग्गल्लानो तेनुपसङ्कमि...पे०...एकमन्तं ठितं खो सक्कं देवानमिन्दं आयस्मा महामोग्गल्लानो एतदवोच—

"साधु खो, देवानमिन्द, बुद्धसरणगमनं होति। बुद्धसरणगमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं [R.275] उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना, दिब्बेन

तब देवेन्द्र शक्र पाँच सौ देवताओं के साथ आयुष्मान् महामोग्गल्लान के पास आये...उन से आयुष्मान् महामोग्गल्लान यों बोले—

"देवेन्द्र! भगवान् बुद्ध में दृढतापूर्वक श्रद्धा रखते हुए उन की शरण में जाना प्राणियों के लिये इतना हितावह होता है कि जब वे मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में

वण्णेन, दिब्बेन सुखेन, दिब्बेन यसेन, दिब्बेन आधिपतेय्येन, दिब्बेहि रूपेहि, दिब्बेहि सद्देहि, दिब्बेहि गन्धेहि, दिब्बेहि रसेहि, दिब्बेहि फोट्ठब्बेहि।

"साधु खो, देवानमिन्द, धम्मसरणगमनं होति। धम्मसरणगमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना, दिब्बेन वण्णेन, दिब्बेन सुखेन, दिब्बेन यसेन, दिब्बेन आधिपतेय्येन, दिब्बेहि रूपेहि, दिब्बेहि सद्देहि, दिब्बेहि गन्धेहि, दिब्बेहि रसेहि, दिब्बेहि फोट्ठब्बेहि।

"साधु खो, देवानमिन्द, सङ्घसरणगमनं होति। सङ्घसरणगमनहेतु खो, [B.468] देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना, दिब्बेन वण्णेन, दिब्बेन सुखेन, दिब्बेन यसेन, दिब्बेन आधिपतेय्येन, दिब्बेहि रूपेहि, दिब्बेहि सद्देहि, दिब्बेहि गन्धेहि, दिब्बेहि रसेहि, दिब्बेहि फोट्ठब्बेही" ति।

"साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, बुद्धसरणगमनं होति। बुद्धसरणगमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं

पहुँचते हैं तो वे देवरूप धारण कर, अन्य देवताओं की अपेक्षा दश बातों में अधिक उत्कर्ष प्राप्त करते हैं—१. दिव्य आयु, २. दिव्य वर्ण, ३. दिव्य सुख, ४. दिव्य यश, ५. दिव्य आधिपत्य (स्वामित्व); ६. दिव्य रूप, ७. दिव्य शब्द, ८. दिव्य गन्ध, ९. दिव्य रस एवं १०. दिव्य स्प्रष्टव्य विषय।

"इसी प्रकार, देवेन्द्र! भगवान् बुद्ध द्वारा अनुमोदित धर्म में दृढतापूर्वक श्रद्धा रखते हुए उस की शरण में जाना प्राणियों के लिये इतना हितावह होता है कि जब वे मरणानन्तर...पूर्ववत्...दिव्य स्प्रष्टव्य विषय।

"इसी प्रकार, देवेन्द्र! भगवान् बुद्ध के श्रावकसङ्घ में दृढतापूर्वक श्रद्धा रखते हुए उस की शरण में जाना प्राणियों के लिये...पूर्ववत्...स्प्रष्टव्य विषय"॥

"हाँ, मार्ष मोग्गल्लान! भगवान् बुद्ध में...उन के द्वारा अनुमोदित धर्म में...उन के श्रावकसङ्घ में दृढतापूर्वक श्रद्धा रखते हुए उन की शरण में जाना प्राणियों के लिये इतना हितावह होता है कि जब वे मरणानन्तर...स्प्रष्टव्य विषय"।

तब देवेन्द्र शक्र छह सौ देवताओं के साथ...सात सौ देवताओं के साथ...आठ सौ देवताओं के साथ...अस्सी हजार देवताओं के साथ आयुष्मान् महामोग्गल्लान के पास गये। जाकर ...पूर्ववत्...दिव्य स्प्रष्टव्य विषय। (३)

(इसी तरह आगे भी १. बुद्ध-धर्म-सङ्घ के प्रति शरण गमन एवं २. बुद्ध-धर्म-सङ्घ में दृढ श्रद्धा के पाठ का विस्तार पूर्ववत् कर लें।)॥

उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना...पे०...दिब्बेहि फोट्ठब्बेहि।

"साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, धम्मसरणगमनं होति...पे०...।

"साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, सङ्घसरणगमनं होति। सङ्घसरणगमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना, दिब्बेन वण्णेन, दिब्बेन सुखेन, दिब्बेन यसेन, दिब्बेन आधिपतेय्येन, दिब्बेहि रूपेहि, [N.246] दिब्बेहि सद्देहि, दिब्बेहि गन्धेहि, दिब्बेहि रसेहि, दिब्बेहि फोट्ठब्बेही" ति।

अथ खो सक्को देवानमिन्दो छहि देवतासतेहि सद्धिं...पे०...अथ खो सक्को देवानमिन्दो सत्तहि देवतासतेहि सद्धिं...पे०...अथ खो सक्को देवानमिन्दो अट्ठहि देवतासतेहि सद्धिं ...पे०...अथ खो सक्को देवानमिन्दो असीतिया देवतासतेहि [R.276] सद्धिं येनायस्मा महामोग्गल्लानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो सक्कं देवानमिन्दं आयस्मा महामोग्गल्लानो एतदवोच—

"साधु खो, देवानमिन्द, बुद्धसरणगमनं होति। बुद्धसरणगमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना...पे०...दिब्बेहि फोट्ठब्बेहि।

"साधु खो, देवानमिन्द, धम्मसरणगमनं होति...पे०...।

"साधु खो, देवानमिन्द, सङ्घसरणगमनं होति। सङ्घसरणगमनहेतु खो, [B.469] देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना, दिब्बेन वण्णेन, दिब्बेन सुखेन, दिब्बेन यसेन, दिब्बेन आधिपतेय्येन, दिब्बेहि रूपेहि, दिब्बेहि सद्देहि, दिब्बेहि गन्धेहि, दिब्बेहि रसेहि, दिब्बेहि फोट्ठब्बेही" ति।

"साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, बुद्धसरणगमनं होति...पे०..साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, धम्मसरणगमनं होति...पे०...साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, सङ्घसरणगमनं होति। सङ्घसरणगमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना, दिब्बेन वण्णेन, दिब्बेन सुखेन, दिब्बेन यसेन, दिब्बेन आधिपतेय्येन, दिब्बेहि रूपेहि, दिब्बेहि सद्देहि, दिब्बेहि गन्धेहि, दिब्बेहि रसेहि, दिब्बेहि फोट्ठब्बेही" ति।

[N.247] अथ खो सक्को देवानमिन्दो पञ्चहि देवतासतेहि सद्धिं येनायस्मा महामोग्गल्लानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। [R.277] एकमन्तं ठितं खो सक्कं देवानमिन्दं आयस्मा महामोग्गल्लानो एतदवोच—

''साधु खो, देवानमिन्द, बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति—'इति पि सो भगवा...पे०...सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमन-हेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना...पे०...दिब्बेहि फोट्ठब्बेहि।

''साधु खो, देवानमिन्द, धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति—'स्वाक्खातो भगवता धम्मो...पे०...पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही' ति। धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्ना-गमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति...पे०...।

''साधु खो, देवानमिन्द, सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति—'सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो...पे०...लोकस्सा' ति। सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनहेतु खो, [B.470] देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति...पे०...।

''साधु खो, देवानमिन्द, अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागमनं होति अखण्डेहि ...पे०...समाधिसंवत्तनिकेहि। अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना...पे०...दिब्बेहि फोट्ठब्बेही'' ति।

''साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति—'इति पि सो भगवा...पे०...सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना...पे०...दिब्बेहि फोट्ठब्बेहि।

[N.248] ''साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति—'स्वाक्खातो भगवता धम्मो...पे०...पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही' ति। धम्मे अवेच्चप्प-सादेन समन्नागमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना...पे०...दिब्बेहि फोट्ठब्बेहि।

''साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति— 'सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो...पे०...लोकस्सा' ति। सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं [R.278] मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति...पे०...।

''साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागमनं होति अखण्डेहि...पे०...समाधिसंवत्तनिकेहि। अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना...पे०...दिब्बेहि फोट्ठब्बेही'' ति।

अथ खो सक्को देवानमिन्दो छहि देवतासतेहि सद्धिं...पे०...अथ खो सक्को देवानमिन्दो सत्तहि देवतासतेहि सद्धिं...पे०...अथ खो सक्को देवानमिन्दो [B.471] अट्ठहि देवतासतेहि सद्धिं...पे०...अथ खो सक्को देवानमिन्दो असीतिया देवतासहस्सेहि सद्धिं येनायस्मा महामोग्गल्लानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो सक्कं देवानमिन्दं आयस्मा महामोग्गल्लानो एतदवोच—

''साधु खो, देवानमिन्द, बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिस-दम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना, दिब्बेन वण्णेन, दिब्बेन सुखेन, दिब्बेन यसेन, दिब्बेन आधिपतेय्येन, दिब्बेहि रूपेहि, दिब्बेहि सद्देहि, दिब्बेहि गन्धेहि, दिब्बेहि रसेहि, दिब्बेहि फोट्ठब्बेहि। [N.249]

''साधु खो, देवानमिन्द, धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति—'स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही' ति। धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनहेतु खो, देवानमिन्द, [R.279] एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना...पे०...दिब्बेहि फोट्ठब्बेहि।

''साधु खो, देवानमिन्द, सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति—'सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, उजुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, ञायप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, सामीचिप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, यदिदं चत्तारि पुरिसयुगानि अट्ठ

पुरिसपुग्गला एस भगवतो सावकसङ्घो आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलि-करणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा' ति। सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। [B.472] ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना...पे०...दिब्बेहि फोट्ठब्बेहि।

''साधु खो, देवानमिन्द, अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागमनं होति अखण्डेहि अच्छिद्देहि असबलेहि अकम्मासेहि भुजिस्सेहि विञ्ञुप्पसत्थेहि अपरामट्ठेहि समाधि-संवत्तनिकेहि। अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागमनहेतु खो, देवानमिन्द, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना, दिब्बेन वण्णेन, दिब्बेन सुखेन, दिब्बेन यसेन, दिब्बेन आधिपतेय्येन, दिब्बेहि रूपेहि, दिब्बेहि सद्देहि, दिब्बेहि गन्धेहि, दिब्बेहि रसेहि, दिब्बेहि फोट्ठब्बेही'' ति।

''साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति—'इति पि सो भगवा...पे०...सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा [N.250] सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना...पे०...दिब्बेहि फोट्ठब्बेहि।

''साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति—'स्वाक्खातो भगवता धम्मो...पे०...पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही' ति। धम्मे अवेच्चप्प-सादेन समन्नागमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं [R.280] मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना...पे०...दिब्बेहि फोट्ठब्बेहि।

''साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनं होति—'सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो...पे०...अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा' ति। सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागमनहेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना...पे०...दिब्बेहि फोट्ठब्बेहि।

''साधु खो, मारिस मोग्गल्लान, अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागमनं होति [B.473] अखण्डेहि ...पे०...समाधिसंवत्तनिकेहि। अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागमन-हेतु खो, मारिस मोग्गल्लान, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं

लोकं उपपज्जन्ति। ते अञ्ञे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हन्ति—दिब्बेन आयुना, दिब्बेन वण्णेन, दिब्बेन सुखेन, दिब्बेन यसेन, दिब्बेन आधिपतेय्येन, दिब्बेहि रूपेहि, दिब्बेहि सद्देहि, दिब्बेहि गन्धेहि, दिब्बेहि रसेहि, दिब्बेहि फोट्ठब्बेही'' ति॥ •

११. चन्दनसुत्तं

११. अथ खो चन्दनो देवपुत्तो...पे०...॥ •

१२. अथ खो **सुयामो** देवपुत्तो...पे०...॥ •

१३. अथ खो **सन्तुसितो** देवपुत्तो...पे०...॥ •

[N.251] १४. अथ खो **सुनिम्मितो** देवपुत्तो...पे०...॥ •

१५. अथ खो **वसवत्ति** देवपुत्तो...पे०...॥ •

(यथा सक्कसुत्तं तथा इमे पञ्च पेय्याला वित्थारेतब्बा।)

मोग्गल्लानसंयुत्तं समत्तं॥

तस्सुद्दानं

सवितक्कावितक्कं च, सुखेन च उपेक्खको। [R.281]
आकासञ्चेव विञ्ञाणं, आकिञ्चं नेवसञ्ञिना।
अनिमित्तो च सक्को च, चन्दनेकादसेन चा ति॥ •

---

११. चन्दनसूत्र : :रत्नत्रय में दृढ श्रद्धा से मनुष्य की सुगति

११. तब चन्दन देवपुत्र...पूर्ववत्...॥

१२. तब सुयाम देवपुत्र...पूर्ववत्...॥

१३. तब सन्तुष्ट देवपुत्र...पूर्ववत्...॥

१४. तब सुनिर्मित देवपुत्र...पूर्ववत्...॥

१५. तब वशवर्ति देवपुत्र...पूर्ववत्...॥ •

(शक्रसूत्र के समान ही इन सूत्रों का भी विस्तार कर लें।)

मोग्गल्लानसंयुक्त समाप्त॥

इस मोग्गल्लानसंयुक्त में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. प्रथमध्यानप्रश्नसूत्र, २. द्वितीयध्यानप्रश्नसूत्र, ३. तृतीयध्यानप्रश्नसूत्र, ४. चतुर्थ ध्यानप्रश्नसूत्र, ५.आकाशा-नन्त्यायतनप्रश्नसूत्र, ६. विज्ञानानन्त्यायतनप्रश्नसूत्र, ७. आकिञ्चन्यायतनप्रश्नसूत्र, ८. नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनप्रश्नसूत्र, ९. अनिमित्तप्रश्नसूत्र, १०. शक्रसूत्र एवं ११. चन्दनसूत्र॥ •

४१. चित्तसंयुत्तं

१. संयोजनसुत्तं

१. एकं समयं सम्बहुला थेरा भिक्खू मच्छिकासण्डे विहरन्ति अम्बाटकवने। तेन [N.252, B.474] खो पन समयेन सम्बहुलानं थेरानं भिक्खूनं पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तानं मण्डलमाले सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयमन्तराकथा उदपादि—"'संयोजनं' ति वा, आवुसो, 'संयोजनिया धम्मा' ति वा इमे धम्मा नानत्था नानाब्यञ्जना उदाहु एकत्था ब्यञ्जनमेव नानं" ति? तत्रेकच्चेहि थेरेहि भिक्खूहि एवं ब्याकतं होति—"'संयोजनं' ति वा, आवुसो, 'संयोजनिया धम्मा' ति वा इमे धम्मा नानत्था चेव नानाब्यञ्जना चा" ति। एकच्चेहि थेरेहि भिक्खूहि एवं ब्याकतं होति—"'संयोजनं' ति वा, आवुसो, 'संयोजनिया धम्मा' ति वा इमे धम्मा एकत्था ब्यञ्जनमेव नानं" ति।

तेनं खो पन समयेन चित्तो गहपति मिगपथकं अनुप्पत्तो होति केनचिदेव करणीयेन। अस्सोसि खो चित्तो गहपति सम्बहुलानं किर थेरानं भिक्खूनं पच्छाभत्तं [R.282] पिण्डपातपटिक्कन्तानं मण्डलमाले सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयमन्तराकथा उदपादि...इमे धम्मा एकत्था ब्यञ्जनमेव नानं ति। अथ खो चित्तो गहपति येन थेरा भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा थेरे भिक्खू अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं

---

४१. चित्तसंयुत्त

१. संयोजनसूत्र : : **छन्दराग ही बन्धन है**

१. एक समय बहुत से भिक्षु **मत्स्यिकाषण्ड** के आम्रातकवन में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उस समय उन में से कुछ भिक्षु भिक्षाचर्या के बाद भोजनकर्म से निवृत्त हो कर एक स्थान पर बैठे हुए यह चर्चा करने लगे—"'संयोजन' या 'संयोजनीय धर्म' ये भिन्न अर्थ वाले तथा भिन्न नाम वाले हैं या इन का नाम ही भिन्न है परन्तु ये एक ही अर्थ बताने वाले हैं?" तब उन में से कुछ भिक्षुओं ने यह कहा—"आयुष्मानो! ये 'संयोजन' एवं 'संयोजनीय धर्म' भिन्न अर्थ एवं भिन्न नाम वाले हैं।" तथा कुछ भिक्षुओं का मत यह था—"इन का नाम ही भिन्न है, परन्तु अर्थ एक ही है।"

उस समय चित्त नामक गृहपति अपने मृगपथक ग्राम से किसी कार्यविशेष से वहाँ आया हुआ था। उस चित्त गृहपति ने भी उन भिक्षुओं का यह संवाद सुना तो वह भी उत्सुकतावश उन भिक्षुओं को प्रणाम कर वहाँ आ बैठा तथा यों बोला—"भोजन के

निसिन्नो खो चित्तो गहपति थेरे भिक्खू एतदवोच—"सुतं मेतं, भन्ते, सम्बहुलानं किर थेरानं भिक्खूनं पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तानं मण्डलमाले सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयमन्तराकथा उदपादि...इमे धम्मा एकत्था, ब्यञ्जनमेव नानं" ति। [B.475]

"एवं, गहपती" ति।

"'संयोजनं' ति, भन्ते, 'संयोजनिया धम्मा' ति वा इमे धम्मा नानत्था चेव नानाब्यञ्जना च। तेन हि, भन्ते, उपमं वो करिस्सामि। उपमायपिधेकच्चे विञ्ञू पुरिसा भासितस्स अत्थं आजानन्ति। सेय्यथापि, भन्ते, कालो च बलीबद्दो ओदातो च बलीबद्दो एकेन दामेन वा योत्तेन वा संयुत्ता अस्सु। यो नु खो एवं वदेय्य—'काळो [N.253] बलीबद्दो ओदातस्स बलीबद्दस्स संयोजनं, ओदातो बलीबद्दो काळस्स बलीबद्दस्स संयोजनं' ति, सम्मा नु खो सो वदमानो वदेय्या" ति? [R.283]

"नो हेतं, गहपति! न खो, गहपति, काळो बलीबद्दो ओदातस्स बलीबद्दस्स संयोजनं, न पि ओदातो बलीबद्दो काळस्स बलीबद्दस्स संयोजनं; येन खो ते एकेन दामेन वा योत्तेन वा संयुत्ता तं तत्थ संयोजनं" ति।

"एवमेव खो, भन्ते, न चक्खु रूपानं संयोजनं, न रूपा चक्खुस्स संयोजनं; यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं। न सोतं सद्दानं...न घानं गन्धानं...न जिव्हा रसानं...न कायो फोट्ठब्बानं संयोजनं, न फोट्ठब्बा कायस्स संयोजनं;

बाद, सभागृह में बैठे हुए आप लोगों में यह चर्चा हो रही है कि...पूर्ववत्...परन्तु अर्थ एक ही है?" तब उस चित्त गृहपति ने इस विषय पर अपना मत प्रकट करते हुए कहा—"भन्ते! मेरी समझ से 'संयोजन' एवं 'संयोजनीय धर्म'—ये दोनों शब्द भी पृथक् हैं तथा नाम भी पृथक् है। इस पर मैं आप को एक उपमा सुनाऊँगा; क्यों कि लोगों को उपमा (दृष्टान्त) द्वारा भी कभी कभी प्राकरणिक बात का अर्थ सरलता से समझ में आ जाता है। जैसे—दो बैल—एक काला तथा एक श्वेत—एक ही रस्सी तथा एक जूए से बाँध दिये जायँ तो क्या वहाँ कोई यह कहे कि काला बैल श्वेत बैल का बन्धन है, या श्वेत बैल काले बैल का बन्धन है, तो क्या उस का यह कथन उचित होगा?"

(भिक्षु—) "नहीं गृहपति! ऐसी बात नहीं है। वहाँ न काला बैल श्वेत बैल का बन्धन है, न श्वेत बैल ही काले बैल का बन्धन है। वे तो दोनों ही जिस रस्सी या जूए से बँधे हुए हैं, वास्तव में वह रस्सी तथा जूआ ही उन के बन्धन हैं।"

(चित्त—) "भन्ते! इसी तरह, न चक्षु रूपों का संयोजन है तथा न रूप ही चक्षु के संयोजन हैं। वहाँ उन दोनों की अपेक्षा करते हुए उत्पन्न छन्दराग ही बन्धन है। इसी तरह न श्रोत्र शब्दों का...घ्राण गन्धों का...न जिह्वा रसों का...न काय स्प्रष्टव्यों का बन्धन

यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं। न मनो धम्मानं संयोजनं, न धम्मा मनस्स संयोजनं; यं च तत्थ तदुभयं पटिच्च उप्पज्जति छन्दरागो तं तत्थ संयोजनं'' ति।

''लाभा ते, गहपति, सुलद्धं ते, गहपति, यस्स ते गम्भीरे बुद्धवचने पञ्ञाचक्खु कमती'' ति॥ •

२. पठमइसिदत्तसुत्तं

२. एकं समयं सम्बहुला थेरा भिक्खू मच्छिकासण्डे विहरन्ति अम्बाटकवने। अथ खो चित्तो गहपति येन थेरा भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा थेरे भिक्खू अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो चित्तो गहपति थेरे भिक्खू [B.476, R.284] एतदवोच—''अधिवासेन्तु मे, भन्ते, थेरा स्वातनाय भत्तं'' ति। अधिवासेसुं खो थेरा भिक्खू तुण्हीभावेन। अथ खो चित्तो गहपति थेरानं भिक्खूनं अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना थेरे भिक्खू अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो थेरा भिक्खू तस्सा रत्तिया अच्चयेन पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन चित्तस्स गहपतिस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदिंसु।

[N.254] अथ खो चित्तो गहपति येन थेरा भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा थेरे भिक्खू अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो चित्तो गहपति आयस्मन्तं थेरं

है.... न मन धर्मों का बन्धन है.... अपि तु वहाँ उन दोनों की अपेक्षा से उत्पन्न छन्दराग (आसक्ति) ही बन्धन है''।

(भिक्षु—) ''आप तो बहुत सौभाग्यशाली हैं! आप अत्यधिक भाग्यवान् हैं कि आप की विमल प्रज्ञा इन गम्भीर बुद्ध वचनों में इतने अन्तस्तल तक प्रविष्ट हो चुकी है।''

२. प्रथम ऋषिदत्तसूत्र : : धातु की विभिन्नता

२. एक समय बहुत से भिक्षु **मत्स्यिकाषण्ड** के आम्रातकवन में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब चित्त गृहपति उन भिक्षुओं के पास गया तथा उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठते हुए बोला—''भन्ते! आप लोग कल का भोजन मेरे यहाँ स्वीकार करें।'' भिक्षुओं ने मौन भाव से इसे स्वीकार किया। तब चित्त गृहपति भिक्षुओं की स्वीकृति जान कर उन्हें प्रणाम प्रदक्षिणा कर वहाँ से चला गया। उधर वे स्थविर भिक्षु भी रात्रि व्यतीत होने पर दूसरे दिन चित्त गृहपति के घर पर भिक्षाहेतु पहुँचे, तथा वहाँ प्रज्ञप्त आसनों पर बैठ गये।

तब चित्त गृहपति उन स्थविरों के पास आया तथा उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ

एतदवोच—"'धातुनानत्तं, धातुनानत्तं' ति, भन्ते थेर, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, धातुनानत्तं वुत्तं भगवता" ति? एवं वुत्ते आयस्मा थेरो तुण्ही अहोसि। दुतियं पि खो चित्तो गहपति आयस्मन्तं थेरं एतदवोच—"'धातुनानत्तं, धातुनानत्तं' ति, भन्ते थेर, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, धातुनानत्तं वुत्तं भगवता" ति? दुतियं पि खो थेरो तुण्ही अहोसि। ततियं पि खो चित्तो गहपति आयस्मन्तं थेरं एतदवोच—"'धातुनानत्तं, धातुनानत्तं' ति, भन्ते थेर, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, धातुनानत्तं वुत्तं भगवता" ति? ततियं पि खो आयस्मा थेरो तुण्ही अहोसि।

तेन खो पन समयेन आयस्मा इसिदत्तो तस्मिं भिक्खुसङ्घे सब्बनवको होति। अथ खो आयस्मा इसिदत्तो आयस्मन्तं थेरं एतदवोच—"ब्याकरोमहं, भन्ते थेर, चित्तस्स गहपतिनो एतं पञ्हं" ति?

"ब्याकरोहि त्वं, आवुसो इसिदत्त, चित्तस्स गहपतिनो एतं पञ्हं" ति।

"एवं हि त्वं, गहपति, पुच्छसि—'धातुनानत्तं, धातुनानत्तं ति, भन्ते थेर, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, धातुनानत्तं, वुत्तं भगवता''' ति? [R.285]

"एवं, भन्ते"।

"इदं खो, गहपति, धातुनानत्तं वुत्तं भगवता—चक्खुधातु, रूपधातु, चक्खुविञ्ञाणधातु...पे०...मनोधातु, धम्मधातु, मनोविञ्ञाणधातु। एत्तावता नु खो, गहपति, धातुनानत्तं वुत्तं भगवता" ति।

गया। एक ओर बैठे उसने स्थविरों से पूछा—"भन्ते! 'धातु नाना हैं, धातु नाना हैं'—ऐसा बहुत लोग कहते रहते हैं। भन्ते! भगवान् ने इस धातुनानात्व के विषय में क्या कहा है?" यह प्रश्न किये जाने पर वे स्थविर चुप ही रहे। अत: दूसरी बार...तीसरी बार भी उसने वही प्रश्न किया, फिर भी स्थविर ने कोई उत्तर न दिया। तब वहाँ उपस्थित आयुष्मान् ऋषिदत्त ने, जो कि उस सङ्घ में सब से नया भिक्षु था, स्थविर से पूछा—"भन्ते! यदि आप का आदेश हो तो मैं इस गृहपति के प्रश्न का उत्तर दूँ।"

"ठीक है, ऋषिदत्त! तुम इस गृहपति के प्रश्न का उत्तर दे सकते हो।"

(तब ऋषिदत्त भिक्षु बोले—) "गृहपति! तुम यही पूछ रहे हो न—'भन्ते! धातु नाना हैं...भगवान् ने इस विषय में क्या कहा है?'''

"हाँ, भन्ते!"

"गृहपति! भगवान् ने इस धातुनानात्व के विषय में यह कहा है—चक्षुधातु, रूपधातु, मनोविज्ञानधातु; ...पूर्ववत्...मनोधातु, धर्मधातु एवं मनोविज्ञानधातु—गृहपति! भगवान् ने यही धातुओं का विभाग बताया है"।

अथ खो चित्तो गहपति आयस्मतो इसिदत्तस्स भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा थेरे भिक्खू पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि। अथ खो थेरा भिक्खू भुत्ताविनो ओनीतपत्तपाणिनो उट्ठायासना पक्कमिंसु। अथ खो [B.477] आयस्मा थेरो आयस्मन्तं इसिदत्तं एतदवोच—"साधु खो तं, आवुसो इसिदत्त, एसो पञ्हो पटिभासि, नेसो पञ्हो मं पटिभासि। तेन हावुसो इसिदत्त, यदा अञ्ञथा पि एवरूपो पञ्हो आगच्छेय्य, तञ्ञेवेत्थ पटिभासेय्या" ति॥ •

३. दुतियइसिदत्तसुत्तं

[N.255] ३. एकं समयं सम्बहुला थेरा भिक्खू मच्छिकासण्डे विहरन्ति अम्बाटकवने। अथ खो चित्तो गहपति येन थेरा भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा थेरे भिक्खू अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो चित्तो गहपति थेरे भिक्खू एतदवोच—"अधिवासेन्तु मे, भन्ते थेरा, स्वातनाय भत्तं" ति। अधिवासेसुं खो थेरा भिक्खू तुण्हीभावेन। अथ खो चित्तो गहपति थेरानं भिक्खूनं अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना थेरे भिक्खू अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो थेरा भिक्खू तस्सा रत्तिया अच्चयेन पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन चित्तस्स गहपतिस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदिंसु।
[R.286] अथ खो चित्तो गहपति येन थेरा भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा थेरे भिक्खू अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो चित्तो गहपति आयस्मन्तं थेरं

तब उस चित्त गृहपति ने आयुष्मान् ऋषिदत्त के इस भाषण का अभिनन्दन एवं अनुमोदन किया तथा उन सभी स्थविर भिक्षुओं को अच्छा स्वादिष्ठ भोजन अपने हाथ से परोस कर सन्तृप्त एवं सन्तुष्ट किया। वे स्थविर भिक्षु भी भोजन करने के बाद पात्र से हाथ हटा कर आसन से उठ कर चल दिये।

तब आयुष्मान् महास्थविर आयुष्मान् ऋषिदत्त से यों बोले—"आयुष्मन् ऋषिदत्त! तुमने इस प्रश्न का बहुत उचित उत्तर दिया। हमें तो इस प्रश्न का उत्तर समझ में ही नहीं आ रहा था। अत: आयुष्मन् ऋषिदत्त! आगे भी कभी ऐसा अवसर उपस्थित हो तो तुम ही उत्तर दिया करो॥" •

३. द्वितीय ऋषिदत्तसूत्र : : मिथ्यादृष्टियाँ सत्काय से उत्पन्न

३. एक समय बहुत से भिक्षु **मत्स्यिकाषण्ड** के आम्रातकवन में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब चित्त गृहपति स्थविर भिक्षुओं के पास गया...पूर्ववत्...स्थविर भिक्षुओं ने मौन भाव से स्वीकार किया।

एतदवोच—"या इमा, भन्ते थेर, अनेकविहिता दिट्ठियो लोके उप्पज्जन्ति—'सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा, अन्तवा लोको ति वा, अनन्तवा लोको ति वा, तं जीवं तं सरीरं ति वा, अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा, होति तथागतो परं मरणा ति वा, न होति तथागतो परं मरणा ति वा, होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति वा, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति' वा, यानि चिमानि द्वासट्ठि दिट्ठिगतानि **ब्रह्मजाले** भणितानि; इमा नु खो, भन्ते, दिट्ठियो किस्मिं सति होन्ति, किस्मिं असति न होन्ती" ति?

एवं वुत्ते आयस्मा थेरो तुण्ही अहोसि। दुतियं पि खो चित्तो गहपति...पे०...ततियं पि खो चित्तो गहपति आयस्मन्तं थेरं एतदवोच—"या इमा, भन्ते थेर, अनेकविहिता दिट्ठियो लोके उप्पज्जन्ति...यानि चिमानि द्वासट्ठि दिट्ठिगतानि ब्रह्मजाले भणितानि; इमा नु खो, भन्ते, दिट्ठियो किस्मिं सति होन्ति, किस्मिं असति न होन्ती" ति? [B.478] ततियं पि खो आयस्मा थेरो तुण्ही अहोसि।

तेन खो पन समयेन आयस्मा इसिदत्तो तस्मिं भिक्खुसङ्घे सब्बनवको होति। अथ खो आयस्मा इसिदत्तो आयस्मन्तं थेरं एतदवोच—"ब्याकरोमहं, भन्ते थेर, चित्तस्स गहपतिनो एतं पञ्हं" ति?

"ब्याकरोहि त्वं, आवुसो इसिदत्त, चित्तस्स गहपतिनो एतं पञ्हं" ति।[N.256]

"एवं हि त्वं, गहपति, पुच्छसि—या इमा, भन्ते थेर, अनेकविहिता दिट्ठियो लोके उप्पज्जन्ति—सस्सतो लोको ति वा...पे०...इमा नु खो, भन्ते, दिट्ठियो [R.287] किस्मिं सति होन्ति, किस्मिं असति न होन्ती" ति?

"एवं, भन्ते"।

"या इमा, गहपति, अनेकविहिता दिट्ठियो लोके उप्पज्जन्ति—'सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा, अन्तवा लोको ति वा...यानि चिमानि द्वासट्ठि

...तब चित्त गृहपति ने स्थविर भिक्षु से यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते स्थविर! लोक में ये जो नाना प्रकार की दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं, जैसे—'यह लोक शाश्वत है' या 'यह लोक अशाश्वत है' ...पूर्ववत्...मरणानन्तर तथागत नहीं ही होते' या **दीघनिकाय** ग्रन्थ के **ब्रह्मजालसूत्र** में जिन बासठ (६२) दृष्टियों का वर्णन है, वे दृष्टियाँ किस के होने पर उत्पन्न होती हैं या किस के न होने पर नहीं होतीं?" परन्तु आयुष्मान् स्थविर इस प्रश्न के उत्तर में मौन ही रहे। दूसरी...तीसरी बार पूछने पर भी मौन ही रहे। तब आयुष्मान् ऋषिदत्त, जो कि उस उपस्थित भिक्षुसङ्घ में सब से नये थे, आयुष्मान् स्थविर से...पूर्ववत्...।

दिट्ठिगतानि **ब्रह्मजाले** (दी०नि० १,१) भणितानि; इमा खो, गहपति, दिट्ठियो सक्कायदिट्ठिया सति होन्ति, सक्कायदिट्ठिया असति न होन्ती'' ति।

''कथं पन, भन्ते, सक्कायदिट्ठि होती'' ति?

''इध, गहपति, अस्सुतवा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावी अरियधम्मस्स अकोविदो अरियधम्मे अविनीतो सप्पुरिसानं अदस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स अकोविदो सप्पुरिसधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, रूपवन्तं वा अत्तानं, अत्तनि वा रूपं, रूपस्मिं वा अत्तानं; वेदनं अत्ततो समनुपस्सति...पे०...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं अत्ततो [B.479] समनुपस्सति, विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं, अत्तनि वा विञ्ञाणं, विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। एवं खो, गहपति, सक्कायदिट्ठि होती'' ति।

''कथं पन, भन्ते, सक्कायदिट्ठि न होती'' ति?

''इध, गहपति, सुतवा अरियसावको अरियानं दस्सावी अरियधम्मस्स कोविदो अरियधम्मे सुविनीतो सप्पुरिसानं दस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स कोविदो सप्पुरिसधम्मे सुविनीतो न रूपं अत्ततो समनुपस्सति, न रूपवन्तं वा अत्तानं, न अत्तनि वा रूपं, न रूपस्मिं वा अत्तानं; न वेदनं...न सञ्ञं...न सङ्खारे...न विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, न विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं, न अत्तनि वा विञ्ञाणं, न विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। एवं खो, गहपति, सक्कायदिट्ठि न होती'' ति।

[R.288] ''कुतो, भन्ते, अय्यो इसिदत्तो आगच्छती'' ति?

''...गृहपति! ये सभी दृष्टियाँ, या **ब्रह्मजाल** में वर्णित ६२ दृष्टियाँ सत्कायदृष्टि के होने पर आविर्भूत होती हैं तथा उस के न होने पर नहीं होतीं।''

''भन्ते! यह सत्कायदृष्टि कैसे उद्भूत होती है?''

''गृहपति! यहाँ कोई अज्ञ, पृथग्जन आर्यों के विषय में, आर्यधर्म के विषय में न जानने वाला, आर्यधर्म में अप्रविष्ट...पूर्ववत्...रूप को अपने से जानता है या अपने को रूपवान् समझता है, या अपने में रूप को समझता है या रूप में अपने को समझता है; वेदना को...संज्ञा को...संस्कारों को...विज्ञान को अपने से उद्भूत समझता है...पूर्ववत्...यों यह सत्कायदृष्टि उद्भूत होती हैं।

''तथा, भन्ते! यह सत्कायदृष्टि कैसे उद्भूत नहीं होती?''

''यहाँ, गृहपति! कोई विद्वान् आर्यश्रावक...पूर्ववत्...आर्यधर्म का भलीभाँति अवगाहन करता हुआ न रूप को आत्मीय मानता है, न आत्मा को रूपवान्, न आत्मा में रूप, न रूप में आत्मा को देखता है। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान...। ...गृहपति! इस तरह सत्कायदृष्टि नहीं होती।''

"अवन्तिया खो, गहपति, आगच्छामी" ति।

"अत्थि, भन्ते, अवन्तिया इसिदत्तो नाम कुलपुत्तो अम्हाकं अदिट्ठसहायो पब्बजितो दिट्ठो सो आयस्मा" ति? [N.257]

"एवं, गहपती" ति।

"कहं नु खो सो, भन्ते, आयस्मा एतरहि विहरती" ति?

एवं वुत्ते, आयस्मा इसिदत्तो तुण्ही अहोसि।

"अय्यो नो, भन्ते, इसिदत्तो" ति?

"एवं, गहपती" ति।

"अभिरमतु, भन्ते, अय्यो इसिदत्तो मच्छिकासण्डे। रमणीयं अम्बाटकवनं। अहं अय्यस्स इसिदत्तस्स उस्सुक्कं करिस्सामि चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चय-भेसज्जपरिक्खारानं" ति।

"कल्याणं वुच्चति, गहपती" ति।

अथ खो चित्तो गहपति आयस्मतो इसिदत्तस्स भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा थेरे भिक्खू पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि।

"भन्ते! आप आर्य ऋषिदत्त कहाँ से आ रहे हैं?"

"गृहपति! मैं अवन्ती से आ रहा हूँ।"

"भन्ते! अवन्ती में ऋषिदत्त नामक कुलपुत्र हम लोगों का एक पुराना मित्र रहता था, वह आजकल बहुत समय से नहीं दिखायी दे रहा है, तथा जो आजकल प्रव्रजित हो गया है, क्या आपने उस को देखा है?"

"हाँ, गृहपति! देखा है।"

"वे आयुष्मान् आजकल साधनाहेतु कहाँ विराजमान हैं?"

यह प्रश्न सुन कर आयुष्मान् ऋषिदत्त मौन हो गये। तब गृहपति ने पूछा—"भन्ते! क्या आप ही आयुष्मान् ऋषिदत्त हैं?"

"हाँ, गृहपति!"

यह सुन कर प्रसन्नमन गृहपति ने कहा—"भन्ते आर्य ऋषिदत्त! आप सुखपूर्वक इस मत्स्यिकाषण्ड के इस आम्रातकवन में साधनाहेतु ठहरें। यह आम्रातकवन बहुत रमणीय है। मैं चीवर आदि से आप की सेवा करूँगा।"

"गृहपति! आप का वचन मङ्गलमय है।"

तब चित्त गृहपति ने आयुष्मान् ऋषिदत्त के कथन का अभिनन्दन, अनुमोदन कर उन सभी स्थविर भिक्षुओं को प्रणीत एवं स्वादिष्ठ भोजन अपने हाथ से सम्मानपूर्वक

अथ खो थेरा भिक्खू भुत्ताविनो ओनीतपत्तपाणिनो उट्ठायासना पक्कमिंसु। अथ खो आयस्मा थेरो आयस्मन्तं इसिदत्तं एतदवोच—"साधु खो तं, आवुसो इसिदत्त, एसो पञ्हो पटिभासि। नेसो पञ्हो मं पटिभासि। तेन हावुसो इसिदत्त, यदा अञ्ञथा पि एवरूपो पञ्हो आगच्छेय्य, तञ्ञेवेत्थ पटिभासेय्या" ति।

अथ खो आयस्मा इसिदत्तो सेनासनं संसामेत्वा पत्तचीवरमादाय मच्छिकासण्डम्हा पक्कामि। यं मच्छिकासण्डम्हा पक्कामि, तथा पक्कन्तो च अहोसि, न पुन पच्चागच्छी ति॥ ●

४. महकपाटिहारियसुत्तं

४. एकं समयं सम्बहुला थेरा भिक्खू मच्छिकासण्डे विहरन्ति अम्बाटकवने। [B.480] अथ खो चित्तो गहपति येन थेरा भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा थेरे भिक्खू [R.289] अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो चित्तो गहपति थेरे भिक्खू एतदवोच—"अधिवासेन्तु मे, भन्ते थेरा, स्वातनाय गोकुले भत्तं" ति। अधिवासेसुं खो थेरा भिक्खू तुण्हीभावेन। अथ खो चित्तो गहपति थेरानं भिक्खूनं अधिवासनं [N.258] विदित्वा उट्ठायासना थेरे भिक्खू अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो थेरा भिक्खू तस्सा रत्तिया अच्चयेन पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन चित्तस्स गहपतिनो गोकुलं तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदिंसु।

अथ खो चित्तो गहपति थेरे भिक्खू पणीतेन सप्पिपायासेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि। अथ खो थेरा भिक्खू भुत्ताविनो ओनीतपत्तपाणिनो उट्ठायासना पक्कमिंसु।

परोस कर खिलाया। फिर वे स्थविर भिक्षु भोजन करने के बाद आसन से उठ कर विहार में चले आये।

तब आयुष्मान् स्थविर ने आयुष्मान् ऋषिदत्त से कहा—"आयुष्मन् ऋषिदत्त! अच्छा हुआ कि तुमने गृहपति के उस प्रश्न का समाधान कर दिया। मुझे तो इस का कोई उत्तर सूझ ही नहीं रहा था। अच्छा हो, आयुष्मन्! कि आगे भी ऐसे प्रसङ्गों पर पूछे गये प्रश्नों का उत्तर तुम ही दिया करो।"

तब आयुष्मान् ऋषिदत्त अपना आसन समेट कर, पात्रचीवर ले कर, उस मत्स्यिकाषण्ड से ऐसे चले गये कि फिर कभी लौट कर वहाँ नहीं आये॥ ●

४. महकप्रातिहार्यसूत्र : : आयुष्मान् महक द्वारा ऋद्धिप्रदर्शन

४. एक समय कुछ स्थविर भिक्षु **मत्स्यिकाषण्ड** के आम्रातकवन में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। ...तब कभी चित्त गृहपति वहाँ आ कर प्रणाम कर भिक्षुओं से बोले—"अच्छा हो, भन्ते! कल मेरे गोकुल (गोशाला) में भोजन के लिये मेरा निमन्त्रण स्वीकार

चित्तो पि खो गहपति 'सेसकं विस्सज्जेथा' ति वत्वा थेरे भिक्खू पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धि। तेन खो पन समयेन उण्हं होति कुथितं; ते च थेरा भिक्खू पवेलियमानेन मञ्ञे कायेन गच्छन्ति, यथा तं भोजनं भुत्ताविनो।

तेन खो पन समयेन आयस्मा महको तस्मिं भिक्खुसङ्घे सब्बनवको होति। अथ खो आयस्मा महको आयस्मन्तं थेरं एतदवोच—"साधु ख्वस्स, भन्ते थेर, सीतको च वातो वायेय्य, अब्भसम्पिलापो च अस्स, देवो च एकमेकं फुसायेय्या" ति।

"साधु ख्वस्स, आवुसो महक, यं सीतको च वातो वायेय्य, अब्भसम्पिलापो च अस्स, देवो च एकमेकं फुसायेय्या" ति।

अथ खो आयस्मा महको तथारूपं इद्धाभिसङ्खारं अभिसङ्खरि यथा सीतको च वातो वायि, अब्भसम्पिलापो च अस्स, देवो च एकमेकं फुसि। अथ खो [R.290] चित्तस्स गहपतिनो एतदहोसि—"यो खो इमस्मिं भिक्खुसङ्घे सब्बनवको भिक्खु तस्सायं एवरूपो इद्धानुभावो" ति। अथ खो आयस्मा महको आरामं [B.481] सम्पापुणित्वा आयस्मन्तं थेरं एतदवोच—"अलमेत्तावता, भन्ते थेरा" ति?

"अलमेत्तावता, आवुसो महक! कतमेत्तावता, आवुसो महक! पूजितमेत्तावता, आवुसो महको" ति। अथ खो थेरा भिक्खू यथाविहारं अगमंसु। आयस्मा पि महको सकं विहारं अगमासि।

कर लें।...पूर्ववत्...जब वे स्थविर भिक्षु यथेच्छ भोजन कर आसन से उठ कर चलने लगे तो चित्त गृहपति भी अपने कर्मचारियों को यह आदेश देकर कि शेष भोजनसामग्री का उचित वितरण कर दो तथा भिक्षुओं के पीछे पीछे हो लिया। उस समय बहुत जलती हुई गर्मी पड़ रही थी। वे स्थविर भिक्षु भी भोजन करने के बाद कष्टपूर्वक ही विहार की ओर आ रहे थे। तब आयुष्मान् महक, जो उस स्थविरभिक्षुसङ्घ में सब से नये थे, स्थविर से बोले—"अच्छा होता, भन्ते! इस समय ठंढी हवा चलती, मेघ छा जाते, कुछ ठंढी फुहारें पड़तीं।" स्थविर बोले—"हाँ, आयुष्मन्! यह तो बहुत अच्छा होता।"

तब आयुष्मान् महक नें ऐसा ऋद्ध्यभिसंस्कार (अलौकिक शक्ति का चमत्कार) किया कि उसी समय ठंढी हवा चलने लगी, मेघ छा गये तथा फुहारें पड़ने लगीं। तब चित्त गृहपति ने, यह घटना देख कर, सोचा—'अवश्य यह विशिष्ट चमत्कार (आनुभाव) इस सङ्घ में सबसे छोटे स्थविर आयुष्मान् महक का ही है।' तब आयुष्मान् महक ने विहार में पहुँच कर आयुष्मान् स्थविर से पूछा—"भन्ते! क्या इतने से कार्य चल जायगा?" स्थविर बोले—"हाँ, आयुष्मन्! बस करो। इतने से ही कार्य चल जायगा।" तब अन्य स्थविर भिक्षुओं के साथ आयुष्मान् महक भी विहार में अपने आसन पर चले गये।

अथ खो चित्तो गहपति येनायस्मा महको तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महकं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो चित्तो गहपति आयस्मन्तं महकं एतदवोच–"साधु मे, भन्ते, अय्यो महको उत्तरिमनुस्सधम्मं इद्धिपाटिहारियं दस्सेतू" ति।

[N.259] "तेन हि त्वं, गहपति, आलिन्दे उत्तरासङ्गं पञ्ञापेत्वा तिणकलापं ओकासेही" ति। "एवं, भन्ते" ति खो चित्तो गहपति आयस्मतो महकस्स पटिस्सुत्वा आलिन्दे उत्तरासङ्गं पञ्ञापेत्वा तिणकलापं ओकासेसि। अथ खो आयस्मा महको विहारं पविसित्वा सूचिघटिकं दत्वा तथारूपं इद्धाभिसङ्खारं अभिसङ्खरि यथा तालच्छिग्गळेन च अग्गळन्तरिकाय च अच्चि निक्खमित्वा तिणानि झापेसि, उत्तरासङ्गं न झापेसि। अथ खो चित्तो गहपति उत्तरासङ्गं पप्फोटेत्वा संविग्गो लोमहट्ठजातो एकमन्तं अट्ठासि। अथ खो आयस्मा महको विहारा निक्खमित्वा चित्तं गहपतिं एतदवोच–"अलमेत्तावता, गहपती" ति?

[R.291] "अलमेत्तावता, भन्ते महक! कतमेत्तावता, भन्ते, महक! पूजितमेत्तावता, भन्ते महक! अभिरमतु, भन्ते, अय्यो महको मच्छिकासण्डे। रमणीयं अम्बाटकवनं। अहं अय्यस्स महकस्स उस्सुक्कं करिस्सामि चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चय-भेसज्जपरिक्खारानं" ति।

"कल्याणं वुच्चति, गहपती" ति।

तब चित्त गृहपति आयुष्मान् महक के पास उनके साधनास्थल पर पहुँचे। ...प्रणाम कर...उन से यों निवेदन किया–"अच्छा होता, भन्ते! आप मुझे कुछ अलौकिक चमत्कार (उत्तरिमनुष्यधर्म) दिखाते!"

"बरामदे में चादर बिछाओ और उस पर तृण (घासफूस) विखेर दो।"

"ठीक है, भन्ते!" चित्त गृहपति ने यों आयुष्मान् महक को उत्तर दे कर, बरामदे में चादर विछा कर उस पर तृणराशि रख दी। तब आयुष्मान् महक ने अपने समाधिविहार में प्रविष्ट हो कर उस का द्वार बन्द कर लिया। तब उन्होंने ऐसा अलौकिक चमत्कार किया कि बरामदे में रखा हुआ तृण पूर्णत: जल गया, परन्तु वह चादर यथापूर्व बनी रही। यह देख कर चित्त गृहपति आश्चर्यचकित हो कर देखता ही रह गया। तब आयुष्मान् महक ने विहार से निकल कर उस से पूछा–"गृहपति! इतना ही बहुत है, या इससे अधिक चमत्कार देखना चाहते हो?" गृहपति बोला–"बस, भन्ते! इतना ही बहुत है। इसी से आप के प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ गयी है। आप इसी मत्स्यिकाषण्ड में साधनाहेतु विराजें। मैं चीवर पिण्डपात आदि से आपकी सेवा करता रहूँगा।"

अथ खो आयस्मा महको सेनासनं संसामेत्वा पत्तचीवरमादाय मच्छिकासण्डम्हा पक्कामि। यं मच्छिकासण्डम्हा पक्कामि, यथा पक्कन्तो व अहोसि; न पुन पच्चागच्छी ति॥

५. पठमकामभूसुत्तं

५. एकं समयं आयस्मा कामभू मच्छिकासण्डे विहरति अम्बाटकवने। अथ खो चित्तो गहपति येनायस्मा कामभू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं कामभुं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो चित्तं गहपतिं आयस्मा [B.482] कामभू एतदवोच—"वुत्तमिदं, गहपति—

'नेलङ्गो सेतपच्छादो, एकारो वत्तती रथो।
अनीघं पस्स आयन्तं, छिन्नसोतं अबन्धनं' ति। (उ.पि. १५७)

"इमस्स नु खो, गहपति, सङ्खित्तेन भासितस्स कथं वित्थारेन अत्थो दट्ठब्बो" ति?

"किं नु खो एतं, भन्ते, भगवता भासितं" ति? [N.260]

"एवं, गहपती" ति।

"तेन हि, भन्ते, मुहुत्तं आगमेहि यावस्स अत्थं पेक्खामी" ति। अथ खो चित्तो गहपति मुहुत्तं तुण्ही हुत्वा आयस्मन्तं कामभुं एतदवोच—

आयुष्मान् महक बोले—"गृहपति! तुम्हारा कथन मङ्गलमय है।" परन्तु आयुष्मान् महक ने उसी समय अपना आसन वहाँ से समेट लिया, एवं वे अपना पात्रचीवर लेकर मत्स्यिकाषण्ड से आगे चारिका में चल दिये तथा फिर कभी वहाँ नहीं लौटे॥ •

५. प्रथम कामभूसूत्र : : भगवदुपदिष्ट एक गाथा की व्याख्या

५. एक समय आयुष्मान् कामभू **मत्स्यिकाषण्ड** के आम्रातकवन में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब चित्त गृहपति आयुष्मान् कामभू के पास आये, प्रणाम करने के बाद आयुष्मान् कामभू ने चित्त गृहपति से पूछा—"गृहपति! यह कहा गया है कि—

'निर्दोष, एक आच्छादन वाला, एक अरावाला यह चलता हुआ रथ है। उस दुःखरहित (रथ) को आते देखो, जिस का स्रोत रुक गया है तथा जो बन्धनमुक्त है'॥

(उदान, पृ० १५७, ना०सं०)

"गृहपति! भगवान् के इस संक्षिप्त कथन का विस्तृत अर्थ कैसे और क्या करना चाहिये?"

"भन्ते! क्या भगवान् ने ऐसा कहा है?"

"हाँ, गृहपति! कहा तो है।"

"तो, भन्ते! मुझे कुछ क्षण इस पर विचार करने का अवसर दें, तब तक मैं इस पर विचार कर लूँ।"

[R.292] "'नेलङ्गं' ति खो, भन्ते, सीलानमेतं अधिवचनं। 'सेतपच्छादो' ति खो, भन्ते, विमुत्तिया एतं अधिवचनं। 'एकारो' ति खो, भन्ते, सतिया एतं अधिवचनं। 'वत्तती' ति खो, भन्ते, अभिक्कमपटिक्कमस्सेतं अधिवचनं। 'रथो' ति खो, भन्ते, इमस्सेतं चातुम्महाभूतिकस्स कायस्स अधिवचनं मातापेत्तिकसम्भवस्स ओदनकुम्मासूपचयस्स अनिच्चुच्छादनपरिमद्दनभेदनविद्धंसनधम्मस्स। रागो खो, भन्ते, नीघो, दोसो नीघो, मोहो नीघो। ते खीणासवस्स भिक्खुनो पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। तस्मा खीणासवो भिक्खु 'अनीघो' ति वुच्चति। 'आयन्तं' ति खो, भन्ते, अरहतो एतं अधिवचनं। 'सोतो' ति खो, भन्ते, तण्हायेतं अधिवचनं। सा खीणासवस्स भिक्खुनो पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। तस्मा खीणासवो भिक्खु 'छिन्नसोतो' ति वुच्चति। रागो खो, भन्ते, बन्धनं, दोसो बन्धनं, मोहो बन्धनं। ते खीणासवस्स भिक्खुनो पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। तस्मा खीणासवो भिक्खु 'अबन्धनो' ति वुच्चति। इति खो, भन्ते, यं तं भगवता वुत्तं—

'नेलङ्गो सेतपच्छादो, एकारो वत्तती रथो।
अनीघं पस्स आयन्तं, छिन्नसोतं अबन्धनं' ति॥

तब चित्त गृहपति, इस गाथा पर कुछ क्षण विचार कर, आयुष्मान् कामभू से यों बोले—"भन्ते! इस गाथा में **नेलङ्ग** (निर्दोष) शब्द का अर्थ है—शील (सदाचार) तथा **सेतपच्छादो** का अर्थ है—विमुक्ति। **एकारो** स्मृति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। **वत्तति** का अर्थ है—अभिक्रम (आगे चलना) एवं प्रतिक्रम (पीछे हटना)। यहाँ **रथो** शब्द इस चतुर्महाभूतोत्पन्न 'काय' के लिये व्यवहृत हुआ है। यह 'काय' मातापिता के संयोग से उत्पन्न होता है तथा दाल-भात खाने से वृद्धिङ्गत होता है। यह अनित्य, धोने तथा मलने से सुन्दर लगनेवाला है, तथा नष्ट होना इस का स्वभाव है। भन्ते! राग, द्वेष एवं मोह को **नीघ** (दु:ख) कहा जाता है। ये क्षीणाश्रव भिक्षु के क्षीण हो जाते हैं तथा भविष्य में वहाँ उत्पन्न होने की स्थिति भी नहीं रखते, अत: क्षीणाश्रव भिक्षु **अनीघ** कहलाता है। **आयन्तं** शब्द का अर्हत् (ज्ञानी) में अभिप्राय है। '**स्रोत**' शब्द से 'तृष्णा' को समझना चाहिये। यह तृष्णा क्षीणाश्रव में सदा के लिये विनष्ट हुई रहती है अत: वह **छिन्नसोतो** कहलाता है। इसी तरह, भन्ते! राग, द्वेष एवं मोह 'बन्धन' हैं। ये क्षीणाश्रव भिक्षु के चित्त में कथमपि नहीं रह पाते, सदा के लिये क्षीण हो जाते हैं, अत: वह **अबन्धन** कहलाता है। भन्ते! इसी गम्भीर आशय से भगवान् ने—

नेलङ्गो सेतपच्छादो—ऐसा कहा है। भन्ते! भगवान् के इस संक्षिप्त कथन का यही विस्तृत अर्थ समझ पाया हूँ।"

"इमस्स खो, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं [B.483] आजानामी" ति।

"लाभा ते, गहपति, सुलद्धं ते, गहपति! यस्स ते गम्भीरे बुद्धवचने पञ्ञाचक्खु कमती" ति॥ ●

६. दुतियकामभूसुत्तं

६. एकं समयं आयस्मा कामभू मच्छिकासण्डे विहरति अम्बाटकवने। [R.293] अथ खो चित्तो गहपति येनायस्मा कामभू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो चित्तो गहपति आयस्मन्तं कामभुं एतदवोच—[N.261] "कति नु खो, भन्ते, सङ्खारा" ति?

"तयो खो, गहपति, सङ्खारा—कायसङ्खारो, वचीसङ्खारो, चित्तसङ्खारो" ति।

"साधु, भन्ते" ति खो चित्तो गहपति आयस्मतो कामभुस्स भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा आयस्मन्तं कामभुं उत्तरिं पञ्हं अपुच्छि—"कतमो पन, भन्ते, कायसङ्खारो, कतमो वचीसङ्खारो, कतमो चित्तसङ्खारो" ति?

"अस्सासपस्सासा खो, गहपति, कायसङ्खारो, वितक्कविचारा वचीसङ्खारो, सञ्ञा च वेदना च चित्तसङ्खारो" ति।

"गृहपति! तुम बहुत भाग्यशाली हो, तुमने बहुत कुछ पा लिया है कि तुम्हारी प्रज्ञा (बुद्धि) भगवदुक्त गम्भीर वचनों पर भी इतनी सूक्ष्मता से विचार कर लेती है"॥ ●

६. द्वितीय कामभूसूत्र : : त्रिविध संस्कार

६. एक समय आयुष्मान् कामभू **मत्स्यिकाषण्ड** के आम्रातकवन में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उस समय चित्त गृहपति आयुष्मान् कामभू के पास आये। ...तथा एक ओर बैठते हुए उसने आयुष्मान् कामभू से यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! संस्कार कितने होते हैं?"

"भन्ते! संस्कार तो तीन होते हैं—१. कायसंस्कार, २. वाक्संस्कार एवं ३. चित्तसंस्कार।"

"ठीक है, भन्ते!" —यों चित्त गृहपति ने, आयुष्मान् कामभू के कथन का अभिनन्दन, अनुमोदन करते हुए, पुनः प्रश्न किया—"भन्ते! इन में कायसंस्कार कौन सा है? वाक्संस्कार कौन सा है? तथा चित्तसंस्कार कौन सा है?"

"गृहपति! यहाँ शरीर से निकलने वाले आश्वास, प्रश्वास 'कायसंस्कार' कहलाते हैं, वितर्क एवं विचार 'वाक्संस्कार' कहलाते हैं तथा संज्ञा एवं वेदना 'चित्तसंस्कार' कहलाते हैं।

"साधु, भन्ते" ति खो चित्तो गहपति...पे०...उत्तरिं पञ्हं अपुच्छि—"कस्मा पन, भन्ते, अस्सासपस्सासा कायसङ्खारो, कस्मा वितक्कविचारा वचीसङ्खारो, कस्मा सञ्ञा च वेदना च चित्तसङ्खारो" ति?

"अस्सासपस्सासा खो, गहपति, कायिका। एते धम्मा कायप्पटिबन्धा, तस्मा अस्सासपस्सासा कायसङ्खारो। पुब्बे खो, गहपति, वितक्केत्वा विचारेत्वा पच्छा वाचं भिन्दति, तस्मा वितक्कविचारा वचीसङ्खारो। सञ्ञा च वेदना च चेतसिका। एते धम्मा चित्तप्पटिबन्धा, तस्मा सञ्ञा च वेदना च चित्तसङ्खारो"।

साधु...पे०...उत्तरिं पञ्हं अपुच्छि—"कथं पन, भन्ते, सञ्ञावेदयितनिरोध-समापत्ति होती" ति?

"न खो, गहपति, सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जन्तस्स भिक्खुनो एवं होति—'अहं सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जिस्सं' ति वा 'अहं सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जामी' ति वा 'अहं सञ्ञावेदयितनिरोधं समापन्नो' ति वा। अथ ख्वस्स पुब्बेव [R.294] तथा चित्तं भावितं होति यं तं तथत्ताय उपनेती" ति।

साधु...पे०...उत्तरिं पञ्हं अपुच्छि—"सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जन्तस्स [B.484] पन, भन्ते, भिक्खुनो कतमे धम्मा पठमं निरुज्झन्ति, यदि वा कायसङ्खारो, यदि वा वचीसङ्खारो, यदि वा चित्तसङ्खारो" ति?

"ठीक है, भन्ते!" —यों चित्त गृहपति ने...पूर्ववत्...पुनः प्रश्न किया—"भन्ते! आश्वास प्रश्वास को कायसंस्कार, वितर्क विचार को वाक्संस्कार एवं संज्ञा, वेदना को चित्तसंस्कार क्यों कहते हैं?"

"गृहपति! ये आश्वास प्रश्वास कायधर्म हैं, काय से सम्पृक्त रहते हैं, अतः इन को 'कायसंस्कार' कहते हैं। मनुष्य पहले कुछ भी वितर्क एवं विचार कर बाद में उन्हें वाणी से प्रकट करता है, अतः वितर्क-विचारों को 'वाक्संस्कार' कहते हैं। इसी तरह संज्ञा एवं वेदना चित्त के धर्म हैं, ये चित्त से प्रतिबद्ध हैं अतः संज्ञा एवं वेदना 'चित्तसंस्कार' कहलाते हैं।

"ठीक है, भन्ते!" —यों चित्त गृहपति ने...पूर्ववत्...पुनः प्रश्न किया—"भन्ते! 'संज्ञावेदयितनिरोध समापत्ति' कैसे होती है?

"गृहपति! संज्ञावेदयितनिरोध समापत्ति वाले साधक को यह नहीं होता कि मैं संज्ञावेदयितनिरोध प्राप्त करूँगा या करता हूँ या कर चुका हूँ; अपि तु उस का चित्त पहले ही इतना भावित रहता है कि वह उसे वहाँ तक ले जाता है।

"ठीक है, भन्ते!" —यों चित्त गृहपति ने...पूर्ववत्..."भन्ते! संज्ञावेदयितनिरोध

"सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जन्तस्स खो, गहपति, भिक्खुनो वचीसङ्खारो पठमं निरुज्झति, ततो कायसङ्खारो, ततो चित्तसङ्खारो" ति?

साधु...पे०...उत्तरिं पञ्हं अपुच्छि—"य्वायं, भन्ते, मतो कालङ्कतो, यो [N.262] चायं भिक्खु सञ्ञावेदयितनिरोधं समापन्नो, इमेसं किं नानाकरणं" ति?

"य्वायं गहपति, मतो कालङ्कतो तस्स कायसङ्खारो निरुद्धो पटिप्पस्सद्धो, वचीसङ्खारो निरुद्धो पटिप्पस्सद्धो, चित्तसङ्खारो निरुद्धो पटिप्पस्सद्धो, आयु परिक्खीणो, उस्मा वूपसन्ता, इन्द्रियानि विपरिभिन्नानि। यो च ख्वायं, गहपति, भिक्खु सञ्ञावेदयितनिरोधं समापन्नो, तस्स पि कायसङ्खारो निरुद्धो पटिप्पस्सद्धो, वचीसङ्खारो निरुद्धो पटिप्पस्सद्धो, चित्तसङ्खारो निरुद्धो पटिप्पस्सद्धो, आयु अपरिक्खीणो, उस्मा अवूपसन्ता, इन्द्रियानि विप्पसन्नानि। य्वायं, गहपति, मतो कालङ्कतो, यो चायं भिक्खु सञ्ञावेदयितनिरोधं समापन्नो, इदं नेसं नानाकरणं" ति।

साधु...पे०...उत्तरिं पञ्हं अपुच्छि—"कथं पन, भन्ते, सञ्ञावेदयितनिरोधसमापत्तिया वुट्ठानं होती" ति?

"न खो, गहपति, सञ्ञावेदयितनिरोधसमापत्तिया वुट्ठहन्तस्स भिक्खुनो एवं

को प्राप्त करने वाले भिक्षु के कौन धर्म पहले निरुद्ध होते हैं—कायसंस्कार, या वाक्संस्कार या चित्तसंस्कार?"

"गृहपति! ऐसे साधक के सर्वप्रथम वाक्संस्कार निरुद्ध होते हैं तब कायसंस्कार। और अन्त में चित्तसंस्कार निरुद्ध होते हैं।"

"ठीक है, भन्ते!" —यों चित्त गृहपति ने...पूर्ववत्...पुनः प्रश्न किया—"भन्ते! जो मर चुका है, तथा जो संज्ञावेदयितनिरोधसमापन्न है—इन दोनों में क्या भेद है?"

मृत एवं संज्ञावेदयितनिरोधसमापन्न में भेद—"गृहपति! मृत प्राणी के कायसंस्कार, वाक्संस्कार एवं चित्तसंस्कार सर्वथा निरुद्ध एवं शान्त हो चुके होते हैं, आयु क्षीण हो चुकी होती है, ऊष्मा शान्त हो चुकी होती है, उस की सभी इन्द्रियाँ बिखर चुकी होती हैं। तथा जो संज्ञावेदयितनिरोधसमापन्न है उस के भी यद्यपि कायसंस्कार, वाक्संस्कार एवं चित्तसंस्कार निरुद्ध एवं शान्त हो चुके होते हैं; परन्तु उस की आयु, शरीर की ऊष्मा शान्त तथा निरुद्ध नहीं होती, न उस की इन्द्रियाँ बिखर चुकी होती हैं, अपि तु वे इस समय भी विप्रसन्न ही रहती हैं। —यही इन दोनों में भेद है, इसी से वे पहचाने जा सकते हैं।

"ठीक है, भन्ते!" —यों चित्त गृहपति ने...पूर्ववत्...पुनः प्रश्न किया—"भन्ते! इस संज्ञावेदयितनिरोधसमापत्ति का व्युत्थान (उठना) कैसे होता है?"

"गृहपति! संज्ञावेदयितनिरोध से व्युत्थान करने वाले साधक को यह नहीं होता

होति—'अहं सञ्ञावेदयितनिरोधसमापत्तिया वुट्ठहिस्सं' ति वा 'अहं सञ्ञावेदयितनिरोधसमापत्तिया वुट्ठहामी' ति वा 'अहं सञ्ञावेदयितनिरोधसमापत्तिया वुट्ठितो' ति वा। अथ ख्वस्स पुब्बेव तथा चित्तं भावितं होति, यं तं तथत्ताय उपनेती'' ति।

[R.295] साधु भन्ते...पे०...उत्तरिं पञ्हं अपुच्छि—''सञ्ञावेदयितनिरोधसमापत्तिया वुट्ठहन्तस्स पन, भन्ते, कतमे धम्मा पठमं उप्पज्जन्ति, यदि वा कायसङ्खारो, यदि वा वचीसङ्खारो, यदि वा चित्तसङ्खारो'' ति?

''सञ्ञावेदयितनिरोधसमापत्तिया वुट्ठहन्तस्स, गहपति, भिक्खुनो चित्तसङ्खारो पठमं उप्पज्जति, ततो कायसङ्खारो, ततो वचीसङ्खारो'' ति।

साधु...पे०...उत्तरिं पञ्हं अपुच्छि—''सञ्ञावेदयितनिरोधसमापत्तिया वुट्ठितं पन, भन्ते, भिक्खुं कति फस्सा फुसन्ति''?

[B.485] ''सञ्ञावेदयितनिरोधसमापत्तिया वुट्ठितं खो, गहपति, भिक्खुं तयो फस्सा फुसन्ति—सुञ्ञतो फस्सो, अनिमित्तो फस्सो, अप्पणिहितो फस्सो'' ति।

[N.263] साधु...पे०...उत्तरिं पञ्हं अपुच्छि—''सञ्ञावेदयितनिरोधसमापत्तिया वुट्ठितस्स पन, भन्ते, भिक्खुनो किंनिन्नं चित्तं होति, किंपोणं, किंपब्भारं'' ति?

कि मैं संज्ञावेदयितनिरोधसमापत्ति से व्युत्थान करूँगा, या करता हूँ, या कर चुका हूँ; अपि तु उस का चित्त पहले से ही इतना भावित रहता है कि वह उस का व्युत्थान करा देता है।''

''ठीक है, भन्ते!'' —यों चित्त गृहपति ने ...पूर्ववत्... पुनः प्रश्न किया—''भन्ते! संज्ञावेदयितनिरोध से व्युत्थान करने वाले साधक के कायसंस्कार, वाक्संस्कार तथा चित्तसंस्कार में से कौन से धर्म पहले उत्पन्न होते हैं, तथा कौन से बाद में?''

''गृहपति! संज्ञावेदयितनिरोध से व्युत्थान करने वाले को पहले चित्तसंस्कार उत्पन्न होता है, तब कायसंस्कार तथा सबसे अन्त में वाक्संस्कार।''

''ठीक है, भन्ते!''—यों चित्त गृहपति ने ...पूर्ववत् .. पुनः प्रश्न किया—''भन्ते! संज्ञावेदयितनिरोध से व्युत्थित साधक भिक्षु को कौन से धर्मों के स्पर्श का अनुभव होता है?''

''गृहपति! ऐसे साधक भिक्षु को तीन स्पर्शों का अनुभव होता है—१. शून्य स्पर्श, २. अनिमित्त स्पर्श एवं ३. अप्रणिहित (निःसङ्कल्प) स्पर्श''।

''ठीक है, भन्ते!''—यों चित्त गृहपति ने...पूर्ववत्...पुनः प्रश्न किया—''भन्ते! संज्ञावेदयितनिरोध से व्युत्थित साधक का चित्त किधर झुका रहता है? किधर प्रवृत्त होने को उत्कण्ठित होता है?''

"सञ्ञावेदयितनिरोधसमापत्तिया वुट्ठितस्स खो, गहपति, भिक्खुनो विवेकनिन्नं चित्तं होति विवेकपोणं विवेकपब्भारं" ति।

"साधु, भन्ते" ति खो चित्तो गहपति आयस्मतो कामभुस्स भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा आयस्मन्तं कामभुं उत्तरिं पञ्हं अपुच्छि—"सञ्ञावेदयितनिरोधसमापत्तिया पन, भन्ते, कति धम्मा बहूपकारा" ति?

"अद्धा खो त्वं, गहपति, यं पठमं पुच्छितब्बं तं पुच्छसि। अपि च त्याहं ब्याकरिस्सामि। सञ्ञावेदयितनिरोधसमापत्तिया खो, गहपति, द्वे धम्मा बहूपकारा—समथो च विपस्सना चा" ति॥ ●

७. गोदत्तसुत्तं

७. एकं समयं आयस्मा गोदत्तो मच्छिकासण्डे विहरति अम्बाटकवने। अथ खो चित्तो गहपति येनायस्मा गोदत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं गोदत्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो चित्तं गहपतिं आयस्मा [R.296] गोदत्तो एतदवोच—"या चायं, गहपति, अप्पमाणा चेतोविमुत्ति, या च आकिञ्चञ्ञा चेतोविमुत्ति, या च सुञ्ञता चेतोविमुत्ति, या च अनिमित्ता चेतोविमुत्ति, इमे धम्मा नानत्था नानाब्यञ्जना उदाहु एकत्था ब्यञ्जनमेव नानं" ति?

"गृहपति! संज्ञावेदयितनिरोध से व्युत्थित साधक का चित्त विवेक की ओर झुका रहता है, विवेक की ओर उत्कण्ठित रहता है।"

"ठीक है, भन्ते!" —यों कहते हुए चित्त गृहपति ने आयुष्मान् कामभू के कथन का अभिनन्दन, अनुमोदन करते हुए उन से उसने पुनः प्रश्न किया—"भन्ते! इस संज्ञावेदयितनिरोध के समापादन में कौन से धर्म अत्यधिक उपकारक होते हैं?"

"अरे गृहपति! यह प्रश्न, जो तुम अब कर रहे हो सर्वप्रथम करना चाहिये था। तो भी मैं इस का उत्तर देता हूँ—गृहपति! संज्ञावेदयितनिरोध के समापादन में दो धर्म सर्वाधिक उपकारक हैं—१. शमथ एवं २. विपश्यना"॥ ●

७. गोदत्तसूत्र : : समानार्थक विभिन्न शब्द

७. एक समय आयुष्मान् गोदत्त मत्स्यिकाषण्ड के आम्रातकवन में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उसी समय चित्त गृहपति उन के पास पहुँचे। तथा उन्हें प्रणाम कर...एक ओर बैठते हुए उस गृहपति को आयुष्मान् गोदत्त ने यह पूछा—"गृहपति! ये जो शास्त्र में अप्रमाणा चेतोविमुक्ति, आकिञ्चन्या चेतोविमुक्ति, शून्यता चेतोविमुक्ति तथा अनिमित्ता चेतोविमुक्ति नामों से चेतोविमुक्तियाँ वर्णित हैं—क्या ये भिन्न अर्थवाली तथा भिन्न संज्ञावाली हैं? या इन का अर्थ एक ही है तथा केवल ये बोधक संज्ञाएँ ही भिन्न भिन्न हैं?"

"अत्थि, भन्ते, परियायो यं परियायं आगम्म इमे धम्मा नानत्था चेव नानाब्यञ्जना च। अत्थि पन, भन्ते, परियायो यं परियायं आगम्म इमे धम्मा एकत्था ब्यञ्जनमेव नानं" ति।

"कतमो च, भन्ते, परियायो यं परियायं आगम्म इमे धम्मा नानत्था चेव नानाब्यञ्जना च। इध, भन्ते, भिक्खु मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय [B.486] सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्जेन फरित्वा विहरति। करुणासहगतेन चेतसा...पे०...मुदितासहगतेन चेतसा ...पे०...उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, [N.264] तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्जेन फरित्वा विहरति। अयं वुच्चति, भन्ते, अप्पमाणा चेतोविमुत्ति।

"कतमा च, भन्ते, आकिञ्चञ्ञा चेतोविमुत्ति? इध; भन्ते, भिक्खु सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म, 'नत्थि किञ्ची' ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति, भन्ते, आकिञ्चञ्ञा चेतोविमुत्ति।

"कतमा च, भन्ते, सुञ्ञता चेतोविमुत्ति? इध, भन्ते, भिक्खु अरञ्ञगतो वा

"हाँ, भन्ते! एक क्रम है, जिस क्रम के अन्तर्गत ये धर्म भिन्न नाम एवं भिन्न अर्थ वाले हैं; तथा दूसरे क्रम में इन के नाम केवल भिन्न हैं, परन्तु अर्थ एक ही है।

"भन्ते! वह कौन सा क्रम है जिस में इन धर्मों के नाम एवं अर्थ—दोनों भिन्न हैं?

"यहाँ, भन्ते! कोई मैत्रीसहगत चित्त से एक दिशा को पूर्ण कर साधना करता है, वैसे ही दूसरी दिशा को...तीसरी दिशा को...चौथी दिशा को। इसी तरह ऊपर, नीचे, आड़े, टेढ़े—सभी प्रकार से, सभी तरफ से विपुल अप्रमाण सुखमय मैत्रीसहगत चित्त से समस्त लोक को सब तरफ से पूर्ण कर साधना करता है। ...करुणासहगत चित्त से...। मुदितासहगत चित्त से...। उपेक्षासहगत चित्त से...साधना करता है... भन्ते! यह 'अप्रमाणा चेतोविमुक्ति' कहलाती है।

"भन्ते! 'आकिञ्चन्या चेतोविमुक्ति' क्या कहलाती है? भन्ते! यहाँ कोई साधक भिक्षु विज्ञानानन्त्यायतन को सर्वथा अतिक्रान्त कर 'कुछ भी नहीं है'—ऐसी भावना करते हुए आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त कर साधना करता है, यह कहलाती है—'आकिञ्चन्या चेतोविमुक्ति'।

"भन्ते! शून्यता चेतोविमुक्ति क्या कहलाती है? यहाँ कोई साधक भिक्षु किसी

रुक्खमूलगतो वा सुञ्ञागारगतो वा इति पटिसञ्चिक्खति—'सुञ्ञमिदं अत्तेन वा अत्तनियेन वा' ति। अयं वुच्चति, भन्ते, सुञ्ञता चेतोविमुत्ति। [R.297]

"कतमा च, भन्ते, अनिमित्ता चेतोविमुत्ति? इध, भन्ते, भिक्खु सब्बनिमित्तानं अमनसिकारा अनिमित्तं चेतोसमाधिं उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति, भन्ते, अनिमित्ता चेतोविमुत्ति। अयं खो, भन्ते, परियायो यं परियायं आगम्म इमे धम्मा नानत्था चेव नानाब्यञ्जना च।

"कतमो च, भन्ते परियायो यं परियायं आगम्म इमे धम्मा एकत्था ब्यञ्जनमेव नानं? रागो, भन्ते, पमाणकरणो, दोसो पमाणकरणो, मोहो पमाणकरणो। ते खीणासवस्स भिक्खुनो पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पाद-धम्मा। यावता खो, भन्ते, अप्पमाणा चेतोविमुत्तियो, अकुप्पा तासं चेतोविमुत्ति अग्गमक्खायति। सा खो पन अकुप्पा चेतोविमुत्ति सुञ्ञा रागेन, सुञ्ञा दोसेन, सुञ्ञा मोहेन। रागो खो, भन्ते, किञ्चनं, दोसो किञ्चनं, मोहो किञ्चनं। ते खीणासवस्स भिक्खुनो पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। यावता खो, भन्ते, आकिञ्चञ्ञा चेतोविमुत्तियो, अकुप्पा तासं चेतोविमुत्ति [B.487] अग्गमक्खायति। सा खो पन अकुप्पा चेतोविमुत्ति सुञ्ञा रागेन, सुञ्ञा दोसेन, सुञ्ञा मोहेन। रागो खो, भन्ते, निमित्तकरणो, दोसो निमित्तकरणो, मोहो निमित्तकरणो। ते

अरण्य में, किसी वृक्ष के नीचे या किसी शून्यागार में जा कर वहाँ उस के विषय में यों विचार करे—'यह स्थान आत्मा या आत्मीयता से परे है'। भन्ते! इसे कहते हैं—शून्यता चेतोविमुक्ति।

"फिर, भन्ते! अनिमित्ता चेतोविमुक्ति क्या है? भन्ते! कोई भिक्षु सभी निमित्तों को ध्यान में न ला कर निमित्तविहीन चेत:समाधि प्राप्त कर साधना करता है, यह कहलाती है—'अनिमित्ता चेतोविमुक्ति'। इस तरह, भन्ते! यह वह क्रम है जिस में ये सभी शब्द भिन्न होते हुए भिन्न अर्थ वाले हैं। (क)

"फिर, भन्ते! वह कौन सा क्रम है जिस में इन सभी शब्दों का अर्थ एक ही है, परन्तु ये सब शब्द नामत: भिन्न हैं?

"यहाँ, भन्ते! राग प्रमाण करने वाला है, द्वेष... मोह प्रमाण करने वाला है। वे तीनों ही दोष क्षीणाश्रव भिक्षु के उच्छिन्न हुए रहते हैं, प्रहीणमूल हुए रहते हैं। वे ऐसे अभावग्रस्त हो जाते हैं कि भविष्य में उन की उत्पत्ति की कोई सम्भावना नहीं रहती। भन्ते! जितनी अप्रमाण वाली चेतोविमुक्तियाँ हैं उन में स्थिर (अकोप्य=अर्हत्त्वफल) चेतोविमुक्ति ही श्रेष्ठ कहलाती है। वह अकोप्य चेतोविमुक्ति राग, द्वेष एवं मोह से शून्य होती है। वहाँ

खीणासवस्स भिक्खुनो पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। यावता खो, भन्ते, अनिमित्ता चेतोविमुत्तियो, अकुप्पा तासं चेतोविमुत्ति अग्गमक्खायति।

[N.265] "सा खो पन अकुप्पा चेतोविमुत्ति सुञ्ञा रागेन, सुञ्ञा दोसेन, सुञ्ञा मोहेन। अयं खो, भन्ते, परियायो यं परियायं आगम्म इमे धम्मा एकत्था ब्यञ्जनमेव नानं" ति।

"लाभा ते, गहपति, सुलद्धं ते, गहपति! यस्स ते गम्भीरे बुद्धवचने पञ्ञाचक्खु कमती" ति॥ ●

८. निगण्ठनाटपुत्तसुत्तं

[R.298] ८. तेन खो पन समयेन निगण्ठो नाटपुत्तो मच्छिकासण्डं अनुप्पत्तो होति महतिया निगण्ठपरिसाय सद्धिं। अस्सोसि खो चित्तो गहपति—"निगण्ठो किर नाटपुत्तो मच्छिकासण्डं अनुप्पत्तो महतिया निगण्ठपरिसाय सद्धिं" ति। अथ खो चित्तो गहपति सम्बहुलेहि उपासकेहि सद्धिं येन निगण्ठो नाटपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा निगण्ठेन नाटपुत्तेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं

राग, द्वेष एवं मोह—तीनों ही शून्य (तुच्छ) है। तथा वे तीनों ही क्षीणाश्रव भिक्षु के प्रहीण एवं उच्छिन्नमूल तथा अभावग्रस्त हुए रहते हैं।

भन्ते! जहाँ तक आकिञ्चन्या चेतोविमुक्ति का प्रश्न है, उन में भी स्थिर चेतोविमुक्ति ही श्रेष्ठ कहलाती है। वह अकोप्य चेतोविमुक्ति राग, द्वेष एवं मोह से शून्य है। राग, द्वेष एवं मोह निमित्तकरण हैं। वे क्षीणाश्रव भिक्षु के प्रहीण, उच्छिन्नमूल, एवं अभावग्रस्त हुए रहते हैं। भन्ते! जितनी भी अनिमित्त चेतोविमुक्तियाँ हैं, उन में अकोप्य (स्थिर=अर्हत्त्व-फलवाली) चेतोविमुक्ति ही श्रेष्ठ कहलाती है। वह अकोप्या चेतोविमुक्ति राग, द्वेष एवं मोह से शून्य है। भन्ते! यही वह क्रम है जिस क्रम के आधार पर ये धर्म एकार्थक (समानार्थक) हैं, केवल शब्दों में ही भेद है।" (ख)

"गृहपति! तुम बहुत भाग्यशाली हो, तथा तुम्हें इस मानव जीवन का बहुत अच्छा लाभ मिला है कि तुम्हारी यह विमल प्रज्ञा इन गम्भीर बुद्धवचनों का इतनी सूक्ष्मता से विश्लेषण कर लेती है"॥ ●

८. निर्ग्रन्थज्ञातृपुत्रसूत्र : : ज्ञान श्रेष्ठ है या श्रद्धा

८. उस समय निर्ग्रन्थज्ञातृपुत्र **मत्स्यिकाषण्ड** के आम्रातकवन में अपनी विशाल शिष्यमण्डली के साथ ठहरे हुए थे। चित्त गृहपति ने भी उन का वहाँ आगमन सुना। तब चित्त गृहपति बहुत से उपासकों के साथ निगण्ठ नाटपुत्त के पास पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उन से कुशल-मङ्गल पूछ कर वह एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस चित्त गृहपति

निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो चित्तं गहपतिं निगण्ठो नाटपुत्तो एतदवोच—"सद्दहसि त्वं, गहपति, समणस्स गोतमस्स—अत्थि अवितक्को अविचारो समाधि, अत्थि वितक्कविचारानं निरोधो" ति?

"न ख्वाहं एत्थ, भन्ते, भगवतो सद्धाय गच्छामि। अत्थि अवितक्को अविचारो समाधि, अत्थि वितक्कविचारानं निरोधो" ति।

एवं वुत्ते, निगण्ठो नाटपुत्तो उल्लोकेत्वा एतदवोच—"इदं भवन्तो पस्सन्तु, याव उजुको चायं चित्तो गहपति, याव असठो चायं चित्तो गहपति, याव अमायावी चायं चित्तो गहपति, वातं वा सो जालेन बाधेतब्बं मञ्ञेय्य, यो वितक्कविचारे [B.488] निरोधेतब्बं मञ्ञेय्य, सकमुट्ठिना वा सो गङ्गाय सोतं आवारेतब्बं मञ्ञेय्य, यो वितक्कविचारे निरोधेतब्बं मञ्ञेय्या" ति।

"तं किं मञ्ञसि, भन्ते, कतमं नु खो पणीततरं—ञाणं वा सद्धा वा" ति?

"सद्धाय खो, गहपति, ञाणं येव पणीततरं" ति।

"अहं खो, भन्ते, यावदेव आकङ्खामि, विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज [N.266, R.299]

को निगण्ठ नाटपुत्त ने यह पूछा—"गृहपति! क्या तुम श्रमण गौतम के इस मत पर श्रद्धा रखते हो—'वितर्क विचाररहित भी समाधि होती है तथा वितर्कों तथा विचारों का निरोध सम्भव है'?"

(ऐसा पूछे जाने पर चित्त गृहपति ने कहा—) "नहीं, भन्ते! मैं भगवान् के इस मत पर श्रद्धा नहीं रखता कि वितर्क विचाररहित भी समाधि होती है, या वितर्क-विचार का निरोध सम्भव है।"

गृहपति द्वारा ऐसा कहे जाने पर, अपनी शिष्यमण्डली को देखते हुए निगण्ठ नाटपुत्त ने कहा—"आप लोग देखें, यह गृहपति कितना सरल है तथा कितना शुद्धहृदय है एवं इस का अन्तःकरण कितना निष्कपट (मायारहित) है! जो वितर्क विचारों का निरोध सम्भव मानता है वह मानो जाल से वायु को रोकना चाहता है या अपनी मुट्ठी से गङ्गा के प्रवाह को अवरुद्ध करना चाहता है!"

(गृहपति का प्रश्न—)"भन्ते! आप क्या मानते है—ज्ञान एवं श्रद्धा में कौन श्रेष्ठ है?"

"श्रद्धा से तो, गृहपति! ज्ञान ही श्रेष्ठ है।"

"भन्ते! मैं जब भी चाहता हूँ, जितने समय तक चाहता हूँ कामभोग तथा अकुशल धर्मों से दूर रहते हुए वितर्क विचार सहित, विवेकजन्य प्रीतिसुखयुक्त प्रथम ध्यान को

विहरामि। अहं खो, भन्ते, यावदेव आकङ्खामि, वितक्कविचारानं वूपसमा...पे०...दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। अहं खो, भन्ते, यावदेव आकङ्खामि, पीतिया च विरागा ...पे०...ततियं झानं उपसम्पज्ज विहराभि। अहं खो, भन्ते, यावदेव आकङ्खामि, सुखस्स च पहाना...पे०...चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। न सो ख्वाहं, भन्ते, एवं जानन्तो एवं पस्सन्तो कस्स अञ्ञस्स समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा सद्धाय गमिस्सामि। अत्थि अवितक्को अविचारो समाधि, अत्थि वितक्कविचारानं निरोधो'' ति।

एवं वुत्ते, निगण्ठो नाटपुत्तो सकं परिसं अपलोकेत्वा एतदवोच—''इदं भवन्तो पस्सन्तु, याव अनुजुको चायं चित्तो गहपति, याव सठो चायं चित्तो गहपति, याव मायावी चायं चित्तो गहपती'' ति।

''इदानेव खो ते मयं, भन्ते, भासितं एवं आजानाम—'इदं भवन्तो पस्सन्तु, याव उजुको चायं चित्तो गहपति, याव असठो चायं चित्तो गहपति, याव अमायावी चायं चित्तो गहपती' ति। इदानेव च पन मयं, भन्ते, भासितं एवं आजानाम—'इदं भवन्तो पस्सन्तु, याव अनुजुको चायं चित्तो गहपति, याव सठो चायं चित्तो गहपति, याव मायावी चायं चित्तो गहपती' ति। सचे ते, भन्ते, पुरिमं सच्चं, पच्छिमं ते मिच्छा। सचे पन ते, भन्ते, पुरिमं मिच्छा, पच्छिमं ते सच्चं। इमे खो पन, भन्ते, दस सहधम्मिका पञ्हा

प्राप्त कर साधना करता हूँ। मैं, भन्ते! वितर्क विचारों के शान्त हो जाने से...पूर्ववत्...द्वितीय ध्यान...प्रीति के वैराग्य से...तृतीय ध्यान...सुख के प्रहाण से...पूर्ववत्...चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर साधना करता हूँ। भन्ते! जब मैं ऐसा जानता हूँ, तथा ऐसी क्रिया का साक्षात्कार कर चुका हूँ तो भन्ते! मैं इस विषय में किसी अन्य ब्राह्मण या श्रमण में श्रद्धा रखने क्यों जाऊँ! भन्ते! वितर्कविचाररहित समाधि भी होती है तथा इन वितर्क विचारों का निरोध भी सम्भव है।''

गृहपति द्वारा ऐसा कहे जाने पर निगण्ठ नाटपुत्त ने अपनी शिष्यमण्डली से कहा—''आप लोग देखें—यह चित्त गृहपति हृदय से कितना कुटिल, कितना धूर्त एवं मायावी (कपटी) है!''

''भन्ते! अभी कुछ ही क्षण पूर्व आप ने ही कहा था—'आप लोग देखें—यह चित्त गृहपति कितना सरल, कितना शुद्धहृदय एवं कितना निष्कपट है'। तथा अब आप मेरा उपर्युक्त उत्तर सुन कर यह कह रहे हैं—'आप लोग देखें—यह चित्त गृहपति कितना कुटिल, कितना धूर्त एवं कितना मायावी है'। भन्ते! यदि आप की कही हुई पहली बात सत्य है तो बाद में कही हुई आप की बात असत्य है। तथा यदि आप की कही हुई दूसरी बात सत्य है तो पहली बात असत्य होनी चाहिये। भन्ते! किसी भी प्रश्न के साथ ये दश

आगच्छन्ति। यदा नेसं अत्थं आजानेय्यासि, अथ मं पटिहरेय्यासि सद्धिं निगण्ठपरिसाय। एको पञ्हो एको उद्देसो एकं वेय्याकरणं। द्वे पञ्हा द्वे उद्देसा द्वे वेय्याकरणानि। तयो पञ्हा तयो उद्देसा तीणि वेय्याकरणानि। चत्तारो पञ्हा [B.489] चत्तारो उद्देसा चत्तारि वेय्याकरणानि। पञ्च पञ्हा पञ्च उद्देसा पञ्च वेय्याकरणानि। छ पञ्हा छ उद्देसा छ वेय्याकरणानि। सत्त पञ्हा सत्त उद्देसा सत्त वेय्याकरणानि। अट्ठ पञ्हा अट्ठ उद्देसा अट्ठ वेय्याकरणानि। नव पञ्हा नव उद्देसा नव वेय्याकरणानि। दस [R.300] पञ्हा दस उद्देसा दस वेय्याकरणानी'' ति।

अथ खो चित्तो गहपति निगण्ठं नाटपुत्तं इमे दस सहधम्मिके पञ्हे आपुच्छित्वा उट्ठायासना पक्कामी ति॥ •

९. अचेलकस्सपसुत्तं

९. तेन खो पन समयेन अचेलो कस्सपो मच्छिकासण्डं अनुप्पत्तो होति [N.267] चित्तस्स गहपतिनो पुराणगिहिसहायो। अस्सोसि खो चित्तो गहपति—''अचेलो किर कस्सपो मच्छिकासण्डं अनुप्पत्तो अम्हाकं पुराणगिहिसहायो'' ति। अथ खो चित्तो गहपति येन अचेलो कस्सपो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा अचेलेन कस्सपेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो चित्तो गहपति अचेलं कस्सपं एतदवोच—''कीवचिरं पब्बजितोसि, भन्ते कस्सपा'' ति?

बातें सम्पृक्त रहती हैं। जब आप इन प्रश्नों का उत्तर जान लें तब मुझे और अपनी इस शिष्यमण्डली को समझावें। (१) जिस का प्रश्न एक का संकेत करता हो उस का एक ही उत्तर होना चाहिये। (२) जिस का प्रश्न दो का संकेत करता हो उस के दो ही उत्तर होना चाहिये। (३) जिस का प्रश्न तीन...। (४) जिस का प्रश्न चार का...। (५) जिस का प्रश्न पाँच का...। (६) जिस का प्रश्न छह...। (७) जिस का प्रश्न सात...। (८) जिस का प्रश्न आठ...। (९) जिस का प्रश्न नौ का...। (१०) जिस का प्रश्न दश का संकेत करता हो उस के दश ही उत्तर होना चाहिये।

तब चित्त गृहपति निगण्ठ नाटपुत्त से ये प्रश्न पूछ कर चल दिये॥ •

९. अचेलकाश्यपसूत्र : : अचेल काश्यप अर्हत् बने

९. उस समय चित्त गृहपति का पहले गृहस्थ का मित्र अचेल काश्यप उस समय मत्स्यिकाषण्ड में आया हुआ था। चित्त गृहपति ने जब सुना कि उस का एक पुराना मित्र अचेल काश्यप मत्स्यिकाषण्ड में आया हुआ है तो चित्त गृहपति अचेल काश्यप से मिलने के लिये उस के साधनास्थल पर गया। तथा उस से कुशलमङ्गल पूछ कर एक तरफ बैठ

"तिंसमत्तानि खो मे, गहपति, वस्सानि पब्बजितस्सा" ति।

"इमेहि पन ते, भन्ते, तिंसमत्तेहि वस्सेहि अत्थि कोचि उत्तरिं मनुस्सधम्मो अलमरियञाणदस्सनविसेसो अधिगतो फासुविहारो" ति?

"इमेहि खो मे, गहपति, तिंसमत्तेहि वस्सेहि पब्बजितस्स नत्थि कोचि उत्तरिमनुस्सधम्मो अलमरियञाणदस्सनविसेसो अधिगतो फासुविहारो, अञ्ञत्र नग्गेय्या च मुण्डेय्या च पावळनिप्फोटनाय चा" ति।

एवं वुत्ते, चित्तो गहपति अचेलं कस्सपं एतदवोच—"अच्छरिय वत, भो, अब्भुतं वत, भो! धम्मस्स स्वाक्खातता यत्र हि नाम तिंसमत्तेहि वस्सेहि न कोचि [R.301] उत्तरिमनुस्सधम्मो अलमरियञाणदस्सनविसेसो अधिगतो अभविस्स फासुविहारो, अञ्ञत्र नग्गेय्या च मुण्डेय्या च पावळनिप्फोटनाय चा" ति!

"तुय्हं पन, गहपति, कीवचिरं उपासकत्तं उपगतस्सा" ति?

"मय्हं पि खो पन, भन्ते, तिंसमत्तानि वस्सानि उपासकत्तं उपगतस्सा" ति।

[B.490] "इमेहि पन ते, गहपति, तिंसमत्तेहि वस्सेहि अत्थि कोचि उत्तरिमनुस्सधम्मो अलमरियञाणदस्सनविसेसो अधिगतो फासुविहारो" ति?

गया। एक तरफ बैठे चित्त गृहपति ने अचेल काश्यप से पूछा—"आप को प्रव्रजित हुए कितने दिन हुए?"

अचेल काश्यप ने उत्तर दिया—"गृहपति! मुझे प्रव्रजित हुए तीस वर्ष हो चुके।"

(गृहपति—) "तो इस तीस वर्ष में तुमने इस धर्म के माध्यम से कोई अलौकिक चमत्कार वाली ऋद्धि प्राप्त की है? या कोई सरल साधनाविधि प्राप्त की है?"

"नहीं, गृहपति! मैं तो इस तीस वर्ष में ऐसा कुछ विशेष अधिगत न कर पाया। मैं इतने लम्बे समय तक केवल नग्न रह कर या तो घूमता रहा, या सिर मुँडाता रहा, या फिर चारिका करते करते अपने पैरों को ही आहत (व्रणित) करता रहा!"

यह सुन कर चित्त गृहपति ने उस अचेल काश्यप को ये व्यङ्ग्य वचन कहे—"उस धर्म की यह बहुत आश्चर्यमय एवं अद्भुत बात है कि आज उस में प्रव्रज्या लिये हुए तुम्हें तीस वर्ष बीतने पर भी न कोई अलौकिक चमत्कारमय ऋद्धि प्राप्त कर सके, न कोई सरल साधनाविधि खोज सके। केवल नंगे पैरों से घूमते रहे, सिर मुँडाते रहे या फिर चारिका करते करते अपने पैरों को आहत करते रहे!"

"और गृहपति! आप को उपासकत्व स्वीकार किये कितना समय हुआ?"

"मुझे भी उपासकत्व स्वीकार किये हुए तीस वर्ष हो चुके।"

"तुम ने इस अन्तराल में इस धर्म के माध्यम से कोई अलौकिक चमत्कारमय ...पूर्ववत्... प्राप्त की है?"

"गिहिनो पि सिया, भन्ते। अहं हि, भन्ते, यावदेव आकङ्खामि, विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। अहं हि, भन्ते, यावदेव आकङ्खामि, वितक्कविचारानं [N.268] वूपसमा दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। अहं हि, भन्ते, यावदेव आकङ्खामि, पीतिया च विरागा...पे०...ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। अहं हि, भन्ते, यावदेव आकङ्खामि, सुखस्स च पहाना...पे०...चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। सच खो पनाहं, भन्ते, भगवतो पठमतरं कालं करेय्यं, अनच्छरियं खो पनाहं यं मं भगवा एवं ब्याकरेय्य— 'नत्थि तं संयोजनं येन संयोजनेन संयुत्तो चित्तो गहपति पुन इमं लोकं आगच्छेय्या'" ति।

एवं वुत्ते, अचेलो कस्सपो चित्तं गहपतिं एतदवोच—"अच्छरियं वत, भो, अब्भुतं वत, भो! धम्मस्स स्वाक्खातता यत्र हि नाम गिही ओदातवसनो एवरूपं उत्तरिं मनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं अधिगमिस्सति फासुविहारं। [R.302] लभेय्याहं, गहपति, इमस्मिं धम्मविनये पब्बजं, लभेय्यं उपसम्पदं" ति।

अथ खो चित्तो गहपति अचेलं कस्सपं आदाय येन थेरा भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा थेरे भिक्खू एतदवोच—"अयं, भन्ते, अचेलो कस्सपो अम्हाकं पुराणगिहिसहायो। इमं थेरा पब्बाजेन्तु उपसम्पादेन्तु। अहमस्स उस्सुक्कं करिस्सामि चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं" ति। अलत्थ खो अचेलो

"भन्ते! मैं, गृहस्थ होते हुए भी, जब तक चाहता हूँ...पूर्ववत्...प्रथम ध्यान...द्वितीय ध्यान...तृतीय ध्यान...चतुर्थ ध्यान की साधना करता रहता हूँ। इस में कोई आश्चर्य की बात न होगी कि, यदि मेरी भगवान् के महापरिनिर्वाण से पूर्व मृत्यु हो जाय तो, भगवान् मेरे विषय में यही कहेंगे—'चित्त गृहपति को ऐसा कोई संयोजन (सांसारिक बन्धन) नहीं रहा जिस से बँध कर गृहपति को पुनः इस संसार में आना पड़े'।"

गृहपति द्वारा ऐसा कहे जाने पर वह अचेल काश्यप चित्त गृहपति को यों बोला— "धन्य है वह स्वाख्यात धर्म, जहाँ श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ उपासक भी जिस की आराधना कर ऐसा अलौकिक चमत्कारमय ऋद्धिबल प्राप्त कर लें, तथा दैनिक साधना को भी सरल एवं स्वानुकूल बना लें। क्या, गृहपति! मैं भी इस धर्म में प्रव्रज्या, उपसम्पदा प्राप्त कर सकता हूँ?"

तब चित्त गृहपति अचेल काश्यप को ले कर वहाँ गया, जहाँ स्थविर भिक्षु साधना में लीन थे। वहाँ जा कर उस ने स्थविरों से निवेदन किया—"भन्ते! यह अचेल काश्यप मेरा गृहस्थ धर्म का पुराना साथी है। इसे आप लोग प्रव्रज्या दें, उपसम्पदा दें। मैं इस के

कस्सपो इमस्मिं धम्मविनये पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो च पनायस्मा कस्सपो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति, तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। "खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया" ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा कस्सपो अरहतं अहोसी ति॥ ●

१०. गिलानदस्सनसुत्तं

[B.491] १०. तेन खो पन समयेन चित्तो गहपति आबाधिको होति दुक्खितो बाळ्हगिलानो। अथ खो सम्बहुला आरामदेवता वनदेवता रुक्खदेवता ओसधितिणवनप्पतीसु अधिवत्था देवता सङ्गम्म समागम्म चित्तं गहपतिं एतदवोचुं—"पणिधेहि, गहपति, अनागतमद्धानं राजा अस्सं चक्कवत्ती" ति।

[N.269] एवं वुत्ते, चित्तो गहपति ता आरामदेवता वनदेवता रुक्खदेवता ओसधितिणवनप्पतीसु अधिवत्था देवता एतदवोच—"तं पि अनिच्चं, तं पि अद्धुवं, तं पि पहाय गमनीयं" ति। एवं वुत्ते, चित्तस्स गहपतिनो मित्तामच्चा ञातिसालोहिता चित्तं [R.303] गहपतिं एतदवोचुं—"सतिं, अय्यपुत्त, उपट्ठपेहि, मा विप्पलपी" ति।

चीवर एवं पिण्डपात आदि की निरन्तर व्यवस्था करता रहूँगा।" तब उन स्थविर भिक्षुओं ने उस अचेल काश्यप को प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा दी। कुछ ही समय बाद, वह अचेल काश्यप एकान्त में साधना करता हुआ शीघ्र ही धर्म के उस निष्कर्ष तक पहुँच गया जिस के ज्ञान के लिये अन्य कुलपुत्र भी घर से बेघर हो प्रव्रज्या लिया करते हैं। धीरे धीरे उस को यह बात समझ में आ गयी कि उस की जाति (भवपरम्परा) क्षीण हो चुकी है, उस की धर्मसाधना सफल हो चुकी है, उस ने अपना कर्त्तव्य पूर्ण कर लिया है। तथा वह भी, साधना में उत्कृष्टता प्राप्त कर एक दिन अर्हतों में अपनी गणना करा ले गया॥ ●

१०. ग्लानदर्शनसूत्र : : चित्त गृहपति का देहावसान

१०. उस समय चित्त गृहपति किसी गम्भीर रोग से ग्रस्त हो गया। इस से वह बहुत कष्ट एवं पीड़ा अनुभव करने लगा। तब बहुत से आराम (विहार के उद्यान), वन, वृक्ष एवं ओषधि तृण तथा वनस्पतियों के अधिवासी देवता वहाँ एकत्र हुए तथा चित्त गृहपति को यों सान्त्वना देने लगे—"दृढ सङ्कल्प करो कि तुम भावी जीवन में चक्रवर्ती राजा बनो।"

देवताओं द्वारा ऐसा कहे जाने पर, चित्त गृहपति ने उन देवताओं को यह उत्तर दिया—"उस पद का सङ्कल्प (आकांक्षा) करने का क्या लाभ! वह भी तो अनित्य है,

"किं ताहं वदामि यं मं तुम्हे एवं वदेथ—'सतिं, अय्यपुत्त, उपट्ठपेहि, मा विप्पलपी''' ति?

"एवं खो त्वं, अय्यपुत्त, वदेसि—'तं पि अनिच्चं, तं पि अद्धुवं, तं पि पहाय गमनीयं''' ति।

"तथा हि पन मं आरामदेवता वनदेवता रुक्खदेवता ओसधितिणवनप्पतीसु अधिवत्था देवता एवमाहंसु—'पणिधेहि, गहपति, अनागतमद्धानं राजा अस्सं चक्कवत्ती' ति। ताहं एवं वदामि—'तं पि अनिच्चं...पे०...तं पि पहाय गमनीयं''' ति।

"किं पन ता, अय्यपुत्त, आरामदेवता वनदेवता रुक्खदेवता ओसधितिणवनप्पतीसु अधिवत्था देवता अत्थवसं सम्पस्समाना एवमाहंसु—'पणिधेहि, गहपति, अनागतमद्धानं राजा अस्सं चक्कवत्ती''' ति?

"तासं खो आरामदेवतानं वनदेवतानं रुक्खदेवतानं ओसधितिणवनप्पतीसु अधिवत्थानं देवतानं एवं होति—'अयं खो चित्तो गहपति, सीलवा कल्याणधम्मो। सचे पणिदहिस्सति—अनागतमद्धानं राजा अस्सं चक्कवत्ती' ति, तस्स खो अयं इज्झिस्सति, सीलवतो चेतोपणिधि विसुद्धत्ता धम्मिको धम्मिकं फलं अनुपस्सती' ति। इमं खो ता आरामदेवता वनदेवता रुक्खदेवता ओसधितिणवनप्पतीसु अधिवत्था देवता अत्थवसं

अध्रुव है, उसे भी एक दिन नष्ट हो जाना है।" ऐसा कहे जाने पर उस के पास बैठे पारिवारिक परिजनों ने चित्त गृहपति को यों सावधान किया—"आर्यपुत्र! अपनी स्मृति को व्यवस्थित रखो, प्रलाप न करो!"

तब चित्त गृहपति ने उन से पूछा—"आप लोग मुझे यों सावधान क्यों कर रहे हैं, मैने ऐसा क्या किया है?"

"क्यों कि अभी आप ऐसा प्रलाप कर रहे थे कि वह भी तो अनित्य है, वह भी अध्रुव है, उसे भी विनष्ट हो जाना है।"

"नहीं, मैं प्रलाप नहीं कर रहा था, अपि तु मेरे पास यहाँ के आरामदेवता आदि आये थे...पूर्ववत्...।"

"परन्तु उन देवताओं ने आप में क्या देख कर आप को ऐसा सङ्कल्प लेने को कहा था?"

"उन देवताओं ने यह सोचा था—'यह गृहपति शीलवान् है, कल्याणकारी है। यदि यह ऐसा सङ्कल्प लेगा तो इस का यह सङ्कल्प, इस के शीलवान् होने के कारण, अवश्य सिद्ध होगा। इस तरह एक धर्माचारी अपने आचरण का धार्मिक फल प्राप्त कर

सम्पस्समाना एवमाहंसु—'पणिधेहि, गहपति, अनागतमद्धानं राजा अस्सं चक्कवत्ती' ति। ताहं एवं वदामि—'तं पि अनिच्चं, तं पि अद्धुवं, तं पि पहाय गमनीयं''' ति।
[B.492]''तेन हि, अय्यपुत्त, अम्हे पि ओवदाही'' ति।

''तस्मा हि वो एवं सिक्खितब्बं—बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागता [R.304] भविस्साम—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो [N.270] लोकविदू अनुत्तरो पुरिमदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागता भविस्साम—'स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही' ति। सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागता भविस्साम—'सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, उजुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, ञायप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, सामीचिप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, यदिदं चत्तारि पुरिसयुगानि अट्ठ पुरिसपुग्गला एस भगवतो सावकसङ्घो आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा' ति। यं खो पन किञ्चि कुले देय्यधम्मं सब्बं तं अप्पटिविभत्तं भविस्सति सीलवन्तेहि कल्याणधम्मेही ति एवं हि वो सिक्खितब्बं'' ति।

अथ खो चित्तो गहपति मित्तामच्चे ञातिसालोहिते बुद्धे च धम्मे च सङ्घे च चागे च समादपेत्वा कालमकासी ति॥ •

चित्तसंयुत्तं समत्तं॥

सकेगा'। यही सोच कर उन देवताओं ने मुझ को ऐसा सङ्कल्प लेने को कहा था। उन्हीं को मैं यह उत्तर दे रहा था, न कि कोई प्रलाप कर रहा था।''

''तो, आर्यपुत्र! हमें भी कुछ धार्मिक अनुशासन कीजिये।''

''तुम्हें यों सीखना चाहिये—१. भगवान् बुद्ध में मेरी दृढ श्रद्धा होगी; क्यों कि वे भगवान्, ज्ञानी, सम्यक्सम्बुद्ध...पूर्ववत्...हैं। २. बुद्धोपदिष्ट धर्म में मेरी दृढ श्रद्धा होगी; क्यों कि वह धर्म भगवान् बुद्ध द्वारा स्वाख्यात है...पूर्ववत्...। ३. बुद्धानुशिष्ट सङ्घ में मेरी दृढ श्रद्धा होगी; क्यों कि वह...पूर्ववत्...चार युगल पुरुष एवं आठ पुरुषों से युक्त है...। ४. जो भी परिवारों की ओर से दान दक्षिणा देनी हो वह सब कल्याणधर्मा शीलवान् भिक्षुओं को ही देनी चाहिये। यही तुम्हें सीखना चाहिये।''

यों, वह चित्त गृहपति अपने मित्र, अमात्य, परिवार के बान्धवजनों को बुद्ध धर्म एवं सङ्घ में अतिशय श्रद्धा का सत्परामर्श देता हुआ अपना देहावसान कर गया॥ •

चित्तसंयुक्त समाप्त॥

तस्सुद्दानं

संयोजनं द्वे इसिदत्ता, महको कामभू पि च।
गोदत्तो च निगण्ठो च, अचेलेन गिलानदस्सनं ति॥ ●

—— ※ ——

इस चित्तसंयुक्त में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. संयोजनसूत्र, २. प्रथम ऋषिदत्तसूत्र, ३. द्वितीय ऋषिदत्तसूत्र, ४. महकप्रातिहार्यसूत्र, ५. प्रथम कामभूसूत्र, ६. द्वितीय कामभूसूत्र, ७. गोदत्तसूत्र, ८. निर्ग्रन्थज्ञातिपुत्रसूत्र, ९. अचेलकाश्यपसूत्र एवं १०. ग्लानदर्शनसूत्र॥●

—— ※ ——

४२. गामणिसंयुत्तं

१. चण्डसुत्तं

[N.271, B.493, R.305] १. सावत्थिनिदानं। अथ खो चण्डो गामणि येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो चण्डो गामणि भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो चण्डो चण्डो त्वेव सङ्खं गच्छति; को पन, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो सोरतो सोरतो त्वेव सङ्खं गच्छती" ति?

"इध, गामणि, एकच्चस्स रागो अप्पहीनो होति। रागस्स अप्पहीनत्ता परे कोपेन्ति, परेहि कोपियमानो कोपं पातुकरोति। सो चण्डो त्वेव सङ्खं गच्छति। दोसो अप्पहीनो होति। दोसस्स अप्पहीनत्ता परे कोपेन्ति, परेहि कोपियमानो कोपं पातुकरोति। सो चण्डो त्वेव सङ्खं गच्छति। मोहो अप्पहीनो होति। मोहस्स अप्पहीनत्ता परे कोपेन्ति, परेहि कोपियमानो कोपं पातु करोति। सो चण्डो त्वेव सङ्खं गच्छति। अयं खो, गामणि, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चो चण्डो चण्डो त्वेव सङ्खं गच्छति।

"इध पन, गामणि, एकच्चस्स रागो पहीनो होति। रागस्स पहीनत्ता परे न कोपेन्ति, परेहि कोपियमानो कोपं न पातुकरोति। सो सोरतो त्वेव सङ्खं गच्छति। दोसो

---

४२. ग्रामणिसंयुक्त

१. चण्डसूत्र : : **चण्डत्व एवं सरलत्व में हेतु**

१. यह सूत्र **श्रावस्ती में**...। तब चण्ड ग्रामणी (ग्राम का मुखिया) जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा। उन्हें प्रणाम कर वह एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठा हुआ वह ग्रामणी भगवान् से यों निवेदन करने लगा—"भन्ते! इस बात में क्या हेतु या क्या कारण है कि कोई चण्ड (उग्र=क्रोधी) होता हुआ 'चण्ड' कहलाता है, तथा कोई व्यवहार में चण्ड होता हुआ भी सुरत (सरल) ही कहलाता है?"

"ग्रामणि! यहाँ कोई पुरुष राग से अप्रहीण (युक्त) होता है, अतः वह राग से युक्त होने के कारण वह दूसरों पर क्रोध करता है, या दूसरों द्वारा क्रोध दिलाये जाने पर उन से कलह करता है। द्वेष से...मोह से अप्रहीण होता है...कलह करता है, ऐसा पुरुष चण्ड होते हुए 'चण्ड' ही कहलाता है। यह कारण है कि कोई पुरुष 'चण्ड' कहलाता है। (क)

"फिर, ग्रामणि! कोई पुरुष रागविहीन होता है, रागविहीन होने के कारण वह

पहीनो होति। दोसस्स पहीनत्ता परे न कोपेन्ति, परेहि कोपियमानो कोपं न पातुकरोति। सो सोरतो त्वेव सङ्खं गच्छति। मोहो पहीनो होति। मोहस्स पहीनत्ता परे न कोपेन्ति, परेहि कोपियमानो कोपं न पातुकरोति। सो सोरतो सोरतो त्वेव सङ्खं गच्छति। अयं खो, गामणि, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चो सोरतो सोरतो त्वेव सङ्खं गच्छती'' ति।

एवं वुत्ते, चण्डो गामणि भगवन्तं एतदवोच—''अभिक्कन्तं, भन्ते [R. 306] अभिक्कन्तं, भन्ते! सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा [B.494] विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—[N.272] चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेवं भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं, भन्ते, भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ •

२. तालपुटसुत्तं

२. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिलापे। अथ खो तालपुटो नटगामणि येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो तालपुटो नटगामणि भगवन्तं एतदवोच—''सुतं मेतं, भन्ते, पुब्बकानं आचरियपाचरियानं नटानं भासमानानं—'यो सो नटो

दूसरों पर क्रोध नहीं करता; न दूसरे उसे क्रोध दिलाते हैं, यों दूसरों द्वारा क्रोध न दिलाये जाने के कारण उन से कलह या विवाद नहीं करता। द्वेषविहीन...मोहविहीन होता है...कलह या विवाद नहीं करता; ऐसा पुरुष सरल होते हुए 'सरल' ही कहलाता है। यह कारण है कि कोई पुरुष सरल होते हुए 'सरल' कहलाता है।'' (ख)

भगवान् द्वारा ऐसा उपदेश किये जाने पर वह चण्ड ग्रामणी भगवान् से यों बोला—''भन्ते! आपने तो मेरे प्रश्न का बहुत स्पष्ट व्याख्यान कर दिया। यह तो वैसा ही हुआ, जैसे कोई ओंधे (उल्टे) को सीधा कर दे, ढके हुए को खोल दे, मार्ग भटके हुए यात्री को उचित मार्ग बता दे या अन्धकार में तैल का दीपक जला कर रख दे कि आने जाने वाले मार्ग देख लें; इसी तरह आपने नाना प्रकार से प्रसङ्ग को स्पष्ट कर दिया।

''अत: मैं, भन्ते! आप की, धर्म तथा सङ्घ की शरण में जाता हूँ। आज से आप मुझे, प्राण रहने तक, अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें''॥ •

२. तालपुटसूत्र : : नटों की नरक में उत्पत्ति

२. एक समय भगवान् **राजगृह** के वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय तालपुट नामक कोई नटों का मुखिया वहाँ आया, तथा भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठते हुए वह भगवान् से यों बोला—''भन्ते! मैने अपने पुराने

रङ्गमज्झे समज्जमज्झे सच्चालिकेन जनं हासेति रमेति, सो कायस्स भेदा परं मरणा पहासानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती' ति। इध भगवा किमाहा'' ति?

''अलं, गामणि, तिट्ठतेतं। मा मं एतं पुच्छी'' ति। दुतियं पि खो तालपुटो नटगामणि भगवन्तं एतदवोच—''सुतं मेतं, भन्ते, पुब्बकानं आचरियपाचरियानं नटानं भासमानानं—'यो सो नटो रङ्गमज्झे समज्जमज्झे सच्चालिकेन जनं हासेति रमेति, सो कायस्स भेदा परं मरणा पहासानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती' ति। इध भगवा किमाहा'' ति?

''अलं, गामणि, तिट्ठतेतं। मा मं एतं पुच्छी'' ति। ततियं पि खो तालपुटो नटगामणि भगवन्तं एतदवोच—''सुतं मेतं, भन्ते, पुब्बकानं आचरियपाचरियानं नटानं भासेमानानं—'यो सो नटो रङ्गमज्झे समज्जमज्झे सच्चालिकेन जनं हासेति रमेति, सो [R.307] कायस्स भेदा परं मरणा पहासानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती' ति। इध भगवा किमाहा'' ति?

''अद्धा खो त्याहं, गामणि, न लभामि—'अलं, गामणि, तिट्ठतेतं, मा मं एतं पुच्छी' ति। अपि च त्याहं ब्याकरिस्सामि। पुब्बे खो, गामणि, सत्ता अवीतरागा रागबन्धनबद्धा। तेसं नटो रङ्गमज्झे समज्जमज्झे ये धम्मा रजनीया ते उपसंहरति भिय्योसोमत्ताय। पुब्बे खो, गामणि, सत्ता अवीतदोसा दोसबन्धनबद्धा। तेसं नटो [N.273, B.495] रङ्गमज्झे समज्जमज्झे ये धम्मा रजनीया ते उपसंहरति भिय्योसोमत्ताय। पुब्बे खो, गामणि, सत्ता अवीतमोहा मोहबन्धनबद्धा। तेसं नटो रङ्गमज्झे समज्जमज्झे ये धम्मा मोहनीया ते उपसंहरति भिय्योसोमत्ताय। सो अत्तनो मत्तो पमत्तो परे मदेत्वा

आचार्य प्राचार्यों को यह कहते सुना है—'जो नट रङ्गमञ्च पर या किसी विशेष मेले आदि के अवसरों पर अपने सत्य-झूठ (कृत्रिम) कौतुक क्रीड़ाओं से लोगों को हँसाता है, उन का मनोविनोद करता है, वह इस देहपात के बाद, मरणानन्तर, प्रहास देवों के बीच उत्पन्न होता है।' भन्ते! इस विषय में आप का क्या मन्तव्य (कहना) है?''

''इसे रहने दो, ग्रामणि! मैं कह नहीं पाऊँगा; अत: तुम मुझ से इस विषय में न पूछो।''

दूसरी बार भी...पूर्ववत्...तीसरी बार भी...भगवान् का इस पर क्या कहना है?

भगवान् बोले—''ग्रामणि! मैं तुम्हें बार बार निषेध कर रहा हूँ; परन्तु तुम्हारा आग्रह सुनने का कुछ अधिक ही है तो सुनो। ग्रामणि! पहले के लोग वीतराग नहीं थे, वे रागबन्धन से आबद्ध थे। रङ्गमञ्च पर, या मेले आदि में उन नटों की वे रागमयी झूठी सच्ची कौतुक क्रीडाएँ उन में और अधिक राग उत्पन्न कर देती थीं। इसी तरह, ग्रामणि! पहले के

पमादेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा पहासो नाम निरयो तत्थ उपपज्जति। सचे खो पनस्स एवं दिट्ठि होति—'यो सो नटो रङ्गमज्झे समज्जमज्झे सच्चालिकेन जनं हासेति रमेति, सो कायस्स भेदा परं मरणा पहासानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती' ति, सास्स होति मिच्छादिट्ठि। मिच्छादिट्ठिकस्स खो पनाहं, गामणि, पुरिसपुग्गलस्स द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरं गतिं वदामि—निरयं वा तिरच्छानयोनिं वा'' ति।

एवं वुत्ते, तालपुटो नटगामणि, परोदि, अस्सूनि पवत्तेसि।

''एतं खो त्याहं, गामणि, नालत्थं—'अलं, गामणि, तिट्ठतेतं; मा मं एतं पुच्छी''' ति।

''नाहं, भन्ते, एतं रोदामि यं मं भगवा एवमाह; अपि चाहं, भन्ते, पुब्बकेहि आचरियपाचरियेहि नटेहि दीघरत्तं निकतो वञ्चितो पलुद्धो—'यो सो नटो रङ्गमज्झे समज्जमज्झे सच्चालिकेन जनं हासेति रमेति सो कायस्स भेदा परं मरणा [R.308] पहासानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती''' ति।

''अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते! सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेवं भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। लभेय्याहं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं'' ति। अलत्थ खो तालपुटो

लोग वीतद्वेष नहीं थे... वीतमोह नहीं थे...पूर्ववत्...अधिक मोह उत्पन्न कर देती थीं। इस तरह वे स्वयं मत्त प्रमत्त हो दूसरों को भी मत्त प्रमत्त करते रहते हैं। अत: वे मरणानन्तर, 'प्रहास' नामक नरक में उत्पन्न होते हैं। यदि किसी की यह मान्यता हो कि ये नट रङ्गमञ्च पर या किसी मेले आदि के अवसरों पर अपनी कौतुकमयी क्रीडाओं से लोगों को हँसाते हैं उन का मनोविनोद करते हैं, अत: वे मरणानन्तर प्रहासदेवों के बीच उत्पन्न होते हैं, तो उस की यह मान्यता मिथ्या है। ग्रामणि! मैं कहता हूँ कि ऐसे मनुष्य की दो ही गतियाँ होती हैं—या तो वह नरक में उत्पन्न होता है या फिर तिरश्चीन योनि में।''

यह सुन कर वह तालपुत्र नट रोने लगा, आँसू बहाने लगा। भगवान् बोले—''तालपुत्र! मैं तो पहले ही कह रहा था कि इस विषय में मुझ से सचाई न पूछो, अन्यथा तुम्हें कष्ट होगा।''

''नहीं, भन्ते! आप ने ऐसा कह दिया, इसलिये मैं नहीं रो रहा हूँ। मैं तो इसलिये रो रहा हूँ कि मेरे आचार्यों ने मुझे दीर्घकाल तक ठगा तथा धोखा दिया। भन्ते! आप ने मेरे

नटगामणि भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो च पनायस्मा तालपुटो...पे०...अरहतं अहोसी ति॥ ●

३. योधाजीवसुत्तं

[N.274] ३. अथ खो योधाजीवो गामणि येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो योधाजीवो गामणि भगवन्तं एतदवोच—"सुतं मेतं, भन्ते, पुब्बकानं आचरियपाचरियानं योधाजीवानं भासमानानं—'यो सो योधाजीवो सङ्गामे [B.496] उस्सहति वायमति, तमेनं उस्सहन्तं वायमन्तं परे हनन्ति परियापादेन्ति, सो कायस्स भेदा परं मरणा परजितानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती' ति। इध भगवा किमाहा" ति?

"अलं, गामणि, तिट्ठतेतं; मा मं एतं पुच्छी" ति।

दुतियं पि खो...पे०...ततियं पि खो योधाजीवो गामणि भगवन्तं एतदवोच—"सुतं मेतं, भन्ते, पुब्बकानं आचरियपाचरियानं योधाजीवानं भासमानानं—'यो सो योधाजीवो सङ्गामे उस्सहति वायमति, तमेनं उस्सहन्तं वायमन्तं परे हनन्ति परियापादेन्ति, सो कायस्स भेदा परं मरणा परजितानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती' ति। इध भगवा किमाहा" ति?

[R.309] "अद्धा खो त्याहं, गामणि, न लभामि—'अलं, गामणि, तिट्ठतेतं; मा मं एतं पुच्छी' ति। अपि च त्याहं ब्याकरिस्सामि। यो सो, गामणि, योधाजीवो सङ्गामे उस्सहति वायमति, तस्स तं चित्तं पुब्बे गहितं दुक्कटं दुप्पणिहितं—'इमे सत्ता हञ्ञन्तु वा

प्रश्न के उत्तर में बहुत ही स्पष्ट व्याख्यान कर दिया...पूर्ववत्...। अच्छा हो, भन्ते! मैं आप से प्रव्रज्या प्राप्त कर सकूँ...पूर्ववत्...अर्हत् हो गया॥" ●

३. युद्धाजीवसूत्र : : योद्धा की भावी गति

३. तब कोई युद्धाजीव (योद्धा) ग्रामणी भगवान् के पास आया...भगवान् से यों बोला—"भन्ते! मैंने अपने पुराने आचार्य प्राचार्यों से सुना है कि जो युद्धजीवी संग्राम में उत्साहपूर्वक जाता है, वहाँ विजयप्राप्ति हेतु उद्योग करता है। ऐसा करते हुए यदि उस युद्ध में मृत्यु हो जाती है तो वह मरणानन्तर स्वर्ग लोक में जा कर परजित देवों के साथ रहता है, उन के इस कथन पर आप की क्या सम्मति है?"

"रहने दे ग्रामणि! मुझ से यह न पूछ। ...पूर्ववत्...।

दूसरी बार भी...तीसरी बार भी..."यदि तेरा आग्रह ही है तो सुन—जो युद्धजीवी संग्राम में उत्साहसम्पन्न हो कर दूसरों पर विजयहेतु उद्योग करता है, उस के चित्त में पहले से यह धारणा रहती है कि मैं इन प्राणियों को मार दूँ, या पकड़ लूँ, या नष्ट कर दूँ,

बज्झन्तु वा उच्छिज्जन्तु वा विनस्सन्तु वा मा वा अहेसुं इति वा' ति। तमेनं उस्सहन्तं वायमन्तं परे हनन्ति परियापादेन्ति; सो कायस्स भेदा परं मरणा परजितो नाम निरयो तत्थ उपपज्जती ति। सचे खो पनस्स एवं दिट्ठि होति—'यो सो योधाजीवो सङ्गामे उस्सहति वायमति तमेनं उस्सहन्तं वायमन्तं परे हनन्ति परियापादेन्ति, सो कायस्स भेदा परं मरणा परजितानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती' ति, सास्स होति मिच्छादिट्ठि। मिच्छादिट्ठिकस्स खो पनाहं, गामणि, पुरिसपुग्गलस्स द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरं गतिं वदामि—निरयं वा तिरच्छानयोनिं वा'' ति।

एवं वुत्ते, योधाजीवो गामणि परोदि, अस्सूनि पवत्तेसि।

''एतं खो त्याहं, गामणि, नालत्थं—'अलं, गामणि, तिट्ठतेतं; मा मं एतं पुच्छी''' ति।

''नाहं, भन्ते, एतं रोदामि यं मं भगवा एवमाह; अपि चाहं, भन्ते, [N.275] पुब्बकेहि आचरियपाचरियेहि योधाजीवेहि दीघरत्तं निकतो वञ्चितो पलुद्धो—'यो सो योधाजीवो सङ्गामे उस्सहति वायमति, तमेनं उस्सहन्तं वायमन्तं परे हनन्ति परियापादेन्ति, सो कायस्स भेदा परं मरणा परजितानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती' ति। अभिक्कन्तं, भन्ते...पे०...अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ •

या उजाड़ दूँ या ऐसा कर दूँ कि इन का अस्तित्व ही न रहे। ऐसे उत्साही या उद्यमी पुरुष का जब दूसरे लोग वध कर दें, समाप्त कर दें तो वह मरणानन्तर 'परजित' नामक नरक में उत्पन्न होता है। यदि इतने पर भी उस का यही विचार हो कि...मरणानन्तर वह परजित देवों के साथ सुख भोग करता है तो यह उस की मिथ्या धारणा है। ऐसी मिथ्या धारणा वाले पुरुष की दो ही गति होती हैं—या तो उस का नरकपात होता है या फिर उस की किसी तिरश्चीन योनि में उत्पत्ति होती है।''

ऐसा कहे जाने पर वह युद्धाजीवी रोने लगा तथा उस की आँखों से आँसू बहने लगे।

तब भगवान् ने कहा—''मैं पहले ही कह रहा था कि मुझ से सचाई न पूछ, अन्यथा तुझे कष्ट होगा''।

ग्रामणी ने कहा—''भन्ते! मैं इसलिये नहीं रो रहा हूँ कि भगवान् ने ऐसा कहा; अपि तु तो इसलिये रो रहा हूँ कि मेरे आचार्य प्राचार्यों ने मुझ को धोखे में रखा, मुझे यह कह कर ठगा कि युद्धजीवी मरणानन्तर परजित देवों के सम्पर्क में जाता है। भन्ते! आप ने बहुत उचित कहा, सत्य बात का इतना स्पष्ट विश्लेषण किया...पूर्ववत्...आज से मुझ को जीवनपर्यन्त अपना शरणागत उपासक समझें॥'' •

४. हत्थारोहसुत्तं

[B.497, R.310] ४. अथ खो हत्थारोहो गामणि येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ...पे०...अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं ति॥ ●

५. अस्सारोहसुत्तं

५. अथ खो अस्सारोहो गामणि येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो अस्सारोहो गामणि भगवन्तं एतदवोच—"सुतं मेतं, भन्ते, पुब्बकानं आचरियपाचरियानं अस्सारोहानं भासमानानं—'यो सो अस्सारोहो सङ्गामे उस्सहति वायमति, तमेनं उस्सहन्तं वायमन्तं परे हनन्ति परियापादेन्ति, सो कायस्स भेदा परं मरणा परजितानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती' ति। इध भगवा किमाहा" ति?

"अलं, गामणि, तिट्ठतेतं; मा मं एतं पुच्छी" ति।

दुतियं पि खो...पे०...ततियं पि खो अस्सारोहो गामणि भगवन्तं एतदवोच—"सुतं मेतं, भन्ते, पुब्बकानं आचरियपाचरियानं अस्सारोहानं भासमानानं—'यो सो अस्सारोहो सङ्गामे उस्सहति वायमति, तमेनं उस्सहन्तं वायमन्तं परे हनन्ति परियापादेन्ति, सो कायस्स भेदा परं मरणा परजितानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती' ति। इध भगवा किमाहा" ति?

"अद्धा खो त्याहं, गामणि, न लभामि—'अलं, गामणि, तिट्ठतेतं; मा मं एतं पुच्छी' ति। अपि च खो त्याहं ब्याकरिस्सामि। यो सो, गामणि, अस्सारोहो सङ्गामे उस्सहति वायमति तस्स तं चित्तं पुब्बे गहितं दुक्कटं दुप्पणिहितं—'इमे सत्ता हञ्ञन्तु वा [R.311] बज्झन्तु वा उच्छिज्जन्तु वा विनस्सन्तु वा मा अहेसुं इति वा' ति। तमेनं उस्सहन्तं वायमन्तं परे हनन्ति परियापादेन्ति, सो कायस्स भेदा परं मरणा परजितो नाम निरयो तत्थ उपपज्जति। सचे खो पनस्स एवं दिट्ठि होति—'यो सो अस्सारोहो सङ्गामे [N.276] उस्सहति वायमति, तमेनं उस्सहन्तं वायमन्तं परे हनन्ति परियापादेन्ति, सो कायस्स भेदा परं मरणा परजितानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती' ति, सास्स होति

---

४. हस्त्यारोहसूत्र : : हस्त्यारोही की भावी गति

४. ...तब कोई हस्त्यारोही भगवान् के पास आया... । ...उपासक समझें॥ ●

(इस सूत्र का भी ऊपर वाले सूत्र की तरह विस्तार कर लें।)

५. अश्वारोहसूत्र : : अश्वारोही की भावी गति

५. ...तब कोई अश्वारोही भगवान् के पास आया...पूर्ववत्...उपासक समझें॥ ●

मिच्छादिट्ठि। मिच्छादिट्ठिकस्स खो पनाहं गामणि, पुरिसपुग्गलस्स द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरं गतिं वदामि—निरयं वा तिरच्छानयोनिं वा'' ति।

एवं वुत्ते, अस्सरोहो गामणि परोदि, अस्सूनि पवत्तेसि। [B.498]

''एतं खो त्याहं, गामणि, नालत्थं—'अलं, गामणि, तिट्ठतेतं; मा मं एतं पुच्छी''' ति।

''नाहं, भन्ते, एतं रोदामि यं मं भगवा एवमाह। अपि चाहं, भन्ते, पुब्बकेहि आचरियपाचरियेहि अस्सारोहेहि दीघरत्तं निकतो वञ्चितो पलुद्धो—'यो सो अस्सारोहो सङ्गामे उस्सहति वायमति, तमेनं उस्सहन्तं वायमन्तं परे हनन्ति परियापादेन्ति, सो कायस्स भेदा परं मरणा परजितानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती' ति। अभिक्कन्तं, भन्ते...पे०...अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ ●

६. असिबन्धकपुत्तसुत्तं

६. एकं समयं भगवा नाळन्दायं विहरति पावारिकम्बवने। अथ खो [R.312] असिबन्धकपुत्तो गामणि येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो असिबन्धकपुत्तो गामणि भगवन्तं एतदवोच—''ब्राह्मणा, भन्ते, पच्छाभूमका कामण्डलुका सेवालमालिका उदकोरोहका अग्गि-परिचारका। ते मतं कालङ्कतं उय्यापेन्ति नाम सञ्ञापेन्ति नाम सग्गं नाम ओक्कामेन्ति। भगवा पन, भन्ते, अरहं सम्मासम्बुद्धो पहोति तथा कातुं यथा सब्बो लोको कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्या'' ति?

''तेन हि, गामणि, तञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि। यथा ते खमेय्य तथा नं

(इस सूत्र का विस्तार भी 'युद्धाजीवसूत्र' के समान ही कर लें।)

६. असिबन्धकसूत्र : : खड्गधारी की भावी उत्पत्ति

६. एक समय भगवान् (बुद्ध) नालन्दा के प्रावारिकाम्रवन में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय कोई असिबन्धक (खड्गधारी) का पुत्र, जो कि ग्राम का मुखिया भी था, भगवान् के पास आया, उन्हें प्रणाम कर वह यों बोला—''भन्ते! ये कमण्डलु हाथ में लिये हुए, सैवाल की माला पहन कर, प्रात: सायम्—दोनों समय स्नान करने वाले, अग्निपरिचर्या करने वाले, पश्चिम भूमिवासी ब्राह्मणजन मृत (प्रेत) का आह्वान करते हैं, उस से बात कराते हैं, उसे चलता हुआ दिखाते हैं, तथा उसे स्वर्ग में भेजते हैं; भन्ते! भगवान् (आप) भी अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध हैं; अत: आप भी ऐसा कर सकते हैं कि यह समस्त संसार मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक प्राप्त कर सके।''

''तो, ग्रामणि! मैं तुम ही से इस प्रसङ्ग में प्रश्न करता हूँ, तुम मेरे इस प्रश्न का

ब्याकरेय्यासी ति। तं किं मञ्ञसि, गामणि, इधस्स पुरिसो पाणातिपाती अदिन्नादायी कामेसुमिच्छाचारी मुसावादी पिसुणवाचो फरुसवाचो सम्फप्पलापी अभिज्झालु ब्यापन्नचित्तो मिच्छादिट्ठिको। तमेनं महा जनकायो सङ्गम्म समागम्म आयाचेय्य थोमेय्य [N.277] पञ्जलिको अनुपरिसक्केय्य—'अयं पुरिसो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जतू' ति। तं किं मञ्ञसि, गामणि, अपि नु सो पुरिसो महतो जनकायस्स आयाचनहेतु वा थोमनहेतु वा पञ्जलिका अनुपरिसक्कनहेतु वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्या'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''सेय्यथापि, गामणि, पुरिसो महतिं पुथुसिलं गम्भीरे उदकरहदे पक्खिपेय्य। [B.499] तमेनं महाजनकायो सङ्गम्म समागम्म आयाचेय्य थोमेय्य पञ्जलिको [R.313] अनुपरिसक्केय्य—'उम्मुज्ज, भो पुथुसिले, उप्लव, भो पुथुसिले, थलमुप्लव, भो पुथुसिले' ति। तं किं मञ्ञसि, गामणि, अपि नु सा पुथुसिला महतो जनकायस्स आयाचनहेतु वा थोमनहेतु वा पञ्जलिका अनुपरिसक्कनहेतु वा उम्मुज्जेय्य वा उप्लवेय्य वा थलं वा उप्लवेय्या'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''एवमेव खो, गामणि, यो सो पुरिसो पाणातिपाती अदिन्नादायी कामेसु-मिच्छाचारी मुसावादी पिसुणवाचो फरुसवाचो सम्फप्पलापी अभिज्झालु ब्यापन्नचित्तो

यथोचित उत्तर दो। ग्रामणि! तुम क्या समझते हो कोई पुरुष प्राणातिपाती (जीवहिंसक) हो, चोरी करता हो, व्यभिचारी हो, असत्यभाषी हो, चुगलखोर हो, कर्कश (रूखा) बोलता हो, गप्पी हो, लोभी, नीचवृत्ति, मिथ्यादृष्टियुक्त हो। तब बहुत लोग वहाँ एकत्र हो कर उस की प्रशंसा करें, हाथ जोड़ कर उस से निवेदन करें—'आप मरणानन्तर, सुगतिमय स्वर्गलोक में उत्पन्न हों'। तो क्या समझते हो, ग्रामणि! वह ऐसा पुरुष मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में उत्पन्न हो सकेगा?''

''नहीं, भन्ते!''

''ग्रामणि! जैसे कोई पुरुष किसी गम्भीर जलाशय में एक विशाल प्रस्तरशिला छोड़ दें। तब वहाँ बहुत से लोग आ कर, एकत्र हो कर, उस प्रस्तर से प्रार्थना करें, हाथ जोड़ कर निवेदन करें—'हे वृहत् शिले! आप जल से ऊपर आ जावें, आप जल से बाहर आ जावें'। ग्रामणि! तब क्या यह सम्भव है कि वह वृहत् शिला उन लोगों के कहने से, हाथ जोड़ने से जल से ऊपर आ जायगी!''

''नहीं, भन्ते!''

मिच्छादिट्ठिको। किञ्चा पि तं महा जनकायो सङ्गम्म समागम्म आयाचेय्य थोमेय्य पञ्जलिको अनुपरिसक्केय्य—'अयं पुरिसो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जतू' ति, अथ खो पुरिसो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्य।

"तं किं मञ्ञसि, गामणि, इधस्स पुरिसो पाणातिपाता पटिविरतो अदिन्नादाना पटिविरतो कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो मुसावादा पटिविरतो पिसुणाय वाचाय पटिविरतो फरुसाय वाचाय पटिविरतो सम्फप्पलापा पटिविरतो अनभिज्झालु अब्यापन्नचित्तो सम्मादिट्ठिको। तमेनं महा जनकायो सङ्गम्म समागम्म आयाचेय्य थोमेय्य पञ्जलिको अनुपरिसक्केय्य—'अयं पुरिसो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जतू' ति। तं किं मञ्ञसि, गामणि, अपि नु सो पुरिसो महतो जनकायस्स आयाचनहेतु वा थोमनहेतु वा पञ्जलिका अनुपरिसक्कनहेतु [N.278] वा कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्या" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"सेय्यथापि, गामणि, पुरिसो सप्पिकुम्भं वा तेलकुम्भं वा गम्भीरे उदकरहदे ओगाहेत्वा भिन्देय्य। तत्र यास्स सक्खरा वा कठला वा सा अधोगामी अस्स; यं च ख्वस्स तत्र सप्पि वा तेलं वा तं उद्धं गामि अस्स। तमेनं महा जनकायो सङ्गम्म [R.314]

"इसी तरह, ग्रामणि! वह जीवहिंसक, चौर...पूर्ववत्...विशाल जनसमूहद्वारा एकत्र हो कर प्रार्थना करने या हाथ जोड़ कर निवेदन करने से मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्ग में उत्पन्न नहीं हो पायगा; अपितु उस का उन पापमय धर्मों के कारण मरणानन्तर नरकपात या तिरश्चीनयोनि में उत्पाद अवश्यम्भावी है। (क)

"उधर, ग्रामणि! कोई पुरुष प्राणातिपात, चौरी, व्यभिचार, असत्यभाषण, चुगलखोरी, कर्कश वचन, प्रलाप, लोभ एवं मिथ्यादृष्टियों से दूर रहता हुआ सदाचारयुक्त रहे। वहाँ विशाल जनसमूह एकत्र हो कर हाथ जोड़ कर ऐसी मनौती करे—'इस पुरुष का मरणानन्तर दुर्गतिमय नरक में उत्पन्न हो।' तो क्या मानते हो, ग्रामणि! वैसा पुरुष उस विशाल जनसमूह द्वारा वैसी इच्छा करने (मनौती मनाने) मात्र से मरणानन्तर दुर्गतिमय नरक में उत्पन्न हो सकेगा?"

"नहीं, भन्ते!"

"फिर, ग्रामणि! कोई पुरुष घी या तैल से भरे किसी घड़े को किसी जलाशय में ले जा कर फोड़ दे। तब वहाँ यह हो कि उस में मिले हुए छोटे छोटे कंकड़-पत्थर जल में नीचे बैठ जायँ तथा घी एवं तैल जल पर तैरने लगे। तब वहाँ विशाल जनसमूह एकत्र

समागम्म आयाचेय्य थोमेय्य पञ्जलिको अनुपरिसक्केय्य—'ओसीद, भो सप्पितेल, [B.500] संसीद, भो सप्पितेल, अधो गच्छ, भो सप्पितेला' ति। तं किं मञ्ञसि, गामणि, अपि नु तं सप्पितेलं महतो जनकायस्स आयाचनहेतु वा थोमनहेतु वा पञ्जलिका अनुपरिसक्कनहेतु वा ओसीदेय्य वा संसीदेय्य वा अधो वा गच्छेय्या'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''एवमेव खो, गामणि, यो सो पुरिसो पाणातिपाता पटिविरतो, अदिन्नादाना पटिविरतो, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो, मुसावादा पटिविरतो, पिसुणाय वाचाय पटिविरतो, फरुसाय वाचाय पटिविरतो, सम्फप्पलापा पटिविरतो, अनभिज्झालु, अब्यापन्नचित्तो, सम्मादिट्ठिको, किञ्चा पि तं महा जनकायो सङ्गम्म समागम्म आयाचेय्य थोमेय्य पञ्जलिको अनुपरिसक्केय्य—'अयं पुरिसो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जतू' ति, अथ खो सो पुरिसो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्या'' ति।

एवं, वुत्ते, असिबन्धकपुत्तो गामणि भगवन्तं एतदवोच—''अभिक्कन्तं, भन्ते ...पे०...अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ •

७. खेत्तूपमसुत्तं

७. एकं समयं भगवा नाळन्दायं विहरति पावारिकम्बवने। अथ खो असिबन्धकपुत्तो गामणि येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा

हो कर हाथ जोड़ कर यह इच्छा करे, मनौती मनावे—'यह घी तैल जल में डूब जाय, या जल के नीचे चला जाय'। तो क्या मानते हो, ग्रामणि! वह घी या तैल उस विशाल जनसमूह की उस इच्छामात्र से जल के नीचे चला जायगा, या जल में डूब जायगा?''

''नहीं, भन्ते!''

''इसी तरह, ग्रामणि! जो पुरुष प्राणातिपात, चौरी, व्यभिचार, असत्यभाषण ...पूर्ववत्... मिथ्यादृष्टि से रहित है, उस के लिये यदि समस्त समाज भी एकत्र हो कर यह प्रार्थना करे कि 'यह पुरुष मरणानन्तर नरक में या तिरश्चीन में जाय', तो यह सम्भव नहीं है। वह तो मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में ही उत्पन्न होगा।''

(भगवान् द्वारा—) ऐसा कहे जाने पर वह असिबन्धकपुत्र भगवान् से यों विनती करने लगा--''बहुत अच्छा कहा, भन्ते! बहुत ही अच्छा कहा! आज से आप मुझे जीवनपर्यन्त अपना शरणागत उपासक समझें''॥ •

७. क्षेत्रोपमसूत्र : : बुद्ध-करुणा सब पर समान भाव से

७. एक समय भगवान् (बुद्ध) **नालन्दा** के प्रावारिकाम्रवन में साधनाहेतु विराजमान

एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो असिबन्धकपुत्तो गामणि भगवन्तं एतदवोच— "ननु, भन्ते, भगवा सब्बपाणभूतहितानुकम्पी विहरती" ति?

"एवं, गामणि, तथागतो सब्बपाणभूतानुकम्पी विहरती" ति। [N.279]

"अथ किञ्चरहि, भन्ते, भगवा एकच्चानं सक्कच्चं धम्मं देसेति, एकच्चानं नो तथा सक्कच्चं धम्मं देसेती" ति?

"तेन हि, गामणि, तञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि। यथा ते खमेय्य तथा नं [R.315] ब्याकरेय्यासी ति। तं किं मञ्ञसि, गामणि, इधस्स कस्सकस्स गहपतिनो तीणि खेत्तानि—एकं खेत्तं अग्गं, एकं खेत्तं मज्झिमं, एकं खेत्तं हीनं जङ्गलं ऊसरं पापभूमि। तं किं मञ्ञसि, गामणि, असु कस्सको गहपति बीजानि पतिट्ठापेतुकामो कत्थ पठमं पतिट्ठापेय्य, यं वा अदुं खेत्तं अग्गं, यं वा अदुं खेत्तं मज्झिमं, यं वा अदुं खेत्तं हीनं जङ्गलं ऊसरं पापभूमी" ति?

"असु, भन्ते, कस्सको गहपति बीजानि पतिट्ठापेतुकामो यं अदुं खेत्तं अग्गं तत्थ पतिट्ठापेय्य। तत्थ पतिट्ठापेत्वा यं अदुं खेत्तं मज्झिमं तत्थ पतिट्ठापेय्य। तत्थ पतिट्ठापेत्वा यं अदुं खेत्तं हीनं जङ्गलं ऊसरं पापभूमि तत्थ पतिट्ठापेय्य पि, नो पि पतिट्ठापेय्य। तं किस्स हेतु? अन्तमसो गोभत्तं पि भविस्सती" ति। [B.501]

"सेय्यथापि, गामणि, यं अदुं खेत्तं अग्गं; एवमेव मय्हं भिक्खुभिक्खुनियो।

थे। उसी समय असिबन्धकपुत्र ग्रामणी भगवान् के सम्मुख आया, तथा उन्हें प्रणाम करने के बाद निवेदन करने लगा—"भन्ते! क्या आप सभी प्राणियों पर समान भाव से करुणा रखने लगने वाले हैं?"

"हाँ, ग्रामणि! मैं सभी प्राणियों पर समान दया भाव रखता हूँ।"

"तो, भन्ते! कुछ को तो आदरपूर्वक गम्भीरता से धर्मोपदेश करते हैं, तथा कुछ को उसी तरह नहीं करते?"

(भगवान् बोले—) "ग्रामणि! इस प्रसङ्ग में मैं तुम ही से पूछता हूँ, जैसा तुम्हारी समझ में आवे, उत्तर दो। ग्रामणि! किसी गृहस्थ (किसान) के पास तीन खेत हों—एक बहुत अच्छी उपज वाला, दूसरा मध्यम उपज वाला तथा तीसरा निकृष्ट उपज वाला। ग्रामणि! तो तुम क्या समझते हो वह कृषक गृहस्थ किस खेत में सर्वप्रथम बीज बोयगा?"

"भन्ते! वह गृहस्थ सर्वप्रथम बहुत अच्छी उपज वाले खेत में बीज बोयगा, फिर मध्यम खेत में। अन्त में उस निकृष्ट खेत में यह सोच कर बीज डालेगा कि इस से जो कुछ भी निष्पन्न होगा वह पशुओं के चारे में ही कार्य आयगा।"

"ग्रामणि! जैसे उस किसान का वह पहला खेत है वैसे ही मेरे ये भिक्षु भिक्षुणियाँ

तेसाहं धम्मं देसेमि—आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं, सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेमि'। तं किस्स हेतु? एते हि, गामणि, मंदीपा मंलेणा मंताणा मंसरणा विहरन्ति। सेय्यथापि, गामणि, यं अदुं खेत्तं मज्झिमं; एवमेव मय्हं उपासकउपासिकायो। तेसं पाहं धम्मं देसेमि—आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं, सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेमि। तं किस्स हेतु? एते हि, गामणि, मंदीपा मंलेणा मंताणा मंसरणा विहरन्ति। सेय्यथापि, [R.316] गामणि, यं अदुं खेत्तं हीनं जङ्गलं ऊसरं पापभूमि; एवमेव मय्हं अञ्ञतित्थिया समणब्राह्मणपरिब्बाजका। तेसं पाहं धम्मं देसेमि—आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेमि। तं किस्स हेतु? अप्पेव नाम एकं पदं पि आजानेय्युं तं नेसं अस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया' ति। (१)

[N.280] "सेय्यथापि, गामणि, पुरिसस्स तयो उदकमणिका—एको उदकमणिको अच्छिद्दो अहारी अपरिहारी, एको उदकमणिको अच्छिद्दो हारी परिहारी, एको उदकमणिको छिद्दो हारी परिहारी। तं किं मञ्ञसि, गामणि, असु पुरिसो उदकं निक्खिपितुकामो कत्थ पठमं निक्खिपेय्य, यो वा सो उदकमणिको अच्छिद्दो अहारी अपरिहारी, यो वा सो उदकमणिको अच्छिद्दो हारी परिहारी, यो वा सो उदकमणिको छिद्दो हारी परिहारी" ति?

हैं उन्हें मैं धर्म का ऐसा उपदेश करता हूँ जो कि आदि, मध्य एवं अन्त—सर्वत्र सर्वथा कल्याणप्रद तथा शब्द एवं अर्थ से परिपूर्ण है। वह किसलिये? क्यों कि ये भिक्षु भिक्षुणियाँ मुझे ही अपना सर्वस्व समझते हुए, मेरी शरण में रहते हुए, मेरा ही सहारा लिये हुए अपनी धर्मसाधना में संलग्र हैं। इसी तरह, ग्रामणि! उस किसान के मध्यम क्षेत्र की तरह, ये मेरे उपासक-उपासिकाएँ हैं उन्हें भी मैं इस धर्म का उपदेश करता हूँ...क्यों कि ये भी मेरी ही शरण में अपना त्राण समझ कर साधना करते हैं। इसी तरह, ग्रामणि! उस किसान के निकृष्ट (ऊसर) खेत की तरह, ये अपर सम्प्रदाय के श्रमण, ब्राह्मण एवं परिव्राजक हैं उन्हें भी मैं वैसे ही धर्म का उपदेश करता हूँ कि यदि वे मेरे धर्म की एक भी बात मान कर साधना करेंगे तो वह साधना भी उन के लिये दीर्घकाल तक हितकर ही होगी। (१)

"ग्रामणि! जैसे किसी पुरुष के घर में जल के लिये तीन घट (जलपात्र) हों—एक छिद्ररहित, एक सूक्ष्म छिद्रवाला (जिस में भरा हुआ जल धीरे धीरे निकल जाय) तथा एक वृहत् छिद्रवाला (जिस में से जल बहुत शीघ्र निकल जाय)। तो क्या मानते हो ग्रामणि! वह बुद्धिमान् पुरुष उपर्युक्त में से सर्वप्रथम किस घट में जल भरेगा?"

"असु, भन्ते, पुरिसो उदकं निक्खिपितुकामो यो सो उदकमणिको अच्छिद्दो अहारी अपरिहारी तत्थ निक्खिपेय्य, तत्थ निक्खिपित्वा यो सो उदकमणिको अच्छिद्दो हारी परिहारी तत्थ निक्खिपेय्य, तत्थ निक्खिपित्वा यो सो उदकमणिको छिद्दो हारी परिहारी तत्थ निक्खिपेय्य पि, नो पि निक्खिपेय्य। तं किस्स हेतु? अन्तमसो भण्डधोवनं ति भविस्सती ति। सेय्यथापि, गामणि, यो सो उदकमणिको अच्छिद्दो अहारी अपरिहारी; एवमेव मय्हं भिक्खुभिक्खुनियो। तेसाहं धम्मं देसेमि—[B.502] आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेमि। तं किस्स हेतु? एते हि, गामणि, मंदीपा मंलेणा मंताणा मंसरणा विहरन्ति। सेय्यथापि, गामणि, यो सो उदकमणिको अच्छिद्दो हारी [R.317] परिहारी; एवमेव मय्हं उपासकउपासिकायो। तेसाहं धम्मं देसेमि—आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेमि। तं किस्स हेतु? एते हि, गामणि, मंदीपा मंलेणा मंताणा मंसरणा विहरन्ति। सेय्यथापि, गामणि, यो सो उदकमणिको छिद्दो हारी परिहारी; एवमेव मय्हं अञ्ञतित्थिया समणब्राह्मणपरिब्बाजका। तेसाहं धम्मं देसेमि—आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेमि। तं किस्स हेतु? अप्पेव नाम एकं पदं पि आजानेय्युं, तं नेसं अस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति।

एवं वुत्ते, असिबन्धकपुत्तो गामणि भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते...पे०...उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥

"भन्ते! वह पुरुष सर्वप्रथम उस घट में जल भरेगा जो छिद्ररहित हो; क्यों कि उस में भरा जल सर्वदा उपलब्ध रहेगा। तदनन्तर वह उस घट में जल भरेगा जिस में कुछ कम छिद्र हों, परन्तु जिस में जल कुछ समय ही ठहर सके तथा सब से अन्त में उस घट को जलपूर्ण कर भी सकता है या न भी करे जिस में वृहत् छिद्र हो, वह भी इसलिये कि अन्य पात्र धोने योग्य जल तो उस से मिल ही जायगा।"

"ग्रामणि! यहाँ प्रथम (छिद्ररहित) घट के समान ये भिक्षु भिक्षुणियाँ हैं जिन्हें मैं...पूर्ववत्...। द्वितीय (अल्पछिद्र) घट के समान उपासक उपासिकाएँ हैं, जिन्हें मैं...पूर्ववत्...। तृतीय (वृहत् छिद्र) घट के समान ये अन्य सम्प्रदायों के श्रमण, ब्राह्मण, परिव्राजक हैं...पूर्ववत्...।" (२)

भगवान् के यह कहने पर, वह असिबन्धकपुत्र ग्रामणी बोला...पूर्ववत्...भन्ते! मुझे उपासक मानें॥

•

८. सङ्खधमसुत्तं

[N.281] ८. एकं समयं भगवा नाळन्दायं विहरति पावारिकम्बवने। अथ खो असिबन्धकपुत्तो गामणि निगण्ठसावको येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो असिबन्धकपुत्तं गामणिं भगवा एतदवोच– ''कथं नु खो, गामणि, निगण्ठो नाटपुत्तो सावकानं धम्मं देसेती'' ति?

''एवं खो, भन्ते, निगण्ठो नाटपुत्तो सावकानं धम्मं देसेति–'यो कोचि पाणं अतिपातेति सब्बो सो आपायिको नेरयिको, यो कोचि अदिन्नं आदियति सब्बो सो आपायिको नेरयिको, यो कोचि कामेसु मिच्छा चरति सब्बो सो आपायिको नेरयिको, यो कोचि मुसा भणति सब्बो सो आपायिको नेरयिको। यंबहुलं यंबहुलं विहरति तेन तेन नीयती' ति। एवं खो, भन्ते, निगण्ठो नाटपुत्तो सावकानं धम्मं देसेती'' ति।

[R.318] '''यंबहुलं यंबहुलं च, गामणि, विहरति तेन तेन नीयति', एवं सन्ते न कोचि आपायिको नेरयिको भविस्सति, यथा निगण्ठस्स नाटपुत्तस्स वचनं।

[B.503] ''तं किं मञ्ञसि, गामणि, यो सो पुरिसो पाणातिपाती रत्तिया वा दिवसस्स वा समयासमयं उपादाय, कतमो बहुतरो समयो यं वा सो पाणमतिपातेति यं वा सो पाणं नातिपातेती'' ति?

''यो सो, भन्ते, पुरिसो पाणातिपाती रत्तिया वा दिवसस्स वा समयासमयं

---

८. शङ्खध्मासूत्र : : निगण्ठनाटपुत्र की विपरीत शिक्षा

८. एक समय भगवान् (बुद्ध) **नालन्दा** के प्रावारिक आम्रवन में साधनाहेतु विराजमान थे। तभी वह निगण्ठ का शिष्य असिबन्धकपुत्र ग्रामणी भगवान् के पास आया, तथा वहाँ आ कर एक तरफ बैठ गया। एक ओर बैठे उस ग्रामणी को भगवान् ने पूछा– ''ग्रामणि! तुम्हारे निगण्ठनाटपुत्र अपने शिष्यों को क्या उपदेश करते हैं?''

''भन्ते! वे तो ऐसा उपदेश करते हैं–'जो कोई जीवहिंसा करता है वह नरक में गिरता है, जो चौरी करता है...जो व्यभिचार करता है...जो असत्यभाषण करता है वह भी नरक में गिरता है। कहने का भाव यह है कि वह जो कुछ भी अधिक करता है उस की वैसी ही गति होती है।' भन्ते! उन का तो यही अपने शिष्यों को उपदेश होता है।''

''ग्रामणि! यदि निगण्ठनाटपुत्र की यह बात मान ली जाय कि मनुष्य जो कुछ अधिक करता है उस की वैसी ही गति होती है, तब तो ग्रामणि! किसी का नरकपात होगा ही नहीं; क्यों कि कोई हिंसक जीवहिंसा दिन या रात में कभी कभी ही करता है, अत: तुम ही बताओ–उस का जीवहिंसा करने का समय अधिक है या उस से विरत रहने का समय अधिक है?''

उपादाय, अप्पतरो सो समयो यं सो पाणमतिपातेति, अथ खो स्वेव बहुतरो समयो यं सो पाणं नातिपातेती'' ति।

'''यंबहुलं यंबहुलं च, गामणि, विहरति तेन तेन नीयती' ति, एवं सन्ते न कोचि आपायिको नेरयिको भविस्सति, यथा निगण्ठस्स नाटपुत्तस्स वचनं।

''तं किं मञ्ञसि, गामणि, यो सो पुरिसो अदिन्नादायी रत्तिया वा दिवसस्स वा समयासमयं उपादाय, कतमो बहुतरो समयो यं वा सो अदिन्नं आदियति यं वा सो अदिन्नं नादियती'' ति?

''यो सो, भन्ते, पुरिसो अदिन्नादायी रत्तिया वा दिवसस्स वा समयासमयं उपादाय अप्पतरो सो समयो यं सो अदिन्नं आदियति, अथ खो स्वेव बहुतरो [N.282] समयो यं सो अदिन्नं नादियती'' ति।

'''यंबहुलं यंबहुलं च, गामणि, विहरति तेन तेन नीयती' ति, एवं सन्ते न कोचि आपायिको नेरयिको भविस्सति, यथा निगण्ठस्स नाटपुत्तस्स वचनं।

''तं किं मञ्ञसि, गामणि, यो सो पुरिसो कामेसुमिच्छारी रत्तिया वा दिवसस्स वा समयासमयं उपादाय, कतमो बहुतरो समयो यं वा सो कामेसु मिच्छा चरति यं वा सो कामेसु मिच्छा न चरती'' ति?

''यो सो, भन्ते, पुरिसो कामेसुमिच्छाचारी रत्तिया वा दिवसस्स वा समयासमयं उपादाय, अप्पतरो सो समयो यं सो कामेसु मिच्छा चरति, अथ खो स्वेव बहुतरो समयो यं सो कामेसु मिच्छा न चरती'' ति।

'''यंबहुलं यंबहुलं च, गामणि, विहरति तेन तेन नीयती' ति, एवं सन्ते न कोचि आपायिको नेरयिको भविस्सति, यथा निगण्ठस्स नाटपुत्तस्स वचनं। [R.319]

''हाँ, भन्ते! जो दिन या रात में कभी कभी ही जीवहिंसा करता है उस का जीवहिंसा का समय तो अल्प है, अपि तु इस के विपरीत उस का वही समय अधिक है जिस में वह जीवहिंसा नहीं करता।''

''अत: ग्रामणि! निगण्ठनाटपुत्र के वचन के अनुसार तो किसी का नरकपात होगा ही नहीं।

''तो क्या मानते हो, ग्रामणि! जो पुरुष दिन या रात में कुछ ही समय चौरी करता है तो उस का वह चौरी करने का समय अधिक है या न करने का?''

''भन्ते!...चौरी न करने का समय ही कम है।''

''अत: ग्रामणि!...पूर्ववत्...किसी का नरकपात होगा ही नहीं।

''तो क्या मानते हो, ग्रामणि! जो पुरुष दिन या रात में कभी कभी ही व्यभिचार

"तं किं मञ्ञसि, गामणि, यो सो पुरिसो मुसावादी रत्तिया वा दिवसस्स वा समयासमयं उपादाय, कतमो बहुतरो समयो यं वा सो मुसा भणति यं वा सो मुसा न भणती" ति?

"यो सो, भन्ते, पुरिसो मुसावादी रत्तिया वा दिवसस्स वा समयासमयं उपादाय, अप्पतरो सो समयो यं सो मुसा भणति, अथ खो स्वेव बहुतरो समयो यं सो मुसा न [B.504] भणती" ति।

"'यंबहुलं यंबहुलं च, गामणि, विहरति तेन तेन नीयती' ति, एवं सन्ते न कोचि आपायिको नेरयिको भविस्सति, यथा निगण्ठस्स नाटपुत्तस्स वचनं।

"इध, गामणि, एकच्चो सत्था एवंवादी होति एवंदिट्ठि—'यो कोचि पाणमतिपातेति सब्बो सो आपायिको नेरयिको, यो कोचि अदिन्नं आदियति सब्बो सो आपायिको नेरयिको, यो कोचि कामेसु मिच्छा चरति सब्बो सो आपायिको नेरयिको, यो कोचि मुसा भणति सब्बो सो आपायिको नेरयिको' ति। तस्मिं खो पन, गामणि, सत्थरि सावको अभिप्पसन्नो होति। तस्स एवं होति—'मय्हं खो सत्था एवंवादी एवंदिट्ठि—'यो कोचि पाणमतिपातेति सब्बो सो आपायिको नेरयिको ति। अत्थि खो [N.283] पन मया पाणो अतिपातितो अहम्पम्हि आपायिको नेरयिको ति दिट्ठिं पटिलभति। तं, गामणि, वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। मय्हं खो सत्था एवंवादी एवंदिट्ठि—यो कोचि अदिन्नं आदियति सब्बो सो आपायिको नेरयिको ति। अत्थि खो पन मया अदिन्नं आदिन्नं अहम्पम्हि आपायिको नेरयिको ति दिट्ठिं पटिलभति। तं, गामणि, वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। मय्हं खो सत्था [R.320] एवंवादी एवंदिट्ठि—यो कोचि कामेसु मिच्छा चरति सब्बो सो आपायिको

करता है...पूर्ववत्...असत्यभाषण करता है...पूर्ववत्...तो निगण्ठ नाटपुत्र के वचन के अनुसार किसी का नरकपात होगा ही नहीं।

"ग्रामणि! यहाँ किसी शास्ता (गुरु) की ऐसी मान्यता ऐसी धारणा हो—'जो कोई हिंसा करेगा वह नरकगामी होगा, जो चौरी करेगा वह नरकगामी होगा, जो कोई व्यभिचारी...असत्यवादी होगा वह नरकगामी होगा'। ऐसे शास्ता के प्रति श्रद्धालु शिष्य को उस के ये वचन सुन कर यह विचार होता है—'मेरा शास्ता यह मानता है कि जो हिंसा करेगा वह नरकगामी होगा। मैंने भी जीवहिंसा की है तो मेरा नरकपात भी अवश्यम्भावी है। अत: इस जीवहिंसा को या जीवहिंसा के विचार को छोड़े विना मेरी

नेरयिको' ति। अत्थि खो पन मया कामेसु मिच्छा चिण्णं। 'अहम्पम्हि आपायिको नेरयिको' ति दिट्ठिं पटिलभति। तं, गामणि, वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। मय्हं खो सत्था एवंवादी एवंदिट्ठि—यो कोचि मुसा भणति सब्बो सो आपायिको नेरयिको ति। अत्थि खो पन मया मुसा भणितं। 'अहम्पम्हि आपायिको नेरयिको' ति दिट्ठिं पटिलभति। तं, गामणि, वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

"इध पन, गामणि, तथागतो लोके उपपज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो [B.505] विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा। सो अनेकपरियायेन पाणातिपातं गरहति विगरहति, 'पाणातिपाता विरमथा' ति चाह। अदिन्नादानं गरहति विगरहति, 'अदिन्नादाना विरमथा' ति चाह। कामेसु-मिच्छाचारं गरहति विगरहति, 'कामेसुमिच्छाचारा विरमथा' ति चाह। मुसावादं गरहति विगरहति, 'मुसावादा विरमथा' ति चाह। तस्मिं खो पन गामणि, सत्थरि सावको अभिप्पसन्नो होति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'भगवा खो अनेकपरियायेन पाणातिपातं गरहति विगरहति, पाणातिपाता विरमथा ति चाह। अत्थि खो पन मया पाणो अतिपातितो यावतको वा तावतको वा। यो खो पन मया पाणो अतिपातितो यावतको वा तावतको वा, तं न सुट्ठु, तं न साधु। अहं चेव खो पन तप्पच्चया विप्पटिसारी अस्सं। न मेतं पापं कम्मं अकतं भविस्सती' ति। सो इति पटिसङ्खाय तं चेव पाणातिपातं

नरक से मुक्ति सम्भव नहीं है। इसी तरह मेरे शास्ता चौरी...व्यभिचार ...असत्यभाषण को नरकपात बताते हैं। इन सब अकुशल धर्मों को छोड़े विना मुझ को भी नरकपात से छुटकारा नहीं मिल सकता।

"ग्रामणि! लोक में अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध, विद्याचरणसम्पन्न, सुगतिप्राप्त, लोकविद्, अद्वितीय पुरुषों का सारथि के समान दमन (नियन्त्रण=अनुशासन) करने में समर्थ, एवं देव और मनुष्यों के शास्ता के रूप में बुद्ध उत्पन्न होते हैं। वे अनेक प्रकार से जीवहिंसा की निन्दा करते हैं तथा जीवहिंसा से विरत रहने का उपदेश करते हैं, अत: ग्रामणि! उन के श्रावक उन पर श्रद्धालु होते हैं। तब वह श्रद्धालु श्रावक ऐसे सोचता है—'भगवान् ने अनेक प्रकार से जीवहिंसा से विरत रहने का उपदेश किया है। क्या मैंने भी कभी जीवहिंसा की है? यह अच्छा कर्म नहीं, उचित कर्म नहीं। उस के कारण, मुझे भविष्य में पश्चात्ताप भी करना पड़ सकता है। मेरी उस पाप से मुक्ति नहीं हो सकती।' यह विचार

[N.284] पजहति। आयतिं च पाणातिपाता पटिविरतो होति। एवमेतस्स पापस्स कम्मस्स पहानं होति। एवमेतस्स पापस्स कम्मस्स समतिक्कमो होति।

'भगवा खो अनेकपरियायेन अदिन्नादानं गरहति विगरहति, अदिन्नादाना विरमथा ति चाह। अत्थि खो पन मया अदिन्नं आदिन्नं यावतकं वा तावतकं वा। यं खो पन मया अदिन्नं आदिन्नं यावतकं वा तावतकं वा तं न सुट्ठु, तं न साधु। अहं चेव खो पन तप्पच्चया विप्पटिसारी अस्सं, न मेतं पापं कम्मं अकतं भविस्सती' ति। सो इति [R.321] पटिसङ्खाय तं चेव अदिन्नादानं पजहति। आयतिं च अदिन्नादाना पटिविरतो होति। एवमेतस्स पापस्स कम्मस्स पहानं होति। एवमेतस्स पापस्स कम्मस्स समतिक्कमो होति।

'भगवा खो पन अनेकपरियायेन कामेसुमिच्छाचारं गरहति विगरहति, कामेसु-मिच्छाचारा विरमथा ति चाह। अत्थि खो पन मया कामेसु मिच्छा चिण्णं यावतकं वा तावतकं वा। यं खो पन मया कामेसु मिच्छा चिण्णं यावतकं वा तावतकं वा तं न सुट्ठु, तं न साधु। अहं चेव खो पन तप्पच्चया विप्पटिसारी अस्सं, न मेतं पापं कम्मं अकतं [B.506] भविस्सती' ति। सो इति पटिसङ्खाय तं चेव कामेसुमिच्छाचारं पजहति, आयतिं च कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति। एवमेतस्स पापस्स कम्मस्स पहानं होति। एवमेतस्स पापस्स कम्मस्स समतिक्कमो होति।

'भगवा खो पन अनेकपरियायेन मुसावादं गरहति विगरहति, मुसावादा विरमथा ति चाह। अत्थि खो पन मया मुसा भणितं यावतकं वा तावतकं वा। यं खो पन मया मुसा भणितं यावतकं वा तावतकं वा तं न सुट्ठु, तं न साधु। अहं चेव खो पन तप्पच्चया विप्पटिसारी अस्सं, न मेतं पापं कम्मं अकतं भविस्सती' ति। सो इति पटिसङ्खाय तं चेव मुसावादं पजहति, आयतिं च मुसावादा पटिविरतो होति। एवमेतस्स पापस्स कम्मस्स पहानं होति। एवमेतस्स पापस्स कम्मस्स समतिक्कमो होति।

कर वह जीवहिंसा छोड़ देता है, भविष्य में जीवहिंसा से विरत रहता है। इस प्रकार वह पाप से त्राण पा जाता है।

"भगवान् ने अनेक प्रकार से चौरी की...पूर्ववत्...व्यभिचार की...असत्यभाषण की...पूर्ववत्...पाप से त्राण पा जाता है।

यों वह जीवहिंसा छोड़ कर जीवहिंसा से विरत...असत्यभाषण छोड़ कर असत्य-भाषण से विरत...चौरी छोड़ कर चौरी से विरत...व्यभिचार छोड़ कर व्यभिचार से विरत ...चुगली करना छोड़ कर चुगली करने से विरत...कठोर वाणी बोलना छोड़ कर कठोर वाणी बोलने से विरत...प्रलाप (बकवाद) करना छोड़ कर प्रलाप से विरत...लोभ करना

"सो पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो होति। अदिन्नादानं पहाय अदिन्नादाना पटिविरतो होति। कामेसुमिच्छाचारं पहाय कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति। मुसावादं पहाय मुसावादा पटिविरतो होति। पिसुणं वाचं पहाय पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति। फरुसं वाचं पहाय फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति। [N.285] सम्फप्पलापं पहाय सम्फप्पलापा पटिविरतो होति। अभिज्झं पहाय अनभिज्झालु होति। ब्यापादप्पदोसं पहाय अब्यापन्नचित्तो होति। मिच्छादिट्ठिं पहाय सम्मादिट्ठिको [R.322] होति।

"स खो सो, गामणि, अरियसावको एवं विगताभिज्झो विगतब्यापादो असम्मूळ्हो सम्पजानो पटिस्सतो मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्जेन फरित्वा विहरति। सेय्यथापि, गामणि, बलवा सङ्खधमो अप्पकसिरेनेव चतुद्दिसा विञ्ञापेय्य; एवमेव खो, गामणि, एवं भाविताय मेत्ताय चेतोविमुत्तिया एवं बहुलीकताय यं पमाण-कतं कम्मं, न तं तत्रावसिस्सति न तं तत्रावतिट्ठति।

"स खो सो, गामणि, अरियसावको एवं विगताभिज्झो विगतब्यापादो [B.507] असम्मूळ्हो सम्पजानो पटिस्सतो करुणासहगतेन चेतसा...पे०...मुदितासहगतेन चेतसा ...पे०...उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खा-सहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्जेन फरित्वा विहरति। सेय्यथापि, गामणि, बलवा सङ्खधमो अप्पकसिरेनेव चतुद्दिसा विञ्ञापेय्य; एवमेव खो,

---

छोड़ कर लोभ से विरत...तथा द्वेष करना छोड़ कर द्वेष से विरत...मिथ्यादृष्टि छोड़ कर सम्यग्दृष्टि वाला बन जाता है।

"ग्रामणि! ऐसा वह बुद्धश्रावक लोभ एवं द्वेष से रहित, असम्मूढ, सम्प्रज्ञ, स्मृतिमान्, मैत्रीसहगतचित्त से सभी दिशाओं को व्याप्त कर, ऊपर नीचे, आडे टेढे सभी तरफ समस्त लोक को विपुल अप्रमाण...मैत्रीसहगतचित्त से व्याप्त कर साधना करता है।

"ग्रामणि! जैसे कोई बलवान् शङ्ख बजानेवाला कुछ बल लगाता हुआ शङ्ख बजा कर उस की ध्वनि से चारों दिशाओं को गुञ्जा दे, उसी प्रकार, ग्रामणि! मैत्रीचेतोविमुक्ति का अभ्यास कर लेने से उस श्रावक को जो संकीर्णता में डालने वाले कर्म हैं वे नहीं ठहर पाते।

गामणि, एवं भाविताय उपेक्खाय चेतोविमुत्तिया एवं बहुलीकताय यं पमाणकतं कम्मं न तं तत्रावसिस्सति न तं तत्रावतिट्ठती'' ति।

एवं वुत्ते, असिबन्धकपुत्तो गामणि भगवन्तं एतदवोच—''अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते...पे०...उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ ●

९. कुलसुत्तं

९. एकं समयं भगवा कोसलेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन [R.323] नाळन्दा तदवसरि। तत्र सुदं भगवा नाळन्दायं विहरति पावारिकम्बवने। [N.286] तेन खो पन समयेन नाळन्दा दुब्भिक्खा होति द्वीहितिका सेतट्ठिका सलाका-वुत्ता। तेन खो पन समयेन निगण्ठो नाटपुत्तो नाळन्दायं पटिवसति महतिया निगण्ठ-परिसाय सद्धिं। अथ खो असिबन्धकपुत्तो गामणि निगण्ठसावको येन निगण्ठो नाटपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा निगण्ठं नाटपुत्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो असिबन्धकपुत्तं गामणिं निगण्ठो नाटपुत्तो एतदवोच—''एहि त्वं, गामणि, समणस्स गोतमस्स वादं आरोपेहि। एवं ते कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छिस्सति—'असिबन्धकपुत्तेन गामणिना समणस्स गोतमस्स एवंमहिद्धिकस्स एवंमहानुभावस्स वादो आरोपितो''' ति।

इसी तरह, ग्रामणि! वह आर्यश्रावक...करुणासहगतचित्त से...मुदितासहगतचित्त से... उपेक्षासहगतचित्त से सभी दिशाओं को व्याप्त कर...पूर्ववत्...नहीं ठहर पाते।''

ऐसा कहे जाने पर उस असिबन्धकपुत्र ने भगवान् से यों निवेदन किया—''आप ने बहुत अच्छा उपदेश किया...पूर्ववत्...आज से आप मुझ को जीवनपर्यन्त अपना शरणागत उपासक समझें॥'' ●

९. कुलसूत्र : : कुलनाश में आठ हेतु

९. एक समय भगवान् (बुद्ध) कौशल देश में चारिका करते हुए विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ **नालन्दा** के प्रावारिकाम्रवन में साधनाहेतु आ कर विराजे।

उस समय नालन्दा में अकाल (=दुर्भिक्ष) पड़ा हुआ था। लोग आज कल में मरने वाले (मरणासन्न) हो रहे थे। मरे हुए प्राणियों की सफेद हड्डियाँ जहाँ तहाँ विखरी पड़ी थीं। लोग (अन्न के अभाव में) सूख कर काँटा (सलाई) हो गये थे। उस समय निगण्ठ नाटपुत्र भी अपनी विशाल निगण्ठ साधुओं की मण्डली के साथ नालन्दा में ही ठहरे हुए थे। तब (किसी दिन) असिबन्धक नामक कोई ग्रामणी, जो कि निगण्ठों का ही उपासक था, निगण्ट नाटपुत्र के पास आया, तथा उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस उपासक को निगण्ठ नाटपुत्र ने यों कहा—''ग्रामणि! तुम श्रमण गौतम के पास

"कथं पनाहं, भन्ते, समणस्स गोतमस्स एवंमहिद्धिकस्स एवंमहानुभावस्स वादं आरोपेस्सामी" ति?

"एहि त्वं, गामणि, येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा समणं गोतमं एवं वदेहि—'ननु, भन्ते, भगवा अनेकपरियायेन कुलानं अनुद्दयं वण्णेति, [B.508] अनुरक्खं वण्णेति, अनुकम्पं वण्णेती' ति? सचे खो, गामणि, समणो गोतमो एवं पुट्ठो एवं ब्याकरोति—'एवं, गामणि, तथागतो अनेकपरियायेन कुलानं अनुद्दयं वण्णेति, अनुरक्खं वण्णेति, अनुकम्पं वण्णेती' ति, तमेनं त्वं एवं वदेय्यासि—'अथ किञ्चरहि, भन्ते, भगवा दुब्भिक्खे द्वीहितिके सेतट्ठिके सलाकावुत्ते महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं चारिकं चरति? उच्छेदाय भगवा कुलानं पटिपन्नो, अनयाय भगवा कुलानं पटिपन्नो, उपघाताय भगवा कुलानं पटिपन्नो' ति! इमं खो ते, गामणि, समणो गोतमो उभतोकोटिकं पञ्हं पुट्ठो नेव सक्खति उग्गिलितुं नेव सक्खति ओगिलितुं" ति। [R.324]

"एवं, भन्ते" ति खो असिबन्धकपुत्तो गामणि निगण्ठस्स नाटपुत्तस्स पटिस्सुत्वा उट्ठायासना निगण्ठं नाटपुत्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो असिबन्धकपुत्तो गामणि भगवन्तं एतदवोच—

"ननु, भन्ते, भगवा अनेकपरियायेन कुलानं अनुद्दयं वण्णेति, अनुरक्खं वण्णेति, अनुकम्पं वण्णेती" ति?

जाओ तथा उस से वाद (शास्त्रचर्चा) करो। इस से तुम्हारा भी लोक में यश फैलेगा कि असिबन्धकपुत्र ग्रामणी ने भी श्रमण गौतम से वाद किया था।"

"भन्ते! इतने सामर्थ्यशाली, महानुभाव एवं विद्वान् श्रमण गौतम से मैं क्या शास्त्रचर्चा कर पाऊँगा?"

"ग्रामणि! तुम श्रमण गौतम के पास जाओ, और उस से यह पूछो—'भन्ते! आप गृहस्थ परिवारों (कुलों) का सर्वथा उदय, तथा उन की रक्षा एवं उन पर अनुकम्पा की बात कहते हैं ना!' यदि वे इस बात को स्वीकार करें तो उन से तुम पूछना—'तो भन्ते! आप इस दुर्भिक्ष के समय इन परिवारों पर भिक्षुओं को भिक्षादान का भार डाल कर, जब कि ये स्वयं ही अन्न के विना—आज मरे, कल मरे—हो रहे हैं, उन का कैसा उदय, उन की कैसी रक्षा, या उन पर कैसी अनुकम्पा कर रहे हैं?' तुम्हारे द्वारा ऐसा दुतरफा प्रश्न पूछे जाने पर न तो श्रमण गौतम निगल सकेंगे, न उगल सकेंगे। इस तरह तुम्हारी विजय हो जायगी।"

"ठीक है, भन्ते!" —कह कर वह असिबन्धकपुत्र ग्रामणी निगण्ठ नाटपुत्र के

[N.287] "एवं, गामणि, तथागतो अनेकपरियायेन कुलानं अनुद्दयं वण्णेति, अनुरक्खं वण्णेति, अनुकम्पं वण्णेती" ति।

"अथ किञ्चरहि, भन्ते, भगवा दुब्भिक्खे द्वीहितिके सेतट्ठिके सलाकावुत्ते महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं चारिकं चरति? उच्छेदाय भगवा कुलानं पटिपन्नो, अनयाय भगवा कुलानं पटिपन्नो, उपधाताय भगवा कुलानं पटिपन्नो" ति।

"इतो सो, गामणि, एकनवुतिकप्पे यमहं अनुस्सरामि, नाभिजानामि किञ्चि कुलं पक्कभिक्खानुप्पदानमत्तेन उपहतपुब्बं। अथ खो यानि तानि कुलानि अड्ढानि महद्धनानि महाभोगानि पहूतजातरूपरजतानि पहूतवित्तूपकरणानि पहूतधनधञ्ञानि, सब्बानि तानि दानसम्भूतानि चेव सच्चसम्भूतानि च सामञ्ञसम्भूतानि च।

अट्ठ खो, गामणि, हेतू, अट्ठ पच्चया कुलानं उपघाताय। १. राजतो वा कुलानि उपघातं गच्छन्ति, २. चोरतो वा कुलानि उपघातं गच्छन्ति, ३. अग्गितो वा कुलानि [B.509] उपघातं गच्छन्ति, ४. उदकतो वा कुलानि उपघातं गच्छन्ति, ५. निहितं वा ठाना विगच्छति, ६. दुप्पयुत्ता वा कम्मन्ता विपज्जन्ति, ७. कुले वा कुलङ्गारो ति उप्पज्जति यो

यहाँ से उठ कर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, तथा उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठने के बाद उस ने भगवान् से वही पूर्वोक्त प्रश्न पूछा जैसा निगण्ठ नाटपुत्र ने उस को सिखाया था।

असिबन्धकपुत्र ग्रामणी का प्रश्न सुन कर भगवान् बोले—"ग्रामणि! मैं आज से इक्यानवै (९१) कल्प पूर्व तक अपने जन्मों का स्मरण करता हूँ तो भी मुझे ऐसा कुछ स्मरण नहीं आता कि कोई परिवार किसी भिक्षु को पका हुआ एक कडछुल भात देने मात्र से विनष्ट हो गया हो। अपि तु मुझे यह लगता है कि जितने भी अतीत अनागत तथा वर्तमान काल के जो बड़े बड़े नामी, प्रसिद्ध, धनधान्य वाले, ऐश्वर्यसम्पन्न परिवार इस संसार में हुए हैं वे सब दान के प्रभाव से, सत्याचरण एवं इन्द्रियसंयम के कारण ही उस उच्च स्थिति में पहुँचे हैं।

ग्रामणि! **कुलनाश के अन्य ही आठ कारण** होते हैं, वे यह हैं—

१. राजा कुपित हो कर किसी कुल को नष्ट करा दे।

२. चोर उस कुल का धन चुरा कर, उसे नष्ट होने के बाध्य कर दें।

३. अग्निदाह से उस कुल की समस्त सम्पत्ति जल जाय।

४. जल की बाढ़ के कारण उस का समस्त धन स्थानच्युत हो जाय, बह जाय।

५. भूमि में गड़े हुए खजाने का ज्ञान न हो।

६. व्यापार में कोई ऐसा विपरीत आचरण हो जाय कि उस से उस को अपूरणीय क्षति उठानी पड़े।

ते भोगे विकिरति विधमति विद्धंसेति, ८. अनिच्चता येव अट्ठमी ति। इमे खो, [R.325] गामणि, अट्ठ हेतू, अट्ठ पच्चया कुलानं उपघाताय। इमेसु खो, गामणि, अट्ठसु हेतूसु अट्ठसु पच्चयेसु संविज्जमानेसु यो मं एवं वदेय्य—'उच्छेदाय भगवा कुलानं पटिपन्नो, अनयाय भगवा कुलानं पटिपन्नो, उपघाताय भगवा कुलानं पटिपन्नो' ति, तं, गामणि, वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये'' ति। एवं वुत्ते, असिबन्धकपुत्तो गामणि भगवन्तं एतदवोच—''अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते...पे०...उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ •

१०. मणिचूळकसुत्तं

१०. एकं समयं भगवा **राजगहे** विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन राजन्तेपुरे राजपरिसाय सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयमन्तराकथा उदपादि—''कप्पति समणानं सक्यपुत्तियानं जातरूपरजतं, सादियन्ति समणा सक्यपुत्तिया [N.288] जातरूपरजतं, पटिग्गण्हन्ति समणा सक्यपुत्तिया जातरूपरजतं'' ति!

---

७. कुल में कोई ऐसा कुलाङ्गार (कुलनाशक) उत्पन्न हो जाय जो अपने पापमय कर्मों से कुल की समस्त सम्पत्ति को नष्ट कर डाले।

८. संसार के समस्त पदार्थों की अनित्यता तो धननाश का सब से बड़ा कारण है ही।

''ग्रामणि! कुलनाश के ये ही आठ कारण, आठ हेतु या आठ प्रत्यय होते हैं। इन आठ प्रत्ययों के रहते हुए, कोई मुझ पर यह मिथ्या आरोप या कलङ्क लगावे कि उन घरों में मेरे द्वारा भिक्षा माँगने के कारण वे कुल नष्ट हो गये या हो रहे हैं या होंगे—तो ऐसा आरोप लगाने वाला यदि अपने विचार नहीं बदलेगा तो उस का नरकपात अवश्यम्भावी है।''

भगवान् द्वारा ऐसा स्पष्टीकरण दिये जाने के बाद, वह असिबन्धकपुत्र ग्रामणी, मुदित होता हुआ, भगवान् से यों बोला—''भन्ते! आप ने तो मेरी अविवेकपूर्ण बात को बहुत ही उचित रीति से सुलझा कर समझा दिया। ...आज से आप मुझे मेरे जीवनपर्यन्त अपना शरणागत उपासक समझें॥'' •

१०. मणिचूड़कसूत्र : :भिक्षु के लिये सुवर्ण-रजत ग्रहण निषिद्ध

१०. एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह** के वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय, राजसभा में बैठे हुए लोगों में यह चर्चा चल पड़ी—''क्या श्रमण शाक्यपुत्रों को सुवर्ण-रजत का ग्रहण विहित (धर्मसङ्गत) है? क्या शाक्यपुत्र

तेन खो पन समयेन मणिचूळको गामणि तस्सं परिसायं निसिन्नो होति। अथ खो मणिचूळको गामणि तं परिसं एतदवोच—"मा अय्यो एवं अवचुत्थ। न कप्पति समणानं सक्यपुत्तियानं जातरूपरजतं, न सादियन्ति समणा सक्यपुत्तिया जातरूपरजतं, नप्पटिग्गण्हन्ति समणा सक्यपुत्तिया जातरूपरजतं, निक्खित्तमणिसुवण्णा समणा सक्यपुत्तिया अपेतजातरूपरजता" ति। असक्खि खो मणिचूळको गामणि तं परिसं सञ्ञापेतुं।

अथ खो मणिचूळको गामणि येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो मणिचूळको गामणि भगवन्तं [R.326] एतदवोच—"इध, भन्ते, राजन्तेपुरे राजपरिसाय सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयमन्तराकथा उदपादि—'कप्पति समणानं सक्यपुत्तियानं जातरूपरजतं, सादियन्ति समणा सक्यपुत्तिया जातरूपरजतं, पटिग्गण्हन्ति समणा सक्यपुत्तिया जातरूपरजतं' ति। [B.510] एवं वुत्ते, अहं, भन्ते, तं परिसं एतदवोचं—'मा अय्यो एवं अवचुत्थ। न कप्पति समणानं सक्यपुत्तियानं जातरूपरजतं, न सादियन्ति समणा सक्यपुत्तिया जातरूपरजतं, नप्पटिग्गण्हन्ति समणा सक्यपुत्तिया जातरूपरजतं, निक्खित्तमणिसुवण्णा समणा सक्यपुत्तिया अपेतजातरूपरजता' ति। असक्खिं ख्वाहं, भन्ते, तं परिसं सञ्ञापेतुं। कच्चाहं, भन्ते, एवं ब्याकरमानो वुत्तवादी चेव भगवतो होमि, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खामि, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरोमि, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छती" ति?

सुवर्ण-रजत का ग्रहण चाहते हैं? क्या श्रमण शाक्यपुत्र सुवर्ण-रजत का ग्रहण करते हैं?"

उस समय, मणिचूड़क नामक ग्रामणी भी उस सभा में बैठा था, उस ने उठ कर इस बात का विरोध करते हुए उस सभा में यह कहा—"आर्यजन! आप लोग ऐसा न कहें; क्यों कि श्रमण शाक्यपुत्रों के लिये सुवर्णरजत का प्रतिग्रह (दान) न विहित है, न उन्हें यह स्वीकार होता है, न वे उसे लेते ही हैं। यदि उन्हें कोई सुवर्ण दे दे तो वे उसे फैंक देते हैं, चान्दी या मणिरत्न दे तो उसे दूर हटा देते हैं।" परन्तु वह मणिचूड़क ग्रामणी उस सभा को अपनी बात समझा नहीं सका।

तब मणिचूड़क ग्रामणी जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ आया। आ कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उस ने भगवान् को राजसभा में हुई उपर्युक्त चर्चा अक्षरशः सुनायी। तथा साथ ही यह भी पूछा—"भन्ते! उस राजसभा में

"तग्घ त्वं, गामणि, एवं ब्याकरमानो वुत्तवादी चेव मे होति, न च मं अभूतेन अब्भाचिक्खसि, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरोसि, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छती। न हि, गामणि, कप्पति समणानं सक्यपुत्तियानं जातरूपरजतं, न सादियन्ति समणा सक्यपुत्तिया जातरूपरजतं, नप्पटिग्गण्हन्ति समणा सक्य- [N.289] पुत्तिया जातरूपरजतं, निक्खित्तमणिसुवण्णा समणा सक्यपुत्तिया अपेतजातरूपरजता। यस्स खो, गामणि, जातरूपरजतं कप्पति, पञ्च पि तस्स कामगुणा कप्पन्ति। यस्स पञ्च कामगुणा कप्पन्ति, एकंसेनेतं, गामणि, धारेय्यासि अस्समणधम्मो असक्यपुत्तियधम्मो ति। अपि चाहं, गामणि, एवं वदामि—'तिणं तिणत्थिकेन परियेसितब्बं, दारु दारुत्थिकेन परियेसितब्बं, सकटं सकटत्थिकेन परियेसितब्बं, पुरिसो [R.327] पुरिसत्थिकेन परियेसितब्बो। नत्वेवाहं, गामणि, केनचि परियायेन 'जातरूपरजतं सादितब्बं परियेसितब्बं' ति वदामी" ति॥ •

११. भद्रकसुत्तं

११. एकं समयं भगवा मल्लेसु विहरति उरुवेलकप्पं नाम मल्लानं निगमो। अथ

अपना पक्ष रखते हुए मैने आप पर कोई असत्य आरोप तो नहीं लगा दिया या धर्म के विरुद्ध तो कुछ नहीं कह दिया कि जिस से कोई नया धार्मिक विवाद उत्पन्न हो जाय।"

(भगवान् ने कहा—) "ग्रामणि! तुम ने उस सभा में उचित बात ही कही है। मुझ पर कोई असत्य आरोप नहीं लगाया और न ऐसा ही कुछ कहा कि जिस से कोई नया धार्मिक विवाद उत्पन्न हो जाय। ग्रामणि! वस्तुत: श्रमणों को जातरूप एवं रजत का प्रतिग्रहण विहित नहीं है अत: श्रमणों को जातरूप रजत का प्रतिग्रहण स्वीकार्य नहीं है, इसी लिये वे (श्रमण) सुवर्ण, रजत एवं मणिरत्नादिक का स्पर्श भी नहीं करते। जिस को सुवर्ण, रजत आदि विहित होंगे, उसे पाँचों कामभोगों से क्या विरोध होगा! जिस को ये पाँचों कामभोग प्रिय हैं तो ग्रामणि! समझ लो कि वह 'श्रमण' कहलाने का अधिकारी नहीं है। मेरे शिष्य (भिक्षु) ऐसा नहीं कर सकते। अपि तु ग्रामणि! इस विषय में मेरा तो इतना ही कहना है—'तृण चाहने वाले को तृण की खोज करनी चाहिये, काष्ठ चाहने वाले को काष्ठ की खोज करनी चाहिये, गाड़ी चाहने वाले को गाड़ी की खोज करनी चाहिये, इसी तरह, पुरुष को (परम) पुरुषार्थ (निर्वाण) की ही खोज करनी चाहिये। ग्रामणि! 'भिक्षु द्वारा सोना एवं चान्दी का प्रतिग्रहण किसी भी स्थिति में स्वीकार करना या लेना' मैं अनुमत नहीं करता"॥ •

११. भद्रकसूत्र : : तृष्णा दु:ख का मूल है

११. एक समय भगवान् (बुद्ध) मल्लों के **उरुवेलकप्प** नामक कस्बे में साधनाहेतु

खो भद्रको गामणि येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो भद्रको गामणि भगवन्तं एतदवोच—"साधु मे, भन्ते, भगवा दुक्खस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च देसेतू" ति।

[B.511] "अहं चे ते, गामणि, अतीतमद्धानं आरब्भ दुक्खस्स समुदयं च अत्थङ्गमं देसेय्यं—'एवं अहोसि अतीतमद्धानं' ति, तत्र ते सिया कङ्खा, सिया विमति। अहं चे ते, गामणि, अनागतमद्धानं आरब्भ दुक्खस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च देसेय्यं—'एवं भविस्सति अनागतमद्धानं' ति, तत्रा पि ते सिया कङ्खा, सिया विमति। अपि चाहं, गामणि, इधेव निसिन्नो एत्थेव ते निसिन्नस्स दुक्खस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च देसेस्सामि। तं सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो भद्रको गामणि भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—

"तं किं मञ्ञसि, गामणि, अत्थि ते उरुवेलकप्पे मनुस्सा येसं ते वधेन वा बन्धेन वा जानिया वा गरहाय वा उप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा" ति?

"अत्थि मे, भन्ते, उरुवेलकप्पे मनुस्सा येसं मे वधेन वा बन्धेन वा जानिया वा गरहाय वा उप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा" ति।

[N.290, R.328] "अत्थि पन ते, गामणि, उरुवेलकप्पे मनुस्सा येसं ते वधेन वा बन्धेन वा जानिया वा गरहाय वा नुप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा" ति?

विराजमान थे। तब भद्रक नाम का ग्रामणी भगवान् के पास आया तथा उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ कर उस ने भगवान् से निवेदन किया—"भन्ते! अच्छा हो कि आप मुझे दुःख के उत्पाद एवं विनाश के विषय में कुछ बतावें।"

"ग्राभणि! यदि मैं अतीत दुःख के उत्पाद एवं विनाश के विषय में या अनागत दुःख के उत्पाद एवं विनाश के विषय में कुछ बताऊँगा तो हो सकता है तुम्हें उस पर कोई सन्देह या विमति (मतभेद) होने लगे; अतः मैं यहाँ बैठा हुआ यहाँ बैठे हुए तुम्हारे (वर्तमान) दुःख के विषय में बताऊँगा; उसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो और अपने मन में बैठा लो।" "अच्छा, भन्ते!" ग्रामणी ने उत्तर दिया। भगवान् बोले—

"तो क्या मानते हो, ग्रामणि! इस उरुवेलकप्प में क्या तुम्हारे ऐसे कुछ परिचित मनुष्य हैं जिन के किसी कारण वध या बन्धन से, हानि या अप्रतिष्ठा से तुम्हें शोक, परिदेव, दुःख दौर्मनस्य आदि उत्पन्न हों?"

"हाँ, भन्ते! ऐसे मनुष्य यहाँ हैं जिन के वध बन्धन से...दौर्मनस्य आदि उत्पन्न हों।"

"ग्रामणि! क्या इस उरुवेलकप्प में ऐसे भी मनुष्य हैं जिन के वध बन्धन से...तुम्हें शोक परिदेव आदि न उत्पन्न हों?"

"अत्थि मे, भन्ते, उरुवेलकप्पे मनुस्सा येसं मे वधेन वा बन्धेन वा जानिया वा गरहाय वा नुप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा" ति।

"को नु खो, गामणि, हेतु को पच्चयो येन ते एकच्चानं उरुवेलकप्पियानं मनुस्सानं वधेन वा बन्धेन वा जानिया वा गरहाय वा उप्पज्जेय्युं सोकपरिदेव-दुक्खदोमनस्सुपायासा" ति?

"येसं मे, भन्ते, उरुवेलकप्पियानं मनुस्सानं वधेन वा बन्धेन वा जानिया वा गरहाय वा उप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा, अत्थि मे तेसु छन्दरागो। येसं पन, भन्ते, उरुवेलकप्पियानं मनुस्सानं वधेन वा बन्धेन वा जानिया वा गरहाय वा नुप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा, नत्थि मे तेसु छन्दरागो" ति।

"इमिना त्वं, गामणि, धम्मेन दिट्ठेन विदितेन अकालिकेन पत्तेन परियोगाळ्हेन अतीतानागते नयं नेहि—'यं खो किञ्चि अतीतमद्धानं दुक्खं उप्पज्जमानं उप्पज्जि सब्बं तं छन्दमूलकं छन्दनिदानं। छन्दो हि मूलं दुक्खस्स। यम्पि हि किञ्चि अनागतमद्धानं दुक्खं उप्पज्जमानं उप्पज्जिस्सति, सब्बं तं छन्दमूलकं छन्दनिदानं। छन्दो हि मूलं दुक्खस्सा'" ति। [B.512]

"अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! याव सुभासितं चिदं, भन्ते, भगवता—'यं किञ्चि दुक्खं उप्पज्जमानं उप्पज्जित, सब्बं तं छन्दमूलकं छन्दनिदानं। छन्दो हि [R.329]

"हाँ, भन्ते! यहाँ ऐसे भी पुरुष हैं जिन के वध या बन्धन से...मुझे कोई शोक परिदेव आदि न उत्पन्न होंगे।"

"ग्रामणि! क्या कारण है कि यहाँ एक के वध बन्धन से...तुम्हें शोक परिदेव आदि उत्पन्न होते हैं तथा दूसरे के वध बन्धन से...तुम्हें शोक परिदेवादि नहीं होते?"

"भन्ते! उस में यही कारण है कि जिन उरुवेलकप्पवासियों के वध-बन्धन से...मुझे शोक परिदेवादि होते हैं उन के प्रति मेरा छन्दराग (कामना (तृष्णा)=आसक्ति) है तथा जिन उरुवेलकप्पवासियों के वध-बन्धन से...मुझे शोक परिदेवादि नहीं होते उन के प्रति मेरा कोई छन्दराग नहीं है।"

"बस, ग्रामणि! इसी बात को तुम स्वयं अपने वर्तमान काल में उत्पन्न दुःखों के विषय में चरितार्थ कर देख लो, समझ लो। इसी तरह तुम्हें अतीत काल में जो भी दुःख उत्पन्न हुए थे उनका मूल कारण भी यह 'छन्द' (आसक्ति) ही था। तथा जो कुछ अनागत काल में दुःख उत्पन्न होंगे उन का भी मूल कारण यह 'छन्द' ही होगा।"

"भन्ते! आप ने बहुत अच्छी तरह समझा दिया। भन्ते! आप का यह कथन सर्वथा उचित है कि जो कुछ भी दुःख उत्पन्न हो रहा है उस सब का मूलकारण यह छन्द ही है।

मूलं दुक्खस्सा' ति। अत्थि मे, भन्ते, चिरवासी नाम कुमारो बहि आवसथे पटिवसति। यो ख्वाहं, भन्ते, कालस्सेव वुट्ठाय पुरिसं उय्योजेमि—'गच्छ, भणे, चिरवासिं कुमारं जानाही' ति। यावकीवञ्च, भन्ते, सो पुरिसो नागच्छति, तस्स मे होतेव अञ्ञथत्तं—'मा [N.291] हेव चिरवासिस्स कुमारस्स किञ्चि आबाधयित्था'' ति।

''तं किं मञ्ञसि, गामणि, चिरवासिस्स कुमारस्स वधेन वा बन्धेन वा जानिया वा गरहाय वा उप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा'' ति?

''चिरवासिस्स मे, भन्ते, कुमारस्स वधेन वा बन्धेन वा जानिया वा गरहाय वा जीवितस्स पि सिया अञ्ञथत्तं, किं पन मे नुप्पज्जिस्सन्ति सोकपरिदेव-दुक्ख-दोमनस्सुपायासा'' ति।

''इमिना पि खो एतं, गामणि, परियायेन वेदितब्बं—'यं किञ्चि दुक्खं उप्पज्जमानं उप्पज्जति, सब्बं तं छन्दमूलकं छन्दनिदानं। छन्दो हि मूलं दुक्खस्सा' ति। तं किं मञ्ञसि, गामणि, यदा ते चिरवासिमाता अदिट्ठा अहोसि, अस्सुता अहोसि, ते चिरवासिमातुया छन्दो वा रागो वा पेमं'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''दस्सनं वा ते, गामणि, आगम्म सवनं वा एवं ते अहोसि—'चिरवासिमातुया छन्दो वा रागो वा पेमं''' ति?

आप की बात का निष्कर्ष यह निकला कि छन्द ही दुःख का मूल है। भन्ते! चिरवासी नामक मेरा एक पुत्र नगर के बाहर रहता है। भन्ते! मैं प्रतिदिन प्रातः उठ कर अपने भृत्य को आदेश देता हूँ—'जाओ! चिरवासी का कुशल समाचार ले कर आओ।' जब तक मेरा वह भृत्य चिरवासी का कुशल समाचार ले कर लौट कर नहीं आता, भन्ते! तब तक मेरे मन में उद्विग्रता ही रहती है कि पुत्र पर कोई कष्ट न आ गया हो।''

''तो क्या मानते हो, ग्रामणि! चिरवासी कुमार के वध बन्धन से...तुम्हें शोक परिदेव आदि उत्पन्न होंगे?

''भन्ते! आप शोक परिदेव की बात कह रहे हैं। उस के वध बन्धन से...मेरे चित्त (प्राणों) पर क्या क्या बीतेगी, मैं वर्णन नहीं कर सकता। साधारण शोक परिदेव की तो बात ही क्या!''

''ग्रामणि! इस से भी तुम्हें समझ लेना चाहिये कि उत्पन्न सभी दुःखों का मूल कारण 'छन्द' है। एक बात और बताओ—ग्रामणि! जब (विवाह से पूर्व) तुम ने चिरवासी की माता को नहीं देखा था तब भी उस के प्रति यही छन्दराग (प्रेम=आसक्ति) थी?''

''नहीं, भन्ते!''

"एवं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञसि, गामणि, चिरवासिमातुया ते वधेन वा बन्धेन वा जानिया वा गरहाय वा उप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा" ति?

"चिरवासिमातुया मे, भन्ते, वधेन वा बन्धेन वा जानिया वा गरहाय वा [R.330] जीवितस्स पि सिया अञ्ञथत्तं, किं पन मे नुप्पज्जिस्सन्ति सोकपरिदेवदुक्ख-दोमनस्सुपायासा" ति!

"इमिना पि खो एतं, गामणि, परियायेन वेदितब्बं—'यं किञ्चि दुक्खं उप्पज्जमानं उप्पज्जति, सब्बं तं छन्दमूलकं छन्दनिदानं। छन्दो हि मूलं दुक्खस्सा''' ति॥ •

१२. रासियसुत्तं

१२. अथ खो रासियो गामणि येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो रासियो गामणि [B.513, N.292] भगवन्तं एतदवोच—"सुतं मेतं, भन्ते, 'समणो गोतमो सब्बं तपं गरहति, सब्बं तपस्सिं लूखजीविं एकंसेन उपवदति उपक्कोसती' ति। ये ते, भन्ते, एवमाहंसु—'समणो गोतमो सब्बं तपं गरहति, सब्बं तपस्सिं लूखजीविं एकंसेन उपवदति उपक्कोसती' ति, कच्चि ते,

---

"ग्रामणि! जब चिरवासी की माता तुम्हारे पास चली आयी तब तुम्हें उस के प्रति छन्दराग हुआ? या नहीं?"

"हुआ, भन्ते!"

"तो तुम क्या समझते हो ग्रामणि! चिरवासी की माता के वध बन्धन से...तुम्हें शोक परिदेव आदि होंगे या नहीं?"

"भन्ते! आप शोक परिदेव की बात कर रहे हैं, उन के वध बन्धन से...मेरे प्राण तक कितने सङ्कट में आ जायँगे—इस की भी आप कल्पना कीजिये!"

"ग्रामणि! इस बात के सहारे से भी तुम समझ लो, जो कुछ भी उत्पन्न होने वाला दुःख है वह सब छन्द के कारण ही होता है। निष्कर्ष यह है कि छन्द ही दुःख का मूल है"॥ •

१२. राशियसूत्र : : मध्यम मार्ग का उपदेश

१२. ...तब राशिय ग्रामणी भगवान् के पास गया। वहाँ जा कर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठा हुआ वह भगवान् से यों निवेदन करने लगा—"भन्ते! मैने सुना है कि आप श्रमण गौतम सर्वविध तप की निन्दा करते हैं, सभी रूक्षजीवी तपस्वियों को आप हीन समझते हैं। अतः भन्ते! जो लोग यह कहते हैं—'श्रमण गौतम सर्वविध तपश्चर्याओं की निन्दा करते हैं...' तो ऐसा कहते हुए वे आप के विषय में सत्य

भन्ते, भगवतो वुत्तवादिनो, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खन्ति, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरोन्ति, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छती'' ति ?

''ये ते, गामणि, एवमाहंसु—'समणो गोतमो सब्बं तपं गरहति, सब्बं तपस्सिं लूखजीविं एकंसेन उपवदति उपक्कोसती' ति, न मे ते वुत्तवादिनो, अब्भाचिक्खन्ति च पन मे ते असता तुच्छा अभूतेन।

''द्वेमे, गामणि, अन्ता पब्बजितेन न सेवितब्बा—यो चायं कामेसु कामसुखल्लिकानुयोगो हीनो गम्मो पोथुज्जनिको अनरियो अनत्थसंहितो, यो चायं अत्तकिलमथानुयोगो दुक्खो अनरियो अनत्थसंहितो। एते ते, गामणि, उभो अन्ते [R.331] अनुपगम्म मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा—चक्खुकरणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति। कतमा च सा, गामणि, मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा—चक्खुकरणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति? अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि। अयं खो सा, गामणि, मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा—चक्खुकरणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति।

ही कहते हैं ना! आप पर किसी प्रकार का असत्य आरोप तो नहीं लगाते? तथा यह बात आप के धर्मानुसार ही कहते हैं ना? आप के विरुद्ध इस से कोई धार्मिक विवाद तो नहीं उठता?''

''ग्रामणि! जो मेरे विषय में ऐसा कहते हैं वे मेरे यथार्थ सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं करते, अपि तु वे मुझ पर असत्य आरोप ही लगाते हैं। ग्रामणि! मेरा मत यह है—

''ग्रामणि! किसी भी प्रव्रजित (संन्यासी) को इन दो अन्तों (सीमाओं) का अधिक सेवन नहीं करना चाहिये। कौन से दो? (१) प्रथम यह कि हीन (निकृष्ट), ग्राम्य (अलक्ष्मीकर), मूर्खों द्वारा ही करणीय तथा अनार्यजनों द्वारा सेवित, अनर्थों की मूल कामवासनाओं में अत्यधिक लिप्त रहना (=कामसुखल्लिकानुयोग); (२) तथा द्वितीय यह कि जो दुःखमय, अपने लिये कष्टकर, मूर्खजनों द्वारा ही करणीय, अनार्यजनसेवित, तथा अत्यधिक अनर्थकारी, क्लिष्ट, अपने को कष्टदायी तपस्याओं में लगे रहना (आत्मक्लमथानुयोग)। इन द्विविध अतियों (सीमाओं) की उपेक्षा कर तथागत ने मध्यम मार्ग की गवेषणा की है। जो मध्यम मार्ग आँखें खोल देने वाला है, विशिष्ट ज्ञानदायक है; तथा शान्ति, अभिज्ञा, सम्बोधि (बुद्धत्व) एवं निर्वाण की ओर बढ़ाने वाला है। वह आर्यमार्ग कौन सा है जिस की तथागत ने गवेषणा की है, तथा जो...पूर्ववत्...निर्वाण की

"तयो खो मे, गामणि, कामभोगिनो सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो? इध, गामणि, एकच्चो भोगी **अधम्मेन** भोगे परियेसति, साहसेन अधम्मेन भोगे परियेसित्वा साहसेन न अत्तानं सुखेति न पीणेति न संविभजति न पुञ्ञानि करोति। इध पन, गामणि, एकच्चो कामभोगी अधम्मेन भोगे परियेसति साहसेन। अधम्मेन [B.514] भोगे परियेसित्वा साहसेन अत्तानं सुखेति पीणेति, न संविभजति न पुञ्ञानि करोति। इध पन, गामणि, एकच्चो कामभोगी अधम्मेन भोगे परियेसति साहसेन। अधम्मेन [N.293] भोगे परियेसित्वा साहसेन अत्तानं सुखेति पीणेति संविभजति पुञ्ञानि करोति।(१)

"इध पन, गामणि, एकच्चो कामभोगी **धम्माधम्मेन** भोगे परियेसति साहसेन पि असाहसेन पि। धम्माधम्मेन भोगे परियेसित्वा साहसेन पि असाहसेन पि न [R.332] अत्तानं सुखेति न पीणेति न संविभजति न पुञ्ञानि करोति। इध पन, गामणि, एकच्चो कामभोगी धम्माधम्मेन भोगे परियेसति साहसेन पि असाहसेन पि। धम्माधम्मेन भोगे परियेसित्वा साहसेन पि असाहसेन पि अत्तानं सुखेति पीणेति, न संविभजति न पुञ्ञानि करोति। इध पन, गामणि, एकच्चो कामभोगी धम्माधम्मेन भोगे परियेसति साहसेन पि

ओर ले जाने वाला है? यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग; जैसे—सम्यग्दृष्टि...पूर्ववत्... सम्यक्समाधि। ग्रामणि! यही वह मध्यम मार्ग है, जिस की तथागत ने गवेषणा की है, जो...पूर्ववत्...निर्वाण की ओर बढ़ाने वाला है॥

"ग्रामणि! लोक में तीन प्रकार के कामभोगी होते हैं। कौन से तीन?

(१) (क) ग्रामणी कोई वह जो **अधर्मपूर्वक** कामभोगों की खोज करता है, तथा हिंसा तथा दुःसाहस (क्रूरता) द्वारा उन कामभोगों की खोज कर क्रूरतापूर्वक न स्वयं उन से सुखी हो पाता है, न दूसरों को ही, उन में से कुछ भाग दे कर, सुखी (प्रसन्न) कर पाता है; न उन के माध्यम से कोई पुण्य ही कर पाता है। (ख) कोई कामभोगी अधर्मपूर्वक एवं क्रूरतापूर्वक कामभोगों की खोज करता है, तथा उन से वह अपने को तो सुखी सम्पन्न कर लेता है, परन्तु दूसरों को उस में कोई भाग नहीं देता, न उन कामभोगों के माध्यम से कोई पुण्य ही करता है। (ग) तथा ग्रामणि! कोई कामभोगी अधर्मपूर्वक तथा साहसपूर्वक कामभोगों की खोज करता है। इस प्रकार उन कामभोगों की खोज कर उन से स्वयं को भी सुखी एवं प्रसन्न रखता है, तथा दूसरों को भी उस में से कुछ भाग पुण्य में भी लगाता है।

(२) (क) ग्रामणि! यहाँ कोई कामभोगी **धर्म-अधर्म** से कामभोगों का सञ्चय करता है, उस में क्रूरता भी रहती है, नहीं भी रहती; परन्तु उस से न तो वह स्वयं सुख भोगता है, न किसी को वह बाँटता ही है, न कोई पुण्य करता है; (ख) ...स्वयं तो सुख

असाहसेन पि। धम्माधम्मेन भोगे परियेसित्वा साहसेन पि असाहसेन पि अत्तानं सुखेति पीणेति संविभजति पुञ्ञानि करोति। (२)

''इध पन, गामणि, एकच्चो कामभोगी **धम्मेन** भोगे परियेसति असाहसेन। धम्मेन भोगे परियेसित्वा असाहसेन न अत्तानं सुखेति न पीणेति न संविभजति न पुञ्ञानि करोति। इध पन, गामणि, एकच्चो कामभोगी धम्मेन भोगे परियेसति असाहसेन। धम्मेन भोगे परियेसित्वा असाहसेन अत्तानं सुखेति पीणेति, न संविभजति न पुञ्ञानि करोति। इध पन, गामणि, एकच्चो कामभोगी धम्मेन भोगे परियेसति असाहसेन। धम्मेन भोगे परियेसित्वा असाहसेन अत्तानं सुखेति पीणेति संविभजति पुञ्ञानि करोति। ते च भोगे गधितो मुच्छितो अज्झोपन्नो अनादीनवदस्सावी अनिस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जति। इध पन, गामणि, एकच्चो कामभोगी धम्मेन भोगे परियेसति असाहसेन। धम्मेन भोगे परियेसित्वा असाहसेन अत्तानं सुखेति पीणेति [R.333] संविभजति पुञ्ञानि करोति। ते च भोगे अगधितो अमुच्छितो अनज्झोपन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जति। (३)

[B.515] (१) ''तत्र, गामणि, य्वायं कामभोगी **अधम्मेन** भोगे परियेसति साहसेन, अधम्मेन भोगे परियेसित्वा साहसेन न अत्तानं सुखेति न पीणेति न संविभजति न

भोगता है, परन्तु दूसरों को उस में कोई विभाग नहीं देता, न उस से कोई पुण्य ही करता है; (ग) ...स्वयं भी सुख भोगता है, दूसरों को भी बाँटता है, तथा कुछ पुण्य भी करता है।

(३) (क)''ग्रामणि! कोई कामभोगी **धर्म** एवं **दयापूर्वक** अपने कामभोगों का सञ्चय करता है, परन्तु उस से न स्वयं सुख भोगता है, न किसी को उस में भाग देता है, न कोई पुण्य ही करता है;

(ख) ...स्वयं तो उस से सुख भोगता है, परन्तु न किसी को उस में भाग देता है, न कोई पुण्य करता है;

(ग) ...स्वयं भी सुख भोगता है, दूसरों को भी कुछ देता है, तथा पुण्य भी करता है। परन्तु वह उन भोगों में लोभाभिभूत एवं आसक्त होता हुआ उन भोगों का सेवन करता है।

(घ) यहाँ, ग्रामणि! कोई...पूर्ववत्...लोभाभिभूत नहीं होता तथा उसी में मुग्ध भी नहीं होता, अपि तु उन (कामभोगों) का दोष देखते हुए, उन से मुक्ति की बात समझते हुए उन का उपभोग करता है।

अधर्मपूर्वक—(१) (क)''ग्रामणि! इन में जो अधर्मपूर्वक कामभोगों की गवेषणा

पुञ्ञानि करोति, अयं, गामणि, कामभोगो तीहि ठानेहि गारय्हो। कतमेहि तीहि ठानेहि गारय्हो? अधम्मेन भोगे परियेसति साहसेना ति, इमिना पठमेन ठानेन गारय्हो। न अत्तानं सुखेति न पीणेती ति, इमिना दुतियेन ठानेन गारय्हो। न संविभजति न पुञ्ञानि करोती ति, इमिना ततियेन ठानेन गारय्हो। अयं, गामणि, कामभोगी इमेहि [N.294] तीहि ठानेहि गारय्हो। (क)

"तत्र, गामणि, य्वायं कामभोगी **अधम्मेन** भोगे परियेसति **साहसेन**, अधम्मेन भोगे परियेसित्वा साहसेन अत्तानं सुखेति पीणेति, न संविभजति न पुञ्ञानि करोति, अयं, गामणि, कामभोगी द्वीहि ठानेहि गारय्हो, एकेन ठानेन पासंसो। कतमेहि द्वीहि ठानेहि गारय्हो? अधम्मेन भोगे परियेसति साहसेना ति, इमिना पठमेन ठानेन गारय्हो। न संविभजति न पुञ्ञानि करोती ति, इमिना दुतियेन ठानेन गारय्हो। कतमेन एकेन ठानेन पासंसो? अत्तानं सुखेति पीणेती ति, इमिना एकेन ठानेन पासंसो। अयं, गामणि, कामभोगी इमेहि द्वीहि ठानेहि गारय्हो, इमिना एकेन ठानेन पासंसो। (ख)

"तत्र, गामणि, य्वायं कामभोगी **अधम्मेन** भोगे परियेसति **साहसेन**, अधम्मेन

कर...उन से न स्वयं सुख भोगता है, न दूसरों को कुछ देता है, न उन के सहारे कुछ पुण्य ही करता है, वह तीन स्थानों से निन्दनीय (गर्ह्य) समझा जाता है। कौन से तीन? अधर्म एवं क्रूरतापूर्वक उन कामभोगों की गवेषणा करता है—यह पहला निन्दनीय स्थान है; न उन से अपने को सुखी बनाता है—यह उस का दूसरा निन्दनीय स्थान है। तथा तीसरा निन्दनीय स्थान है—उस में से कुछ भी भाग दूसरे को न देना एवं उस से कोई पुण्य भी न करना। ग्रामणि! यह पहला कामभोगी इन तीन स्थानों से निन्दनीय होता है।

(१) (ख)"वहाँ, ग्रामणि! कोई कामभोगी **अधर्म एवं क्रूरतापूर्वक** कामभोगों की गवेषणा कर उन के माध्यम से स्वयं तो सुख भोगता है, परन्तु दूसरों को उन कामभोगों में कोई भाग नहीं देता, न उन से कोई पुण्य ही करता है, ऐसा कामभोगी दो स्थानों से निन्दनीय होता है तथा एक स्थान से प्रशंसनीय। किन दो स्थानों से निन्दनीय होता है? वह उन कामभोगों की अधर्म तथा क्रूरतापूर्वक खोज करता है—यह उस का पहला निन्दनीय स्थान है। दूसरा स्थान है—वह उन कामभोगों का न दूसरों के लिये विभाजन करता है, न उन से कोई पुण्य ही करता है। तथा किस एक स्थान से वह प्रशंसनीय होता है? वह स्वयं उन कामभोगों का उपभोग कर सुखी एवं प्रसन्न रहता है—यह उस का एक स्थान प्रशंसनीय है। यों यह कामभोगी, ग्रामणि! दो स्थानों से निन्दनीय एवं एक स्थान से प्रशंसनीय होता है।

(१) (ग) "ग्रामणि! कोई कामभोगी **अधर्म एवं क्रूरतापूर्वक** कामभोगों की

भोगे परियेसित्वा साहसेन अत्तानं सुखेति पीणेति संविभजति पुञ्ञानि करोति, अयं, [R.334] गामणि, कामभोगी एकेन ठानेन गारय्हो, द्वीहि ठानेहि पासंसो। कतमेन एकेन ठानेन गारय्हो? अधम्मेन भोगे परियेसति साहसेना ति, इमिना एकेन ठानेन गारय्हो। कतमेहि द्वीहि ठानेहि पासंसो? अत्तानं सुखेति पीणेती ति, इमिना पठमेन ठानेन पासंसो। संविभजति पुञ्ञानि करोती ति, इमिना दुतियेन ठानेन पासंसो। अयं, गामणि, कामभोगी इमिना एकेन ठानेन गारय्हो, इमेहि द्वीहि ठानेहि पासंसो। (ग)

(२) "तत्र, गामणि, य्वायं कामभोगी **धम्माधम्मेन** भोगे परियेसति साहसेन पि असाहसेन पि, धम्माधम्मेन भोगे परियेसित्वा साहसेन पि असाहसेन पि न अत्तानं [B.516] सुखेति न पीणेति न संविभजति न पुञ्ञानि करोति, अयं, गामणि, कामभोगी एकेन ठानेन पासंसो, तीहि ठानेहि गारय्हो। कतमेन एकेन ठानेन पासंसो? धम्मेन भोगे परियेसति असाहसेना ति, इमिना एकेन ठानेन पासंसो। कतमेहि तीहि ठानेहि गारय्हो? अधम्मेन भोगे परियेसति साहसेना ति, इमिना पठमेन ठानेन गारय्हो। न अत्तानं सुखेति न पीणेती ति, इमिना दुतियेन ठानेन गारय्हो। न संविभजति न पुञ्ञानि करोती ति, [N.295] इमिना ततियेन ठानेन गारय्हो। अयं, गामणि, कामभोगी इमिना एकेन ठानेन पासंसो, इमेहि तीहि ठानेहि गारय्हो। (क)

खोज कर उन से स्वयं भी सुखी रहता है, दूसरों के लिये विभाजन भी करता है तथा उन से कुछ पुण्य भी करता है, ऐसा कामभोगी एक स्थान से निन्दनीय तथा दो स्थानों से प्रशंसनीय कहलाता है। किस एक स्थान से निन्दनीय कहलाता है? वह अधर्म एवं क्रूरतापूर्वक उस कामभोग की गवेषणा करता है—यही उस का निन्दनीय स्थान है। किन दो स्थानों से वह प्रशंसनीय है? वह उन कामभोगों का दूसरों के लिये विभाजन भी करता है तथा उन से कुछ पुण्य भी करता है—ये ही दो स्थान उस के लिये प्रशंसनीय हैं।

धर्म-अधर्मपूर्वक—(२)(क)"वहाँ, ग्रामणि! जो कामभोगी धर्म-अधर्मपूर्वक, निर्दयता या दयापूर्वक भोगों का चयन करता है, वैसा कर के न वह अपने को उन के उपभोग द्वारा सुखी रखता है, न उन्हें किसी दूसरे को बाँटता है, न उन से कोई पुण्य ही करता है; ग्रामणि! ऐसा कामभोगी एक स्थान से प्रशंसनीय होता है कि वह धर्म एवं दयापूर्वक अपने उन भोगों का चयन करता है, तथा अवशिष्ट तीन स्थानों से निन्दनीय होता है कि वह (क) अधर्म एवं निर्दयतापूर्वक उन भोगों का चयन करता है, (ख) न उन कामभोगों को किसी दूसरे के लिये विभाजित करता है और (ग) न उन से कोई पुण्य ही करता है। ग्रामणि! ऐसा कामभोगी इन दो स्थानों से निन्दनीय होता है, तथा धर्म तथा दयापूर्वक उन भोगों का चयन करता है और अपने को सुखी रखता है—इन दो स्थान से प्रशंसनीय भी होता है। यों, वह दो स्थानों से प्रशंसनीय तथा दो स्थानों से निन्दनीय होता है।

"तत्र, गामणि, य्वायं कामभोगी **धम्माधम्मेन** भोगे परियेसति साहसेन पि असाहसेन पि, धम्माधम्मेन भोगे परियेसित्वा साहसेन पि असाहसेन पि अत्तानं सुखेति पीणेति, न संविभजति न पुञ्ञानि करोति, अयं, गामणि, कामभोगी द्वीहि ठानेहि पासंसो, द्वीहि ठानेहि गारय्हो। कतमेहि द्वीहि ठानेहि पासंसो? धम्मेन भोगे परियेसति असाहसेना ति, इमिना पठमेन ठानेन पासंसो। अत्तानं सुखेति पीणेती ति, [R.335] इमिना दुतियेन ठानेन पासंसो। कतमेहि द्वीहि ठानेहि गारय्हो? अधम्मेन भोगे परियेसति साहसेना ति, इमिना पठमेन ठानेन गारय्हो। न संविभजति न पुञ्ञानि करोती ति, इमिना दुतियेन ठानेन गारय्हो। अयं, गामणि, कामभोगी इमेहि द्वीहि ठानेहि पासंसो, इमेहि द्वीहि ठानेहि गारय्हो। (ख)

"तत्र, गामणि, य्वायं कामभोगी **धम्माधम्मेन** भोगे परियेसति साहसेन पि असाहसेन पि, धम्माधम्मेन भोगे परियेसित्वा साहसेन पि असाहसेन पि अत्तानं सुखेति

---

(२) (ख) "ग्रामणि! कोई कामभोगी **अधर्म एवं क्रूरता** या **दयापूर्वक** कामभोगों को खोजता है, खोज कर अधर्म एवं क्रूरतापूर्वक उपभोग करता हुआ स्वयं को तो सुखी एवं प्रसन्न रखता है, परन्तु दूसरों के लिये न उस का विभाजन ही करता है, न उस से कोई पुण्य ही करता है। ऐसा यह कामभोगी दो स्थानों से निन्दनीय तथा एक स्थान से प्रशंसनीय होता है। कौन से दो स्थानों से निन्दनीय? एक—अधर्म से उन भोगों का पर्येषण, तथा दो—अधर्म के कारण ही उन का विभाजन न करना तथा उन भोगों से पुण्य कर्म न करना। हाँ, एक स्थान से वह प्रशंसनीय भी होता है, क्यों कि वह अपने को उन के उपभोग से सुखी रखता है। ग्रामणि! यों यह कामभोगों का उपभोग करता हुआ दो स्थानों से निन्दा तथा एक स्थान से प्रशंसा प्राप्त करता है।

(२)(ग)"तथा, ग्रामणि! जो कामभोगी अधर्म से क्रूरतापूर्वक भोगों का चयन करता है। ऐसा चयन कर के भी वह स्वयं भी उन का सुखपूर्वक उपभोग करता है तथा दूसरों को विभाजन के साथ साथ उस से कुछ पुण्य भी करता है। ऐसा कामभोगी केवल एक ही स्थान से निन्दनीय कहा जा सकता है कि वह अधर्मपूर्वक उन कामभोगों का चयन करता है। परन्तु अवश्य दो स्थानों से तो उस की प्रशंसा ही होती है कि वह उन कामभोगों से अपने को भी सुखी रखता है तथा उन कामभोगों में से कुछ दूसरों को दे कर पुण्य भी प्राप्त करता है। इस तरह वह एक स्थान से निन्द्य तथा दो स्थानों से प्रशंसनीय होता है।

"वहाँ, ग्रामणि! कोई कामभोगी धर्म अधर्मपूर्वक...पूर्ववत्...अपने को भी सुखी रखता है, दूसरों को भी अंश देता है, उस में से कुछ पुण्य भी करता है। ऐसा कामभोगी

पीणेति संविभजति पुञ्ञानि करोति, अयं, गामणि, कामभोगी तीहि ठानेहि पासंसो, एकेन ठानेन गारय्हो। कतमेहि तीहि ठानेहि पासंसो? धम्मेन भोगे परियेसति असाहसेना ति, इमिना पठमेन ठानेन पासंसो। अत्तानं सुखेति पीणेती ति, इमिना दुतियेन ठानेन पासंसो। संविभजति पुञ्ञानि करोती ति, इमिना ततियेन ठानेन पासंसो। कतमेन [B.517] एकेन ठानेन गारय्हो? अधम्मेन भोगे परियेसति साहसेना ति, इमिना एकेन ठानेन गारय्हो। अयं, गामणि, कामभोगी इमेहि तीहि ठानेहि पासंसो, इमिना एकेन ठानेन गारय्हो। (ग)

(३)''तत्र, गामणि, य्वायं कामभोगी **धम्मेन** भोगे परियेसति असाहसेन, धम्मेन भोगे परियेसित्वा असाहसेन न अत्तानं सुखेति न पीणेति न संविभजति न पुञ्ञानि करोति, अयं, गामणि, कामभोगी एकेन ठानेन पासंसो, द्वीहि ठानेहि गारय्हो। कतमेन एकेन ठानेन पासंसो? धम्मेन भोगे परियेसति असाहसेना ति, इमिना एकेन ठानेन पासंसो। कतमेहि द्वीहि ठानेहि गारय्हो? न अत्तानं सुखेति न पीणेती ति, इमिना पठमेन ठानेन गारय्हो। न संविभजति न पुञ्ञानि करोती ति, इमिना दुतियेन ठानेन गारय्हो। अयं, गामणि, कामभोगी इमिना एकेन ठानेन पासंसो, इमेहि द्वीहि ठानेहि गारय्हो। (क)

[N.296, R.336] ''तत्र, गामणि, य्वायं कामभोगी **धम्मेन** भोगे परियेसति असाहसेन, धम्मेन भोगे परियेसित्वा असाहसेन अत्तानं सुखेति पीणेति, न संविभजति न पुञ्ञानि करोति, अयं, गामणि, कामभोगी द्वीहि ठानेहि पासंसो, एकेन ठानेन गारय्हो। कतमेहि द्वीहि ठानेहि पासंसो? धम्मेन भोगे परियेसति असाहसेना ति, इमिना पठमेन ठानेन

तीन स्थानों से प्रशंसनीय है तो एक स्थान से गर्हणीय भी। वह धर्मपूर्वक...भोगों का चयन करता है, उन से अपने को सुखी रखता है, तथा उस में से कुछ विभाजन कर पुण्य भी करता है—इन तीन स्थानों से वह प्रशंसनीय है तो अधर्मपूर्वक कामभोगों का चयन करने के कारण एक स्थान से वह निन्दनीय भी है।

धर्मपूर्वक—३. (क) ''वहाँ, ग्रामणि! जो कामभोगी धर्नपूर्वक तथा दयापूर्वक ही अपने कामभोगों को खोजता है, वैसा कर के भी उन से न स्वयं को सुखी करता है, न उस का कुछ अंश दूसरों को देता है—ऐसा वह कामभोगी एक स्थान से तो प्रशंसनीय है कि वह धर्म एवं दयापूर्वक उन कामभोगों की गवेषणा करता है; परन्तु दो स्थानों से—उस से स्वयं को सुखी न रखना, तथा विभाजन कर कोई पुण्य न करना—इन दो स्थानों से वह निन्दनीय भी है।

३. (ख) फिर, ग्रामणि! ऐसा ही कोई दूसरा कामभोगी धर्म एवं दयापूर्वक... पूर्ववत्...उन का भोग कर स्वयं तो सुखी रहता है, परन्तु वह उन कामभोगों का न कोई

पासंसो। अत्तानं सुखेति पीणेती ति, इमिना दुतियेन ठानेन पासंसो। कतमेन एकेन ठानेन गारय्हो? न संविभजति न पुञ्ञानि करोती ति, इमिना एकेन ठानेन गारय्हो। अयं, गामणि, कामभोगी इमेहि द्वीहि ठानेहि पासंसो, इमिना एकेन ठानेन गारय्हो। (ख)

"तत्र, गामणि, य्वायं कामभोगी **धम्मेन** भोगे परियेसति असाहसेन, धम्मेन भोगे परियेसित्वा असाहसेन अत्तानं सुखेति पीणेति संविभजति पुञ्ञानि करोति, ते च भोगे गधितो मुच्छितो अज्झोपन्नो अनादीनवदस्सावी अनिस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जति, अयं, गामणि, कामभोगी तीहि ठानेहि पासंसो, एकेन ठानेन गारय्हो। कतमेहि तीहि ठानेहि पासंसो? धम्मेन भोगे परियेसति असाहसेना ति, इमिना पठमेन ठानेन पासंसो। [B.518] अत्तानं सुखेति पीणेती ति, इमिना दुतियेन ठानेन पासंसो। संविभजति पुञ्ञानि करोती ति, इमिना ततियेन ठानेन पासंसो। कतमेन एकेन ठानेन गारय्हो? ते च भोगे गधितो मुच्छितो अज्झोपन्नो अनादीनवदस्सावी अनिस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जती ति, इमिना एकेन ठानेन गारय्हो। अयं, गामणि, कामभोगी इमेहि तीहि ठानेहि पासंसो, इमिना एकेन ठानेन गारय्हो। (ग)

"तत्र, गामणि, य्वायं कामभोगी **धम्मेन** भोगे परियेसति असाहसेन, धम्मेन भोगे परियेसित्वा असाहसेन अत्तानं सुखेति पीणेति संविभजति पुञ्ञानि करोति, ते च भोगे

विभाजन करता है तथा उन से कोई पुण्य ही करता है। ऐसा वह कामभोगी दो स्थानों से प्रशंसनीय कहलाता है—एक, धर्मपूर्वक कामभोगों का चयन करना, तथा दो—स्वयं को उन के उपभोग से सुखी रखना। परन्तु वह उन का कुछ विभाजन कर उस से कुछ पुण्य नहीं करता—यह एक स्थान उस को निन्दा का पात्र बना देता है।

३. (ग) "फिर, ग्रामणि! एक दूसरा कामभोगी ऐसा भी होता है जो धर्म एवं दयापूर्वक ...पूर्ववत्...अपने को उन से सुखी रखता है तथा उन के कुछ अंश से पुण्य भी करता है; परन्तु वह उन्हीं कामभोगों में लोभाभिभूत तथा आसक्त हो कर रह जाता है। न उसे उन में कोई दोष दिखायी देता है, तथा न उन से मुक्त होने का उपाय ही उसे ज्ञात है। ग्रामणि! ऐसा वह कामभोगी तीन स्थानों से प्रशंसनीय होता है तथा एक स्थान से निन्दनीय होता है। प्रशंसा के तीन स्थान—१. धर्म एवं दयापूर्वक उन कामभोगों का पर्येषण, २. अपने को उन से सुखी रखना, तथा ३. उन का विभाजन कर पुण्य करना। निन्दा का एक स्थान—वह उन भोगों में लोभाभिभूत एवं आसक्त हो कर उन में वर्तमान दोष एवं उस से मुक्त होने का उपाय न जानता हुआ ही उन का उपभोग करता रहता है। यों यह कामभोगी तीन स्थानों से प्रशंसनीय तथा एक स्थान से निन्दनीय होता है।

३. (घ) "फिर, ग्रामणि! एक कामभोगी धर्म एवं दयापूर्वक... पूर्ववत्...कामभोगों

[R.337] अगधितो अमुच्छितो अनज्झोपन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जति, अयं, गामणि, कामभोगी चतूहि ठानेहि पासंसो। कतमेहि चतूहि ठानेहि पासंसो ? धम्मेन भोगे परियेसति असाहसेना ति, इमिना पठमेन ठानेन पासंसो। अत्तानं सुखेति पीणेती ति, इमिना दुतियेन ठानेन पासंसो। संविभजति पुञ्ञानि करोती ति, इमिना ततियेन ठानेन पासंसो। ते च भोगे अगधितो अमुच्छितो अनज्झोपन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जती ति, इमिना चतुत्थेन ठानेन पासंसो। अयं, गामणि, कामभोगी इमेहि चतूहि ठानेहि पासंसो। (घ)

[N.297] ''तयोमे, गामणि, तपस्सिनो लूखजीविनो सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो ? इध, गामणि, एकच्चो तपस्सी लूखजीवी सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति—'अप्पेव नाम कुसलं धम्मं अधिगच्छेय्यं, अप्पेव नाम उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं सच्छिकरेय्यं' ति। सो अत्तानं आतापेति परितापेति, कुसलं च धम्मं नाधिगच्छति, उत्तरि च मनुस्सधम्मा अलमरियञाण-दस्सनविसेसं न सच्छिकरोति। (१)

''इध पन, गामणि, एकच्चो तपस्सो लूखजीवी सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति—'अप्पेव नाम कुसलं धम्मं अधिगच्छेय्यं, अप्पेव नाम उत्तरिमनुस्स-

---

के उपभोग से अपने को भी सुखी रखता है, उन का विभाजन कर उन से कुछ पुण्य भी करता है तथा उन में लोभ एवं आसक्ति न रखता हुआ उन के दोषों को तथा उन से मुक्ति के उपाय को भी जानता हुआ उन कामभोगों का उपभोग करता है। ग्रामणि! ऐसा कामभोगी चारों ही स्थानों से प्रशंसनीय होता है, कहीं से भी निन्दनीय नहीं होता। कौन से चार स्थान ? एक—वह धर्म एवं दयापूर्वक उन कामभोगों की गवेषणा करता है, दो—उन से स्वयं को सुखी एवं प्रसन्न रखता है, तीन—विभाजन कर उन से कुछ पुण्य कर्म भी करता है। चार—उन का उपभोग करता हुआ भी उन में लोभ तथा आसक्ति नहीं रखता, वह उन में दोष देखता हुआ उन से मुक्ति का उपाय भी जानता है। यों, ग्रामणि! यह कामभोगी इन चार स्थानों से प्रशंसायोग्य है॥

त्रिविध तपस्वी—''ग्रामणि! रूक्ष जीवनचर्या वाले तपस्वी भी तीन प्रकार के होते हैं। कौन से तीन ? (१) ग्रामणि! कोई रूक्षजीवी तपस्वी श्रद्धापूर्वक घर से निकल कर यह सोच कर प्रव्रज्या लेता है कि मैं कुशल धर्मों का अधिग्रहण कर सकूँ तथा लोकोत्तर धर्म एवं परमज्ञान का साक्षात्कार कर सकूँ। एतदर्थ, वह अपने को विविध कष्ट एवं पीड़ाएँ देता है; किन्तु वह न तो कुशल धर्म ही प्राप्त कर पाता है तथा न अलौकिक धर्म एवं परम ज्ञानदर्शन का ही साक्षात्कार कर पाता है।

धम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं सच्छिकरेय्यं' ति। सो अत्तानं आतापेति परितापेति। कुसलं हि खो धम्मं अधिगच्छति, उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं न सच्छिकरोति। (२)

"इध पन, गामणि, एकच्चो तपस्सी लूखजीवी सद्धा अगारस्मा [B.519, R.338] अनगारियं पब्बजितो होति—'अप्पेव नाम कुसलं धम्मं अधिगच्छेय्यं, अप्पेव नाम उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं सच्छिकरेय्यं' ति। सो अत्तानं आतापेति परितापेति, कुसलं च धम्मं अधिगच्छति, उत्तरि च मनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सन-विसेसं सच्छिकरोति। (३)

"तत्र, गामणि, य्वायं तपस्सी लूखजीवी अत्तानं आतापेति परितापेति, कुसलं च धम्मं नाधिगच्छति, उत्तरि च मनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं न सच्छिकरोति, अयं, गामणि, तपस्सी लूखजीवी तीहि ठानेहि गारय्हो। कतमेहि तीहि ठानेहि गारय्हो? अत्तानं आतापेति परितापेती ति, इमिना पठमेन ठानेन गारय्हो। कुसलं च धम्मं नाधिगच्छती ति, इमिना दुतियेन ठानेन गारय्हो। उत्तरि च मनुस्सधम्मा अलमरियञाण-दस्सनविसेसं न सच्छिकरोती ति, इमिना ततियेन ठानेन गारय्हो। अयं, गामणि, तपस्सी लूखजीवी इमेहि तीहि ठानेहि गारय्हो। (१)

"तत्र, गामणि, य्वायं तपस्सी लूखजीवी अत्तानं आतापेति परितापेति, कुसलं हि खो धम्मं अधिगच्छति, उत्तरि च मनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं न सच्छि-करोति, अयं, गामणि, तपस्सी लूखजीवी द्वीहि ठानेहि गारय्हो, एकेन ठानेन पासंसो। कतमेहि द्वीहि ठानेहि गारय्हो? अत्तानं आतापेति परितापेती ति, इमिना पठमेन [N.298]

---

(२) ...पूर्ववत्...किन्तु वह कुशल धर्मों का लाभ तो कर लेता है परन्तु अलौकिक धर्म एवं परम ज्ञान का दर्शन नहीं कर पाता।

(३) ...पूर्ववत्...वह कुशल धर्मों का लाभ भी कर लेता है, एवं अलौकिक धर्म तथा परमज्ञान का दर्शन भी कर लेता है।

"इन में से पहले प्रकार का रूक्षाचारी तपस्वी तीन स्थानों से गर्हणीय (निन्दनीय) होता है। कौन से तीन? (क) वह अपने (शरीर) को कष्ट देता है, (ख) कुशल धर्मों को अधिगत नहीं कर पाता, तथा (ग) न अलौकिक धर्म एवं आर्य ज्ञान का ही साक्षात्कार कर पाता है। इन तीन स्थानों से...पूर्ववत्...। (१)

"इन में से दूसरे प्रकार का रूक्षाचारी तपस्वी दो स्थानों से निन्दनीय एवं एक स्थान से प्रशंसनीय होता है। कौन से दो स्थान, जिन से वह निन्दनीय होता है? (क) वह

ठानेन गारय्हो। उत्तरि च मनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं न सच्छिकरोती ति, इमिना दुतियेन ठानेन गारय्हो। कतमेन एकेन ठानेन पासंसो? कुसलं हि खो धम्मं अधिगच्छती ति, इमिना एकेन ठानेन पासंसो। अयं, गामणि, तपस्सी लूखजीवी इमेहि द्वीहि ठानेहि गारय्हो, इमिना एकेन ठानेन पासंसो। (२)

[R.339] ''तत्र, गामणि, य्वायं तपस्सी लूखजीवी अत्तानं आतापेति परितापेति, कुसलं च धम्मं अधिगच्छति, उत्तरि च मनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं सच्छिकरोति, अयं, गामणि, तपस्सी लूखजीवी एकेन ठानेन गारय्हो, द्वीहि ठानेहि पासंसो। कतमेन एकेन ठानेन गारय्हो? अत्तानं आतापेति परितापेती ति, इमिना एकेन ठानेन गारय्हो। कतमेहि द्वीहि ठानेहि पासंसो? कुसलं च धम्मं अधिगच्छती ति, इमिना पठमेन ठानेन [B.520] पासंसो। उत्तरि च मनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं सच्छिकरोती ति, इमिना दुतियेन ठानेन पासंसो। अयं, गामणि, तपस्सी लूखजीवी इमिना एकेन ठानेन गारय्हो, इमेहि द्वीहि ठानेहि पासंसो॥ (३)

''तिस्सो इमा, गामणि, सन्दिट्ठिका **निज्जरा** अकालिका एहिपस्सिका ओपनेय्यिका पच्चत्तं वेदितब्बा विञ्ञूहि। कतमा तिस्सो? यं रत्तो रागाधिकरणं अत्तब्याबाधाय पि चेतेति, परब्याबाधाय पि चेतेति, उभयब्याबाधाय पि चेतेति। रागे

अपने (शरीर) को कष्ट देता है, तथा (ख) वह अलौकिक धर्म एवं परमज्ञान का साक्षात्कार नहीं कर पाता। तथा किस एक स्थान से वह प्रशंसनीय है? वह कुशल धर्मों को प्राप्त कर लेता है—यह उस की प्रशंसा है। इस तरह...पूर्ववत्...। (२)

''इन्हीं में से तीसरे स्थान का रूक्षजीवी तपस्वी दो स्थानों से प्रशंसनीय तथा एक स्थान से निन्द्य समझा जाता है। जैसे—वह कुशल धर्मों को अधिगत कर लेता है, तथा अलौकिक धर्म एवं परमज्ञान का साक्षात्कार कर लेता है—इन दो स्थानों से प्रशंसनीय समझा जाता है। परन्तु वह इन सब की अधिगति के लिये अपने शरीर को कष्ट देता है—यह उस का एक निन्दा-स्थान है॥ (३)

तीन निर्जर—''ग्रामणि! ये निर्जर (जीर्णता एवं ह्रासरहित) कर्म तीन हैं, जो इसी शरीर से प्रत्यक्ष किये जा सकते हैं, जो अविलम्ब फल देते हैं, जो दूसरे लोगों को 'आओ, देखो'—कह कर प्रत्यक्ष कराये जा सकते हैं, जो साधक को निर्वाण मार्ग की ओर ले जाने वाले हैं, जिन्हें विद्वान् लोग अपने मन में ही चिन्तन कर जान लेते हैं। कौन से तीन?

१. कोई रागरक्त पुरुष, अपने राग के कारण, स्व का भी अहित चिन्तन करता है, पर का भी अहित चिन्तन करता है, स्व पर—दोनों का भी अहित चिन्तन करता है। (इसके विपरीत—) राग के प्रहीण होने पर वही पुरुष न स्व का, न पर का, न उभय का

पहीने नेवत्तब्याबाधाय चेतेति, न परब्याबाधाय चेतेति, न उभयब्याबाधाय चेतेति। सन्दिट्ठिका निज्जरा अकालिका एहिपस्सिका ओपनेय्यिका पच्चत्तं वेदितब्बा विञ्ञूहि। यं दुट्ठो दोसाधिकरणं अत्तब्याबाधाय पि चेतेति, परब्याबाधाय पि चेतेति, उभयब्याबाधाय पि चेतेति॥ दोसे पहीने नेवत्तब्याबाधाय चेतेति, न परब्याबाधाय [R.340] चेतेति, न उभयब्याबाधाय चेतेति। सन्दिट्ठिका निज्जरा अकालिका एहिपस्सिका ओपनेय्यिका पच्चत्तं वेदितब्बा विञ्ञूहि। यं मूळ्हो मोहाधिकरणं अत्तब्याबाधाय पि चेतेति, परब्याबाधाय पि चेतेति, उभयब्याबाधाय पि चेतेति॥ मोहे पहीने नेवत्तब्याबाधाय चेतेति, न परब्याबाधाय चेतेति, न उभयब्याबाधाय चेतेति। सन्दिट्ठिका निज्जरा अकालिका एहिपस्सिका ओपनेय्यिका पच्चत्तं वेदितब्बा विञ्ञूहि। [N.299] इमा खो, गामणि, तिस्सो सन्दिट्ठिका निज्जरा अकालिका एहिपस्सिका ओपनेय्यिका पच्चत्तं वेदितब्बा विञ्ञूही'' ति।

एवं वुत्ते, रासियो गामणि भगवन्तं एतदवोच—''अभिक्कन्तं, भन्ते...पे०... उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ ●

१३. पाटलियसुत्तं

१३. एकं समयं भगवा कोलियेसु विहरति उत्तरं नाम कोलियानं निगमो। अथ खो पाटलियो गामणि येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो पाटलियो गामणि भगवन्तं एतदवोच—''सुतं

अहित चिन्तन करता है। यह पहली निर्जर बात यहीं प्रत्यक्ष की जा सकती है। ...पूर्ववत्...चिन्तन कर जान सकते हैं।

२. कोई द्वेषी पुरुष, अपने द्वेष के कारण, ...पूर्ववत्...द्वेष के प्रहीण होने पर...पूर्ववत्... जान सकते हैं।

३. ''कोई मुग्ध पुरुष, अपने मोह के कारण, ...पूर्ववत्...मोह के प्रहीण होने पर ...पूर्ववत्...जान सकते हैं। ...पूर्ववत्...।

''ग्रामणि! यह तीन निर्जर हैं...पूर्ववत्...जान सकते हैं।''

भगवान् के इस उपदेश को सुन कर राशिय ग्रामणी भगवान् से निवेदन करने लगा—...पूर्ववत्...मुझे अपना उपासक स्वीकार करें॥ ●

१३. पाटलियसूत्र : : बुद्ध माया जानते हैं

१३. एक समय भगवान् (बुद्ध) कोलिय जनपद में कोलियक्षत्रियों के **उत्तर** नामक कस्बे में साधनाहेतु विराजमान थे। तब वहाँ पाटलिय ग्रामणी भगवान् के पास आया तथा भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस ने भगवान् से

मेतं, भन्ते—'समणो गोतमो मायं जानाती' ति। ये ते, भन्ते, एवमाहंसु—'समणो [B.521] गोतमो मायं जानाती' ति, कच्चि ते, भन्ते, भगवतो वुत्तवादिनो, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खन्ति, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरोन्ति, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छति? अनब्भाचिक्खितुकामा हि मयं, भन्ते, भगवन्तं'' ति।

''ये ते, गामणि, एवमाहंसु—'समणो गोतमो मायं जानाती' ति, वुत्तवादिनो चेव मे, ते न च मं अभूतेन अब्भाचिक्खन्ति, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरोन्ति, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छती' ति, सच्चं येव किर, भो, मयं तेसं [R.341] समणब्राह्मणानं न सद्दहाम—'समणो गोतमो मायं जानाती ति, समणो खलु भो गोतमो मायावी' ति। यो नु खो, गामणि, एवं वदेति—'अहं मायं जानामी' ति, सो एवं वदेति—'अहं मायावी' ति। तथेव तं भगवा होति, तथेव तं सुगत होती''' ति। तेन हि, गामणि, तञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि; यथा ते खमेय्य, तथा तं ब्याकरेय्यासि—

''तं किं मञ्ञसि, गामणि, जानासि त्वं कोलियानं लम्बचूळके भटे'' ति?

''जानामहं, भन्ते, कोलियानं लम्बचूळके भटे'' ति।

यह निवेदन किया—''भन्ते! मैंने लोगों से यह सुना है—'श्रमण गौतम माया (=ठग विद्या) जानते हैं।' तो भन्ते! जो लोग आप के विषय में यह कहते हैं—'श्रमण गौतम माया जानते हैं', क्या, भन्ते! वे लोग आप में हुई बात को ही कहते हैं, आप के विषय में असत्य तो नहीं कहते, या आप पर असत्य आरोप तो नहीं लगाते? आप के धर्म के अनुकूल ही कहते हैं ना? आप के लिये कोई नया विवाद तो नहीं खड़ा करते? हम आप पर कोई आरोप नहीं सुनना चाहते।''

''ग्रामणि! जो लोग मेरे विषय में ऐसा कहते हैं—'श्रमण गौतम माया जानते हैं', तो वे लोग कुछ मिथ्या नहीं कहते! हुई बात (सत्य) को ही कहते हैं। वे मुझ पर असत्य आरोप नहीं लगाते...पूर्ववत्...। हाँ, मैं उन की कही इस बात को स्वीकार नहीं करता—'श्रमण गौतम माया जानते हैं, अतः वे मायावी भी हैं। जो यह कहता है—'श्रमण गौतम माया जानते हैं' तो उस के कहने का यह निष्कर्ष निकलता है—'श्रमण गौतम मायावी हैं। जैसे जो सुगत है वही भगवान् है, इसी तरह जो माया जानता है वह मायावी भी है। इस प्रसङ्ग में मैं तुम ही से पूछता हूँ, तुम्हें जो उचित लगे उत्तर दो।

''तो क्या मानते हो, ग्रामणि! तुम ने इन कोलियों के लम्बी चोटी वाले भट (भृत्य=नौकर) देखे हैं?''

''हाँ, भन्ते! देखे हैं।''

"तं किं मञ्ञसि, गामणि, किमत्थिया कोलियानं लम्बचूळका भटा" ति ?

"ये च, भन्ते, कोलियानं चोरा ते च पटिसेधेतुं, यानि च कोलियानं दूतेय्यानि [N.300] तानि च वहातुं, एतदत्थिया, भन्ते, कोलियानं लम्बचूळका भटा" ति।

"तं किं मञ्ञति, गामणि, जानासि त्वं कोलियानं लम्बचूळके भटे सीलवन्ते वा ते दुस्सीले वा" ति ?

"जानामहं, भन्ते, कोलियानं लम्बचूळके भटे दुस्सीले पापधम्मे; ये च लोके दुस्सीला पापधम्मा कोलियानं लम्बचूळका भटा तेसं अञ्ञतरा" ति।

"यो नु खो, गामणि, एवं वदेय्य—'पाटलियो, गामणि जानाति कोलियानं लम्बचूळके भटे दुस्सीले पापधम्मे, पाटलियो पि गामणि दुस्सीलो पापधम्मो' ति, सम्मा नु खो सो वदमानो वदेय्या" ति ?

"नो हेतं, भन्ते! अञ्ञे, भन्ते, कोलियानं लम्बचूळका भटा, अञ्ञोहमस्मि। अञ्ञथाधम्मा कोलियानं लम्बचूळका भटा, अञ्ञथाधम्मोहमस्मी" ति।

"त्वं हि नाम, गामणि, लच्छसि—'पाटलियो गामणि जानाति कोलियानं लम्बचूळके भटे दुस्सीले पापधम्मे, न च पाटलियो गामणि दुस्सीलो [R.342] पापधम्मो' ति, कस्मा तथागतो न लच्छति—'तथागतो मायं जानाति, न च तथागतो मायावी' ति? मायं चाहं, गामणि, पजानामि, मायाय च विपाकं, यथापटिपन्नो च

"तो क्या मानते हो, ग्रामणि! इन कोलियों के लम्बी चोटी वाले भट किसलिये हैं ?"

"कोलिय जनपद के चौरों के निवारणहेतु, या दौत्यकर्म हेतु ही ये भट रखे गये हैं।"

"तो क्या मानते हो, ग्रामणि! कोलियों के ये भट शीलवान् हैं, या दुःशील ?"

"जानता हूँ, भन्ते! ये सब दुःशील (दुराचारी) हैं। अपि तु यों कहिये कि संसार में जितने दुःशील हैं उन में ये एक (प्रधान) हैं।"

"तो क्या मानते हो, ग्रामणि! जो यह कहे—'मैं कोलियों के दुःशील भटों को जानता हूँ', तो क्या वह स्वयं दुःशील भी कहलायगा ?"

"नहीं, भन्ते! ऐसा कैसे हो सकता है! वे भट पृथक् हैं, मैं पृथक् हूँ। उन का स्वभाव दूसरा है, मेरा स्वभाव दूसरा है।"

"ग्रामणि! जब पाटलिय ग्रामणी दुःशील कोलिय भटों को जान कर भी स्वयं दुःशील नहीं हो सकता, तो भगवान् बुद्ध माया के विषय में जानते हुए भी स्वयं मायावी कैसे हो सकते हैं! मैं माया के विषय में जानता हूँ, माया के फल (विपाक) को भी

[B.522] मायावी कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति तं च पजानामि।

"पाणातिपातं चाहं, गामणि, जानामि, पाणातिपातस्स च विपाकं, यथापटिपन्नो च पाणातिपाती कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति तं च पजानामि। अदिन्नादानं चाहं, गामणि, जानामि, अदिन्नादानस्स च विपाकं, यथापटिपन्नो च अदिन्नादायी कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति तं च पजानामि। कामेसुमिच्छाचारं चाहं, गामणि, पजानामि, कामेसुमिच्छाचारस्स च विपाकं, यथापटिपन्नो च कामेसुमिच्छाचारी कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति तं च पजानामि। मुसावादं चाहं, गामणि, पजानामि, मुसावादस्स च विपाकं, यथापटिपन्नो च मुसावादी कायस्स भेदा परं मरणा अपायं [N.301] दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति तं च पजानामि। पिसुणवाचं चाहं, गामणि, पजानामि, पिसुणवाचाय च विपाकं, यथापटिपन्नो च पिसुणवाचो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति तं च पजानामि। फरुसवाचं चाहं, गामणि, पजानामि, फरुसवाचाय च विपाकं, यथापटिपन्नो च फरुसवाचो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति तं च पजानामि। सम्फप्पलापं [R.343] चाहं, गामणि, पजानामि, सम्फप्पलापस्स च विपाकं, यथापटिपन्नो च सम्फप्पलापी कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति तं च पजानामि। अभिज्झं चाहं, गामणि, पजानामि, अभिज्झाय च विपाकं, यथापटिपन्नो च अभिज्झालु कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति तं च पजानामि। ब्यापादपदोसं चाहं, गामणि, पजानामि, ब्यापादपदोसस्स च विपाकं, यथापटिपन्नो च ब्यापन्नचित्तो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति तं च पजानामि। मिच्छादिट्ठिं चाहं, गामणि, पजानामि, मिच्छादिट्ठिया च

जानता हूँ। ऐसा मायावी मरणानन्तर इस देहपात के बाद, नरक में उत्पन्न होते हुए दुर्गति को प्राप्त करता है—यह भी मैं जानता हूँ।

"ग्रामणि! प्राणातिपात (जीवहिंसा) को मैं जानता हूँ, उस का फल भी मैं जानता हूँ, प्राणातिपात करने वाला मरणानन्तर, इस देहपात के बाद नरक में उत्पन्न होकर दुर्गति प्राप्त करता है—इसे भी मैं जानता हूँ। ग्रामणि! चौरी को भी...व्यभिचार को भी...असत्यभाषण को भी...चुगलखोरी को भी...कठोर वाणी को भी...प्रलाप को भी...अभिध्या (अतिलोभ) को भी...व्यापाद (द्वेष) को भी...मिथ्यादृष्टि को भी, तथा उस के फल को भी एवं उस

विपाकं, यथापटिपन्नो च मिच्छादिट्ठिको कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति तं च पजानामि।

"सन्ति हि, गामणि, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'यो कोचि पाणमतिपातेति, सब्बो सो दिट्ठेव धम्मे दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति। यो कोचि अदिन्नं आदियति, सब्बो सो दिट्ठेव धम्मे दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति। यो कोचि [B.523] कामेसु मिच्छा चरति, सब्बो सो दिट्ठेव धम्मे दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति। यो कोचि मुसा भणति, सब्बो सो दिट्ठेव धम्मे दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयती" ति।

"दिस्सति खो पन, गामणि, इधेकच्चो माली कुण्डली सुन्हातो सुविलित्तो कप्पितकेसमस्सु इत्थिकामेहि राजा मञ्ञे परिचारेन्तो। तमेनं एवमाहंसु—अम्भो! अयं पुरिसो किं अकासि माली कुण्डली सुन्हातो सुविलित्तो कप्पितकेसमस्सु इत्थिकामेहि राजा मञ्ञे परिचारेती' ति? तमेनं एवमाहंसु—'अम्भो! अयं पुरिसो रञ्ञो [R.344] पच्चत्थिकं पसय्ह जीविता वोरोपेसि, तस्स राजा अत्तमनो अभिहारमदासि। [N.302] तेनायं पुरिसो माली कुण्डली सुन्हातो सुविलित्तो कप्पितकेसमस्सु इत्थिकामेहि राजा मञ्ञे परिचारेती' ति।

"दिस्सति खो, गामणि, इधेकच्चो दळ्हाय रज्जुया पच्छाबाहं गाळ्हबन्धनं बन्धित्वा खुरमुण्डं करित्वा खरस्सरेन पणवेन रथियाय रथियं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं

से युक्त पुरुष मरणानन्तर, इस देहपात के बाद, नरक में उत्पन्न हो कर दुर्गति प्राप्त करता है—यह भी मैं जानता हूँ।

अविश्वस्त मिथ्यादृष्टि—"ग्रामणि! ऐसे भी श्रमण ब्राह्मण हैं जो ऐसा कहते हैं, ऐसा मानते हैं, ऐसा उपदेश करते हैं—'जो भी जीवहिंसा करेगा, चौरी करेगा या व्यभिचार-लिप्त एवं असत्यभाषी होगा, वह इसी जन्म में, इसी शरीर से दुःख एवं दौर्मनस्य प्राप्त करेगा।

"ग्रामणि! ऐसा पुरुष भी देखा जा सकता है जो गले में माला तथा कानों में कुण्डल पहन कर, स्नान कर, गन्ध-विलेपन कर, केशविन्यास कर, स्त्रियों के बीच अत्यधिक सुखमय जीवन व्यतीत करता है; उसे देख कर लोग यह पूछते हैं—'इस ने ऐसा क्या किया था कि आज यह ऐसा सुखसुविधासम्पन्न जीवन व्यतीत कर रहा है?' तब दूसरे लोग उत्तर देते हैं—'इस ने राजा के शत्रुओं को, बहुत वीरतापूर्वक लड़ते हुए मार डाला था, उसी के प्रतिफल में राजा ने प्रसन्न हो कर इस को ऐसा सुखमय जीवन विताने की सुविधा दे रखी है।' (१)

"ग्रामणि! लोक में ऐसे भी मनुष्य देखे जाते हैं, जिन्हें राजपुरुष सुदृढ रज्जु से

परिनेत्वा दक्खिणेन द्वारेन निक्खामेत्वा दक्खिणतो नगरस्स सीसं छिज्जमानो। तमेनं एवमाहंसु—'अम्भो! अयं पुरिसो किं अकासि, दळ्हाय रज्जुया पच्छाबाहं गाळ्हबन्धनं बन्धित्वा खुरमुण्डं करित्वा खरस्सरेन पणवेन रथियाय रथियं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं परिनेत्वा दक्खिणेन द्वारेन निक्खामेत्वा दक्खिणतो नगरस्स सीसं छिन्दती' ति। तमेनं एवमाहंसु—'अम्भो! अयं पुरिसो राजवेरी वा, इत्थिं वा पुरिसं वा जीविता वोरोपेसि, तेन नं राजानो गहेत्वा एवरूपं कम्मकारणं कारेन्ती' ति।

"तं किं मञ्ञसि, गामणि, अपि नु ते एवरूपं दिट्ठं वा सुतं वा" ति?

"दिट्ठं च नो, भन्ते, सुतं च सुय्यिस्सति चा" ति।

"तत्र, गामणि, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'यो कोचि पाणमतिपातेति, सब्बो सो दिट्ठेव धम्मे दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयती' ति, सच्चं वा ते आहंसु मुसा वा" ति?

"मुसा, भन्ते"।

[R.345] "ये पन ते तुच्छं मुसा विलपन्ति, सीलवन्तो वा ते दुस्सीला वा" ति?

"दुस्सीला, भन्ते"।

[B.524] "ये पन ते दुस्सीला पापधम्मा मिच्छापटिपन्ना वा ते सम्मापटिपन्ना वा" ति?

दोनों हाथ पीछे बाँध कर, शिर मुँडवा कर, कर्कश ध्वनि से ढोल पीटते हुए, एक गली से दूसरी गली तथा एक चौराहे से दूसरे चौराहे तक ले जा कर, नगर के दक्षिण द्वार से निकाल कर, नगर के दक्षिण की ओर ले जा कर उस का शिर काट देते हैं। उसे देख कर लोग पूछते हैं—'इस ने ऐसा क्या किया था कि यह इतनी अपमानजनक मृत्यु को प्राप्त हुआ।' तब दूसरे लोग उन्हें उत्तर देते हैं—'यह राजद्रोही था, इस ने किसी स्त्री या पुरुष का प्राणापहरण कर लिया था, इसी बात के प्रतिशोधस्वरूप राजा ने इस को यह दण्ड दिया है।'

"ग्रामणि! तुम ने भी कभी ऐसा देखा सुना है?"

"हाँ, भन्ते! मैने भी ऐसा देखा सुना है, आगे भी ऐसा देखूँगा, सुनूँगा।"

"तो, ग्रामणि! तुम क्या मानते हो, जो श्रमण ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—'जो जीवहिंसा आदि करता है उन सब का फल उसे इसी लोक में भोग लेना पड़ता है।' क्या इन का यह कथन सत्य है या असत्य?"

"असत्य है, भन्ते!"

"तो जो इतना तुच्छ असत्य बोलते हैं उन्हें शीलवान् कहोगे या दुःशील?"

"दुःशील, भन्ते!"

"मिच्छापटिपन्ना, भन्ते"।

"ये पन ते मिच्छापटिपन्ना मिच्छादिट्ठिका वा ते सम्मादिट्ठिका वा" ति?

"मिच्छादिट्ठिका, भन्ते"।

"ये पन ते मिच्छादिट्ठिका कल्लं नु तेसु पसीदितुं" ति? [N.303]

"नो हेतं, भन्ते"।

"दिस्सति खो पन, गामणि, इधेकच्चो माली कुण्डली...पे०...इत्थिकामेहि राजा मञ्ञे परिचारेन्तो। तमेनं एवमाहंसु—'अम्भो! अयं पुरिसो किं अकासि माली कुण्डली ...पे०...इत्थिकामेहि राजा मञ्ञे परिचारेती' ति? तमेनं एवमाहंसु—'अम्भो! अयं पुरिसो रञ्ञो पच्चत्थिकस्स पसय्ह रतनं अहासि। तस्स राजा अत्तमनो अभिहारमदासि। तेनायं पुरिसो माली कुण्डली...पे०...इत्थिकामेहि राजा मञ्ञे परिचारेती' ति।

"दिस्सति खो, गामणि, इधेकच्चो दळ्हाय रज्जुया...पे०...दक्खिणतो नगरस्स सीसं छिज्जमानो तमेनं एवमाहंसु—'अम्भो! अयं पुरिसो किं अकासि दळ्हाय रज्जुया ...पे०...दक्खिणतो नगरस्स सीसं छिन्दती' ति? तमेनं एवमाहंसु—'अम्भो! अयं पुरिसो गामा वा अरञ्ञा वा अदिन्नं थेय्यसङ्खातं आदियि। तेन नं राजानो गहेत्वा एवरूपं कम्मकारणं कारेन्ती' ति। तं किं मञ्ञसि, गामणि, अपि नु ते एवरूपं दिट्ठं वा सुतं वा" ति?

"दिट्ठं च नो, भन्ते, सुतं च सुय्यिस्सति चा" ति।

"तत्र, गामणि, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'यो कोचि [R.346] अदिन्नं आदियति, सब्बो सो दिट्ठेव धम्मे दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयती' ति, सच्चं वा ते आहंसु मुसा वा ति...पे०...कल्लं नु तेसु पसीदितुं" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तो जो ऐसे दुःशील एवं पापी हैं उन्हें तुम मिथ्यादृष्टि कहोगे, या सम्यग्दृष्टि?"

"मिथ्यादृष्टि, भन्ते!"

"ग्रामणि! जो मिथ्यादृष्टि हैं वे सत्पथ पर चलने वाले हैं या असत्पथ पर चलने वाले?"

"भन्ते! वे तो असत्पथ पर चलने वाले हुए।"

"ग्रामणि! जब वे मिथ्यादृष्टि (असत्पथारूढ़) ही हैं तो क्या उन पर विश्वास करना चाहिये?"

"नहीं, भन्ते! कथमपि नहीं!"

''दिस्सति खो पन, गामणि, इधेकच्चो माली कुण्डली...पे०...इत्थिकामेहि राजा मञ्ञे परिचारेन्तो। तमेनं एवमाहंसु—'अम्भो! अयं पुरिसो किं अकासि माली कुण्डली ...पे०...इत्थिकामेहि राजा मञ्ञे परिचारेती' ति? तमेनं एवमाहंसु—'अम्भो! अयं पुरिसो रञ्ञो पच्चत्थिकस्स दारेसु चारित्तं आपज्जि, तस्स राजा अत्तमनो अभिहार-मदासि, तेनायं पुरिसो माली कुण्डली...पे०...इत्थिकामेहि राजा मञ्ञे परिचारेती' ति। [B.525] ''दिस्सति खो, गामणि, इधेकच्चो दळ्हाय रज्जुया...पे०...दक्खिणतो नगरस्स [N.304] सीसं छिज्जमानो तमेनं एवमाहंसु—'अम्भो! अयं पुरिसो किं अकासि दळ्हाय रज्जुया ...पे०...दक्खिणतो नगरस्स सीसं छिन्दती' ति? तमेनं एवमाहंसु—'अम्भो! अयं पुरिसो कुलित्थीसु कुलकुमारीसु चारित्तं आपज्जि, तेन नं राजानो गहेत्वा एवरूपं कम्मकारणं करेन्ती' ति। तं किं मञ्ञसि, गामणि, अपि नु ते एवरूपं दिट्ठं वा सुतं वा'' ति?

''दिट्ठं च नो, भन्ते, सुतं च सुय्यिस्सति चा'' ति।

''तत्र, गामणि, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'यो कोचि कामेसु मिच्छा चरति, सब्बो सो दिट्ठेव धम्मे दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयती' ति, सच्चं वा ते आहंसु मुसा वा ति...पे०...कल्लं नु तेसु पसीदितुं'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

[R.347] ''दिस्सति खो पन, गामणि, इधेकच्चो माली कुण्डली सुन्हातो सुविलित्तो कप्पितकेसमस्सु इत्थिकामेहि राजा मञ्ञे परिचारेन्तो। तमेनं एवमाहंसु—'अम्भो! अयं पुरिसो किं अकासि माली कुण्डली सुन्हातो सुविलित्तो कप्पितकेसमस्सु इत्थिकामेहि राजा मञ्ञे परिचारेती' ति? तमेनं एवमाहंसु—'अम्भो! अयं पुरिसो राजानं मुसावादेन हासेसि, तस्स राजा अत्तमनो अभिहारमदासि। तेनायं पुरिसो माली कुण्डली सुन्हातो सुविलित्तो कप्पितकेसमस्सु इत्थिकामेहि राजा मञ्ञे परिचारेती' ति।

''दिस्सति खो, गामणि, इधेकच्चो दळ्हाय रज्जुया पच्छाबाहं गाळ्हबन्धनं बन्धित्वा खुरमुण्डं करित्वा खरस्सरेन पणवेन रथियाय रथियं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं परिनेत्वा दक्खिणेन द्वारेन निक्खामेत्वा दक्खिणतो नगरस्स सीसं छिज्जमानो। तमेनं एवमाहंसु—'अम्भो! अयं पुरिसो किं अकासि, दळ्हाय रज्जुया पच्छाबाहं गाळ्हबन्धनं बन्धित्वा खुरमुण्डं करित्वा खरस्सरेन पणवेन रथियाय रथियं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं

(इस जीवहिंसा से सम्बद्ध संवाद के समान ही आगे व्याख्यायमान चौरी, व्यभिचार, असत्य भाषण आदि का भी हिन्दी में विस्तार कर लें।)

परिनेत्वा दक्खिणेन द्वारेन निक्खामेत्वा दक्खिणतो नगरस्स सीसं छिन्दती' ति। तमेनं एवमाहंसु—'अम्भो! अयं पुरिसो गहपतिस्स वा गहपतिपुत्तस्स वा मुसावादेन अत्थं भञ्जि, तेन नं राजानो गहेत्वा एवरूपं कम्मकारणं कारेन्ती'' ति। तं किं मञ्ञसि, गामणि, अपि नु ते एवरूपं दिट्ठं वा सुतं वा'' ति?

''दिट्ठं च नो, भन्ते, सुतं च सुय्यिस्सति चा'' ति। [N.305, B.526]

''तत्र, गामणि, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'यो कोचि मुसा भणति, सब्बो सो दिट्ठेव धम्मे दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयती' ति, सच्चं वा ते आहंसु मुसा वा'' ति?

''मुसा, भन्ते''।

''ये पन ते तुच्छं मुसा विलपन्ति सीलवन्तो वा ते दुस्सीला वा'' ति?

''दुस्सीला, भन्ते''।

''ये पन ते दुस्सीला पापधम्मा मिच्छापटिपन्ना वा ते सम्मापटिपन्ना वा'' ति?

''मिच्छापटिपन्ना, भन्ते''।

''ये पन ते मिच्छापटिपन्ना मिच्छादिट्ठिका वा ते सम्मादिट्ठिका वा'' ति?

''मिच्छादिट्ठिका, भन्ते''।

''ये पन ते मिच्छादिट्ठिका कल्लं नु तेसु पसीदितुं'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''॥

''अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! अत्थि मे, भन्ते, आवसथागारं। तत्थ अत्थि मञ्चकानि, अत्थि आसनानि, अत्थि उदकमणिको, अत्थि तेलप्पदीपो। तत्थ यो समणो वा ब्राह्मणो वा वासं उपेति, तेनाहं यथासत्ति यथाबलं संविभजामि। भूतपुब्बं, भन्ते, चत्तारो सत्थारो नानादिट्ठिका नानाखन्तिका नानारुचिका तस्मिं आवसथागारे वासं उपगच्छुं। एको सत्था एवंवादी एवंदिट्ठि—'नत्थि दिन्नं, नत्थि यिट्ठं, नत्थि हुतं, नत्थि

विभिन्न मतवाद—''भन्ते! आश्चर्य है, अद्भुत है, भन्ते! मेरी एक धर्मशाला (अतिथिगृह) है, जहाँ रहने की सभी सुविधाएँ हैं—वहाँ मञ्च भी हैं, उन पर विछाने का आसन भी है, पीने के लिये जल का घड़ा भी रखा हुआ है, प्रकाशहेतु तैलभरा दीपक भी है। वहाँ जो भी विद्वान् श्रमण ब्राह्मण आ कर ठहरता है उस की मैं यथाशक्ति सेवा करता हूँ तथा उस से मैं यथाशक्ति शास्त्रचर्चा भी करता रहता हूँ। भन्ते! एक दिन चार शास्ता (धर्मोपदेशक), जो कि भिन्न मत, भिन्न श्रद्धा एवं भिन्न आचार विचार वाले थे, उस अतिथिगृह में आ कर ठहरे। उन में से एक शास्ता (अजितकेशकम्बल) का मत यह था—

सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको। नत्थि अयं लोको, नत्थि परो लोको, नत्थि माता, नत्थि पिता, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता सम्मा- [R.349] पटिपन्ना ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती' ति। एको सत्था एवंवादी एवंदिट्ठि—'अत्थि दिन्नं अत्थि यिट्ठं, अत्थि हुतं, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, अत्थि अयं लोको, अत्थि परो लोको, अत्थि [N.306] माता, अत्थि पिता, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता सम्मापटिपन्ना ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती' ति। एको सत्था एवंवादी एवंदिट्ठि—'करोतो कारयतो, छिन्दतो छेदापयतो, पचतो पाचापयतो, सोचयतो सोचापयतो, किलमतो किलमापयतो, फन्दतो फन्दा- पयतो, पाणमतिपातयतो, अदिन्नं आदियतो, सन्धिं छिन्दतो, निल्लोपं हरतो, एकागारिकं [B.527] करोतो, परिपन्थे तिट्ठतो, परदारं गच्छतो, मुसा भणतो, करोतो न करीयति पापं। खुरपरियन्तेन चे पि चक्केन यो इमिस्सा पठविया पाणे एकं मंसखलं एकं मंसपुञ्जं करेय्य, नत्थि ततोनिदानं पापं, नत्थि पापस्स आगमो। दक्खिणं चे पि गङ्गाय तीरं गच्छेय्य हनन्तो घातेन्तो छिन्दन्तो छेदापेन्तो पचन्तो पाचापेन्तो, नत्थि ततोनिदानं पापं,

---

१. **उच्छेदवाद**—''दान, यज्ञ, होम अथवा शुभ अशुभ कर्मों का कोई फल नहीं होता। न यह लोक है, न परलोक है, न माता न पिता, न अयोनिज (स्वयम्भू) औपपातिक देव, न लोक में ऐसे कोई श्रमण ब्राह्मण हैं जो ज्ञानी हो, समर्थ हो, सत्पथ पर आरूढ़ हों, सम्यक्प्रतिपन्न हों जो उस ज्ञान का स्वयं साक्षात्कार कर दूसरों को उपदेश करते हों। *(विस्तार दीघनिकाय, प्र० भा०, पृ० ६१ में देखें)*।

२. **अस्तिवाद**—''एक आचार्य का मत यह था—दान, यज्ञ, होम, या शुभ अशुभ कर्मों का फल होता है, यह लोक भी है, परलोक भी हैं, माता भी है, पिता भी है तथा स्वयम्भू (औपपातिक) सत्त्व (देव) भी हैं। इस संसार में ऐसे श्रमण ब्राह्मण हैं जो ज्ञानी हैं, समर्थ हैं, सत्पथ पर आरूढ हैं, सम्यक्प्रतिपन्न हैं, जो ज्ञान का स्वयं साक्षात्कार कर दूसरों को उपदेश करते हैं।

३. **अक्रियावाद**—''एक आचार्य (पूरण काश्यप) का मत यह था—मनुष्य को करते करवाते, काटते कटवाते, पकाते पकवाते, सोचते सोचवाते, कष्ट देते दिलवाते, चञ्चल होते चञ्चल कराते, प्राणी मारते मरवाते, चौरी करते, सेंध लगाते, लूटपाट करते, रहजनी (मार्ग में छीनाझपटी) करते, व्यभिचार करते, असत्य बोलते हुए कोई पाप नहीं लगता।...तेज धार वाले चक्र से पृथ्वी के सब प्राणियों को मार कर एक विशाल मांसपुञ्ज में परिवर्तित कर दे तो भी उसे कोई पाप नहीं लगता। गङ्गा के दक्षिण तीर से उत्तर तीर

नत्थि पापस्स आगमो। उत्तरं चे पि गङ्गाय तीरं गच्छेय्य ददन्तो दापेन्तो यजन्तो यजापेन्तो, नत्थि ततोनिदानं पुञ्ञं, नत्थि पुञ्ञस्स आगमो। दानेन दमेन संयमेन सच्चवज्जेन नत्थि पुञ्ञं, नत्थि पुञ्ञस्स आगमो' ति। एको सत्था एवंवादी एवंदिट्ठि— 'करोतो कारयतो, छिन्दतो छेदापयतो, पचतो पाचापयतो, सोचयतो सोचापयतो, किलमतो किलमापयतो, फन्दतो फन्दापयतो, पाणमतिपातयतो, अदिन्नं आदियतो, सन्धिं छिन्दतो, निल्लोपं हरतो, एकागारिकं करोतो, परिपन्थे तिट्ठतो, परदारं गच्छतो, मुसा भणतो, करोतो करीयति पापं। खुरपरियन्तेन चे पि चक्केन यो इमिस्सा [R.350] पठविया पाणे एकं मंसखलं एकं मंसपुञ्जं करेय्य, अत्थि ततोनिदानं पापं, अत्थि पापस्स आगमो। दक्खिणं चे पि गङ्गाय तीरं गच्छेय्य हनन्तो घातेन्तो छिन्दन्तो छेदापेन्तो पचन्तो पाचापेन्तो, अत्थि ततोनिदानं पापं, अत्थि पापस्स आगमो। उत्तरं चे पि गङ्गाय तीरं गच्छेय्य ददन्तो दापेन्तो, यजन्तो यजापेन्तो, अत्थि ततोनिदानं पुञ्ञं, अत्थि पुञ्ञस्स आगमो। दानेन दमेन संयमेन सच्चवज्जेन अत्थि पुञ्ञं, अत्थि पुञ्ञस्स आगमो' ति।

"तस्स मय्हं, भन्ते, अहुदेव कङ्खा, अहु विचिकिच्छा—'कोसु नाम इमेसं भवतं समणब्राह्मणानं सच्चं आह, को मुसा''' ति?

"अलं हि ते, गामणि, कङ्खितुं, अलं विचिकिच्छितुं। कङ्खनीये च पन [N.307] ते ठाने विचिकिच्छा उप्पन्ना" ति।

"एवं पसन्नोहं, भन्ते, भगवति। पहोति मे भगवा तथा धम्मं देसेतुं यथाहं इमं कङ्खाधम्मं पजहेय्यं" ति।

तक प्राणियों को मारते मरवाते, काटते कटवाते हुए भी उसे कोई पाप नहीं लगता। गङ्गा के उत्तर तीर से...पूर्ववत्...दान, संयम एवं सत्यभाषण से कोई पुण्य नहीं होता।

४. **क्रियावाद**--"तथा उन में से एक आचार्य का मत यह था—'नहीं, उपर्युक्त आचार्य का कथन मिथ्या है। उक्त सभी कर्मों का फल है। गङ्गा के दक्षिण तीर से...पूर्ववत्...। दक्षिण के उत्तर तीर से...पूर्ववत्...पाप होता है। दान, संयम एवं सत्यभाषण से पुण्य होता है।'

"यह सुन कर, भन्ते! मेरे मन में सन्देह (=विचिकित्सा) होने लगा कि इन चारों शास्ताओं में से किस का वचन सत्य है? तथा किस का असत्य?"

"ग्रामणि! तुम्हारा यहाँ शङ्का करना उचित ही था, सन्देह-स्थल पर ही तुम्हें सन्देह हुआ है।"

"भन्ते! मैं आप के इस अनुमोदन से प्रसन्न हूँ। कृपया अब आप मुझे ऐसा उपदेश करें कि मेरा उक्त सन्देह निराकृत हो जाय।"

"अत्थि, गामणि, धम्मसमाधि। तत्र चे त्वं चित्तसमाधिं पटिलभेय्यासि। एवं त्वं इमं कङ्खाधम्मं पजहेय्यासि। कतमो च, गामणि, धम्मसमाधि? इध, गामणि, अरिय-[B.528]सावको पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादानं पहाय अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसुमिच्छाचारं पहाय कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो [R.351] होति, मुसावादं पहाय मुसावादा पटिविरतो होति, पिसुणं वाचं पहाय पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, फरुसं वाचं पहाय फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति, सम्फप्पलापं पहाय सम्फप्पलापा पटिविरतो होति, अभिज्झं पहाय अनभिज्झालु होति, ब्यापादपदोसं पहाय अब्यापन्नचित्तो होति, मिच्छादिट्ठिं पहाय सम्मादिट्ठिको होति।

"स खो सो, गामणि, अरियसावको एवं विगताभिज्झो विगतब्यापादो असम्मूळ्हो सम्पजानो पटिस्सतो मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं, इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्जेन फरित्वा विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'य्वायं सत्था एवंवादी एवंदिट्ठि—नत्थि दिन्नं, नत्थि यिट्ठं, नत्थि हुतं, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, नत्थि अयं लोको, नत्थि परो लोको, नत्थि माता, नत्थि पिता, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि लोके समणब्राह्मणा, सम्मग्गता सम्मापटिपन्ना ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती ति, सचे तस्स भोतो सत्थुनो सच्चं वचनं, अपण्णकताय मय्हं,

---

धर्मसमाधि—"ग्रामणि! धर्म की समाधि होती है। यदि तुम्हारे चित्त ने इस समाधि का लाभ कर लिया तो तुम्हारे ये सब सन्देह निराकृत हो जायँगे। ग्रामणि! यह 'धर्मसमाधि' क्या होती है? यहाँ, ग्रामणि! कोई आर्यश्रावक जीवहिंसा छोड़ कर उस से दूर रहता है, चौरी करना छोड़ कर...व्यभिचार करना छोड़ कर...असत्यभाषण छोड़ कर...चुगली करना छोड़ कर...कठोर वाणी बोलना छोड़ कर...प्रलाप करना छोड़ कर...लोभ करना छोड़ कर...द्वेष करना छोड़ कर द्वेषरहित चित्त से लोकव्यवहार करता है, इसी तरह मिथ्यादृष्टि (धर्मविषयक मिथ्या धारणा) छोड़ कर सम्यग्दृष्टि से व्यवहार करता है।

"ग्रामणि! वह आर्यश्रावक राग, द्वेष, मोह से रहित हो कर तथा सम्प्रज्ञ एवं स्मृतिमान् हो कर, मैत्रीसहगतचित्त से एक दिशा को व्याप्त कर साधना करता है। ...पूर्ववत्...तब वह यों चिन्तन करता है—'यह जो नास्तिवादी (उच्छेदवादी) शास्ता यह कहता था—'दान, यज्ञ, हवन, सुकृत, दुष्कृत, उन का फल यह लोक, परलोक, अयोनिज सत्त्व, ऐसे सम्यग्दृष्टि श्रमण ब्राह्मण जो ज्ञान का साक्षात्कार कर दूसरों को उपदेश कर सकें—ऐसा कुछ नहीं है'। यदि उस शास्ता का वचन सत्य है तो भी मेरी कोई हानि नहीं,

य्वाहं न किञ्चि ब्याबाधेमि तसं वा वा थावरं वा। उभयमेत्थ कटग्गाहो, यं चम्हि कायेन संवुतो वाचाय संवुतो मनसा संवुतो, यं च कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिस्सामी' ति। तस्स पामोज्जं जायति। पमुदितस्स पीति जायति। [N.308] पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति। पस्सद्धकायो सुखं वेदयति। सुखिनो चित्तं समाधियति। अयं खो, गामणि, धम्मसमाधि। तत्र चे त्वं चित्तसमाधिं पटिलभेय्यासि, [R.352] एवं त्वं इमं कङ्खाधम्मं पजहेय्यासि। (१)

"स खो सो, गामणि, अरियसावको एवं विगताभिज्झो विगतब्यापादो असम्मूळ्हो सम्पजानो पटिस्सतो मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा [B.529] विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं, इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्जेन फरित्वा विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'य्वायं सत्था एवंवादी एवंदिट्ठि—अत्थि दिन्नं, अत्थि यिट्ठं, अत्थि हुतं, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको...पे०...सचे तस्स भोतो सत्थुनो सच्चं वचनं, अपण्णकताय मय्हं, य्वाहं न किञ्चि ब्याबाधेमि तसं वा थावरं वा। उभयमेत्थ कटग्गाहो, यं चम्हि कायेन संवुतो वाचाय संवुतो मनसा संवुतो, यं च कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिस्सामी' ति। तस्स पामोज्जं जायति। पमुदितस्स पीति जायति। पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति। पस्सद्धकायो सुखं वेदयति। सुखिनो चित्तं समाधियति। अयं खो, गामणि, धम्मसमाधि। तत्र चे त्वं चित्तसमाधिं पटिलभेय्यासि, एवं त्वं इमं कङ्खाधम्मं पजहेय्यासि। (२)

क्योंकि मैं किसी स्थावर या जङ्गम प्राणी को कष्ट नहीं दे रहा। इस तरह मेरी दोनों ओर से रक्षा ही है। इधर, मैं काय वाक् मन से संयत रहता हूँ। अतः मरणानन्तर स्वर्ग में उत्पन्न हो कर सुगति को ही प्राप्त होऊँगा। यों दोनों ही तरफ मेरी विजय ही है'। यह चिन्तन कर के उस को प्रामोद्य (हर्ष) होता है। इस प्रामोद्य से प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीति से काय में स्थिरता आती है। स्थिरकाय पुरुष अपने में सुख का अनुभव करता है। तथा इस सुख से चित्त को समाहित होने में पूर्ण सहयोग मिलता है। इसे कहते हैं, ग्रामणि! चित्तसमाधि। ग्रामणि! यदि तुम ने यह चित्तसमाधि प्राप्त कर ली तो तुम्हारे पूर्वोक्त सभी सन्देह निवृत्त हो जायँगे।

"ग्रामणि! वह आर्यश्रावक राग द्वेष मोह से रहित होकर...अस्तिवादी शास्ता के वचन ...पूर्ववत्...पर विचार करता है...सभी सन्देह निवृत्त हो जायँगे।

"स खो सो, गामणि, अरियसावको एवं विगताभिज्झो विगतब्यापादो असम्मूळ्हो सम्पजानो पटिस्सतो मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं, इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं [R.353] लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्जेन फरित्वा विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'य्वायं सत्था एवंवादी एवंदिट्ठि—करोतो [B.530] कारयतो, छिन्दतो छेदापयतो, पचतो पाचापयतो सोचयतो सोचापयतो ...पे०...सचे तस्स भोतो सत्थुनो सच्चं वचनं, अपण्णकताय मय्हं, य्वाहं न किञ्चि ब्याबाधेमि तसं वा थावरं वा। उभयमेत्थ कटग्गाहो, यं चम्हि कायेन संवुतो वाचाय संवुतो मनसा संवुतो, यं च कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिस्सामी' [N.309] ति। तस्स पामोज्जं जायति। पमुदितस्स पीति जायति। पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति। पस्सद्धकायो सुखं वेदयति। सुखिनो चित्तं समाधियति। अयं खो, गामणि, धम्मसमाधि। तत्र चे त्वं चित्तसमाधिं पटिलभेय्यासि, एवं त्वं इमं कङ्खाधम्मं पजहेय्यासि। (३)

"स खो सो, गामणि, अरियसावको एवं विगताभिज्झो विगतब्यापादो असम्मूळ्हो सम्पजानो पटिस्सतो मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा [R.354] दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं, इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्जेन फरित्वा विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'य्वायं सत्था एवंवादी एवंदिट्ठि—[B.531] करोतो कारयतो, छिन्दतो छेदापयतो, पचतो पाचापयतो, सोचयतो सोचापयतो ...पे०...दानेन दमेन संयमेन सच्चवज्जेन अत्थि पुञ्ञं अत्थि पुञ्ञस्स आगमो ति, सचे तस्स भोतो सत्थुनो सच्चं वचनं, अपण्णकताय मय्हं, य्वाहं न किञ्चि ब्याबाधेमि तसं वा थावरं वा। उभयमेत्थ कटग्गाहो, यं चम्हि कायेन संवुतो वाचाय संवुतो मनसा संवुतो, यं च कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिस्सामी' ति। तस्स पामोज्जं

"फिर, ग्रामणि! वह आर्यश्रावक राग द्वेष मोह से रहित होकर...पूर्ववत्...उस **अस्तिवादी शास्ता** के—'दान, यज्ञ, होम, सुकृत दुष्कृत का फल, लोक, परलोक, आदि सब कुछ है'—इन वचनों पर विचार...पूर्ववत्...सुख से चित्त समाहित होता है। ...तुम्हारे सभी सन्देह निवृत्त हो जायँगे।

"फिर, ग्रामणि! वह आर्यश्रावक...**अक्रियवादी शास्ता** के वचन...पूर्ववत्...विचार करता है...पूर्ववत्...सुख से चित्त समाहित होता है...सभी सन्देह दूर हो जायँगे।

जायति। पमुदितस्स पीति जायति। पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति। पस्सद्धकायो सुखं वेदयति। सुखिनो चित्तं समाधियति। अयं खो, गामणि, धम्मसमाधि। तत्र चे त्वं चित्तसमाधिं पटिलभेय्यासि, एवं त्वं इमं कङ्खाधम्मं पजहेय्यासि। (४)

"स खो सो, गामणि, अरियसावको एवं विगताभिज्झो विगतब्यापादो [R.355] असम्मूळ्हो सम्पजानो पटिस्सतो करुणासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति ...पे०...मुदितासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति...पे०...। (१-४, १-४)

"स खो सो, गामणि, अरियसावको एवं विगताभिज्झो विगतब्यापादो असम्मूळ्हो सम्पजानो पटिस्सतो उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं, इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्जेन फरित्वा विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'य्वायं सत्था एवंवादी एवंदिट्ठि—नत्थि दिन्नं, नत्थि यिट्ठं, नत्थि हुतं...पे०...सचे तस्स भोतो सत्थुनो सच्चं वचनं, [N.310] अपण्णकताय मय्हं, य्वाहं न किञ्चि ब्याबाधेमि तसं वा थावरं वा। उभयमेत्थ कटग्गाहो, यं चम्हि कायेन संवुतो वाचाय संवुतो मनसा संवुतो, यं च कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिस्सामी' ति। तस्स पामोज्जं जायति। पमुदितस्स पीति जायति। पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति। पस्सद्धकायो सुखं वेदयति। सुखिनो [B.532] चित्तं समाधियति। अयं खो, गामणि, धम्मसमाधि। तत्र चे त्वं चित्तसमाधिं पटिलभेय्यासि, एवं त्वं इमं कङ्खाधम्मं पजहेय्यासि। (१)

"स खो सो, गामणि, अरियसावको एवं विगताभिज्झो विगतब्यापादो असम्मूळ्हो सम्पजानो पटिस्सतो उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति,

---

"फिर, ग्रामणि! वह आर्यश्रावक...**क्रियावादी शास्ता** के वचन...पूर्ववत्...विचार करता है...पूर्ववत्...सुख से चित्त समाहित होता है...सभी सन्देह निवृत्त हो जायँगे॥ (१)

"फिर, ग्रामणि! वह आर्यश्रावक राग द्वेष मोह से रहित हो कर...करुणासहगतचित्त से ...पूर्ववत्...नास्तिवादी शास्ता के वचन...पूर्ववत्...अस्तिवादी शास्ता के वचन...पूर्ववत्... अक्रियावादी शास्ता के वचन...पूर्ववत्...क्रियावादी शास्ता के वचन...पूर्ववत्...इस से उस आर्यश्रावक को प्रमोद उत्पन्न होता है, प्रमोद से प्रीति तथा प्रीति से सुख उत्पन्न होता है। सुख से उस का चित्त समाहित होता है...सभी सन्देह निवृत्त हो जायँगे। (२)

"फिर, ग्रामणि! वह आर्यश्रावक...मुदितासहगतचित्त से...पूर्ववत्...सभी सन्देह निवृत्त हो जायँगे। (३)

तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं, इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय [R.356] सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्जेन फरित्वा विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'य्वायं सत्था एवंवादी एवंदिट्ठि—अत्थि दिन्नं, अत्थि यिट्ठं, अत्थि हुतं, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको...पे०...सचे तस्स भोतो सत्थुनो सच्चं वचनं, अपण्णकताय मय्हं, य्वाहं न किञ्चि ब्याबाधेमि तसं वा थावरं वा। उभयमेत्थ कटग्गाहो, यं चम्हि कायेन संवुतो वाचाय संवुतो मनसा संवुतो, यं च कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिस्सामी' ति। तस्स पामोज्जं जायति। पमुदितस्स पीति जायति। पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति। पस्सद्धकायो सुखं वेदयति। सुखिनो चित्तं समाधियति। अयं खो, गामणि, धम्मसमाधि। तत्र चे त्वं चित्तसमाधिं पटिलभेय्यासि, एवं त्वं इमं कङ्खाधम्मं पजहेय्यासि। (२)

"स खो सो, गामणि, अरियसावको एवं विगताभिज्झो विगतब्यापादो असम्मूळ्हो सम्पजानो पटिस्सतो उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं, इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन [B.533, R.357] अब्यापज्जेन फरित्वा विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'य्वायं सत्था एवंवादी एवंदिट्ठि—करोतो कारयतो छेदतो छेदापयतो...पे०...नत्थि पुञ्ञस्स आगमो ति, सचे तस्स भोतो सत्थुनो सच्चं वचनं, अपण्णकताय मय्हं, य्वाहं न किञ्चि [N.311] ब्याबाधेमि तसं वा थावरं वा। उभयमेत्थ कटग्गाहो, यं चम्हि कायेन संवुतो वाचाय संवुतो मनसा संवुतो, यं च कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिस्सामी' ति। तस्स पामोज्जं जायति। पमुदितस्स पीति जायति। पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति। पस्सद्धकायो सुखं वेदयति। सुखिनो चित्तं समाधियति। अयं खो, गामणि, धम्मसमाधि। तत्र चे त्वं चित्तसमाधिं पटिलभेय्यासि, एवं त्वं इमं कङ्खाधम्मं पजहेय्यासि। (३)

"स खो सो, गामणि, अरियसावको एवं विगताभिज्झो विगतब्यापादो असम्मूळ्हो सम्पजानो पटिस्सतो उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति,

---

"फिर, ग्रामणि! वह आर्यश्रावक...उपेक्षासहगतचित्त से...पूर्ववत्...सभी सन्देह निवृत्त हो जायँगे।" (४)

(मैत्रीसहगतचित्त के समान ही इन अवशिष्ट तीनों चित्तों के पाठ का भी विस्तार कर लें।)

तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं, इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्जेन फरित्वा विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'य्वायं सत्था [B.534, R.358] एवंवादी एवंदिट्ठि—करोतो कारयतो छिन्दतो छेदापयतो पचतो पाचापयतो...पे०... अत्थि पुञ्ञं अत्थि पुञ्ञस्स आगमो ति, सचे तस्स भोतो सत्थुनो सच्चं वचनं, अपण्णकताय मय्हं, य्वाहं न किञ्चि ब्याबाधेमि तसं वा थावरं वा। उभयमेत्थ कटग्गाहो, यं चम्हि कायेन संवुतो वाचाय संवुतो मनसा संवुतो, यं च कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिस्सामी' ति। तस्स पामोज्जं जायति। पमुदितस्स पीति जायति। पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति। पस्सद्धकायो सुखं वेदयति। सुखिनो चित्तं समाधियति। अयं खो, गामणि धम्मसमाधि। तत्र चे त्वं चित्तसमाधिं पटिलभेय्यासि, एवं त्वं इमं कङ्खाधम्मं पजहेय्यासी'' ति।

एवं वुत्ते, पाटलियो गामणि भगवन्तं एतदवोच—''अभिक्कन्तं भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते...पे०...अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ (४) ●

गामणिसंयुत्तं समत्तं॥

तस्सुद्दानं

चण्डो पुटो योधाजीवो, हत्थस्सो असिबन्धको।
देसना सङ्खकुलं मणिचूळं, भद्ररासियपाटली ति॥ [R.359]●

यह कहे जाने पर उस पाटलिय ग्रामणी ने भगवान् से यों निवेदन किया—भन्ते! आपने समस्या का बहुत अच्छा समाधान किया। ...पूर्ववत्...आज से आप मुझे अपना शरणागत उपासक समझें॥ ●

ग्रामणिसंयुक्त समाप्त॥

इस संयुक्त में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. चण्डसूत्र, २. तालपुटसूत्र, ३. युद्धाजीवसूत्र, ४. हस्त्यारोहसूत्र, ५. अश्वाखेहसूत्रर, ६. असिबन्धकसूत्र, ७. क्षेत्रोपमसूत्र, ८. शङ्खध्मसूत्र, ९. कुलसूत्र, १०. मणिचूड़कसूत्र, ११. भद्रकसूत्र, १२. राशियसूत्र एवं १३. पाटलियसूत्र॥ ●

४३. असङ्खतसंयुत्तं

१. पठमो वग्गो

१. कायगतासतिसुत्तं

[N.312, B.535] १. सावत्थिनिदानं। "असङ्खतं च वो, भिक्खवे, देसिस्सामि असङ्खतगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, असङ्खतं? यो, भिक्खवे, रागक्खयो दोसक्खयो मोहक्खयो—इदं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतं। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? कायगता सति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो।

"इति खो, भिक्खवे, देसितं वो मया असङ्खतं, देसितो असङ्खतगामिमग्गो। यं, भिक्खवे, सत्थारा करणीयं सावकानं हितेसिना अनुकम्पकेन अनुकम्पं उपादाय, कतं वो तं मया। एतानि, भिक्खवे, रुक्खमूलानि, एतानि सुञ्ञागारानि। झायथ, भिक्खवे, मा पमादत्थ; मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी" ति॥ ●

२. समथविपस्सनासुत्तं

[R.360] २. असङ्खतं च वो, भिक्खवे, देस्सेस्सामि असङ्खतगामिं च मग्गं। तं सुणाथ।

---

४३. असंस्कृतसंयुक्त

प्रथम वर्ग

१. कायगतस्मृतिसूत्र : : निर्वाणगामी मार्ग

१. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! मैं असंस्कृत (निर्वाण) तथा उस की ओर ले जाने वाले मार्ग की देशना करूँगा। उसे सुनो, तथा उस को मन में बैठा लो।

"भिक्षुओ! यह असंस्कृत क्या है? भिक्षुओ! राग, द्वेष एवं मोह के सर्वांशतः क्षय को 'असंस्कृत' कहते हैं। और, भिक्षुओ! इस असंस्कृत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? कायगता स्मृति। भिक्षुओ! इसे ही 'असंस्कृतगामी मार्ग' कहते हैं।

इस तरह, भिक्षुओ! मैने तुम को 'असंस्कृत' एवं 'असंस्कृतगामी मार्ग' के विषय में बता दिया। भिक्षुओ! अपने श्रावकों के हितैषी किसी भी कृपालु शास्ता (गुरु) द्वारा जो कुछ भी कृपा कर के अपने श्रावकों (शिष्यों) को बताना था, वह सब मैने तुम लोगों को बता दिया। भिक्षुओ! ये शान्तिमय एकान्त स्थान वाले वृक्षमूल हैं, ये शून्य आगार (भवन) हैं। इन का आश्रय ले कर अपनी साधना में तत्पर रहो। इस (साधना) में किसी प्रकार का प्रमाद नहीं होना चाहिये। अन्यथा कालान्तर में तुम्हें इस के लिये पश्चात्ताप करना पड़ सकता है। यही हमारा तुम को उपदेश है, अनुशासन है, आदेश है॥ ●

कतमं च, भिक्खवे, असङ्खतं? यो, भिक्खवे, रागक्खयो दोसक्खयो मोहक्खयो—इदं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतं। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? समथो च विपस्सना च। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...॥ ●

३. सवितक्कसविचारसुत्तं

३. कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? सवितक्कसविचारो समाधि, अवितक्कविचारमत्तो समाधि, अवितक्कअविचारो समाधि—अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...॥ ●

४. सुञ्ञतसमाधिसुत्तं

४. कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? सुञ्ञतो समाधि, [N.313, B.536] अनिमित्तो समाधि, अप्पणिहितो समाधि—अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो ...पे०...॥ ●

५. सतिपट्ठानसुत्तं

५. कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? चत्तारो सतिपट्ठाना। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...॥ ●

---

२. शमथविपश्यनासूत्र : : शमथ एवं विपश्यना

२. ...''असंस्कृत की, भिक्षुओ! मैं तुम्हें देशना करूँगा...पूर्वसूत्रवत्...। भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? शमथ (चित्त की एकाग्रता) एवं विपश्यना (अलौकिक समाधि)। भिक्षुओ! इन्हीं दोनों साधनाओं को 'असंस्कृतगामी मार्ग' कहते हैं। ...पूर्ववत्...। ●

(पूर्वसूत्र का ही यहाँ भी विस्तार कर लें।)

३. सवितर्कसविचारसूत्र : : समाधि

३. ...''भिक्षुओ! 'असंस्कृतगामी मार्ग' क्या है? सवितर्कसविचार समाधि, वितर्करहित विचारमात्र समाधि एवं अवितर्क अविचार समाधि। भिक्षुओ! ऐसी साधना ही 'असंस्कृतगामी मार्ग' कहलाती है। ...पूर्वप्रथमसूत्रवत्...अनुशासन है, आदेश है॥ ●

४. शून्यतासमाधिसूत्र : : समाधि

४. ...''भिक्षुओ! 'असंस्कृतगामी मार्ग' क्या है? शून्यता समाधि, अनिमित्त समाधि, अप्रणिहित समाधि। भिक्षुओ! इन की साधना ही 'असंस्कृतगामी मार्ग' है। ...पूर्ववत्...॥ ●

५. स्मृतिप्रस्थानसूत्र : : स्मृतिप्रस्थान

५. ...''भिक्षुओ! 'असंस्कृतगामी मार्ग' क्या है? चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना ही असंस्कृतगामी मार्ग है''। ...पूर्ववत्...॥ ●

६. सम्मप्पधानसुत्तं

६. कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? चत्तारो सम्मप्पधाना। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०... ॥ ●

७. इद्धिपादसुत्तं

७. कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? चत्तारो इद्धिपादा। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०... ॥ ●

८. इन्द्रियसुत्तं

[R.361] ८. कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? पञ्चिन्द्रियानि। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०... ॥ ●

९. बलसुत्तं

९. कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? पञ्च बलानि। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०... ॥ ●

१०. बोज्झङ्गसुत्तं

१०. कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? सत्त बोज्झङ्गा। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०... ॥ ●

---

६. सम्यक्प्रहाणसूत्र : : सम्यक्प्रहाण

६. ...''भिक्षुओ! 'असंस्कृतगामी मार्ग' क्या है? शास्त्र में कथित चार सम्यक्प्रधानों की भावना ही असंस्कृतगामी मार्ग है''। ...पूर्ववत्... ॥ ●

७. ऋद्धिपादसूत्र : : चार ऋद्धिपाद

७. ...''भिक्षुओ! 'असंस्कृतगामी मार्ग' क्या है? (शास्त्रोक्त) चार ऋद्धिपाद ही असंस्कृतगामी मार्ग है''। ...पूर्ववत्... ॥ ●

८. इन्द्रियसूत्र : : पञ्च इन्द्रिय

८. ...''भिक्षुओ! 'असंस्कृतगामी मार्ग' क्या है? (शास्त्रोक्त) पाँच इन्द्रियाँ। भिक्षुओ! यही 'असंस्कृतगामी मार्ग' है। ...पूर्ववत्... ॥ ●

९. बलसूत्र : : पञ्च बल

९. ...''भिक्षुओ! 'असंस्कृतगामी मार्ग' क्या है? (शास्त्रोक्त) पाँच बल। भिक्षुओ! यही 'असंस्कृतगामी मार्ग' है। ...पूर्ववत्... ॥ ●

१०. बोध्यङ्गसूत्र : : सात बोध्यङ्ग

१०. ...''भिक्षुओ! 'असंस्कृतगामी मार्ग' क्या है? (शास्त्रोक्त) सात बोध्यङ्गों की भावना ही 'असंस्कृतगामी मार्ग' है। ...पूर्ववत्... ॥ ●

११. मग्गङ्गसुत्तं

११. "कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? अरियो अट्ठङ्गिको [B.537] मग्गो। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो। इति खो, भिक्खवे, देसितं [N.314] वो मया असङ्खतं, देसितो असङ्खतगामिमग्गो। यं, भिक्खवे, सत्थारा करणीयं सावकानं हितेसिना अनुकम्पकेन अनुकम्पं उपादाय, कतं वो तं मया। एतानि, भिक्खवे, रुक्ख-मूलानि, एतानि सुञ्ञागारानि। झायथ, भिक्खवे, मा पमादत्थ; मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी" ति॥ ●

असङ्खतसंयुत्तस्स पठमो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

कायो समथो सवितक्को, सुञ्ञतो सतिपट्ठाना।
सम्मप्पधाना इद्धिपादा, इन्द्रियबलबोज्झङ्गा।
मग्गेन एकादसमं, तस्सुद्दानं पवुच्चति॥ ●

---

११. मार्गाङ्गसूत्र : : आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग

११. ..."भिक्षुओ!' असंस्कृतगामी मार्ग' क्या है? यही (शास्त्रोक्त) आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग। भिक्षुओ! यह कहलाता है असंस्कृतगामी मार्ग। इस तरह भिक्षुओ! मैने तुम को असंस्कृत एवं असंस्कृतगामी मार्ग की देशना कर दी। भिक्षुओ! श्रावकों के हितैषी ...पूर्वसूत्रवत्...अनुशासन है, आदेश है॥ ●

असंस्कृतसंयुक्त का प्रथम वर्ग समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. कायगतस्मृतिसूत्र, २. शमथविपश्यनासूत्र, ३. सवितर्कसविचारसूत्र, ४. शून्यतासमाधि, ५. स्मृतिप्रस्थानसूत्र, ६. सम्यक्प्रहाणसूत्र, ७. ऋद्धिपादसूत्र, ८. इन्द्रियसूत्र, ९. बलसूत्र, १०. बोध्यङ्गसूत्र, एवं ११. मार्गाङ्गसूत्र॥●

२. दुतियो वग्गो

१२.असङ्खतसुत्तं

१२. "असङ्खतं च वो, भिक्खवे, देस्सेस्सामि असङ्खतगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, असङ्खतं? यो, भिक्खवे, रागक्खयो दोसक्खयो मोहक्खयो—इदं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतं। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? समथो। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो। इति खो, भिक्खवे, देसितं वो मया असङ्खतं, देसितो असङ्खतगामिमग्गो। यं, भिक्खवे, सत्थारा करणीयं सावकानं हितेसिना अनुकम्पकेन अनुकम्पं उपादाय, कतं वो तं मया। एतानि, भिक्खवे, रुक्खमूलानि, एतानि सुञ्ञागारानि। झायथ, भिक्खवे, मा पमादत्थ; मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी ति।

[B.538, R.362] "असङ्खतं च वो, भिक्खवे, देस्सेस्सामि असङ्खतगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, असङ्खतं? यो, भिक्खवे, रागक्खयो दोसक्खयो मोहक्खयो—इदं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतं। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? विपस्सना। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो। इति खो, भिक्खवे, देसितं वो मया असङ्खतं...पे०... अयं वो अम्हाकं अनुसासनी ति।

द्वितीय वर्ग

१२. असंस्कृतसूत्र : : शमथ

१२. ..."भिक्षुओ! मैं तुम्हें 'असंस्कृत' एवं 'असंस्कृतगामी मार्ग' का उपदेश करूँगा, उसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो, तथा मन में बैठा लो। भिक्षुओ! यह 'असंस्कृत' क्या है? भिक्षुओ! यह जो राग द्वेष एवं मोह का सर्वथा क्षय (नाश) है—यही 'असंस्कृत' है। फिर, भिक्षुओ! यह 'असंस्कृतगामी मार्ग' क्या है? शमथ भावना। यह कहलाता है भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग। इस तरह, भिक्षुओ! मैंने तुम को 'असंस्कृत' (निर्वाण) एवं असंस्कृतगामी मार्ग बता दिया।

"भिक्षुओ! श्रावकों के लिये हितैषी कृपालु शास्ता ने, श्रावकों को, अपना कर्त्तव्य समझ कर जो कुछ बताना था सब कुछ बता दिया। भिक्षुओ! ये वृक्षमूल हैं, ये शून्यागार हैं। भिक्षुओ! इन का आश्रय ले कर समाधिरत हो जाओ। इस में प्रमाद न करना! ऐसा न हो कि किसी प्रमाद के कारण, कालान्तर में तुम्हें एतदर्थ पश्चात्ताप करना पड़े। यही हमारा तुम को कठोर आदेश है॥ (१)

"भिक्षुओ! मैं तुम्हें असंस्कृत...पूर्ववत्...भिक्षुओ! यह होता है—असंस्कृत। फिर,

"कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? सवितक्को सविचारो समाधि। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, [N.315, R.363] असङ्खतगामिमग्गो? अवितक्को विचारमत्तो समाधि। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खत-गामिमग्गो ...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? अवितक्को अविचारो समाधि। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...।

"कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? सुञ्ञतो समाधि। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? अनिमित्तो समाधि। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? अप्पणिहितो समाधि। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...।

"कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खत-गामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति...पे०...अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामि- [R.364]

भिक्षुओ! यह असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विपश्यना (अलौकिक समाधि)। इस की भावना ही 'असंस्कृतगामी मार्ग' कहलाती है। इस तरह, भिक्षुओ!...पूर्ववत्...दृढ अनुशासन है॥ (२)

छह समाधियाँ—

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? सवितर्क सविचार समाधि।...

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? वितर्करहित सविचार समाधि।...

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? वितर्क एवं विचाररहित समाधि।...

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? शून्यता समाधि।...

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? अनिमित्त समाधि।...

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? अप्रणिहित समाधि।...

चार स्मृतिप्रस्थान—

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? भिक्षुओ! साधक भिक्षु काया में कायानुपश्यी हो कर साधना करता है, अपने क्लेशों का परिपाक करता है, सम्प्रज्ञ एवं स्मृतिमान् हो कर तथा संसार में सभी प्रकार के लोभ एवं द्वेष को छोड़ कर। यह 'असंस्कृत मार्ग' कहलाता है।...

मग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति...पे०...अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति...पे०...अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...।

"कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु अनुप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अनुप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, [B.539] भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु उप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं पहानाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, [N.316] असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु अनुप्पन्नानं कुसलानं-धम्मानं उप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति। अयं वुच्चति, [R.365] भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामि-मग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु उप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं ठितिया असम्मोसाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...।

"कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु छन्द-

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? वेदनाओं में वेदनानुपश्यी हो कर...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? चित्त में चित्तानुपश्यी हो कर...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! असंस्कृतगागी मार्ग क्या है? धर्मों में धर्मानुपश्यी हो कर...पूर्ववत्...।

चार सम्यक्प्रहाण—

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के अनुत्पाद के लिये इच्छा करना, प्रयत्न करना। ...

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? उत्पन्न अकुशल धर्मों के प्रहाणहेतु इच्छा करना, प्रयत्न करना। ...

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पादहेतु इच्छा करना, प्रयत्न करना। ...

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? उत्पन्न कुशल धर्मों की वृद्धिहेतु इच्छा करना, प्रयत्न करना। ...

समाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामि-मग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु विरियसमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु चित्तसमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु वीमंसासमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...।

"कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु सद्धिन्द्रियं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्गपरिणामिं। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामि-[R.366] मग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु विरियिन्द्रियं भावेति विवेकनिस्सितं...पे०...अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामि-मग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु सतिन्द्रियं भावेति...पे०...अयं वुच्चति, भिक्खवे,

---

चार ऋद्धिपाद—

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? छन्दसमाधिप्रधान संस्कार वाले ऋद्धिपाद की भावना करना।...

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? वीर्यसमाधिप्रधान संस्कार वाले ऋद्धिपाद की भावना करना।...

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? चित्तसमाधिप्रधान संस्कार वाले ऋद्धिपाद की भावना करना।...

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? मीमांसासमाधिप्रधान संस्कार वाले ऋद्धिपाद की भावना करना।...

पाँच इन्द्रियाँ—

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध एवं त्याग में लगाने वाली **श्रद्धेन्द्रिय** की भावना करना।...

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाली **वीर्येन्द्रिय** की भावना।...

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाली **स्मृतीन्द्रिय** की भावना।...

असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु समाधिन्द्रियं भावेति...पे०...अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो [B.540] ...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु [N.317] पञ्ञिन्द्रियं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्ग-परिणामिं। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...।

"कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु सद्धाबलं भावेति विवेकनिस्सितं...पे०...अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु विरियबलं भावेति ...पे०...अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु सतिबलं भावेति...पे०...अयं वुच्चति, [R.367] भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामि-मग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु समाधिबलं भावेति...पे०...अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु पञ्ञाबलं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्ग-परिणामिं। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...।

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाली **समाधीन्द्रिय** की भावना। ...

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाली **प्रज्ञेन्द्रिय** की भावना। ...

पाँच बल—

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाले **श्रद्धाबल** की भावना। ...

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाले **वीर्यबल** की भावना। ...

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाले **स्मृतिबल** की भावना। ...

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाले **समाधिबल** की भावना। ...

"भिक्षुओ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाले **प्रज्ञाबल** की भावना। ...

"कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु सतिसम्बोज्झङ्गं भावेति विवेकनिस्सितं...पे०...अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो ...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु धम्मविचयसम्बोज्झङ्गं भावेति...पे०...विरियसम्बोज्झङ्गं भावेति...पे०...पीतिसम्बोज्झङ्गं भावेति...पे०...पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गं भावेति...पे०...समाधिसम्बोज्झङ्गं भावेति...पे०...उपेक्खासम्बोज्झङ्गं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्गपरिणामिं। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो ...पे०...।

"कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु सम्मादिट्ठिं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्गपरिणामिं। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामि-[R.368] मग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु सम्मासङ्कप्पं भावेति...पे०...सम्मावाचं भावेति...पे०...

सात बोध्यङ्ग—

"भिक्षुओ! यह असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाला **स्मृतिसम्बोध्यङ्ग**...।

"भिक्षुओ! यह असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाला **धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग**...।

"भिक्षुओ! यह असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाला **वीर्यसम्बोध्यङ्ग**...।

"भिक्षुओ! यह असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाला **प्रीतिसम्बोध्यङ्ग**...।

"भिक्षुओ! यह असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाला **प्रश्रब्धिसम्बोध्यङ्ग**...।

"भिक्षुओ! यह असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाला **समाधिसम्बोध्यङ्ग**...।

"भिक्षुओ! यह असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाला **उपेक्षासम्बोध्यङ्ग**...।

अष्टाङ्गिक मार्ग—

"भिक्षुओ! यह असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाली **सम्यग्दृष्टि** की भावना...।

"भिक्षुओ! यह असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाले **सम्यक्सङ्कल्प** की भावना...।

सम्माकम्मन्तं भावेति...पे०...सम्माआजीवं भावेति...पे०...सम्मावायामं भावेति ...पे०...सम्मासतिं भावेति...पे०...। असङ्खतं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि असङ्खतगामिं [N.318] च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, असङ्खतं...पे०...। कतमो च, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो? इध, भिक्खवे, भिक्खु सम्मासमाधिं भावेति [B.541] विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्गपरिणामिं। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असङ्खतगामिमग्गो...पे०...। इति खो, भिक्खवे, देसितं वो मया असङ्खतं, देसितो असङ्खतगामिमग्गो। यं, भिक्खवे, सत्थारा करणीयं सावकानं हितेसिना अनुकम्पकेन अनुकम्पं उपादाय, कतं वो तं मया। एतानि, भिक्खवे, रुक्खमूलानि, एतानि सुञ्ञागारानि। झायथ, भिक्खवे, मा पमादत्थ; मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी'' ति॥ •

१३. अमतसुत्तं

१३. अमतं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि, अमतगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, अनतं...पे०...। *(यथा असङ्खतं तथा वित्थारेतब्बं।)* •

''भिक्षुओ! यह असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाले **सम्यग्वाक्** की भावना...।

''भिक्षुओ! यह असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाले **सम्यक्कर्मान्त** की भावना...।

''भिक्षुओ! यह असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाले **सम्यगाजीव** की भावना...।

''भिक्षुओ! यह असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाले **सम्यग्व्यायाम** की भावना...।

''भिक्षुओ! यह असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाले **सम्यक्स्मृति** की भावना...।

''भिक्षुओ! यह असंस्कृतगामी मार्ग क्या है? विवेक, वैराग्य, निरोध, त्याग में लगाने वाले **सम्यक्समाधि** की भावना...।

''भिक्षुओ! अनुकम्पक शास्ता द्वारा अपने शिष्यों के लिये...पूर्ववत्...यही हमारा अनुशासन है॥'' •

१३. अमृतसूत्र : : अमृत (निर्वाण)

१३. ''भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें 'अमृत' (निर्वाण) एवं 'अमृतगामी मार्ग' के विषय

१४-४३. अनासवादिसुत्तं

१४-४३. "अनासवं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि अनासवगामिं च [R.369] मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, अनासवं...पे०...। सच्चं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि सच्चगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, सच्चं...पे०...। पारं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि पारगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, पारं ...पे०...। निपुणं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि निपुणगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, निपुणं...पे०...। सुदुद्दसं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि सुदुद्दसगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, सुदुद्दसं...पे०...। अजज्जरं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि अजज्जरगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, अजज्जरं ...पे०...। धुवं [R.370] च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि धुवगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च भिक्खवे धुवं...पे०...। अपलोकितं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि अपलोकितगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, अपलोकितं...पे०...। अनिदस्सनं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि अनिदस्सनगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, अनिदस्सनं

में उपदेश करूँगा। उसे सुनो तथा ध्यानपूर्वक मन में बैठा लो। भिक्षुओ! यह अमृत क्या है?...

(इस सूत्र का भी पूर्ववर्णित असंस्कृतसूत्र के समान ही अक्षरश: विस्तार कर लें।) •

१४-४३. अनासवादिसूत्र : : अनाश्रव आदि

१४-४३. "भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें अनाश्रव (चित्तविकार रहित) तथा अनाश्रवगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। उसे सुनो तथा ध्यानपूर्वक मन में बैठा लो। ...पूर्ववत्... ॥ •

"भिक्षुओ! ...'सत्य' एवं सत्यगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

"भिक्षुओ! ...'पार' एवं पारगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

"भिक्षुओ! ...'निपुण' एवं निपुणगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

"भिक्षुओ! ...'सुदुर्दर्श' एवं सुदुर्दर्शगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

"भिक्षुओ! ...'अजर्जर' एवं अजर्जरगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

"भिक्षुओ! ...'ध्रुव' एवं ध्रुवगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

"भिक्षुओ! ...'अपलोकित' एवं अपलोकितगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

"भिक्षुओ! ...'अनिदर्शन' एवं अनिदर्शनगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

[N.319]...पे०...। निप्पपञ्चं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि निप्पपञ्चगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, निप्पपञ्चं...पे०...।

''सन्तं च वो; भिक्खवे, देसेस्सामि सन्तगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, सन्तं...पे०...। अमतं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि अमतगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, अमतं...पे०...। पणीतं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि [B.542] पणीतगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, पणीतं...पे०...। सिवं च [R.371] वो, भिक्खवे, देसेस्सामि सिवगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, सिवं...पे०...। खेमं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि खेमगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, खेमं...पे०...। तण्हाक्खयं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि तण्हाक्खयगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, तण्हाक्खयं...पे०...।

''अच्छरियं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि अच्छरियगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, अच्छरियं...पे०...। अब्भुतं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि अब्भुतगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, अब्भुतं...पे०...। अनीतिकं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि अनीतिकगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, अनीतिकं...पे०...। अनीतिकधम्मं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि अनीतिकधम्मगामिं च

''भिक्षुओ! ...'निष्प्रपञ्च' एवं निष्प्रपञ्चगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

''भिक्षुओ! ...'शान्त' एवं शान्तगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

''भिक्षुओ! ...'अमृत' एवं अमृतगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

''भिक्षुओ! ...'प्रणीत' एवं प्रणीतगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

''भिक्षुओ! ...'शिव' एवं शिवगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

''भिक्षुओ! ...'क्षेम' एवं क्षेमगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

''भिक्षुओ! ...'तृष्णाक्षय' एवं तृष्णाक्षयगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

''भिक्षुओ! ...'आश्चर्य' एवं आश्चर्यगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

''भिक्षुओ! ...'अद्भुत' एवं अद्भुतगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

''भिक्षुओ! ...'अनीतिक' एवं अनीतिकगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

''भिक्षुओ! ...'अनीतिक धर्म' एवं अनीतिकधर्मगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ •

मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, अनीतिकधम्मं...पे०...। निब्बानं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि निब्बानगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, निब्बानं ...पे०...। अब्यापज्जं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि अब्यापज्जगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, अब्यापज्जं...पे०...। विरागं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि विराग-गामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमो च, भिक्खवे, विरागो...पे०...।

"सुद्धिं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि सुद्धिगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। [R.372] कतमा च, भिक्खवे, सुद्धि...पे०...। मुत्तिं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि मुत्तिगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमा च, भिक्खवे, मुत्ति...पे०...। अनालयं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि अनालयगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमो च, भिक्खवे, अनालयो...पे०...। दीपं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि दीपगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, [N.320] भिक्खवे, दीपं...पे०...। लेणं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि लेणगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, लेणं...पे०...। ताणं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि ताणगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, ताणं...पे०...। सरणं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि सरणगामिं च मग्गं। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, सरणं...पे०...॥ ●

४४. परायनसुत्तं

४४. "परायनं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि परायनगामिं च मग्गं। तं [R.373] सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, परायनं? यो, भिक्खवे, रागक्खयो दोसक्खयो [B.543] मोहक्खयो—इदं वुच्चति, भिक्खवे, परायनं। कतमो च, भिक्खवे, परायनगामी मग्गो?

"भिक्षुओ! ...'निर्वाण' एवं निर्वाणगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥●

"भिक्षुओ! ...'अव्यापाद्य' एवं अव्यापाद्यगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ ●

"भिक्षुओ! ...'विराग' एवं विरागगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥●

"भिक्षुओ! ...'शुद्धि' एवं शुद्धिगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥●

"भिक्षुओ! ...'मुक्ति' एवं मुक्तिगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥●

"भिक्षुओ! ...'अनालय' एवं अनालयगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥●

"भिक्षुओ! ...'दीप' एवं दीपगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ ●

"भिक्षुओ! ...'लेण' (शरणस्थल) एवं लेणगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ ●

"भिक्षुओ! ...'त्राण' एवं त्राणगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥ ●

"भिक्षुओ! ...'शरण' एवं शरणगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। ...पूर्ववत्... ॥●

कायगता सति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, परायनगामिमग्गो। इति खो, भिक्खवे, देसितं वो मया परायनं, देसितो परायनगामिमग्गो। यं, भिक्खवे, सत्थारा करणीयं सावकानं हितेसिना अनुकम्पकेन अनुकम्पं उपादाय, कतं वो तं मया। एतानि, भिक्खवे, रुक्खमूलानि, एतानि सुञ्ञागारानि। झायथ, भिक्खवे, मा पमादत्थ; मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी'' ति। *(यथा असङ्खतं तथा वित्थारेतब्बं।)* ॥ •

दुतियो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

असङ्खतं अमतं अनासवं, सच्चं च पारं निपुणं सुदुद्दसं।
अजज्जरं धुवं अपलोकितं, अनिदस्सनं निप्पपञ्च सन्तं॥
अमतं पणीतं च सिवं च खेमं, तण्हाक्खयो अच्छरियं च अब्भुतं।
अनीतिकं अनीतिकधम्मं, निब्बानमेतं सुगतेन देसितं॥

---

४४. पारायणसूत्र : : पारगामिता

४४. ''भिक्षुओ! मैं तुम्हें 'पारायण' एवं पारायणगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। उसे सुनो तथा ध्यानपूर्वक मन में बैठा लो।

''भिक्षुओ! यह 'पारायण' क्या है? भिक्षुओ! राग द्वेष एवं मोह का क्षय ही 'पारायण' कहलाता है। तथा, भिक्षुओ! पारायणगामी मार्ग क्या है? (यह) कायगता स्मृति (ही पारायणगामी मार्ग है)। यह कहलाता है—पारायणगामी मार्ग।''

''इस तरह, भिक्षुओ! मैने तुम को 'पारायण' एवं पारायणगामी मार्ग का भी उपदेश कर दिया। इस प्रकार, शिष्यों के हितैषी तथा उन पर सतत अनुकम्पा रखने वाले शास्ता द्वारा जो कुछ भी अपने शिष्यों के लिये किया जा सकता है, वह सब (उपदेश) मैने तुम्हारे लिये कर दिया। अब ये अरण्य में मनोरम वृक्षों के मूल हैं, ये एकान्त में शून्य आगार हैं। इन्हें अपना आश्रय बना कर (वहाँ बैठ कर) साधना करो। इस में किसी प्रकार का प्रमाद न करना। अन्यथा ऐसा न हो कि (इस प्रमाद के कारण) कालान्तर में तुम्हें कोई पश्चात्ताप करना पड़े। यही हमारा आदेश है॥'' •

(इन उपरिवर्णित सभी सूत्रों की 'असंस्कृतसूत्र' की तरह ही विस्तार कर लें।)

द्वितीयवर्ग समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. असंस्कृतसूत्र, २. अमतसूत्र, ३. अनाश्रव-सूत्र, ४. सत्यसूत्र, ५. पारसूत्र, ६. निपुणसूत्र, ७. सुदुर्दर्श, ८. अजर्जरसूत्र, ९. ध्रुवसूत्र, १०. अपलोकितसूत्र, ११. अनिदर्शनसूत्र, १२. निष्प्रपञ्चसूत्र, १३. शान्तसूत्र, १४. अमृतसूत्र,

अब्यापज्जो विरागो च, सुद्धि मुत्ति अनालयो।
दीपो लेणं च ताणं च, सरणं च परायनं ति॥

●

असङ्खतसंयुत्तं समत्तं॥

---

१५. प्रणीतसूत्र, १६. शिवसूत्र, १७. क्षेमसूत्र, १८. तृष्णाक्षयसूत्र, १९. आश्चर्यसूत्र, २०. अद्भुतसूत्र, २१. अनीतिकसूत्र, २२. अनीतिकधर्मसूत्र, २३. निर्वाणसूत्र—ये सभी सूत्र भगवान् द्वारा उपदिष्ट हैं।

तथा २४. अव्यापाद्यसूत्र, २५. विरागसूत्र, २६. शुद्धिसूत्र, २७. मुक्तिसूत्र, २८. अनालयसूत्र, २९. द्वीपसूत्र, ३०. लेणसूत्र, ३१. त्राणसूत्र, ३२. शरणसूत्र एवं ३३. पारायणसूत्र॥

●

असंस्कृतसंयुक्त समाप्त॥

४४. अब्याकतसंयुत्तं

१. खेमासुत्तं

[N.321, B.544, R.374] १. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन खेमा भिक्खुनी कोसलेसु चारिकं चरमाना अन्तरा च सावत्थिं अन्तरा च साकेतं तोरणवत्थुस्मिं वासं उपगता होति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो साकेता सावत्थिं गच्छन्तो, अन्तरा च साकेतं अन्तरा च सावत्थिं तोरणवत्थुस्मिं एकरत्तिवासं उपगच्छि। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो अञ्ञतरं पुरिसं आमन्तेसि—"एहि त्वं, अम्भो पुरिस, तोरणवत्थुस्मिं तथारूपं समणं वा ब्राह्मणं वा जान यमहं अज्ज पयिरुपासेय्यं" ति।

"एवं, देवा" ति खो सो पुरिसो रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स पटिस्सुत्वा केवलकप्पं तोरणवत्थुं आहिण्डन्तो नाद्दस तथारूपं समणं वा ब्राह्मणं वा यं राजा पसेनदि कोसलो पयिरुपासेय्य। अद्दसा खो सो पुरिसो खेमं भिक्खुनिं तोरणवत्थुस्मिं वासं उपगतं। दिस्वान येन राजा पसेनदि कोसलो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा राजानं पसेनदिं कोसलं एतदवोच—

"नत्थि खो, देव, तोरणवत्थुस्मिं तथारूपो समणो वा ब्राह्मणो वा यं देवो

---

४४. अव्याकृतसंयुक्त

१. क्षेमासूत्र : : **अव्याकृत क्यों?**

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती** के अनाथपिण्डकश्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय क्षेमा भिक्षुणी कौशल प्रदेश में चारिका करती हुई श्रावस्ती एवं साकेत के मध्य **तोरणवस्तु** में साधनाहेतु ठहरी हुई थी। इसी समय राजा प्रसेनजित् कौशल, साकेत से श्रावस्ती जाते हुए, श्रावस्ती एवं साकेत के मध्य **तोरणवस्तु** में एक रात्रि विश्रामहेतु ठहरे। तब राजा प्रसेनजित् कौशल ने अपने किसी अधिकारी अनुचर से कहा—"अरे भाई! इस तोरणवस्तु में ऐसे किसी श्रमण या ब्राह्मण को खोजो जिस से आज रात्रि में धर्मचर्चा की जा सके।"

"अच्छा, देव!" —ऐसा कहते हुए वह अधिकारी पुरुष उस समस्त तोरणवस्तु में घूम कर भी ऐसे किसी श्रमण या ब्राह्मण को नहीं खोज पाया जिस से राजा धर्मचर्चा कर सकें। अन्त में, उस ने तोरणवस्तु में ठहरी हुई क्षेमा भिक्षुणी को देखा। उसे देख कर उसने राजा को सूचित किया—"देव! यहाँ कोई ऐसा विद्वान् श्रमण ब्राह्मण तो नहीं है

पयिरुपासेय्य। अत्थि च खो, देव, खेमा नाम भिक्खुनी, तस्स भगवतो साविका अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स। तस्सा खो पन अय्याय एवं कल्याणो कित्तिसद्दो [R.375] अब्भुग्गतो—'पण्डिता, वियत्ता मेधाविनी बहुस्सुता चित्तकथा कल्याणपटिभाना' ति। तं देवो पयिरुपासतू'' ति।

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो येन खेमा भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा खेमं भिक्खुनिं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा [B.545] पसेनदि कोसलो खेमं भिक्खुनिं एतदवोच—''किन्नु खो, अय्ये, होति तथागतो परं मरणा'' ति? [N.322]

''अब्याकतं खो एतं, महाराज, भगवता—'होति तथागतो परं मरणा''' ति।

''किं पनय्ये, न होति तथागतो परं मरणा'' ति?

''एतं पि खो, महाराज, अब्याकतं भगवता—'न होति तथागतो परं मरणा''' ति।

''किन्नु खो, अय्ये, होति च न च होति तथागतो परं मरणा'' ति?

''अब्याकतं खो एतं, महाराज, भगवता—'होति च न च होति तथागतो परं मरणा''' ति।

''किं पनय्ये, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा'' ति?

जिस से आप धर्मचर्चा कर सकें, परन्तु भगवान् बुद्ध की क्षेमा भिक्षुणी नाम की शिष्या अवश्य है जिस के विषय में लोग ऐसे प्रशंसावाक्य कहते हैं कि वह भिक्षुणी शास्त्र की पण्डित है, उस में कुशल है, बुद्धिमती है, बहुश्रुत है, बहुत सरस पद्धति से धर्मकथा कहती है, तथा शुभविचारों वाली है। उस से आप धर्मचर्चा कर सकते हैं।''

तब राजा प्रसेनजित् कौशल क्षेमा भिक्षुणी के पास गया तथा उस से यों धर्मप्रसङ्ग आरम्भ किया—''आर्ये! क्या तथागत, मरणानन्तर भी, रहते हैं?''

''महाराज! भगवान् ने इस प्रश्न को 'अव्याकृत' (जिस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' या 'नाँ' में नहीं दिया जा सकता) बताया है।''

''तो क्या, आर्ये! भगवान् तथागत मरणानन्तर नहीं रहते?''

''महाराज! इस प्रश्न को भी भगवान् ने 'अव्याकृत' ही कहा है।''

''तो क्या, आर्ये! तथागत मरणानन्तर होते भी हैं, नहीं भी होते?''

''महाराज! यह प्रश्न भी भगवान् द्वारा अव्याकृत ही बताया गया है।

''तो क्या, आर्ये! तथागत मरणानन्तर न रहते हैं, न नहीं ही रहते?''

"एतं पि खो, महाराज, अब्याकतं भगवता—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा''' ति।

"'किन्नु खो, अय्ये, होति तथागतो परं मरणा' ति, इति पुट्ठा समाना—'अब्याकतं खो एतं, महाराज, भगवता—होति तथागतो परं मरणा' ति वदेसि। 'किं पनय्ये, न होति तथागतो परं मरणा' ति इति पुट्ठा समाना—'एतं पि खो, महाराज, अब्याकतं भगवता—न होति तथागतो परं मरणा' ति वदेसि। 'किन्नु खो, अय्ये, होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति इति पुट्ठा समाना—'अब्याकतं खो एतं, महाराज, भगवता—होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति वदेसि। 'किं पनय्ये, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति इति पुट्ठा समाना—'एतं पि खो, महाराज, अब्याकतं भगवता—नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति वदेसि। 'को [R.376] नु खो, अय्ये, हेतु को पच्चयो येनेतं अब्याकतं भगवता''' ति?

"तेन हि, महाराज, तञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि। यथा ते खमेय्य तथा नं ब्याकरेय्यासि। तं किं मञ्ञसि, महाराज, अत्थि ते कोचि गणको वा मुद्दिको वा सङ्खायको वा यो पहोति गङ्गाय वालुकं गणेतुं—एत्तका वालुका इति वा, एत्तकानि वालुकसतानि इति वा, एत्तकानि वालुकसहस्सानि इति वा, एत्तकानि वालुकसत-सहस्सानि इति वा" ति?

"नो हेतं, अय्ये!"

[N.323] "अत्थि पन ते कोचि गणको वा मुद्दिको वा सङ्खायको वा यो पहोति महा-[B.546] समुद्दे उदकं गणेतुं—एत्तकानि उदकाळ्हकानि इति वा, एत्तकानि उदकाळ्ह-

---

"महाराज! इस प्रश्न का उत्तर भी भगवान् ने अव्याकृत ही कहा है।

"आर्ये! आप ने मेरे चारों ही प्रश्नों का उत्तर 'अव्याकृत' कह कर टाल दिया। आर्ये! इस में क्या हेतु क्या प्रत्यय है कि भगवान् ने इन सभी प्रश्नों को 'अव्याकृत' कह कर अनुत्तरित ही रहने दिया?"

"तो, महाराज! मैं आप से ही, इस प्रसङ्ग में, पूछती हूँ, आप जैसा उचित समझें, उत्तर दें। तो क्या मानते हो, महाराज! आप के पास ऐसा कोई गणक (गिनती करने वाला) या मुद्रक (अङ्कसंयोजक), या साङ्ख्यिक (सङ्ख्यानुसन्धाता) अधिकारी पुरुष है जो गङ्गा के बालुका-कणों को गिन कर बता सके कि गङ्गा में इतने बालुकण हैं—सौ, हजार, लाख या करोड़?"

"नहीं, आर्ये!"

"तो, महाराज! आप के पास ऐसा कोई गणक...है जो समुद्र के जल का सङ्कलन

कसतानि इति वा, एत्तकानि उदकाळ्हकसहस्सानि इति वा, एत्तकानि उदकाळ्हकसतसहस्सानि इति वा'' ति?

''नो हेतं, अय्ये''।

''तं किस्स हेतू'' ति?

''महाय्ये, समुद्दो गम्भीरो अप्पमेय्यो दुप्परियोगाहो'' ति।

''एवमेव खो, महाराज, येन रूपेन तथागतं पञ्ञापयमानो पञ्ञापेय्य तं रूपं तथागतस्स पहीनं उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावङ्कतं आयतिं अनुप्पादधम्मं। रूपसङ्खायविमुत्तो खो, महाराज, तथागतो गम्भीरो अप्पमेय्यो दुप्परियोगाहो—सेय्यथापि महासमुद्दो। 'होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति, 'न होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति, 'होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति, 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति।

''याय वेदनाय तथागतं पञ्ञापयमानो पञ्ञापेय्य सा वेदना तथागतस्स [R.377] पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। वेदनासङ्खायविमुत्तो, महाराज, तथागतो गम्भीरो अप्पमेय्यो दुप्परियोगाहो—सेय्यथापि महासमुद्दो। 'होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति, 'न होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति, 'होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति, 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति।

''याय सञ्ञाय तथागतं...पे०...। येहि सङ्खारेहि तथागतं पञ्ञापयमानो पञ्ञा-

---

कर बता सके कि समुद्र में पूर्णतः इतने आढक (तत्कालीन एक माप) जल है—सौ, हजार, लाख या करोड़?''

''नहीं, आर्ये!''

''वह किस कारण, महाराज!''

''आर्ये! यह समुद्र इतना गम्भीर तथा अपरिमेय (अथाह) है इस के जल को कोई आढक से नहीं नाप सकता।''

''इसी तरह, महाराज! तथागत लोक में जिस रूप से जाने जाते हैं, तथागत का वह रूप प्रहीण, उच्छिन्न, अभावप्राप्त हो चुका होता है, यहाँ तक कि भविष्य में उस के पुनः उत्पन्न होने की कोई आशा नहीं है। महाराज! तथागत इस रूप तथा उस के सङ्ख्याजनित प्रश्न से विमुक्त हो चुके हैं; क्यों कि वे भी समुद्र की तरह गम्भीर, अप्रमेय तथा अथाह हैं। समुद्र के समान ही तथागत के विषय में भी नहीं कहा जा सकता कि तथागत मरणानन्तर रहते हैं, रहते भी हैं, नहीं भी रहते, नहीं रहते, न नहीं रहते।

पेय्य ते सङ्खारा तथागतस्स पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। सङ्खारसङ्खायविमुत्तो खो, महाराज, तथागतो गम्भीरो अप्पमेय्यो दुप्परियोगाहो—सेय्यथापि महासमुद्दो। 'होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति, 'न [N.324] होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति, 'होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति, 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति।

"येन विञ्ञाणेन तथागतं पञ्ञापयमानो पञ्ञापेय्य तं विञ्ञाणं तथागतस्स [B.547] पहीनं उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावङ्कतं आयतिं अनुप्पादधम्मं। विञ्ञाणसङ्खायविमुत्तो खो, महाराज, तथागतो गम्भीरो अप्पमेय्यो दुप्परियोगाहो—सेय्यथापि महासमुद्दो। 'होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति, 'न होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति, 'होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति, 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेती" ति।

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो खेमाय भिक्खुनिया भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना खेमं भिक्खुनिं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो अपरेन समयेन येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच—"किन्नु खो, भन्ते, होति तथागतो परं मरणा" ति?

[R.378] "अब्याकतं खो एतं, महाराज, मया—'होति तथागतो परं मरणा'" ति।

"किं पन, भन्ते, न होति तथागतो परं मरणा" ति?

"एतं पि खो, महाराज, अब्याकतं मया—'न होति तथागतो परं मरणा'" ति।

"किन्नु खो, भन्ते, होति च न च होति तथागतो परं मरणा" ति?

"अब्याकतं खो एतं, महाराज, मया—'होति च न च होति तथागतो परं मरणा'" ति।

"महाराज! तथागत जिस वेदना से...पूर्ववत्...जिस संज्ञा से...जिन संस्कारों से...जिस विज्ञान से जाने जाते हैं तथागत का वह विज्ञान...पूर्ववत्...नहीं रहते।"

राजा की भगवान् से धर्मचर्चा—राजा प्रसेनजित् कौशल क्षेमा भिक्षुणी के इस प्रवचन का अभिनन्दन एवं अनुमोदन कर अपने स्थितिस्थान पर चले आये। तब राजा, दूसरे समय, भगवान् के पास आये, तथा उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन्होंने तथागतविषयक वही प्रश्न भगवान् से पूछे, जिन के विषय में अभी पीछे क्षेमा भिक्षुणी के साथ संवाद हुआ था।

"किं पन, भन्ते, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा" ति?

"एतं पि खो, महाराज, अब्याकतं मया—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा''' ति।

"'किन्नु खो, भन्ते, होति तथागतो परं मरणा' ति इति पुट्ठो समानो—'अब्याकतं खो एतं, महाराज, मया—होति तथागतो परं मरणा' ति वदेसि...पे०...'किं पन, भन्ते, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति, इति पुट्ठो समानो, 'एतं पि खो, महाराज, अब्याकतं मया—नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति वदेसि। को नु [N.325] खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो, येनेतं अब्याकतं भगवता" ति?

"तेन हि, महाराज, तञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि। यथा ते खमेय्य तथा नं ब्याकरेय्यासि। तं किं मञ्ञसि, महाराज, अत्थि ते कोचि गणको वा मुद्दिको वा [B.548] सङ्खायको वा यो पहोति गङ्गाय वालुकं गणेतुं—एत्तका वालुका इति वा...पे०... एत्तकानि वालुकसतसहस्सानि इति वा" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"अत्थि पन ते कोचि गणको वा मुद्दिको वा सङ्खायको वा यो पहोति महासमुद्दे उदकं गणेतुं—एत्तकानि उदकाळ्हकानि इति वा...पे०...एत्तकानि उदकाळ्हकसत-सहस्सानि इति वा" ति?

"नो हेतं, भन्ते"। "तं किस्स हेतु"?

"महा, भन्ते, समुद्दो गम्भीरो अप्पमेय्यो दुप्परियोगाहो"।

"एवमेव खो, महाराज, येन रूपेन तथागतं पञ्ञापयमानो पञ्ञापेय्य तं [R.379] रूपं तथागतस्स पहीनं उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावङ्कतं आयतिं अनुप्पादधम्मं। रूपसङ्खायविमुत्तो खो, महाराज, तथागतो गम्भीरो अप्पमेय्यो दुप्परियोगाहो—सेय्यथापि महासमुद्दो। 'होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति...पे०...'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति। याय वेदनाय...याय सञ्ञाय...येहि सङ्खारेहि...।

येन विञ्ञाणेन तथागतं पञ्ञापयमानो पञ्ञापेय्य तं विञ्ञाणं तथागतस्स पहीनं उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावङ्कतं आयतिं अनुप्पादधम्मं। विञ्ञाणसङ्खायविमुत्तो

भगवान् ने भी, उस संवाद के अनुसार ही, राजा के उन प्रश्नों को 'अव्याकृत' कह कर अनुत्तरित ही रखा।

(क्षेमा भिक्षुणी के साथ हुए संवाद का यहाँ भी अक्षरश: विस्तार कर लें।)

खो, महाराज, तथागतो गम्भीरो अप्पमेय्यो दुप्परियोगाहो—सेय्यथापि महासमुद्दो। 'होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति, 'न होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति, 'होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेति, 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पि न उपेती'' ति।

[N.326] ''अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! यत्र हि नाम सत्थु चेव साविकाय च अत्थेन अत्थो ब्यञ्जनेन ब्यञ्जनं संसन्दिस्सति समेस्सति न विरोधयिस्सति यदिदं अग्गपदस्मिं। एकमिदाहं, भन्ते, समयं खेमं भिक्खुनिं उपसङ्कमित्वा एकमत्थं अपुच्छिं। सा पि मे अय्या एतेहि पदेहि एतेहि ब्यञ्जनेहि एतमत्थं ब्याकासि, सेय्यथापि भगवा। अच्छरियं भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! यत्र हि नाम सत्थु चेव साविकाय च अत्थेन अत्थो ब्यञ्जनेन ब्यञ्जनं संसन्दिस्सति समेस्सति न विरोधयिस्सति यदिदं अग्गपदस्मिं। हन्द दानि मयं, भन्ते, गच्छाम। बहुकिच्चा मयं बहुकरणीया'' ति।

''यस्स दानि त्वं, महाराज, कालं मञ्ञसी'' ति।

[B.549, R.380] अथ खो राजा पसेनदि कोसलो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामी ति॥ ●

२. अनुराधसुत्तं

२. एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। तेन खो पन समयेन आयस्मा अनुराधो भगवतो अविदूरे अरञ्ञकुटिकायं विहरति। अथ खो

(राजा—) ''भन्ते! यह आश्चर्यजनक है तथा अद्भुत घटना है कि आप के इस धर्मप्रवचन में तथा श्राविका (क्षेमा) से हुए मेरे संवाद में अक्षरशः समानता है, एक अक्षर या पद का भी कहीं विरोध या विपर्यास नहीं। एक समय, भन्ते! मैंने क्षेमा भिक्षुणी से भी यही प्रश्न किये थे। उसने भी इन प्रश्नों का इन्हीं अक्षरों, पदों तथा वाक्यों से व्याख्यान किया था। भन्ते! यह आश्चर्य की ही बात है ना कि क्षेमा भिक्षुणी के साथ हुआ मेरा संवाद आप के धर्मप्रवचन से अक्षरशः मिल गया, एक पद का भी कहीं विरोध नहीं! अच्छा, भन्ते! अब मुझे आज्ञा दीजिये, मैं चलूँगा; क्यों कि मुझे अन्य भी बहुत से कार्य करने हैं। हम गृहस्थ बहुकृत्य, बहुकरणीय (बहुधन्धी) हुआ करते हैं।''

''राजन्! जैसा तुम उचित समझो।''

तब राजा प्रसेनजित् कौशल भगवान् के भाषण का अभिनन्दन अनुमोदन करते हुए उन्हें प्रणाम कर आसन से उठ कर चला गया॥ ●

२. अनुराधसूत्र : : चार अव्याकत

२. एक समय भगवान् (बुद्ध) **वैशाली** की महावनस्थित कूटागारशाला में साधनाहेतु

सम्बहुला अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका येनायस्मा अनुराधो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा आयस्मता अनुराधेन सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका आयस्मन्तं अनुराधं एतदवोचुं—"यो सो, आवुसो अनुराध, तथागतो उत्तमपुरिसो परमपुरिसो परमपत्तिपत्तो, तं तथागतो इमेसु चतूसु ठानेसु पञ्ञापयमानो पञ्ञापेति—'होति तथागतो परं मरणा' ति वा, 'न होति तथागतो परं मरणा' ति वा, 'होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति वा, 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति वा" ति?

"यो सो, आवुसो, तथागतो उत्तमपुरिसो परमपुरिसो परमपत्तिपत्तो, तं तथागतो अञ्ञत्र इमेहि चतूहि ठानेहि पञ्ञापयमानो पञ्ञापेति—'होति तथागतो परं मरणा ति वा...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा" ति। एवं वुत्ते, ते [N.327] अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका आयस्मन्तं अनुराधं एतदवोचुं—"सो चायं भिक्खु नवो भविस्सति अचिरपब्बजितो, थेरो वा पन बालो अब्यत्तो" ति। अथ खो ते अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका आयस्मन्तं अनुराधं नववादेन च बालवादेन च अपसादेत्वा उट्ठायासना पक्कमिंसु।

विराजमान थे। उसी समय आयुष्मान् अनुराध भी भगवान् से कुछ ही दूर एक अरण्यकुटी में रह कर साधना कर रहे थे। उस समय कभी बहुत से अन्य सम्प्रदायों के परिव्राजक आयुष्मान् अनुराध के पास आये तथा उन से कुशलमङ्गल पूछ कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए उन परिव्राजकों ने आयुष्मान् अनुराध से यों पूछा—"आयुष्मन् अनुराध! आप के शास्ता (बुद्ध) जो कि लोक में उत्तम पुरुष, श्रेष्ठ पुरुष तथा परमप्राप्ति (ज्ञान) प्राप्त हैं, वे इन चार प्रश्नों का क्या उत्तर देते हैं—(१) 'तथागत मरणानन्तर होते हैं?' (२) 'तथागत मरणानन्तर नहीं होते?' (३) 'क्या तथागत मरणानन्तर होते भी हैं या नहीं भी होते?' या (४) 'तथागत मरणानन्तर नहीं होते या न नहीं ही होते हैं?'"

"आयुष्मानो! वे उत्तम पुरुष, श्रेष्ठ पुरुष तथा परमज्ञान प्राप्त तथागत इन उपर्युक्त चार प्रश्नों का ('अव्याकृत' कह कर) अन्यत्र ही उत्तर देते हैं...पूर्ववत्...न नहीं ही होते हैं।"

आयुष्मान् अनुराध द्वारा यह उत्तर देने पर वे परिव्राजक इस से असन्तुष्ट होते हुए यह कह बैठे—"यह भिक्षु तो नवप्रव्रजित ज्ञात होता है। या हो सकता है यह मूर्ख या शास्त्र में अप्रविष्ट स्थविर हो"!

यों, वे परिव्राजक आयुष्मान् अनुराध को नवप्रव्रजित एवं मूर्ख स्थविर बताते हुए वहाँ से चल दिये।

[R.381] अथ खो आयस्मतो अनुराधस्स अचिरपक्कन्तेसु अञ्ञतित्थियेसु परिब्बाजकेसु [B.550] एतदहोसि—"सचे खो मं ते अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका उत्तरिं पुच्छेय्युं, कथं ब्याकरमानो नु ख्वाहं तेसं अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं वुत्तवादी चेव भगवतो अस्सं, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खेय्यं, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरेय्यं, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छेय्या" ति? अथ खो आयस्मा अनुराधो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा अनुराधो भगवन्तं एतदवोच—"इधाहं, भन्ते, भगवतो अविदूरे अरञ्ञकुटिकायं विहरामि। अथ खो, भन्ते, सम्बहुला अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका येनाहं तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा मया सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो, भन्ते, ते [R.382] अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका मं एतदवोचुं...पे०...तस्स मय्हं, भन्ते, अचिर-पक्कन्तेसु तेसु अञ्ञतित्थियेसु परिब्बाजकेसु एतदहोसि—'सचे खो मं ते अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका उत्तरिं पुच्छेय्युं, कथं ब्याकरमानो नु ख्वाहं तेसं अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं वुत्तवादी चेव भगवतो अस्सं, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खेय्यं, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरेय्यं, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छेय्या" ति?

"तं किं मञ्ञसि, अनुराध, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

उन परिव्राजकों के चले जाने के बाद आयुष्मान् अनुराध को यह विचार हुआ—"यदि वे परिव्राजक इन प्रश्नों का आगे उत्तर प्रत्युत्तर करते तो मैं क्या कह कर भगवान् के अनुकूल समझा जाता, भगवान् पर मिथ्या आरोप भी न लगता, मेरा वह उत्तर भगवान् के धर्मानुसारी ही होता तथा मेरे तथा भगवान् के धर्म के प्रति कोई निन्दनीय बात भी न उठ पाती?" यही सोचता विचारता हुआ वह भगवान् की सेवा में पहुँचा। तथा वहाँ जा कर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ कर उस ने परिव्राजकों के साथ हुआ अपना समस्त संवाद भगवान् को सुनाया। तथा बाद में हुआ तद्विषयक अपना सन्देह भी व्यक्त किया। तब भगवान् ने आयुष्मान् अनुराध को यों उपदेश किया—

"तो तुम क्या मानते हो, अनुराध! रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!"

"जो अनित्य है वह दुःखमय होगा कि सुखमय?"

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति? [N.328]

"नो हेतं, भन्ते"।

वेदना निच्चा वा अनिच्चा वा ति...पे०...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं [B.551] निच्चं वा अनिच्चं वा ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तस्मातिह, अनुराध, यं किञ्चि रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं रूपं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। या काचि वेदना अतीतानागतपच्चुप्पन्ना...या काचि सञ्ञा...ये केचि सङ्खारा...यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं विञ्ञाणं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति [R.383] एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं, अनुराध, सुतवा अरियसावको

"दुःखमय होगा, भन्ते!"

"तो जो धर्म अनित्य है, दुःखमय है, विनाशी है, उस के विषय में ऐसा मानना उचित होगा—'यह मेरा है, यह मैं हूँ, या यह मेरी आत्मा है'?"

"ऐसा नहीं है, भन्ते!"

"वेदना नित्य है या अनित्य? ...संज्ञा नित्य है या अनित्य? ...संस्कार नित्य है या अनित्य? ...विज्ञान नित्य है या अनित्य? ...पूर्ववत्...यह मेरी आत्मा है?"

"ऐसा नहीं है, भन्ते!"

"इसी तरह, अनुराध! जो कुछ भी अतीत, अनागत एवं वर्तमान रूप है, फिर भले ही वह अध्यात्म हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, हीन हो या प्रणीत, दूर हो या निकट, वह समस्त रूप न मेरा है, न वह मैं हूँ, न वह मेरी आत्मा है—इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान को भी इसी तरह जान लेना चाहिये।

रूपस्मिं पि निब्बिन्दति, वेदनाय पि निब्बिन्दति, सञ्ञाय पि निब्बिन्दति, सङ्खारेसु पि निब्बिन्दति, विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति।

"तं किं मञ्ञसि, अनुराध, रूपं तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"वेदनं तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"सञ्ञं तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"सङ्खारे तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

[N.329] "विञ्ञाणं तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञसि, अनुराध, रूपस्मिं तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"अनुराध! इसे जान कर विद्वान् आर्यश्रावक रूप में भी, वेदना में भी, संज्ञा में भी, संस्कारों में भी, विज्ञान में भी ग्लानि मानने लगता है। यह ग्लानि उस को वैराग्य की ओर अग्रसर करती है। वैराग्य से उस की विकारों से मुक्ति हो जाती है तथा 'मैं मुक्त हो गया'—यह भी जान जाता है। तब वह समझ जाता है—'मेरी जाति (भवपरम्परा) क्षीण हो गयी, मेरे कर्तव्य पूर्ण हो गये, अब मेरा कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं रहा'।

"अनुराध! क्या तुम रूप को तथागत समझते हो?"

"नहीं, भन्ते!"

...वेदना को...?

"नहीं, भन्ते!"

...संज्ञा को...?"

"नहीं, भन्ते!"

...संस्कारों को...?

"नहीं, भन्ते!"

...विज्ञान को...?

"नहीं, भन्ते!"

"नो हेतं, भन्ते"।

"अञ्ञत्र रूपा तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

वेदनाय...पे०...अञ्ञत्र वेदनाय...पे०...सञ्ञाय...पे०...अञ्ञत्र सञ्ञाय...पे० ...सङ्खारेसु...पे०...अञ्ञत्र सङ्खारेहि...पे०...विञ्ञाणस्मिं तथागतो ति समनुपस्ससी ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"अञ्ञत्र विञ्ञाणा तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञसि, अनुराध, रूपं वेदनं सञ्ञं सङ्खारे विञ्ञाणं तथागतो ति समनुपस्ससी" ति? [R.384]

"नो हेतं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञसि, अनुराध, अयं सो अरूपी अवेदनो असञ्ञी असङ्खारो अविञ्ञाणो तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"। [B.552]

"एत्थ च ते, अनुराध, दिट्ठेव धम्मे सच्चतो थेततो तथागतो अनुपलब्भियमानो कल्लं नु ते तं वेय्याकरणं—'यो सो, आवुसो, तथागतो उत्तमपुरिसो परमपुरिसो परमपत्तिपत्तो, तं तथागतो अञ्ञत्र इमेहि चतूहि ठानेहि पञ्ञापयमानो पञ्ञापेति—

"तो क्या मानते हो अनुराध! रूप में तथागत है?"

"नहीं, भन्ते!"

"तो क्या रूप से अन्यत्र तथागत है?"

"नहीं, भन्ते!"

"वेदना में..., वेदना से अन्यत्र..., संज्ञा में..., संज्ञा से अन्यत्र..., संस्कार में..., संस्कार से अन्यत्र..., विज्ञान में..., विज्ञान से अन्यत्र...।

"अनुराध! तुम तथागत को रूपवान्...विज्ञानवान् मानते हो?"

"नहीं, भन्ते!"

"अनुराध! क्या तुम तथागत को रूपरहित...विज्ञानरहित समझते हो?"

"नहीं, भन्ते!"

"अनुराध! जब तुम ने स्वयं देख लिया कि तथागत की सत्यत: उपलब्धि नहीं

होति तथागतो परं मरणा ति वा...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''साधु साधु, अनुराध! पुब्बे चाहं, अनुराध, एतरहि च दुक्खं चेव पञ्ञापेमि दुक्खस्स च निरोधं'' ति॥

३. पठमसारिपुत्तकोट्ठिकसुत्तं

[N.330] ३. एकं समयं आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च महाकोट्ठिको बाराणसियं विहरन्ति इसिपतने मिगदाये। अथ खो आयस्मा महाकोट्ठिको सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सारिपुत्तेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा महाकोट्ठिको आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—

''किन्नु खो, आवुसो सारिपुत्त, होति तथागतो परं मरणा'' ति?

''अब्याकतं खो एतं, आवुसो, भगवता—'होति तथागतो परं मरणा''' ति।

[R.385] ''किं पनावुसो, न होति तथागतो परं मरणा'' ति?

''एतं पि खो, आवुसो, अब्याकतं भगवता—'न होति तथागतो परं मरणा''' ति।

होती तो तुम्हारा यह कहना उचित था—'आयुष्मानो! जो...बुद्ध हैं वे इन चार स्थानों से अन्यत्र ही उत्तर देते हैं... ?''

''नहीं, भन्ते!''

''ठीक है, अनुराध! ठीक है! मैं—पहले भी तथा आज भी—सदा दु:ख और दु:खनिरोध का ही उपदेश करता हूँ॥''

३. प्रथम सारिपुत्रकौष्ठिकसूत्र : : 'अव्याकृत' में हेतु

३. एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र एवं आयुष्मान् महाकौष्ठिक **वाराणसी के** ऋषिपतन मृगदाव में साधना कर रहे थे। तब किसी दिन आयुष्मान् महाकौष्ठिक सायङ्काल समाधिभावना से उठ कर आयुष्मान् सारिपुत्र के पास पहुँचे। उन से कुशलमङ्गल पूछने के बाद, एक तरफ बैठ कर यह जिज्ञासा प्रकट की—

''आयुष्मन् सारिपुत्र! क्या, मरने के बाद भी, तथागत रहते हैं?''

''आयुष्मन्! यह प्रश्न तथागत ने 'अव्याकृत' कहा है।''

''तो क्या आयुष्मन्! तथागत, मरने के बाद, नहीं होते?''

''आयुष्मन्! इस प्रश्न को भी तथागत ने 'अव्याकृत' ही कहा है।''

"किन्नु खो, आवुसो, होति च न च होति तथागतो परं मरणा" ति?

"अब्याकतं खो एतं, आवुसो, भगवता—'होति च न च होति तथागतो परं मरणा'" ति।

"किं पनावुसो, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा" ति?

"एतं पि खो, आवुसो, अब्याकतं भगवता—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा'" ति।

"'किन्नु खो, आवुसो, होति तथागतो परं मरणा' ति इति पुट्ठो समानो, 'अब्याकतं खो एतं, आवुसो, भगवता—होति तथागतो परं मरणा' ति [B.553] वदेसि...पे०...'किं, पनावुसो, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति इति पुट्ठो समानो, 'एतं पि खो, आवुसो, अब्याकतं भगवता—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति वदेसि। को नु खो, आवुसो, हेतु को पच्चयो येनेतं अब्याकतं भगवता" ति?

"होति तथागतो परं मरणा ति खो, आवुसो, रूपगतमेतं। न होति तथागतो परं मरणा ति, रूपगतमेतं। होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति, रूपगतमेतं। [N.331] नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति, रूपगतमेतं। होति तथागतो परं मरणा ति खो, आवुसो, वेदनागतमेतं। न होति तथागतो परं मरणा ति, वेदनागतमेतं। होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति, वेदनागतमेतं। नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति, वेदनागतमेतं। होति तथागतो परं मरणा ति खो, आवुसो, सञ्ञागतमेतं। न होति तथागतो परं मरणा ति, सञ्ञागतमेतं। होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति, सञ्ञागतमेतं। नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति, सञ्ञागतमेतं। होति [R.386] तथागतो परं मरणा ति खो, आवुसो, सङ्खारगतमेतं। न होति तथागतो परं मरणा ति, सङ्खारगतमेतं। होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति, सङ्खारगतमेतं। नेव होति न न

"तो फिर, आयुष्मन्! तथागत मरणानन्तर होते भी हैं, नहीं भी होते?"

"आयुष्मन्! इस प्रश्न को भी तथागत ने 'अव्याकृत' ही कहा है।"

"आयुष्मन्! तो क्या तथागत, मरणानन्तर, नहीं होते, न नहीं ही होते?"

"आयुष्मन्! इस प्रश्न को भी तथागत ने 'अव्याकृत' ही कहा है।"

"क्या बात है, आयुष्मन्! मैंने आप से तथागतविषयक चार प्रश्न पूछे, सभी को आप ने 'अव्याकृत' बता दिया। आयुष्मन्! इस में क्या हेतु, क्या प्रत्यय है कि तथागत ने इन चारों ही प्रश्नों को 'अव्याकृत' कह दिया?

"आयुष्मन्! इस में प्रथम प्रश्न तथागत के रूप से सम्बद्ध है, द्वितीय, तृतीय तथा

होति तथागतो परं मरणा ति, सङ्खारगतमेतं। होति तथागतो परं मरणा ति खो, आवुसो, विञ्ञाणगतमेतं। न होति तथागतो परं मरणा ति, विञ्ञाणगतमेतं। होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति, विञ्ञाणगतमेतं। नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति, विञ्ञाणगतमेतं। अयं खो, आवुसो, हेतु अयं पच्चयो, येनेतं अब्याकतं भगवता'' ति॥

४. दुतियसारिपुत्तकोट्ठिकसुत्तं

४. एकं समयं आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च महाकोट्ठिको बाराणसियं [B.554] विहरन्ति इसिपतने मिगदाये...पे०...*(सायेव पुच्छा)* ''को नु खो, आवुसो, हेतु को पच्चयो, येनेतं अब्याकतं भगवता'' ति?

''रूपं खो, आवुसो, अजानतो अपस्सतो यथाभूतं, रूपसमुदयं अजानतो अपस्सतो यथाभूतं, रूपनिरोधं अजानतो अपस्सतो यथाभूतं, रूपनिरोधगामिनिं पटिपदं अजानतो अपस्सतो यथाभूतं, 'होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति; 'न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति; 'होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति; 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति। वेदनं...सञ्ञं... सङ्खारे...विञ्ञाणं अजानतो अपस्सतो यथाभूतं, विञ्ञाणसमुदयं अजानतो अपस्सतो यथाभूतं, विञ्ञाणनिरोधं अजानतो अपस्सतो यथाभूतं, विञ्ञाणनिरोधगामिनिं पटिपदं [R.387] अजानतो अपस्सतो यथाभूतं, 'होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति; 'न [N.332] होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति; 'होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति; 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति।

चतुर्थ भी उन के रूप से ही सम्बद्ध है। आयुष्मन्! ये चारों प्रश्न तथागत की वेदना एवं संज्ञा से, तथागत के संस्कार एवं विज्ञान से भी सम्बद्ध हैं। जब कि तथागत के ये पाँचों ही स्कन्ध उच्छिन्नमूल एवं अभावप्राप्त हो चुके हैं, अतः इन को ले कर क्या उत्तर दिया जा सकता है! इसीलिये, भगवान् ने इन प्रश्नों को अव्याकृत कह दिया है॥ ●

४. द्वितीय सारिपुत्रकौष्ठिकसूत्र　　: :　　'अव्याकृत' में हेतु

४. एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र एवं आयुष्मान् महाकौष्ठिक...पूर्ववत्... *(चारों प्रश्न भी पूर्ववत्...)* ''आयुष्मन् सारिपुत्र! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है कि तथागत ने इन प्रश्नों को 'अव्याकृत' बताया है?''

''आयुष्मन्! रूप, रूपसमुदय, रूपनिरोध एवं रूपनिरोधगामी मार्ग को यथार्थतः न जानने वाले साधक के चित्त में ही ये चारों मिथ्या प्रश्न उठा करते हैं। इसी तरह, वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान, विज्ञानसमुदय, विज्ञाननिरोध एवं विज्ञाननिरोधगामी मार्ग को यथार्थतः न जानने वाले साधक के चित्त में भी ये प्रश्न उठा करते हैं।

"रूपं च खो, आवुसो, जानतो पस्सतो यथाभूतं, रूपसमुदयं जानतो पस्सतो यथाभूतं, रूपनिरोधं जानतो पस्सतो यथाभूतं, रूपनिरोधगामिनिं पटिपदं जानतो पस्सतो यथाभूतं, 'होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स न होति...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स न होति। वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं जानतो पस्सतो यथाभूतं, विञ्ञाणसमुदयं जानतो पस्सतो यथाभूतं, विञ्ञाणनिरोधं जानतो पस्सतो यथाभूतं, विञ्ञाणनिरोधगामिनिं पटिपदं जानतो पस्सतो यथाभूतं, 'होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स न होति; 'न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स न होति; 'होति च न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स न होति; 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स न होति। अयं खो, आवुसो, हेतु अयं पच्चयो, येनेतं अब्याकतं भगवता" ति॥ •

५. ततियसारिपुत्तकोट्ठिकसुत्तं

५. एकं समयं आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च महाकोट्ठिको [B.555] बाराणसियं विहरन्ति इसिपतने मिगदाये...पे०... *(सायेव पुच्छा)* "को नु खो, आवुसो, हेतु को पच्चयो, येनेतं अब्याकतं भगवता" ति?

"रूपे खो, आवुसो, अविगतरागस्स अविगतच्छन्दस्स अविगतपेमस्स अविगतपिपासस्स अविगतपरिळाहस्स अविगततण्हस्स 'होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति...पे०...'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति। वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारेसु...विञ्ञाणे अविगतरागस्स अविगतच्छन्दस्स अविगत-

---

"परन्तु, आयुष्मन्! रूप को, रूपसमुदय को, रूपनिरोध को, रूपनिरोधगामी मार्ग को यथार्थत: जान लेने वाले साधक के मन में ये चारों प्रश्न उठा ही नहीं करते। इसी तरह, वेदना... संज्ञा...संस्कार...विज्ञान, विज्ञानसमुदय, विज्ञाननिरोध एवं विज्ञाननिरोधगामी मार्ग को यथार्थत: जान लेने वाले साधक के मन में ये चारो प्रश्न उद्भूत ही नहीं होते। इसीलिये भगवान् ने इन चारों प्रश्नों को 'अव्याकृत' कहा है।" •

५. तृतीय सारिपुत्रकौष्ठिकसूत्र : : 'अव्याकृत' में हेतु

५. ...पूर्ववत्...। *(चारों प्रश्न पूर्ववत्)*

"आयुष्मन्! क्या हेतु क्या प्रत्यय है कि तथागत ने इन चारों प्रश्नों को 'अव्याकृत' कह कर अनुत्तरित कर (टाल) दिया?"

"आयुष्मन्! जिस (मिथ्यादृष्टि) साधक को रूप में राग, छन्द, प्रेम, पिपासा, परिदाह एवं तृष्णा है उसी को 'तथागत मरणानन्तर भी रहते हैं'—ऐसी मिथ्यादृष्टि होती

[R.388] पेमस्स अविगतपिपासस्स अविगतपरिळाहस्स अविगततण्हस्स 'होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति... पे०...'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति। रूपे च खो, आवुसो, विगतरागस्स...पे०...वेदनाय...सञ्ञाय... सङ्खारेसु...विञ्ञाणे विगतरागस्स विगतच्छन्दस्स विगतपेमस्स विगतपिपासस्स [N.333] विगतपरिळाहस्स विगततण्हस्स 'होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स न होति ...पे०...'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स न होति। अयं खो, आवुसो, हेतु अयं पच्चयो, येनेतं अब्याकतं भगवता'' ति॥ ●

६. चतुत्थसारिपुत्तकोट्ठिकसुत्तं

६. एकं समयं आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च महाकोट्ठिको बाराणसियं विहरन्ति इसिपतने मिगदाये। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येनायस्मा महाकोट्ठिको तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता महाकोट्ठिकेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो आयस्मन्तं महाकोट्ठिकं एतदवोच—'''किन्नु खो, [B.556] आवुसो कोट्ठिक, होति तथागतो परं मरणा' ति इति पुट्ठो समानो—'एतं पि खो, आवुसो, अब्याकतं भगवता—नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति वदेसि''।

''को नु खो, आवुसो, हेतु को पच्चयो, येनेतं अब्याकतं भगवता'' ति?

है। जिस को वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान में राग, छन्द, प्रेम, पिपासा, परिदाह एवं तृष्णा है उसी को ऐसे मिथ्यादृष्टि वाले प्रश्न उद्भूत होते हैं।

''आयुष्मन्! जिस (सम्यग्दृष्टि) साधक को रूप में राग, छन्द, प्रेम, पिपासा, परिदाह एवं तृष्णा आदि नहीं होते ऐसे सम्यग्दृष्टि साधक के चित्त में वैसे मिथ्यादृष्टिमय प्रश्न भी उद्भूत नहीं होते। जिस को वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान में राग, छन्द, प्रेम, पिपासा, परिदाह एवं तृष्णा आदि नहीं होते ऐसे सम्यग्दृष्टि को भी वैसे ('तथागत मरणानन्तर भी रहते हैं'—आदि) प्रश्न उद्भूत नहीं होते। इसीलिये तथागत ने इन चारों प्रश्नों को 'अव्याकृत' कहा है॥'' ●

६. चतुर्थ सारिपुत्रकौष्ठिकसूत्र : : 'अव्याकृत' में हेतु

६. एक समय...पूर्ववत्...। *(चारों प्रश्नों का पूर्ववत् विस्तार कर लें।)*

(आ० सारिपुत्र—) ''आयुष्मन्! कौन हेतु एवं कौन प्रत्यय है कि भगवान् ने इन चारों प्रश्नों को अव्याकृत कह दिया है?''

"रूपारामस्स खो, आवुसो, रूपरतस्स रूपसम्मुदितस्स रूपनिरोधं अजानतो अपस्सतो यथाभूतं, 'होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति; 'न होति [R.389] तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति; 'होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति; 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति। वेदनारामस्स खो, आवुसो, वेदनारतस्स वेदनासम्मुदितस्स, वेदनानिरोधं अजानतो अपस्सतो यथाभूतं, 'होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति...पे०...सञ्ञारामस्स खो, आवुसो...सङ्खारा-रामस्स खो, आवुसो...विञ्ञाणारामस्स खो, आवुसो, विञ्ञाणरतस्स विञ्ञाण-सम्मुदितस्स विञ्ञाणनिरोधं अजानतो अपस्सतो यथाभूतं, 'होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति...पे०...'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति।

"न रूपारामस्स खो, आवुसो, न रूपरतस्स न रूपसम्मुदितस्स, रूपनिरोधं जानतो पस्सतो यथाभूतं, 'होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स न होति [N.334] ...पे०...'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स न होति। न वेदनारामस्स खो, आवुसो...पे०...न सञ्ञारामस्स खो, आवुसो...न सङ्खारारामस्स खो, आवुसो...न विञ्ञाणारामस्स खो, आवुसो, न विञ्ञाणरतस्स न विञ्ञाणसम्मुदितस्स, विञ्ञाण-निरोधं जानतो पस्सतो यथाभूतं, 'होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स न होति ...पे०...'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स न होति। अयं खो, आवुसो, हेतु अयं पच्चयो, येनेतं अब्याकतं भगवता" ति॥

(आ० कौष्ठिक—) "रूप में ही रमण (आसक्ति) करने वाले, रूप में ही रत रहने वाले, रूप से ही मुदित होने वाले साधक को रूपनिरोध के विषय में यथार्थतः न जानने के कारण 'तथागत मरणानन्तर होते हैं'—आदि पूर्वोक्त चारों प्रश्न उद्भूत होते हैं। इसी तरह वेदना में रमण करने वाले, वेदना में रत रहने वाले, वेदना से ही मुदित होने वाले साधक को वेदनानिरोध को यथार्थतः न जानने के कारण...पूर्ववत्...संज्ञा में रमण करने वाले...संस्कारों में रमण करने वाले ...विज्ञान में रमण करने वाले...साधक को ही ये चारों प्रश्न मन में उद्भूत होते हैं।

"परन्तु जो रूप में आसक्ति नहीं रखता, न रूप में रत रहता है, न रूप से मुदित ही होता है, तथा जो रूपनिरोध को यथार्थतः जान चुका है उसे 'तथागत मरणानन्तर भी रहते हैं'—आदि चारों प्रश्न उद्भूत नहीं होते। जो वेदना में...संज्ञा में...संस्कारों में...विज्ञान में...पूर्ववत्...उद्भूत नहीं होते। यह भी कारण है, यह भी प्रत्यय है कि तथागत ने इन चारों प्रश्नों को 'अव्याकृत' कह कर टाल दिया।

"सिया पनावुसो, अञ्ञो पि परियायो, येनेतं अब्याकतं भगवता" ति?

"सिया, आवुसो। भवारामस्स खो, आवुसो, भवरतस्स भवसम्मुदितस्स, भवनिरोधं अजानतो अपस्सतो यथाभूतं, 'होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स [B.557, R.390] होति...पे०...'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति। न भवारामस्स खो, आवुसो, न भवरतस्स न भवसम्मुदितस्स, भवनिरोधं जानतो पस्सतो यथाभूतं, 'होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स न होति...पे०...'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स न होति। अयं पि खो, आवुसो, परियायो, येनेतं अब्याकतं भगवता" ति॥

"सिया पनावुसो, अञ्ञो पि परियायो, येनेतं अब्याकतं भगवता" ति?

"सिया, आवुसो। उपादानारामस्स खो, आवुसो, उपादानरतस्स उपादानसम्मुदितस्स, उपादाननिरोधं अजानतो अपस्सतो यथाभूतं, 'होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति...पे०...'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति। न उपादानारामस्स खो, आवुसो, न उपादानरतस्स न उपादानसम्मुदितस्स, उपादाननिरोधं जानतो पस्सतो यथाभूतं, 'होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स न होति...पे०...'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स न होति। अयं पि खो, आवुसो, परियायो, येनेतं अब्याकतं भगवता" ति॥

"सिया पनावुसो, अञ्ञो पि परियायो, येनेतं अब्याकतं भगवता" ति?

[N.335] "सिया, आवुसो। तण्हारामस्स खो, आवुसो, तण्हारतस्स तण्हासम्मुदितस्स, तण्हानिरोधं अजानतो अपस्सतो यथाभूतं, 'होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति...पे०... 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स होति। न तण्हारामस्स खो, आवुसो, न तण्हारतस्स न तण्हासम्मुदितस्स, तण्हानिरोधं जानतो पस्सतो यथाभूतं,

---

(आ० सारिपुत्र—) क्या अन्य भी कोई कारण है जिस से तथागत ने इन प्रश्नों को 'अव्याकृत' कह दिया?"

(आ० कौष्ठिक—) भव में रत रहने वाले, भव में मुदित रहने वाले...पूर्ववत्...।

(आ० सारिपुत्र—) अन्य कोई हेतु या प्रत्यय...पूर्ववत्...?"

(आ० कौष्ठिक—) उपादान में रत रहने वाले...उपादान में ही मुदित रहने वाले...पूर्ववत्...।

(आ० सारिपुत्र—) अन्य कोई हेतु या प्रत्यय...पूर्ववत्...?"

(आ० कौष्ठिक—) "हाँ, है, आयुष्मन्! तृष्णा में रत रहने वाले, तृष्णा में ही

'होति तथागतो परं [R.391] मरणा' ति पिस्स न होति...पे०...'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पिस्स न होति। अयं पि खो, आवुसो, परियायो, येनेतं अब्याकतं भगवता'' ति॥

''सिया पनावुसो, अञ्ञो पि परियायो, येनेतं अब्याकतं भगवता'' ति?

''एत्थ दानि, आवुसो सारिपुत्त, इतो उत्तरि किं इच्छसि? तण्हासङ्खयविमुत्तस्स, आवुसो सारिपुत्त, भिक्खुनो वट्टं नत्थि पञ्ञापनाया'' ति॥ •

७. मोग्गल्लानसुत्तं

७. अथ खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको येनायस्मा महामोग्गल्लानो [B.558] तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता महामोग्गल्लानेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं एतदवोच—''किन्नु खो, भो मोग्गल्लान, सस्सतो लोको'' ति?

''अब्याकतं खो एतं, वच्छ, भगवता—'सस्सतो लोको''' ति।

''किं पन, भो मोग्गल्लान, असस्सतो लोको'' ति?

''एतं पि खो, वच्छ, अब्याकतं भगवता—'असस्सतो लोको''' ति।

मुदित रहने वाले साधक को तृष्णानिरोध के विषय में यथार्थतः न जानने, समझने के कारण, 'तथागत मरणानन्तर भी रहते हैं'—आदि चारों प्रश्न उद्भूत होते हैं...पूर्ववत्...।''

(आ० सारिपुत्र—) ''क्या कोई अन्य भी हेतु या प्रत्यय है, जिस के कारण तथागत ने इन चारों प्रश्नों को 'अव्याकृत' कहा है?''

(आ० कौष्ठिक—) ''आयुष्मन् सारिपुत्र! इस के बाद भी क्या अन्य कुछ सुनना चाहते हो? तृष्णासंक्षय के कारण विमुक्त हुए साधक भिक्षु को, आयुष्मन् सारिपुत्र! कोई अन्य मार्ग अवशिष्ट नहीं रह जाता जो उस को इस भवपरम्परा से मुक्त होने के लिये बताया जाय!॥'' •

७. मोग्गल्लानसूत्र : : लोकशाश्वतादि अव्याकृत है

७. ...तब वत्सगोत्र परिव्राजक, जहाँ आयुष्मान् मोग्गल्लान थे वहाँ गये। वहाँ जा कर उन से कुशलमङ्गल पूछा। तदनन्तर वह एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस ने आयुष्मान् महामोग्गल्लान से यह जिज्ञासा प्रकट की—''क्या आयुष्मन् मोग्गल्लान! यह लोक शाश्वत (नित्य) है?''

''वत्स! इस प्रश्न को भगवान् ने 'अव्याकृत' ही कहा है।'' (१)

''क्या आयुष्मन्! यह लोक अशाश्वत (विनाशी) है?''

"किन्नु खो, भो मोग्गल्लान, अन्तवा लोको" ति?

"अब्याकतं खो, एतं, वच्छ, भगवता—'अन्तवा लोको'" ति।

"किं पन, भो मोग्गल्लान, अनन्तवा लोको" ति?

"एतं पि खो, वच्छ, अब्याकतं भगवता—'अनन्तवा लोको'" ति।

[N.336, R.392] "किं नु खो, भो मोग्गल्लान, तं जीवं तं सरीरं" ति?

"अब्याकतं खो एतं, वच्छ, भगवता—'तं जीवं तं सरीरं'" ति।

"किं पन, भो मोग्गल्लान, अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं" ति?

"एतं पि खो, वच्छ, अब्याकतं भगवता—'अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं'" ति।

"किन्नु खो, भो मोग्गल्लान, होति तथागतो परं मरणा" ति?

"अब्याकतं खो एतं, वच्छ, भगवता—'होति तथागतो परं मरणा'" ति।

"किं पन, भो मोग्गल्लान, न होति तथागतो परं मरणा" ति?

"एतं पि खो, वच्छ, अब्याकतं भगवता—'न होति तथागतो परं मरणा'" ति।

"किन्नु खो, भो मोग्गल्लान, होति च न च होति तथागतो परं मरणा" ति?

"अब्याकतं खो एतं, वच्छ, भगवता—'होति च न च होति तथागतो परं मरणा'" ति।

"इस प्रश्न को भी भगवान् ने 'अव्याकृत' ही कहा है।" (२)

"आयुष्मन्! तो क्या यह लोक अन्तवाला है?"

"वत्स! इस प्रश्न को भी भगवान् ने 'अव्याकृत' ही कहा है।" (३)

"क्या, भो मोग्गल्लान! इस लोक का कोई अन्त नहीं है?"

"वत्स! यह प्रश्न भी भगवान् द्वारा 'अव्याकृत' ही कहा गया है।" (४)

"क्या, भो मोग्गल्लान! वही जीव वही शरीर है?"

"वत्स! यह प्रश्न भी भगवान् ने 'अव्याकृत' ही कहा है।" (५)

"क्या, भो मोग्गल्लान! जीव अन्य है तथा शरीर अन्य है?"

"वत्स! भगवान् ने इस प्रश्न को भी 'अव्याकृत' ही कहा है।" (६)

"क्या, भो मोग्गल्लान! तथागत मरणानन्तर होते हैं?"

"वत्स! इस प्रश्न को भी भगवान् ने 'अव्याकृत' ही कहा है।" (७)

"क्या, भो मोग्गल्लान! तथागत मरणानन्तर नहीं होते?"

"वत्स! यह प्रश्न भी भगवान् द्वारा 'अव्याकृत' ही कहा गया है।" (८)

"क्या, भो मोग्गल्लान! तथागत मरणानन्तर होते भी हैं, नहीं भी होते?"

"वत्स! इस प्रश्न को भी भगवान् ने 'अव्याकृत' ही कहा है।" (९)

''किं पन, भो मोग्गल्लान, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा'' ति ?

''एतं पि खो, वच्छ, अब्याकतं भगवता—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा''' ति।

''को नु खो, भो मोग्गल्लान, हेतु को पच्चयो, येन अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं पुट्ठानं एवं वेय्याकरणं होति—सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा, अन्तवा लोको ति वा, अनन्तवा लोको ति वा, तं जीवं तं सरीरं ति वा, अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा, होति तथागतो परं मरणा ति वा, न होति तथागतो परं मरणा ति वा, [B.559] होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति वा, नेव होति न न होति तथागतो [R.393] परं मरणा ति वा ? को पन, भो मोग्गल्लान, हेतु को पच्चयो, येन समणस्स गोतमस्स एवं पुट्ठस्स न एवं वेय्याकरणं होति—सस्सतो लोको ति पि, असस्सतो लोको ति पि, अन्तवा लोको ति पि, अनन्तवा लोको ति पि, तं जीवं तं सरीरं ति पि, अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति पि, होति तथागतो परं मरणा ति पि, न होति तथागतो परं मरणा ति पि, [N.337] होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति पि, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति पी'' ति ?

''अञ्ञतित्थिया च खो, वच्छ, परिब्बाजका चक्खुं 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्सन्ति...पे०...जिव्हं 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्सन्ति...पे०...मनं 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्सन्ति। तस्मा अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं पुट्ठानं एवं वेय्याकरणं होति—सस्सतो लोको ति वा...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा। तथागतो च खो, वच्छ, अरहं सम्मासम्बुद्धो चक्खुं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सति ...पे०...जिव्हं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सति...पे०...मनं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सति। तस्मा तथागतस्स एवं पुट्ठस्स न एवं

''क्या, भो मोग्गल्लान! तथागत मरणानन्तर न होते हैं, न नहीं ही होते ?''

''वत्स! तथागत ने इस प्रश्न को भी 'अव्याकृत' ही कहा है।'' (१०)

''भो मोग्गल्लान! इस में क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है कि अन्य सम्प्रदायों वाले परिव्राजक जब भी आप (बौद्ध) लोगों से ये उपर्युक्त दश प्रश्न पूछते हैं तब आप लोग उन्हें इन सब का यह एक छोटा सा सम्मिलित उत्तर देते हैं—'भगवान् ने इन प्रश्नों को अव्याकृत कहा है'?

''क्यों कि, वत्स! ये अन्य सम्प्रदायों वाले परिव्राजक चक्षु को, श्रोत्र को, घ्राण

वेय्याकरणं होति—सस्सतो लोको ति पि...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति पी'' ति॥

अथ खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको उट्ठायासना येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—''किन्नु खो, भो गोतम, सस्सतो लोको'' ति ?

अब्याकतं खो एतं, वच्छ, मया—सस्सतो लोको ति...पे०...। ''किं पन, भो गोतम, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा'' ति ?

''एतं पि खो, वच्छ, अब्याकतं मया—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा''' ति।

[B.560, R.394] ''को नु खो, भो गोतम, हेतु को पच्चयो, येन अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं पुट्ठानं एवं वेय्याकरणं होति—सस्सतो लोको ति वा...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा ? को पन, भो गोतम, हेतु को पच्चयो, येन भोतो गोतमस्स एवं पुट्ठस्स न एवं वेय्याकरणं होति—'सस्सतो लोको' ति पि ...पे०...'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति पी'' ति ?

[N.338] ''अञ्ञतित्थिया खो, वच्छ, परिब्बाजका चक्खुं 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्सन्ति...पे०...जिव्हं 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्सन्ति...पे०...मनं 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्सन्ति। तस्मा अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं पुट्ठानं एवं वेय्याकरणं होति—सस्सतो लोको ति वा...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा। तथागतो च खो, वच्छ, अरहं सम्मासम्बुद्धो चक्खुं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सति...पे०...जिव्हं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सति ...पे०...मनं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सति। तस्मा तथागतस्स एवं पुट्ठस्स न एवं वेय्याकरणं होति—सस्सतो लोको ति पि, असस्सतो लोको ति पि, अन्तवा लोको ति पि, अनन्तवा लोको ति पि, तं जीवं तं सरीरं ति पि, अञ्ञं जीवं अञ्ञं

को, जिह्वा को, काया को एवं मन को ही 'यह मेरा है', 'यह मैं हूँ', या 'यह मेरी आत्मा है'—ऐसा समझते हैं। अतः उन लोगों को ऐसा सम्मिलित उत्तर दे दिया जाता है।''

आयुष्मान् मोग्गल्लान का यह उत्तर सुन कर वह वत्स परिव्राजक भगवान् के सम्मुख पहुँचा तथा कुशलमङ्गल पूछने के बाद वही दशों प्रश्न दुहरा दिये जो उस ने अभी

सरीरं ति पि, होति तथागतो परं मरणा ति पि, न होति तथागतो परं मरणा ति पि, होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति पि, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति पी'' ति?

"अच्छरियं, भो गोतम, अब्भुतं, भो गोतम! यत्र हि नाम सत्थु च सावकस्स च अत्थेन अत्थो ब्यञ्जनेन ब्यञ्जनं संसन्दिस्सति समेस्सति न विरोधयिस्सति,' यदिदं अग्गपदस्मिं। इदानाहं, भो गोतम, समणं महामोग्गल्लानं उपसङ्कमित्वा एतमत्थं [R.395] अपुच्छिं। समणो पि मे मोग्गल्लानो एतेहि पदेहि एतेहि ब्यञ्जनेहि तमत्थं ब्याकासि, सेय्यथापि भवं गोतमो। अच्छरियं, [B.561] भो गोतम, अब्भुतं, भो गोतम! यत्र हि नाम सत्थु च सावकस्स च अत्थेन अत्थो ब्यञ्जनेन ब्यञ्जनं संसन्दिस्सति समेस्सति न विरोधयिस्सति, यदिदं, अग्गपदस्मिं'' ति॥

●

८. वच्छगोत्तसुत्तं

८. अथ खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"किन्नु खो, भो गोतम, सस्सतो लोको'' ति?

आयुष्मान् महामोग्गल्लान से पूछे थे। *पूर्ववत् (वत्स-मोग्गल्लान संवाद का पुनः यहाँ विस्तार कर लें।)*

इन का भगवान् द्वारा भी वही उत्तर दिये जाने के बाद वत्स परिव्राजक आश्चर्यचकित हो कर बोला—"आश्चर्य है, भो गौतम! अद्भुत है, भो गौतम! कि गुरु एवं शिष्य का उत्तर अक्षर एवं पदों से इतना समान है उन में एक भी अक्षर इधर उधर नहीं हुआ, यहाँ तक कि एक पद भी। अभी मैं, भो गौतम! श्रमण मोग्गल्लान के पास से आ रहा हूँ। उन से भी मैने यही प्रश्न किये थे। इन दशों का उत्तर उन्होंने भी अक्षरशः वही दिया जो अभी आप ने दिया है। भो गौतम! मुझे यही आश्चर्य हो रहा है कि गुरु और शिष्य की उपदेश शैली में कितनी समानता है कि उस में एक अक्षर भी इधर उधर नहीं हुआ, यहाँ तक कि एक पद भी!॥''

●

८. वत्सगोत्रसूत्र : : लोक शाश्वत नहीं

८. ...तब वत्सगोत्र परिव्राजक भगवान् (बुद्ध) के सम्मुख गये। तथा उन से उन का कुशलमङ्गल पूछ कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ कर उन्होंने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—

"क्या, भो गौतम! यह लोक शाश्वत है?''

[N.339] अब्याकतं खो एतं, वच्छ, मया—सस्सतो लोको ति...पे०...''किं पन, भो गोतम, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा'' ति?

''एतं पि खो, वच्छ, अब्याकतं मया—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा''' ति।

''को नु खो, भो गोतम, हेतु को पच्चयो, येन अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं पुट्ठानं एवं वेय्याकरणं होति—सस्सतो लोको ति वा...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा? को पन, भो गोतम, हेतु को पच्चयो, येन भोतो गोतमस्स एवं पुट्ठस्स न एवं वेय्याकरणं होति—सस्सतो लोको ति पि...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति पी'' ति?

''अञ्ञतित्थिया खो, वच्छ, परिब्बाजका रूपं अत्ततो समनुपस्सन्ति रूपवन्तं वा अत्तानं, अत्तनि वा रूपं, रूपस्मिं वा अत्तानं। वेदनं अत्ततो समनुपस्सन्ति...पे०... सञ्ञं...सङ्खारे ...विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सन्ति, विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं, अत्तनि वा [R.396] विञ्ञाणं, विञ्ञास्मिं वा अत्तानं। तस्मा अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं पुट्ठानं एवं वेय्याकरणं होति—सस्सतो लोको ति वा...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा। तथागतो च खो, वच्छ, अरहं सम्मासम्बुद्धो न रूपं अत्ततो समनुपस्सति, न रूपवन्तं वा अत्तानं, न अत्तनि वा रूपं, न रूपस्मिं वा अत्तानं। न वेदनं [B.562] अत्ततो समनुपस्सति...पे०...न सञ्ञं...न सङ्खारे...न विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, न विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं, न अत्तनि वा विञ्ञाणं, न विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। तस्मा तथागतस्स एवं पुट्ठस्स न एवं वेय्याकरणं होति—सस्सतो लोको ति पि...पे०... नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति पी'' ति।

अथ खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको उट्ठायासना येनायस्मा महामोग्गल्लानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता महामोग्गल्लानेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं एतदवोच—''किन्नु खो, भो मोग्गल्लान, सस्सतो लोको'' ति?

[N.340] अब्याकतं खो एतं, वच्छ, भगवता—सस्सतो लोको ति...पे०...।

''किं पन, भो मोग्गल्लान, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा'' ति?

''वत्स! मैंने इस प्रश्न को 'अव्याकृत' कहा है।'' ...पूर्ववत्...।

''तो फिर क्या, भो गौतम! तथागत मरणानन्तर नहीं होते या न नहीं ही होते?''

"एतं पि खो, वच्छ, अब्याकतं भगवता—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा''' ति।

"को नु खो, भो मोग्गल्लान, हेतु को पच्चयो, येन अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं पुट्ठानं एवं वेय्याकरणं होति—सस्सतो लोको ति वा...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा? को पन, भो मोग्गल्लान, हेतु को पच्चयो येन समणस्स गोतमस्स एवं पुट्ठस्स न एवं वेय्याकरणं होति—सस्सतो लोको ति पि...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति पी" ति? [R.397]

"अञ्ञतित्थिया खो, वच्छ, परिब्बाजका रूपं अत्ततो समनुपस्सन्ति, रूपवन्तं वा अत्तानं, अत्तनि वा रूपं, रूपस्मिं वा अत्तानं। वेदनं अत्ततो समनुपस्सन्ति...पे०... सञ्ञं... सङ्खारे...विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सन्ति, विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं, अत्तनि वा विञ्ञाणं, विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। तस्मा अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं पुट्ठानं एवं वेय्याकरंणं होति—सस्सतो लोको ति वा...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा। तथागतो च खो, वच्छ, अरहं सम्मासम्बुद्धो न रूपं अत्ततो समनुपस्सति, न रूपवन्तं वा अत्तानं, न अत्तनि वा रूपं, न रूपस्मिं वा अत्तानं। न वेदनं अत्ततो [B.563] समनुपस्सति...पे०...न सञ्ञं...न सङ्खारे...न विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, न विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं, न अत्तनि वा विञ्ञाणं, न विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। तस्मा तथागतस्स एवं पुट्ठस्स न एवं वेय्याकरणं होति—सस्सतो लोको ति पि, असस्सतो लोको ति पि, अन्तवा लोको ति पि, अनन्तवा लोको ति पि, तं जीवं तं सरीरं ति पि, अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति पि, होति तथागतो परं मरणा ति पि, न होति तथागतो परं मरणा ति पि, होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति पि, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति पी" ति।

"अच्छरियं, भो मोग्गल्लान, अब्भुतं, भो मोग्गल्लान! यत्र हि नाम सत्थु च सावकस्स च अत्थेन अत्थो ब्यञ्जनेन ब्यञ्जनं संसन्दिस्सति समेस्सति न विरोधयिस्सति,

---

"वत्स! यह प्रश्न भी मैंने 'अव्याकृत' ही कहा है।"

"भो गौतम! इस में क्या हेतु, क्या प्रत्यय है हम अन्य सम्प्रदाय वाले परिव्राजक आप लोगों से ये (उपर्युक्त) दश प्रश्न पूछते हैं तो आप इन को 'अव्याकृत' कह कर टाल देते हैं, इन का उत्तर नहीं देते...पूर्ववत्... ?"

"क्यों कि, वत्स! अन्य सम्प्रदाय के परिव्राजक रूप को, वेदना को, संज्ञा को, संस्कारों को, विज्ञान को आत्मा मानते हैं, या आत्मा को रूपवान् मानते हैं, या आत्मा में

[N.341] यदिदं अग्गपदस्मिं। इदानाहं, भो मोग्गल्लान, समणं गोतमं उपसङ्कमित्वा एतमत्थं अपुच्छिं। समणो पि मे गोतमो एतेहि पदेहि एतेहि ब्यञ्जनेहि एतमत्थं ब्याकासि, सेय्यथापि भवं मोग्गल्लानो। अच्छरियं, भो मोग्गल्लान, अब्भुतं, भो मोग्गल्लान! यत्र हि नाम सत्थु च सावकस्स च अत्थेन अत्थो ब्यञ्जनेन ब्यञ्जनं संसन्दिस्सति समेस्सति न विरोधयिस्सति, यदिदं, अग्गपदस्मिं'' ति॥ •

९. कुतूहलसालासुत्तं

[R.398] ९. अथ खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—

''पुरिमानि भो गोतम, दिवसानि पुरिमतरानि सम्बहुलानं नानातित्थियानं समण-ब्राह्मणानं परिब्बाजकानं कुतूहलसालायं सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयमन्तराकथा उदपादि—'अयं खो पूरणो कस्सपो सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च ञातो यसस्सी तित्थकरो साधुसम्मतो बहुजनस्स। सो पि सावकं अब्भतीतं कालङ्कतं उपपत्तीसु [B.564] ब्याकरोति—'असु अमुत्र उपपन्नो, असु अमुत्र उपपन्नो' ति। यो पिस्स सावको उत्तमपुरिसो परमपुरिसो परमपत्तिपत्तो तं पि सावकं अब्भतीतं कालङ्कतं उपपत्तीसु ब्याकरोति—'असु अमुत्र उपपन्नो, असु अमुत्र उपपन्नो' ति।

रूप मानते हैं, या रूप में आत्मा मानते हैं। अतः तथागत इन प्रश्नों का कोई व्याख्यान नहीं करते और उन्हें 'अव्याकृत' कहते हैं।''

''तब वत्सगोत्र परिव्राजक भगवान् के सामने से उठ कर आयुष्मान् महामोग्गल्लान के पास गया। तथा वहाँ भी उन से वही उपर्युक्त प्रश्न किये। तथा आयुष्मान् महामोग्गल्लान ने भी उपर्युक्त ही उत्तर दिया...पूर्ववत्...।

(पीछे मोग्गल्लानसूत्र में आया हुआ पाठ ही यहाँ भी पुनः दुहरा लें।) •

९. कौतूहलशालासूत्र : : तृष्णा के उपादान से पुनर्जन्म

९. ...तब कभी वत्सगोत्र परिव्राजक भगवान् (बुद्ध) के पास आया। कुशलक्षेम पूछने के बाद, उस ने भगवान् से अपनी यह जिज्ञासा प्रकट की—

''पहले कभी, भो गौतम! (राजगृह की) कौतूहलशाला में एक साथ बैठे हुए श्रमण, ब्राह्मण एवं परिव्राजकों के मध्य यह प्रसङ्ग चर्चित हो गया—

''यह **पूर्ण काश्यप** विशाल श्रावकसङ्घ वाला, गणवाला, गणाचार्य, प्रख्यात यशस्वी, तीर्थङ्कर एवं समाज के बहुल अंश में सम्मानित है। वह अपने श्रावकों के देहपात के बाद, बता देता है कि अमुक वहाँ उत्पन्न हुआ है तथा अमुक वहाँ। उन का जो अन्य मुख्य

"अयं पि खो मक्खलि गोसालो...पे०...अयं पि खो निगण्ठो नाटपुत्तो...अयं पि खो सञ्जयो बेलट्ठपुत्तो...अयं पि खो पकुधो कच्चानो...अयं पि खो अजितो केसकम्बलो सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च ञातो यसस्सी तित्थकरो साधुसम्मतो बहुजनस्स। सो पि सावकं अब्भतीतं कालङ्कतं उपपत्तीसु ब्याकरोति—'असु अमुत्र उपपन्नो, असु अमुत्र उपपन्नो' ति। यो पिस्स सावको उत्तमपुरिसो परमपुरिसो [R.399] परमपत्तिपत्तो तं पि सावकं अब्भतीतं कालङ्कतं उपपत्तीसु ब्याकरोति—'असु अमुत्र उपपन्नो, असु अमुत्र उपपन्नो' ति।

"अयं पि खो समणो गोतमो सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च ञातो [N.342] यसस्सी तित्थकरो साधुसम्मतो बहुजनस्स। सो पि सावकं अब्भतीतं कालङ्कतं उपपत्तीसु ब्याकरोति—'असु अमुत्र उपपन्नो, असु अमुत्र उपपन्नो' ति। यो पिस्स सावको उत्तमपुरिसो परमपुरिसो परमपत्तिपत्तो तं च सावकं अब्भतीतं कालङ्कतं उपपत्तीसु न ब्याकरोति—'असु अमुत्र उपपन्नो, असु अमुत्र उपपन्नो' ति। अपि च खो नं एवं ब्याकरोति—अच्छेच्छि तण्हं, विवत्तयि संयोजनं, सम्मा मानाभिसमया अन्तमकासि दुक्खस्सा' ति। तस्स मय्हं, भो गोतम, अहु देव कङ्खा अहु विचिकिच्छा—'कथं नाम समणस्स गोतमस्स धम्मो अभिञ्ञेय्यो''' ति?

"अलं हि ते, वच्छ, कङ्खितुं, अलं विचिकिच्छितुं। कङ्खनीये च पन ते ठाने विचिकिच्छा उप्पन्ना। सउपादानस्स ख्वाहं, वच्छ, उपपत्तिं पञ्ञापेमि नो

पुरुष, परमपुरुष, परमप्राप्ति (ज्ञान) प्राप्त है वह भी श्रावकों के मरणानन्तर उन के विषय में बता देता है कि अमुक वहाँ उत्पन्न हुआ है, या अमुक यहाँ।

यह **मक्खलि गोसाल** भी...पूर्ववत्...यह निगण्ठ ज्ञातृपुत्र भी...यह **सञ्जय वेलट्ठिपुत्र** भी...यह **प्रक्रुध कात्यायन** भी...यह **अजितकेशकम्बल** भी...पूर्ववत्...अमुक यहाँ उत्पन्न हुआ है तथा अमुक यहाँ।

"यह **श्रमण गौतम** भी विशाल भिक्षुसङ्घ वाला...पूर्ववत्...अमुक यहाँ उत्पन्न हुआ तथा अमुक यहाँ। परन्तु वह अपने किसी किसी श्रावक के विषय में यह नहीं कहता कि वह यहाँ उत्पन्न हुआ, अपि तु कहता है कि इस ने तृष्णा का समूल नाश कर दिया, भवबन्धन पूर्णतः काट डाले, मान को भलीभाँति जान कर अपने समस्त दुःखों का अन्त कर दिया। तब मुझे यह शङ्का हुई कि श्रमण गौतम के धर्म में क्या विशेषता है, उसे जानना चाहिये।"

"वत्स! ठीक है। तुम्हें सन्देह होना स्वाभाविक ही था। तुम्हें यह सन्देह वहीं हुआ है जहाँ होना चाहिये था; क्यों कि, वत्स! मैं सउपादान मृत श्रावक का ही उत्पत्तिस्थल

अनुपादानस्स। सेय्यथापि, वच्छ, अग्गि सउपादानो जलति, नो अनुपादानो; एवमेव ख्वाहं, वच्छ, सउपादानस्स उपपत्तिं पञ्ञापेमि, नो अनुपादानस्सा'' ति।

[B.565] ''यस्मिं, भो गोतम, समये अच्चि वातेन खित्ता दूरं पि गच्छति, इमस्स पन भवं गोतमो किं उपादानस्मिं पञ्ञापेती'' ति?

''यस्मिं खो, वच्छ, समये अच्चि वातेन खित्ता दूरं पि गच्छति, तमहं वातूपादानं पञ्ञापेमि। वातो हिस्स, वच्छ, तस्मिं समये उपादानं होती'' ति।

[R.400] ''यस्मिं च पन, भो गोतम, समये इमं च कायं निक्खिपति सत्तो च अञ्ञतरं कायं अनुपपन्नो होति, इमस्स पन भवं गोतमो किं उपादानस्मिं पञ्ञापेती'' ति?

''यस्मिं खो, वच्छ, समये इमं च कायं निक्खिपति सत्तो च अञ्ञतरं कायं अनुपपन्नो होति, तमहं तण्हूपादानं वदामि। तण्हा हिस्स, वच्छ, तस्मिं समये उपादानं होती'' ति॥ ●

१०. आनन्दसुत्तं

[N.343] १०. अथ खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि।

बताता हूँ, निरुपादान (तृष्णामुक्त) मृत श्रावक का नहीं। जैसे, वत्स, उपादान (इन्धन) सहित अग्नि ही जलने में समर्थ होती है, निरुपादान (इन्धन विना) वह अग्नि कथमपि प्रज्वलित नहीं हो सकती; वैसे ही सउपादान श्रावक का ही पुनर्जन्म सम्भव है (अत: उस का उत्पत्तिस्थल बता देता हूँ।) निरुपादान श्रावक की उत्पत्ति सम्भव नहीं है, अत: मैं उस की उत्पत्ति नहीं बताता।''

''ऐसा नहीं है, भो गौतम! कभी कभी उपादान के विना भी उत्पत्ति सम्भव है, जैसे निरिन्धन अग्नि वायु द्वारा दूर फैंकी जाने पर वहाँ जा कर प्रज्वलित हो उठती है; वहाँ उस का क्या उपादान है?''

''वहाँ उस निरिन्धन अग्नि का वायु ही उपादान है। उसे ही उपादान मानना पड़ेगा।''

''तो, भो गौतम! जब प्राणी वर्तमान शरीर छोड़ता है, तथा भावी शरीर में नहीं जा पाता, उस समय उस का क्या उपादान है?''

''वत्स! जब प्राणी वर्तमान शरीर छोड़ता है और भावी शरीर में नहीं जा पाता, तब तक (उस समय) उस का 'तृष्णा' ही उपादान है। ऐसा मैं मानता हूँ॥'' ●

१०. आनन्दसूत्र : : अस्तिता एवं नास्तिता

१०. किसी समय वत्सगोत्र परिव्राजक, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ, गया।

एकमन्तं निसिन्नो खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"किन्नु खो, भो गोतम, अत्थत्ता" ति? एवं वुत्ते, भगवा तुण्ही अहोसि। "किं पन, भो गोतम, नत्थत्ता" ति? दुतियं पि खो भगवा तुण्ही अहोसि। अथ खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको उट्ठायासना पक्कामि। अथ खो आयस्मा आनन्दो अचिरपक्कन्ते वच्छगोत्ते परिब्बाजके भगवन्तं एतदवोच—"किन्नु खो, भन्ते, भगवा वच्छगोत्तस्स परिब्बाजकस्स पञ्हं पुट्ठो न ब्याकासी" ति?

"अहं चानन्द, वच्छगोत्तस्स परिब्बाजकस्स 'अत्थत्ता' ति पुट्ठो समानो 'अत्थत्ता' ति ब्याकरेय्यं, ये ते, आनन्द, समणब्राह्मण सस्सतवादा तेसमेतं सद्धिं अभविस्स। अहं चानन्द, वच्छगोत्तस्स परिब्बाजकस्स 'नत्थत्ता' ति पुट्ठो समानो 'नत्थत्ता' ति ब्याकरेय्यं, ये ते, आनन्द, समणब्राह्मणा उच्छेदवादा तेसमेतं सद्धिं अभविस्स। अहं चानन्द, वच्छगोत्तस्स परिब्बाजकस्स 'अत्थत्ता' ति पुट्ठो [R.401] समानो 'अत्थत्ता' ति ब्याकरेय्यं, अपि नु मे तं, आनन्द, अनुलोमं अभविस्स ञाणस्स उप्पादाय—'सब्बे धम्मा अनत्ता''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

वहाँ जा कर उन का कुशलक्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस वत्स परिव्राजक ने भगवान् से यों पूछा—"भो गौतम! क्या आत्मा है?"

ऐसा पूछे जाने पर भगवान् मौन (चुप) ही रहे। फिर उस ने पूछा—"क्या, भो गौतम! "आत्मा नहीं है?" तब भी भगवान् ने इस का कुछ भी उत्तर न दे कर उन्होंने इस विषय में मौन रहना ही उचित समझा। तब वह वत्सगोत्र परिव्राजक, भगवान् द्वारा अपने प्रश्नों का कुछ भी उत्तर न मिलने पर, वहाँ से उठ कर चला गया। उस वत्सगोत्र परिव्राजक के चले जाने पर आयुष्मान् आनन्द ने यह जिज्ञासा प्रकट की—

"भन्ते! इस वत्स परिव्राजक ने आप से आत्मा के अस्तित्व (होना) के विषय में पूछा तो आप मौन रहे। फिर उस ने आत्मा के अनस्तित्व (न होना) के विषय में पूछा, तब भी आप मौन ही रहे। भन्ते! आप के इस मौन का क्या कारण है?"

"आनन्द! यदि मैं वत्स परिव्राजक के 'आत्मा है' इस प्रश्न को स्वीकार करता तो इस से मेरा जो श्रमण ब्राह्मण शाश्वतवादी हैं उन के मत को स्वीकार करना मान लिया जाता। तथा यदि मैं 'आत्मा नहीं है'—ऐसा कहता तो उस से उच्छेदवादियों का मत ग्राह्य हो जाता। एक बात और, आनन्द! यदि मैं वत्सगोत्र परिव्राजक के 'आत्मा है'—इस मत को मान लेता, तब फिर मेरा वह सिद्धान्त कि 'सभी धर्म अनात्म है' इस मत के अनुकूल होता?"

[B.566] "अहं चानन्द, वच्छगोत्तस्स परिब्बाजकस्स 'नत्थत्ता' ति पुट्ठो समानो 'नत्थत्ता' ति ब्याकरेय्यं, सम्मूळ्हस्स, आनन्द, वच्छगोत्तस्स परिब्बाजकस्स भिय्यो सम्मोहाय अभविस्स—'अहु वा मे नून पुब्बे अत्ता, सो एतरहि नत्थी'" ति॥ •

११. सभियकच्चानसुत्तं

११. एकं समयं आयस्मा सभियो कच्चानो ञातिके विहरति गिञ्जकावसथे। अथ खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको येनायस्मा सभियो कच्चानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सभियेन कच्चानेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा [N.344] एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको आयस्मन्तं सभियं कच्चानं एतदवोच—"किन्नु खो भो, कच्चान, होति तथागतो परं मरणा" ति?

"अब्याकतं खो एतं, वच्छ, भगवता—'होति तथागतो परं मरणा'" ति।

"किं पन, भो कच्चान, न होति तथागतो परं मरणा" ति?

"एतं पि खो, वच्छ, अब्याकतं भगवता—'न होति तथागतो परं मरणा'" ति।

"किन्नु खो, भो कच्चान, होति च न च होति तथागतो परं मरणा" ति?

"अब्याकतं खो एतं, वच्छ, भगवता—'होति च न च होति तथागतो परं मरणा'" ति।

[R.402] "किं पन, भो कच्चान, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा" ति?

"एतं पि खो, वच्छ, अब्याकतं भगवता—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा'" ति।

"'किन्नु खो भो, कच्चान, होति तथागतो परं मरणा' ति, इति पुट्ठो समानो—'अब्याकतं खो एतं, वच्छ, भगवता—होति तथागतो परं मरणा' ति वदेसि। 'किं पन, भो कच्चान, न होति तथागतो परं मरणा' ति, इति पुट्ठो समानो—'अब्याकतं खो एतं,

---

"नहीं, भन्ते!"

"तथा यदि मैं वत्सगोत्र के 'आत्मा नहीं है'—इस मत का समर्थन करता तो उस को यह भ्रम हो जाता कि आत्मा आज भले ही न हो, परन्तु पहले तो कभी रहा होगा! इन्हीं सब बातों को सोचते हुए मैं उस के प्रश्नों पर मौन रह गया"॥ •

११. सभियकात्यायनसूत्र : : अव्याकृत

११. एक समय आयुष्मान् सभिय कात्यायन वज्जिप्रदेश के **ञातिका** (नादिका) ग्राम के गिञ्जकावसथ में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब कभी वत्सगोत्र परिव्राजक आयुष्मान् सभिय के पास आया उन से कुशलक्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया। तब उस वत्सगोत्र

वच्छ, भगवता—न होति तथागतो परं मरणा' ति वदेसि। 'किन्नु खो, भो कच्चान, होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति, इति पुट्ठो समानो—'अब्याकतं खो एतं, वच्छ, भगवता—'होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति वदेसि। 'किं पन, भो कच्चान, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति, इति पुट्ठो समानो—'एतं पि खो, [B.567] वच्छ, अब्याकतं भगवता—नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति वदेसि। को नु खो, भो कच्चान, हेतु को पच्चयो, येनेतं अब्याकतं समणेन गोतमेना'' ति?

''यो च, वच्छ, हेतु यो च पच्चयो पञ्ञापनाय रूपी ति वा अरूपी ति वा सञ्ञी ति वा असञ्ञी ति वा नेवसञ्ञीनासञ्ञी ति वा, सो च हेतु सो च पच्चयो सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं अपरिसेसं निरुज्झेय्य। केन नं पञ्ञापयमानो पञ्ञापेय्य रूपी ति [N.345] वा अरूपी ति वा सञ्ञी ति वा असञ्ञी ति वा नेवसञ्ञीनासञ्ञी ति वा'' ति।

''कीवचिरं पब्बजितोसि, भो कच्चाना'' ति?

''नचिरं, आवुसो, तीणि वस्सानी'' ति।

''यस्सपस्स, आवुसो, एत्तकेन एत्तकमेव तम्पस्स बहु, को पन वादो एवं अभिक्कन्ते'' ति!॥ •

अब्याकतसंयुत्तं समत्तं॥

तस्सुद्दानं

खेमाथेरी अनुराधो, सारिपुत्तो ति कोट्ठिको। [R.403]
मोग्गल्लानो च वच्छो च, कुतूहलसालानन्दो।
सभियो एकादसमं ति॥ •

सळायतनवग्गो चतुत्थो॥

परिव्राजक ने आयुष्मान् सभिय कात्यायन से यह पूछा—''क्या, भो कात्यायन! तथागत मरणानन्तर भी रहते हैं? ...पूर्ववत्... आप लोग संक्षिप्त उत्तर क्यों दे देते हैं?''

''वत्स! जो हेतु या जो प्रत्यय रूपी या अरूपी, संज्ञी या असंज्ञी, या नैवसंज्ञीनासंज्ञी के लिये दिया जाता है कि 'समस्त, सभी तरफ से, सर्वथा निरुद्ध हो जाय'। क्या बताते हुए यह समझाया जा सकता है, यह रूपी है, या अरूपी, संज्ञी है या असंज्ञी, या नैवसंज्ञीनासंज्ञी।''

''आयुष्मन् कात्यायन! आप को प्रव्रजित हुए कितना समय हुआ?''

''आयुष्मन्! बहुत अधिक नहीं, केवल तीन वर्ष!''

''इतने समय में आप को इतना ज्ञान हो गया, तो यह भी बहुत हो गया। अधिक होने पर तो कहना ही क्या था!'' •

अव्याकृतसंयुक्त समाप्त॥

तस्सुद्दानं

सळायतनवेदना, मातुगामो जम्बुखादको।
सामण्डको मोग्गल्लानो, चित्तो गामणि सङ्खतं।
अब्याकतं ति दसधा ति॥

॥ सळायतनवग्गसंयुत्तपालि निट्ठिता॥

इस संयुक्त में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. क्षेमासूत्र, २. अनुराधसूत्र, ३. प्रथम सारिपुत्रकौष्ठिकसूत्र, ४. द्वितीय सारिपुत्रकौष्ठिकसूत्र, ५. तृतीय सारिपुत्रकौष्ठिकसूत्र, ६. चतुर्थ सारिपुत्रकौष्ठिकसूत्र, ७. मोग्गल्लानसूत्र, ८. वत्सगोत्रसूत्र, ९. कौतूहलशालासूत्र, १०. आनन्दसूत्र एवं ११. सभियकात्यायनसूत्र॥

षडायतनवर्ग चतुर्थ समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात संयुक्तों की सूची—१. षडायतनसंयुक्त, २. वेदनासंयुक्त, ३. मातृग्रामसंयुक्त, ४. जम्बूखादकसंयुक्त, ५. सामण्डकसंयुक्त, ६. मोग्गल्लानसंयुक्त, ७. चित्तसंयुक्त, ८. ग्रामणिसंयुक्त, ९. संस्कृतसंयुक्त, एवं १०. अव्याकृतसंयुक्त॥

॥ षडायतनवर्ग संयुक्तनिकायपालि सम्पन्न॥

**दसबलसेलप्पभवा, निब्बाणमहासमुद्दपरियन्ता।
अट्ठङ्गमग्गसलिला, जिनवचननदी चिरं वहतु॥**

['बुद्ध' रूप महान् पर्वत से निःसृत, 'निर्वाण' रूप महासमुद्र तक जाने वाली, 'अष्टाङ्गिक मार्ग' रूप जल से पूर्ण यह 'बुद्धवाणी' रूप गङ्गा सदा बहती रहे।]